वर्ष: 43, अंक: 3-4, मई-अगस्त 2020 (संयुक्तांक)

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

जयंती स्मरण

काल स्वयं मुझ से डरा है
मैं काल से नहीं
कालेपानी का कालकूट पीकर
काल से कराल स्तभों को झकझोर कर
मैं बार-बार लौट आया हूँ
और फिर भी मैं जीवित हूँ
हारी मृत्यु है, मैं नहीं...!

विनायक दामोदर सावरकर

28 मई, 1883

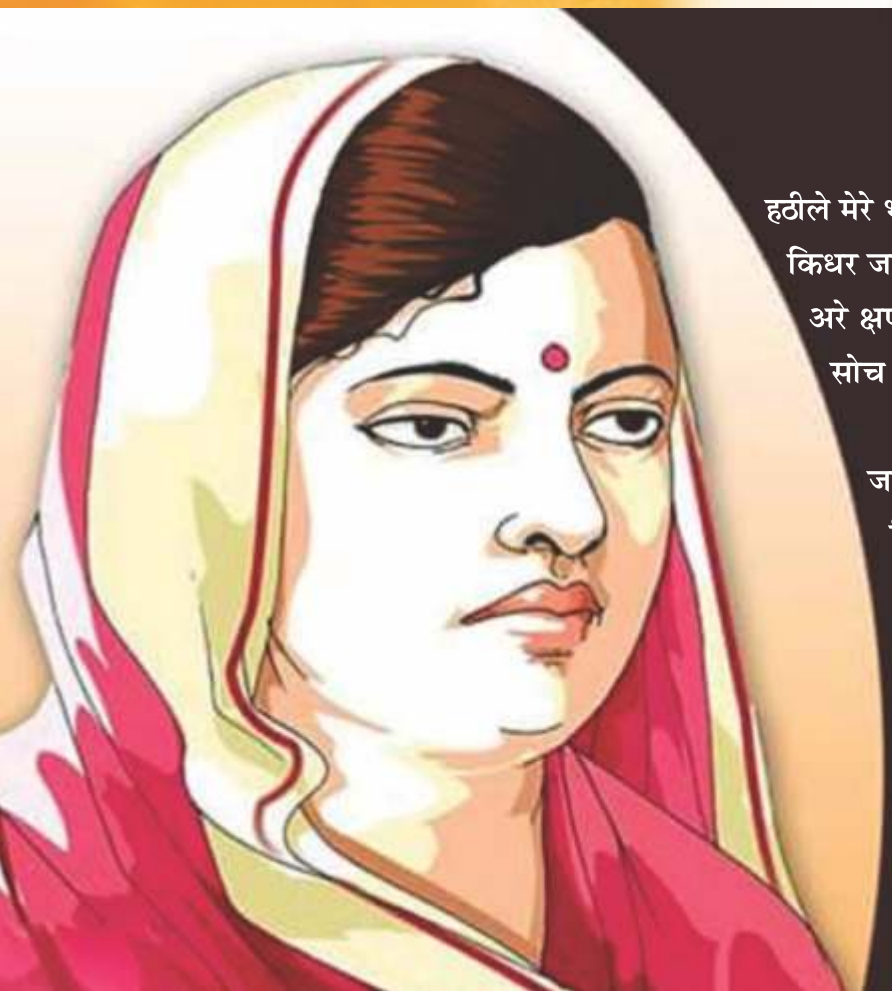

मेरे पथिक

हठीले मेरे भोले पथिक!
किधर जाते हो अकस्मात।
अरे क्षण भर रुक जाओ यहाँ,
सोच तो लो आगे की बात।।

यहाँ के घात और प्रतिघात,
तुम्हारा सरस हृदय सुकुमार।
सहेगा कैसे? बोलो पथिक!
सदा जिसने पाया है प्यार।।

जहाँ पद-पद पर बाधा खड़ी,
निराशा का पहिरे परिधान।
लांछना डरवाएगी वहाँ,
हाथ में लेकर कठिन कृपाण।।

जयंती स्मरण

सुभद्राकुमारी चौहान

16 अगस्त, 1904

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष: 43, अंक: 3-4, मई-अगस्त 2020 (संयुक्तांक)

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

हमारे दोस्त परिन्दे

बुद्धपे के अमलतास

नरेन्द्र कोहली : संस्मरण

बल्गारिया के लोकपर्व

भारतीय संस्कृति में गुप्तकाशी

करुणा के दयावान और हास्यवीर

चिरकुमारी नर्मदा का उद्गम : अमरकंटक

संगीत जैसा आनंद कहीं नहीं है-अनूप जलोटा

आपातकाल में साहित्यकारों-पत्रकारों का संघर्ष

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 43, अंक 3-4, मई-अगस्त 2020

प्रकाशकीय

4 डिजिटल दुनिया : हिंदी के बढ़ते कदम
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

5 राष्ट्रशक्ति : राष्ट्रीय विचारों का प्रवाह
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

8 बल्गारिया के लोकपर्व
आनंद वर्धन

पर्यावरण-वैविध्य

15 हमारे दोस्त परिन्दे
सुरेश्वर त्रिपाठी

सांस्कृतिक-विरासत

21 भारतीय संस्कृति में गुप्तकाशी
सनोज तिवारी

कथा-सागर

25 एक और घटना का पुनर्जन्म
गिरिराज शरण अग्रवाल

27 लॉकडाउन में एम्बुलेंस
मुक्ता

29 बुढ़ापे के अमलतास
कृष्ण कुमार (इंग्लैंड)

31 आग
शैलजा सक्सेना (कनाडा)

33 ईश्वर भी बस तुम्हें देखने आते थे
सर्वेश सिंह

35 कितनी अधूरी किताब
कृष्ण नागपाल

38 दो रंग की गोटियाँ
सुमन बाजपेयी

दृष्टि-सृष्टि

61 छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद
डॉ. आनंद कुमार सिंह

68 एक भारत श्रेष्ठ भारत
प्रो. उमेश कुमार सिंह

चिंतन-मंथन

72 आपातकाल में साहित्यकारों-पत्रकारों का संघर्ष
डॉ. अशोक कुमार ज्योति

76 रामविलास जी के तुलसी
डॉ. अवनिजेश अवस्थी

79 स्त्री-समस्याओं पर नवजागरणकालीन स्त्री साहित्यकारों की दृष्टि
डॉ. उन्मेष कुमार सिन्हा

87 हिंदी साहित्य में राष्ट्रवाद
डॉ. मोहन बैरागी

91 परसाई की व्यंग्य-कथाओं के नाट्य रूपांतरण
डॉ. राकेश कुमार

शोध-संसार

96 फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में लोक रंग (रेणु जन्म शताब्दी वर्ष पर विशेष)
डॉ. वंदना झा

101 शतवार्षिकी पर छायावाद का पुनः स्मरण
डॉ. कृष्णा शर्मा

104 ब्रिटेन और अमेरिका में हिंदी शिक्षण
डॉ. कमलेश कुमारी

111 प्रवासी साहित्य की विचारधारा और उत्तरायण
सोनपाल सिंह

संस्मरण

116 लौटती बरात
नरेन्द्र कोहली

नाटक-रंगमंच

126 द ज़ू स्टोरी
डॉ. ममता धवन

अनुक्रम

वर्ष 43, अंक 3-4, मई-अगस्त 2020

पुस्तक-समीक्षा

130 **एक मुलाकात कछार से**
अपूर्वा

133 **हाइकु की सामर्थ्य का साक्ष्य-अवगुंजन**
मनोज पाण्डेय

ज्ञान-कलश

137 **बौद्ध साहित्य में वर्णित अलौकिक प्रसंग व देवत्व की अवधारणा**
यश भान सिंह तोमर

व्यंग्य-वीथिका

140 **वायरस ही वायरस**
गिरीश पंकज

व्यंग्य-आलोचना

142 **करुणा के दयावान और हास्यवीर**
डॉ. प्रेम जनमेजय

स्वर-संगीत

148 **संगीत की जननी-भारत भूमि**
डॉ. प्रकाश चंद्र गिरि

योग एवं उपचार

151 **तनाव के लिए तनाव के साथ आदतें जिम्मेदार**
गोपाल कृष्ण

लघुकथा-सरोवर

153 उमेश महादोषी

154 मधुदीप

155 कमलेश भारतीय

156 चन्द्रेश कुमार छतलानी

157 ज्योत्स्ना 'कपिल'

158 रवि प्रभाकर

काव्य-मधुबन

159 सूर्य कुमार पाण्डेय

160 निर्देश निधि

162 कृष्ण कुमार प्रजापति

163 मुकेश निर्विकार

165 सीमा अग्रवाल

167 मालिनी गौतम

169 अनु चक्रवर्ती

171 हेमा जोशी

173 श्वेता चुघ

175 हेमराज सुन्दर (मॉरीशस)

177 देवेश पथ सारिया (ताइवान)

179 सुभाष प्रसाद गुप्ता (ऑस्ट्रिया)

साक्षात्कार

180 **संगीत जैसा आनंद कहीं नहीं है -अनूप जलोटा**
दिनेश पाठक

यात्रा-वृत्तांत

185 **चिरकुमारी नर्मदा का उद्‌गम : अमरकंटक**
प्रताप सहगल

192 **परिषद् की गतिविधियाँ**

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

डिजिटल दुनिया : हिंदी के बढ़ते कदम

भाषा विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है। इस दृष्टि से मानव समाज के लिए भाषा का बहुत अधिक महत्त्व है। भाषा के माध्यम से वह अपने विचार दूसरों तक पहुँचाता है तथा कला, साहित्य, संगीत इत्यादि सृजन करके उसका प्रचार और प्रसार करता है। यदि मनुष्य के पास विकसित भाषा न होती तो वह ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में विकास ही न कर पाता। मानव की प्रगति का अतीत और भविष्य दोनों ही भाषा में छिपा हुआ है। उसकी सांस्कृतिक धरोहर का आधार भी भाषा ही है। मानव के धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी व्यवहार भाषा के कारण ही विकसित हैं।

हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति एवं उसके भविष्य के विषय में प्रायः निराशापूर्ण विचार सुनने-पढ़ने को मिलते हैं, परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। आज हिंदी की स्थिति पूर्व से अधिक सुदृढ़ है एवं उसका भविष्य अधिक उज्ज्वल है। भारत की "जनभाषा" हिंदी अब तीव्र गति से अपनी अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करने के साथ उस लक्ष्य की ओर अग्रसर है जहाँ तकनीकी अभिव्यक्ति में वह समर्थ बन सके। वस्तुस्थिति यह है कि अंग्रेजी विश्व के वित्तीय, सैन्य और तकनीकी क्षेत्र में ताकतवर भाषा है परन्तु आज हिंदी का प्रभुत्व इस क्षेत्र में भी बढ़ता नजर आ रहा है। आबादी के हिसाब से भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत में तकनीकी ताकत बढ़ने के साथ-साथ हिंदी भी तेजी से बढ़ रही है। यद्यपि बहुराष्ट्रीय कंपनियों में अभी हिंदी माध्यम से नौकरी पाना कठिन है परंतु जिस प्रकार अमेरिका, यूरोप और चीन भारत में उभरते ग्रामीण मध्यवर्ग में अपना माल बेचने को लालायित हो रहे हैं, वह दिन दूर नहीं जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों में भी हिंदी जीविकोपार्जन का साधन बन जाएगी।

आज का समय डिजिटल प्लेटफार्म का है, जहाँ सब कुछ डिजिटल है। हिंदी दुनिया की बड़ी भाषाओं के समानांतर डिजिटल प्लेटफार्म पर चल रही है और श्रेष्ठतम साबित हो रही है। आज हिंदी वैश्विक भाषा के रूप में अपना स्थान बना रही है। बढ़ते विश्व व्यापार के साथ आज इंटरनेट पर भी हिंदी का विस्तार हो रहा है क्योंकि इंटरनेट निर्विवाद रूप से वर्तमान में सूचना-संचार का सबसे प्रबल माध्यम बनने की राह पर है। देश की शीर्ष 10 भाषाओं में सिर्फ हिंदी बोलने वाले लोग बढ़े हैं। आज हिंदी जिस जगह और जिस रूप में खड़ी है, वह उसका राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्वरूप है। आज कम्प्यूटर और इंटरनेट के इस युग में यदि सभी भाषाओं के लिए एक सार्वभौमिक लिपि की आवश्यकता अनुभव की जाए तो इस कसौटी पर खरा उतर सकने का सामर्थ्य देवनागरी में ही होगा। हिंदी को वैश्विक स्तर पर उसकी उपयोगिता सिद्ध करने के लिए कंप्यूटर एवं जीविकोपार्जन की भाषा बनाना आवश्यक है। इसके लिए नए सॉफ्टवेयर, शब्दकोश और स्पेलचेकर आदि विकसित करने की हमारी बड़ी जिम्मेदारी है।

दिनेश कुमार पटनायक

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

राष्ट्रशक्ति : राष्ट्रीय विचारों का प्रवाह

आज की दुनिया अनुभव और ज्ञान के अनंत युगों को पार करके जिस मुहाने पर खड़ी है इसे अनुभव और ज्ञान का संक्रमण काल कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ज्ञान के इस संक्रमण काल में आदमी पथ से भटक गया है। कभी उसे लगता है कि धर्म ही एकमात्र पथ है तो कभी उसका विश्वास दर्शन और वैज्ञानिक विचारधारा में अटल हो जाता है। मनुष्य को लगता है कि सभी प्रश्नों और सारी समस्याओं का हल विज्ञान के माध्यम से ही संभव है, किंतु यह विश्वास भी खोखला निकला। इसी कारण मनुष्य की मानसिकता भय और संशय की काली छाया में भटककर रह गई है उसे आगे बढ़ने के लिए किसी निश्चित व प्रकाशित पथ की आवश्यकता है, जिसकी खोज में मनुष्य की चेतना निरन्तर क्रियाशील है।

ऐसा लगता है कि ज्ञान का महासिंधु, वैचारिकता के महानदों से बहते हुए एक ऐसे मोड़ पर आ खड़ा है जहाँ पर पहुँच कर ज्ञान, संदेहों के विशाल क्षितिज से मिला हुआ दिखाई देता है। एक-एक करके धीरे-धीरे ज्ञान की समस्त पद्धतियाँ असफल होती चली गयीं और मनुष्य निराशा, हताशा एवं संशय की भावना से भर गया। ज्ञान की धारा चारों दिशाओं से होते हुए आज उस मोड़ पर आ खड़ी है, जहाँ उसे चुनने में उतनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है जितना किसी विशाल सिंधु में से मोती चुनने में होता है।

यह सोचकर बड़ा अचंभा होता है कि आदमी जितना खोजता गया, उसके ज्ञान का भंडार बढ़ता गया, साथ ही उसके संदेहों और भय का स्वरूप भी उतना ही बड़ा होता गया है। आज हर आदमी भयभीत है। उसका मन अशांत हो चुका है। मनुष्य मानसिक डिप्रेशन और दिमागी असंतुलन के युग में प्रवेश कर चुका है। जिस ज्ञान को इंसान ने फूल समझा वे ही काँटे बनते चले गए और मनुष्य दु:खों के प्रवाह-मंडल में फँसता चला गया। किंतु प्रसन्नता इस बात से है कि आज के महामानव ने इतिहास के विघटनात्मक, विघ्नात्मक, अराजक व संहारक समय को देखा है। आज की पीढ़ी इतिहास के उन समस्त गलत कदमों से परिचित है, जो उसके अस्तित्व को चुनौती दे सकती और नष्ट कर सकती है। इस ब्रह्माण्ड में विधाता ने एक अनुपम विस्मयकारी गुण से युक्त तथा विविध कलाओं से सुसज्जित मनुष्य की रचना की है जो इस अलौकिक दुनिया को भली-भाँति समझता है, जिससे होकर विचारों की अनवरत धारा बहती है और ज्ञान के संगम तक ले जाती है।

दुनिया में एक महान विचारधारा, जो सिर्फ मानवीय ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक, नैतिक और क्रियाशीलता का नेतृत्व करने वाली, अलौकिक तथा अतिनवीनतम महान कार्यों को अंजाम देने वाली नवयुगीन व कल्याणकारी लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निरंतर क्रियाशील है। जो कार्य कभी मनुष्यों के लिए कल्पनामात्र हुआ करता था अब उसके पदचिह्न उस ओर बढ़ते हुए नजर आ रहे हैं।

विचारधारा के अनवरत आंतरिक अंतर्द्वन्द्वों के महाग्नि के मध्य मनुष्य स्वयं को तपाकर इतना सुनहरा बना चुका है कि वह भविष्य में बाह्य जगत को भी सुनहरा बनाने में सक्षम बन सकता है। निश्चित रूप से दुनिया एक स्वर्ण युग में प्रवेश करने वाली है, मानव प्रागैतिहासिक काल से लेकर आजतक का सबसे महत्वपूर्ण और रोमांचकारी युग ही नहीं, बल्कि एक विस्मयकारी युग का आरंभ होने वाला है। जब मनुष्य पृथ्वी और सौरमण्डल तक ही सीमित न होकर अपनी आकांक्षाओं में पोषित कार्यों को अनंत तक अंजाम दे पाने में सफल होगा।

"दृश्यों की अनुभूति में जितना महत्त्व पदार्थों के अस्तित्व का है उससे भी अधिक वैचारिक दृष्टि का है। प्रकृति की सुंदरता और कलियों की मोहकता का आनंद वही प्राप्त करता है जिसकी दृष्टि सुरक्षित और स्वच्छ होती है। अन्यथा सूर्य का प्रकाश कितना ही तेजस्वी क्यों न हो दिखा पाने में अक्षम ही होता है। अर्थात् प्रकाश की उपयोगिता दृष्टि की सुरक्षा और स्वच्छंदता पर निर्भर करती है।"

दरअसल, यही ज्ञान की सरल परिभाषा है। ज्ञान के दो पक्ष हैं। प्रथम विचारणा और द्वितीय संवेदना। विचार मस्तिष्क के प्रशिक्षण एवं अनुभवों के माध्यम से बाहर से भीतर को प्रवेश करते हैं अर्थात इसे विज्ञान मान लें और वही भाव जब भीतर से उठते हैं; वे अन्त:करण के उपादान होते हैं इसे साहित्य मान लें। विचारों से जानकारियाँ बढ़ती हैं तथा बुद्धि में परिपक्वता आती है, वही भाव मनुष्य को मनुष्य बनाए रखते हैं। जीवन संघर्ष से कतराने वाले हमेशा आडंबरों में ही उलझे रहते हैं। मन और अन्त:करण का संबंध स्पष्ट है। मन सुविधाओं में रमता है और अन्त:करण भाव संवेदनाओं की दुनिया में रमता है। मन को खुले अधिकारों की स्वतंत्रता चाहिए ताकि वह जो चाहे कर सके। किंतु आत्मपथ पर चलने वाला पथिक संपूर्ण अनुभव, संपूर्ण वैभव बेचकर, लुटाकर संतोष और शांति को पाना चाहता है।

संपूर्ण सृष्टि और उनमें परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव को देखकर यही प्रतीत होता है कि महान मूर्तिकार ने इस मूर्ति को बनाने में अपने सम्पूर्ण अनुभव, सम्पूर्ण कलाओं को स्थापित कर उसे पृथ्वी-पटल पर बिखेर दिया है। सृष्टि कितनी महान और अद्‌भुत है, उसे देखना हो तो उसकी सर्वोत्तम कृति मानव को बारीकी से देखें। वह अनुपम है, ऐसा सर्वांगीण और सर्वगुण संपन्न सृजन इस ब्रह्माण्ड में शायद ही अन्यत्र कहीं पर उपलब्ध है। अब हमारी जिम्मेदारियों और हमारे कर्त्तव्यों के निर्वहन का समय चक्र चालू हो चुका है। हमारी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि हम स्रष्टा की इच्छाओं को पूरा करने में अपने जीवन की संपूर्ण ऊर्जा लगा दें। तन-मन से ईमानदार कोशिश में जुट जाएँ। मनुष्यता की आकांक्षा को किसी प्रकार का ठेस न पहुँचने पाए और उसकी महान गरिमा सदैव महान ही बनी रहे। जिन इच्छाओं व सपनों को हृदय में संजोकर स्रष्टा ने इस अद्‌भुत जीव का सृजन किया है उसे भली-भाँति पूरा करें। जीवन देने वाले उस अलौकिक के प्रति हम पूर्णरूपेण कृतज्ञ हैं। हमें यह प्रतिज्ञा करनी होगी और हमें उसकी इच्छानुसार, आत्मसमर्पित, गौरवशाली व सृजनात्मक जीवन जीना चाहिए। यही साहित्य है और यही साहित्य का लक्ष्य।

सब कुछ परिवर्तित होता चला गया और इसको सरल रूप से कहें तो संसार की सभी चीजें परिवर्तन के हवाले हो गईं। मन-मस्तिष्क बदला, जीवन-दर्शन बदला, शिक्षा-दीक्षा बदले, ज्ञान-विज्ञान बदले, संस्कार-सरकार बदले, चिंतन-मंथन बदला, पत्र-पत्रकार बदले, सोच-परिधान बदला, पर्व-त्योहार बदले, साहित्य-लालित्य बदला, भाषाएँ-आशाएँ बदलीं, पुरातन परिभाषाएँ बदलीं, मित्र-शत्रु बदले, विचार-विचारधारा बदली, आशा-निराशा बदली, लोक-लाज बदले, संघ-संविधान बदले, साधु-संत बदले, वायु-जलवायु बदले आदि-आदि।

परिवर्तन अच्छी बात है परंतु परिवर्तन कब, कहाँ और कितना होना चाहिए इसका अनुपात सही रखना एक सभ्य, सुसंस्कृत और संतुलित समाज के लिए बहुत ही जरूरी है। विशेषकर भारत जैसे लोकतांत्रिक देश के लिए। कहीं न कहीं हम यहाँ चूक कर गए। परम तत्व की स्थापना में और विचार में विश्वास रखने वाला देश अहम तत्व की स्थापना और विचारों को संतुष्ट करने वाला देश बन गया। मेरा निजी अनुभव भी लगभग 30-35 देशों की यात्रा का है, खासकर जब मैं यूरोपीय संघ को देखता हूँ तो एक बात बहुत ही स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, चाहे वह जर्मनी हो चाहे ग्रेट ब्रिटेन या फिर इटली, ऑस्ट्रिया या फ्रांस, इन सभी देशों ने अपने मूल अस्तित्व में परिवर्तन नहीं होने दिया। डेढ़ दो सौ साल पहले जिन चीज़ों का, अवधारणाओं का, परंपराओं का, आस्थाओं का निर्माण और निरूपण समाज में हुआ वह बहुत सोच समझ कर किया गया था। यह सभी चीजें वैज्ञानिक तथ्य पर भी उतनी ही मजबूत थीं जितनी सामाजिक स्तर पर। यह भारत के लिए भी उतना ही मान्य है जितना विश्व के अन्य देशों के लिए परंतु मैं देखता हूँ कि जहाँ यूरोपीय संघ, पश्चिमी एशिया के देश अपने मूलभूत संस्कारों, त्यौहारों, भाषाओं को बचाने और उसके संरक्षण के लिए बेहद चिंतित और प्रयत्नशील रहते हैं। भारत में मैं यह नहीं कहूँगा कि चीजों को लेकर चिंता नहीं है परंतु यह जरूर कहूँगा कि भारतीय परंपराओं, भारतीय संस्कृति, भाषाओं, भारतीय उच्च मानक सामाजिक व्यवस्था आदि के प्रति सरकार और समाज लगातार उदासीन होती चली गई, जिसका परिणाम है आज का भारत। हर बात में राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया गया। लोकतंत्र के बहाने देश राजनीतिक प्रयोगों का प्रयोगशाला बन गया।

राजनीति में प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। लेकिन प्रतिस्पर्धा में शामिल लोगों को यह भी सोचना चाहिए कि प्रतिस्पर्धा का फल क्या होगा? देश पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? समाज के लोग किस ओर अग्रसर होंगे? समस्या तब गंभीर हो जाती है जब देश, संविधान, संसद लोकतंत्र, लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक हित के लिए प्रतिस्पर्धा न करके सत्ता के सिंहासन तक पहुँचने के लिए प्रतिस्पर्धा में सीमित हो जाए। यहीं से पतन का प्रारंभ होता है और आज हम इस पतन को वतन से ज्यादा महत्त्व दे रहे हैं। हम रोज मीडिया, अखबार के माध्यम से देख-सुन रहे हैं। इस परिस्थिति से निकलना अत्यंत दुष्कर है पर असंभव नहीं। आज हमारा समाज और साहित्य इसी शिकंजे में जकड़ा हुआ है। हमें इसे रोशनी में लाना होगा और इससे स्वयं को और समाज को उबारना होगा।

दरअसल, यही "अवचेतन अन्त: प्रक्रियाओं और नकारात्मक प्रबोध एवं प्रवृत्तियों से निपटने की जो कुंजी हमें प्रदान करता है उसे साहित्यकार कहते हैं।" यही साहित्य का मूल है और यही साहित्य की शक्ति। विचारों का सकारात्मक प्रवाह जीवन-शक्ति है। यही सृजनात्मक ऊर्जा-शक्ति समाज को संपुष्ट करती है। जीवन चाहे जैसा भी हो, सकारात्मक प्रवाह खुशी और कृतज्ञता से उसका स्वागत करती है। "मनुष्य का मन विचारों का परिष्कृत स्वरूप है और आत्मा मन का परिष्कृत स्वभाव।"

मानवीय चित्त में परमाणु की भाँति अनंत शक्तियाँ व क्षमताएँ विद्यमान हैं। अभी जितना उनका विकास हुआ उससे कई गुना अधिक विकास की संभावना बाकी है। समाज में मानसिक शक्तियों का अराजक और असंतुलित प्रदर्शन ही दुखों और संघर्षों का मूल कारण है। एक अराजक चित्त में ही अराजकता पनपती है क्योंकि समाज का निर्माण व्यक्तियों के सम्मिलित सहसंबंधों से ही होता है। इस पूरी प्रक्रिया में साहित्य और साहित्यकारों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए जो घटना एक साहित्यकार के अन्त:करण में घटित होती है उसका बहुत व्यापक प्रभाव समाज पर पड़ता है।

यदि समाज को बदलना है तो सबसे पहले हमें बदलना पड़ेगा। मानव समष्टि को नया आयाम देना है तो सर्वप्रथम समाज की अंतरात्मा और विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना अत्यंत आवश्यक है। यदि भारत में एक राष्ट्रीय चरित्र को निर्मित करना है तो सर्वप्रथम राष्ट्र के निवासियों के चरित्र का निर्माण करना पड़ेगा, क्योंकि व्यक्ति ही समाज व राष्ट्र का आधार स्तंभ है, जिससे समाज, सभ्यता और राष्ट्र निर्मित होते हैं। इन चेष्टाओं को किए बिना एक राष्ट्रवादी पर्यावरण का निर्माण असंभव है।

राष्ट्रवादी पर्यावरण के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने सकारात्मक साहित्य लेखन के क्षेत्र को जितना अधिक से अधिक विस्तार दे सकें और अधिक से अधिक लोगों तक रुचिकर साहित्य पहुँचा सके। पत्रिकाओं के प्रकाशन का मूलभूत उद्देश्य भी यही होता है।

विगत 43 वर्षों से गगनांचल पत्रिका भारतीयता, सांस्कृतिक, भाषाई और साहित्य अवदान के लिए समर्पित रही है। हजारों रचनाओं में से कुछ रचनाओं को प्रकाशन के लिए चुनना अत्यंत कठिन कार्य है परंतु फिर भी हम निरंतर इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं इस शोध से लेकर कहानी, कविता, संस्मरण आदि जिसका भी प्रकाशन पत्रिका में किया जा रहा है उसकी गुणवत्ता संतोषजनक हो।

गगनांचल के पाठकों को बहुत विनम्रता के साथ में यह भी सूचित करना चाहता हूँ कि पत्रिका केयर लिस्ट में तो जरूर है परंतु यह कोई शोध पत्रिका नहीं है इसलिए इतनी बड़ी संख्या में शोधार्थियों और अध्यापकों द्वारा भेजे जाने वाले शोध निबंधों का प्रकाशन यथासंभव ही किया जा सकेगा।

आपकी प्रतिक्रिया से और अपेक्षाओं से पत्रिका के गुणवत्ता को और बढ़ाया जा सकता है।

इस अंक के लिए इतना ही। शुभकामनाएँ

डॉ. आशीष कंधवे

मोबाइल : +91-9811184393

ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

बल्गारिया के लोकपर्व

— आनंद वर्धन

बल्गारिया में पहली जनवरी प्रमुख त्यौहार के रूप में मनाई जाती है। इसे यहाँ सूरवा भी कहते हैं। इस दिन शाम को पूरा परिवार एकत्र होता है। घर में तरह-तरह के पकवान बना कर मेज पर सजाए जाते हैं और गृहस्वामिनी धूपबत्ती जलाकर बाएँ से दाहिनी ओर चक्कर लगाती है और फिर बानित्सा (एक विशिष्ट बल्गारियन व्यंजन) के पात्र को तीन बार पलटती है। इसमें किस्मत (एक विशिष्ट वस्तु) और चाँदी का सिक्का छिपा रहता है जो किसी भाग्यशाली को प्राप्त होता है। सुबह-सुबह बच्चे घर घर जाकर हाथ में ली अनाज की सजी सजाई टहनी से हर व्यक्ति की पीठ थपथपाते हुए आशीर्वाद स्वरूप कहते हैं कि ''नए साल में खेतों में खूब अनाज पैदा हो, सेब के बाग लाल-लाल सेबों से लद जाएँ, अंगूर की पैदावार अच्छी हो, शहद और मुर्गी के चूजे बहुत अधिक हों और आप हमेशा स्वस्थ व सुखी रहें।''

पूर्वी यूरोप का देश बल्गारिया भू भाग और जनसंख्या की दृष्टि से भारत की तुलना में बहुत छोटा है लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक संपन्न है। बल्गारिया ने अनेक संघर्षों का सामना किया लेकिन इनके बीच अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को लुप्त नहीं होने दिया। भारत की ही तरह बल्गारिया में भी गाँवों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है हालाँकि बाज़ार के बढ़ते दबाव के कारण शहरों में बसने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। बल्गारिया के निवासियों का जीवन आरंभ से ही कृषि के साथ लोक जीवन से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। यहाँ अनेक लोकपर्व मनाए जाते हैं इसलिए बल्गारिया को लोकपर्वों का देश कहना अतिशयोक्ति न होगी।

यहाँ के लोकोत्सवों को ऋतुओं के अनुसार तीन भागों में बाँटा जा सकता है। ये हैं शीत ऋतु में मनाए जाने वाले उत्सव, बसंत ऋतु में मनाए जाने वाले उत्सव और ग्रीष्म ऋतु में मनाए जाने वाले उत्सव। यहाँ शीत ऋतु का समय नवंबर से लेकर मार्च तक रहता है। इस समय बल्गारिया बर्फ की चादर से ढँक जाता है। ऐसा लोकविश्वास है कि शीत ऋतु का संबंध जीवन के समापन से है इसीलिए इस ऋतु में मनाए जाने वाले उत्सवों में झाड़ फूँक, और जादू टोने आदि की अधिकता होती है जिससे मनुष्य और पशु स्वस्थ रहें और अच्छी फसल पैदा हो।

मार्च में बसंत का आगमन होता है। पेड़ों पर फूल इठलाने लगते हैं, पक्षियों के गुंजार से बाग, बगीचे और जंगल गूँज उठते हैं और मानव मन उल्लास से भर कर नाचने लगता है। इस समय प्रकृति जैसे पुनर्जीवित हो उठती है। ऐसा माना जाता है कि प्रकृति के जागृत होते ही जंगलों और पानी में रहने वाली दुष्टात्माएँ भी अँगड़ाई लेने लगती हैं इसलिए बसंत में मनाए जाने वाले उत्सवों में भी अनेक जादुई क्रियाकलाप शामिल रहते हैं। इनके पीछे यही उद्देश्य है कि प्रकृति ठीक से पोषित हो और मानव जीवन सहज ढंग से चल सके।

मई महीने के समाप्त होते न होते यहाँ ग्रीष्म ऋतु दस्तक देने लगती है। उस समय फसलें पकने की स्थिति में होती हैं

और उनका बचाव भी जरूरी होता है। इस अवधि में मनाए जाने वाले उत्सवों में ओलावृष्टि, बाढ़, अग्नि, चुड़ैलों और फसल नष्ट करने वाली आत्माओं से बचाव के लिए तरह-तरह की परंपराओं का निर्वाह किया जाता है। इस तरह बल्गारिया के लोकपर्व न केवल मनुष्यों में जीवन और उत्साह का संचार करते हैं बल्कि उनमें किए जाने वाले अनुष्ठान मानव मात्र की सुरक्षा के लिए कवच का काम भी करते हैं।

यहाँ हम बल्गारिया के कुछ प्रमुख लोकपर्वों की चर्चा करेंगे। क्रिसमस एक ऐसा त्योहार है जिसे बल्गारिया में धूमधाम से मनाया जाता है। इसे कोलेदा नाम से पुकारते हैं। क्रिसमस की पूर्व संध्या को बुदनी वेचर कहा जाता है। यहाँ यह लोक विश्वास है कि सम्पूर्ण सृष्टि को पुनर्जीवन देने के लिए मुँह अंधेरे ही कुँआरी लड़कियाँ चुपचाप गाँव के झरनों से पानी लाती हैं और उसी से रोटीनुमा पवित्र व्यंजन बनाती हैं जिसे बोगोवित्सा कहा जाता है। गाँव के युवक गाना गाते हुए जंगल में जाते हैं और लकड़ी का लट्ठा काटकर लाते हैं जिसे बुदनिक कहा जाता है। इस लट्ठे को चूल्हे में डालकर रातभर जलाया जाता है। यह लोकप्रचलित विश्वास है कि यह पवित्र अग्नि दुष्ट शक्तियों और बीमारियों से सबकी रक्षा करेगी। बाद में इसकी राख को खेतों में डाल दिया जाता है ताकि फसल अच्छी हो। घरों में रात्रिभोज का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। इस अवसर पर महिलाएँ विशेष व्यंजन बनाती हैं और ये व्यंजन शाकाहारी होते हैं। परिवार के सभी सदस्यों के एकत्र होने के बाद गृहस्वामिनी पूरे घर में धूपबत्ती जलाती है।

इस अवसर पर गृहस्वामी कृषक अपने हल के फाल को चमकाता है। वह हल के फाल पर तीन अंगारे रखता है। ये अंगारे खेत, घर और जानवरों के रक्षार्थ रखे जाते हैं। फिर ईश्वर की आराधना की जाती है। इसके बाद घर का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति पवित्र रोटी को तोड़ता है। पवित्र रोटी (ब्रेड) का पहला हिस्सा कुलदेवता को समर्पित किया जाता है और शेष हिस्से घर के सदस्यों को दिए जाते हैं। जानवरों को भी उनका हिस्सा दिया जाता है। उस रोटी या केक को बनाते समय उसमें एक सिक्का छिपा दिया जाता है और जिस व्यक्ति को यह सिक्का मिलता है, माना जाता है कि वह परिवार में सबसे अधिक भाग्यशाली है। रात्रिभोज के बाद टेबुल को साफ नहीं किया जाता और उस पर से व्यंजन हटाए नहीं जाते। ऐसा इसलिए किया जाता है कि रात में पूर्वज और पितृगण आएँगे और इन व्यंजनों को ग्रहण करेंगे। क्रिसमस की रात हर व्यक्ति अपने गले में लहसुन का एक टुकड़ा लटका कर रखता है जिससे कि वह बीमारियों और बुरी नज़र से बच सके।

अपने सौभाग्य को आजमाने से संबंधित एक अन्य परंपरा भी बल्गारिया में प्रचलित है। प्रत्येक व्यक्ति एक अखरोट तोड़ता है ताकि उसे पता लग सके कि आने वाले साल में उसका भाग्य कैसा होगा? यदि अखरोट पूरी तरह भरा हुआ है तो इसका मतलब है कि भाग्य अच्छा है और यदि अखरोट खोखला है तो इसका अर्थ है कि भाग्य ठीक नहीं है।

क्रिसमस की रात गाँवों में लोग सोते नहीं है क्योंकि उन्हें अग्नि को बुझने नहीं देना है और कोलेदारियों की (क्रिसमस के गीत गाने वालों की) और बैगपाइप की आवाजें सुननी हैं। ये कोलेदारी अविवाहित युवक होते हैं। वे एकत्र होकर उस व्यक्ति के पास जाते हैं जो ''स्तानिक'' होगा। ''स्तानिक'' इन गायकों के समूह का मुखिया होता है। वह विवाहित पुरुष होता है। उसे सारे गीतों और परंपराओं का ज्ञान होता है। ये गायक जोड़ा बनाकर गीत गाते हैं। इसे चोउगारी कहा जाता है। अगला समूह इन्हीं पंक्तियों को दोहराता है। इस समूह में एक पाइप बजाने वाला भी होता है। वह केवल तभी पाइप बजाता है जब यह समूह गीत नहीं गाता और एक घर से दूसरे घर की ओर बढ़ता है। यह मंडली हर घर के सामने एक

गीत गाती है। ये गीत धन-धान्य और खुशहाल जीवन की कामना को अभिव्यक्त करते हैं। यह कार्यक्रम सुबह तब समाप्त होता है जब गाँव के प्रत्येक घर के सामने यह समूह गाना गा चुका होता है।

प्राचीन समय में इस त्यौहार में चर्च जाने के बाद गाँव के चौक में युवतियों द्वारा बनाए गए बने (ब्रेड) की बोली लगाई जाती थी। प्रेमी युवकों के लिए यह गौरव की बात होती थी कि वह अपनी प्रेमिका द्वारा बनाए गए बन को अधिक से अधिक बोली लगाकर स्तानिक से खरीदे।

बल्गारिया में पहली जनवरी प्रमुख त्यौहार के रूप में मनाई जाती है। इसे यहाँ सूरवा भी कहते हैं। इस दिन शाम को पूरा परिवार एकत्र होता है। घर में तरह तरह के पकवान बना कर मेज पर सजाए जाते हैं और गृहस्वामिनी धूपबत्ती जलाकर बाएँ से दाहिनी ओर चक्कर लगाती है और फिर बानित्सा (एक विशिष्ट बल्गारियन व्यंजन) के पात्र को तीन बार पलटती है। इसमें किस्मत (एक विशिष्ट वस्तु) और चाँदी का सिक्का छिपा रहता है जो किसी भाग्यशाली को प्राप्त होता है। सुबह-सुबह बच्चे घर घर जाकर हाथ में ली अनाज की सजी सजाई टहनी से हर व्यक्ति की पीठ थपथपाते हुए आशीर्वाद स्वरूप कहते हैं कि ''नए साल में खेतों में खूब अनाज पैदा हो, सेब के बाग लाल-लाल सेबों से लद जाएँ, अंगूर की पैदावार अच्छी हो, शहद और मुर्गी के चूजे बहुत अधिक हों और आप हमेशा स्वस्थ व सुखी रहें।''

सूरवा टहनी का पौराणिक महत्व है। इसे विश्व वृक्ष के रूप में देखा जाता है और लड़कों की भूमिका मध्यस्थ की होती है। सूरवा टहनी को रंग बिरंगे ऊन, मक्के के दानों, सूखे फलों, मेवों, मिर्च और रंगीन कागज़ों से सजाया जाता है। शाम के समय युवक ऊँट का वेश धारण कर समृद्धि की कामना करते हैं और अंत में प्रतीकात्मक रूप से वह ऊँट मर जाता है। उसका मरना दुष्ट आत्माओं के मर जाने को रूपायित करता है। युवकों को इस अभिनय के बदले उपहार आदि दिए जाते हैं।

हम जानते हें कि जीवन में जल का बहुत महत्व है। उसे भारत में देवता का स्थान प्राप्त है। जल में शुद्धीकरण और उपचार करने की जादुई शक्ति होती है। इसी विश्वास से सम्बद्ध बल्गारियायी उत्सव है वोदित्सी। इस उत्सव में सुबह सुबह जल की पूजा अर्चना की जाती है। गाँवों में चर्च के पादरी

लकड़ी के एक क्रॉस को नदी, झील या समुद्र में फेंकते हैं और अनेक युवक बर्फ जैसे ठंडे पानी में कूद कर उसे निकालने की कोशिश करते हैं। जो युवक सबसे पहले उस क्रास तक पहुँचाता है और उसे निकाल लाता है उसे पुरस्कार मिलता है।

अनेक स्थानों पर इस कार्यक्रम के बाद ''ईवानोत्स्वो'' या ''अरात्लीचेस्त्वो'' नाम का अनुष्ठान सम्पन्न किया जाता है। इस पर्व का संबंध बंधुत्व या भाईचारे से है। इस परंपरा के अंतर्गत दो या तीन पुरुष जलते हुए अंगारे के ऊपर अपना दाहिना पैर रखकर एक दूसरे से जुड़ने तथा उनके परिवारों का ख्याल रखने का वचन देते हैं। उसके बाद एक ओझा उन्हें एक पात्र से पीने के लिए तीन बार लाल वाइन देता है। यह सुरा रक्त संबंधों का प्रतीक होती है और उन्हें जीवन भर के लिए जोड़ती है। लाल कपड़ों में बंधी तीन पवित्र ब्रेडों को तोड़कर ये व्यक्ति अपने परिवारों को एक पवित्र रिश्ते में बाँधने का निश्चय करते हैं। इन नवीन बंधुत्व को सुदृढ़ करने के लिए ये लोग क्रमशः तीन प्रकार के नृत्य करते हैं। पहला चेपन्या जिसमें केवल उनके परिवारों की स्त्रियाँ भाग लेती हैं, दूसरा चेरनो पेपेर जिसमें पुरुष भाग लेते हैं और तीसरा होरो जिसमें परिवारों के सभी सदस्य भाग लेते हैं। इसके बाद ये व्यक्ति आजीवन एक दूसरे के साथ भाई जैसा व्यवहार करते हैं और स्त्रियाँ बहनों जैसा।

बल्गारिया में मनाया जाने वाला एक अन्य प्रमुख लोकपर्व है ''त्रिफोन जारेजान''। पहली फरवरी को मनाए जाने वाले इस पर्व का संबंध प्राचीन थ्रेसियन देवता डायनोसिस से है जो द्राक्षा का देवता माना जाता है। इस दिन स्त्रियाँ सुबह होने से पूर्व ही एक विशेष प्रकार की ब्रेड बनाती हैं जिसे पोगचा कहते हैं। इस ब्रेड के ऊपर अंगूर के वृक्ष की आकृति उकेरी जाती है। यह इस बात का प्रतीक है कि इस वर्ष अंगूर की पैदावार अच्छी हो। इस दिन काली मुर्गी का गोश्त पकाया जाता है। सूरज के उगते ही सभी लोग गाते-बजाते हुए अंगूर के बागों में जाते हैं। उनके हाथों में सुरा से भरा हुआ पात्र और खाने का सामान होता है। बाग में अंगूर की बेलों की छँटाई का काम सम्पन्न होता है। प्रत्येक किसान सबसे अच्छी और बड़ी बेल के चारों ओर एक गोलाकार जमीन खोदता है और उसमें अंगूर से बनी हुई सुरा और ब्रेड डालता है। इसके बाद वह तीन छोटी छोटी टहनियाँ काट कर उन्हें लाल धागे से बाँधता है और तीन बार क्रॉस बनाता है।

ये टहनियाँ एक विशेष प्रकार के चाकू से काटी जाती हैं जिसे कोस्सेट कहते हैं। यह मान्यता है कि प्राचीन काल में संत त्रिफोन ने अंगूर उगाने वाले किसानों की प्रार्थना सुनकर उपज अच्छी होने का वरदान दिया था। किसान इन टहनियों की माला सी बनाकर उसे अपनी फर की टोपी, जिसे कल्पक कहा जाता है, के ऊपर लगाते हैं। फिर सभी लोग वहीं भोजन करते हैं।

इसके बाद जिस किसान के खेतों में पिछले साल सबसे अच्छी अंगूर की पैदावार हुई थी और जिसके यहाँ सबसे अच्छी सुरा बनी थी उसे राजा या ''त्रिफोन'' के रूप में चुना जाता है। उस व्यक्ति को दो पहिए की गाड़ी में खड़ा करके पूरे गाँव में सम्मान स्वरूप घुमाया जाता है। इस दिन सभी लोग सुरापान करते हैं। ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने पर अगले मौसम में अंगूर की फसल अच्छी होगी। इस दिन के बारे में एक दंतकथा और भी है। कहा जाता है कि वर्जिन मेरी का मज़ाक उड़ाने के

कारण त्रिफोन की नाक इसी दिन कट गई थी। चूँकि नाक पौरुष का प्राचीन प्रतीक है इसलिए इस दिन को नाक कटने का दिन भी कहते हैं।

मिसनी जागोवेज़्नी शीत ऋतु में मनाया जानेवाला प्रमुख त्यौहार है जो सिरनी जागोवेजज़्नी के पूर्व मनाया जाता है। इसमें केवल मांसाहारी व्यंजन बनाए जाते हैं क्योंकि इसके बाद व्रत शुरू हो जाते हैं और तब केवल शाकाहारी भोजन सात सप्ताह तक किया जाता है। व्रत का महत्व इस दृष्टि से भी है कि यह शरीर के शुद्धिकरण में सहायता देता है।

सिरनी जागोवेज़्नी त्यौहार ईस्टर के सात सप्ताह पूर्व मनाते हैं। इस दिन गाँवों में लोग बड़े बूढ़ों और ईश्वर से क्षमायाचना

करते हैं। यह पूरे सप्ताह चलता है और इसमें अच्छी उपज, समृद्धि और अच्छे स्वास्थ्य की कामना की जाती है। रविवार को सूर्यास्त के समय युवा वृद्ध सब लोग एक साथ गाँव के चौक में तीव्र गति से होरो नृत्य करते हैं। घरों में पुरुष कमरे के बीच एक शहतीर में लंबा लाल धागा बांधते हैं और स्त्रियाँ उस धागे में कोयले का टुकड़ा, उबला अंडा और चीज़ (पनीर) का टुकड़ा बाँध कर तेजी से उसे दाहिनी ओर घुमाती हैं। अन्य सदस्य उसे पकड़ने का प्रयास करते हैं। माना जाता है कि सबसे पहले जो उसे पकड़ेगा वह घर की देखभाल करेगा, दूसरा पकड़ने वाला भाग्यशाली होगा और तीसरा दीर्घायु होगा। इसके बाद अच्छी पैदावार की कामना करते हुए धागा जला दिया जाता है। इसके दूसरे दिन कुकेरोवदेन मनाया जाता है। दक्षिण और पूर्वी बल्गारिया में इस अवसर पर गाँवों में लोग मूक अभिनय करते हैं। इसे कुकेरे कहा जाता है। युवक मुखौटे लगाकर घर घर जाते हैं और मेजबान उन्हें उपहार देते हैं। अंत में ये गाँव के बीचों बीच प्रतीक रूप में हल चलाते हैं ताकि दुष्टात्माएँ भाग जाएँ और सुख समृद्धि बनी रहे। इस समूह में एक दुल्हन भी होती है जिसे हाजी बाबा कहा जाता है। बाबा शब्द बल्गारिया में नानी के लिए प्रयुक्त होता है। इस दिन का सुखद अंत होरो नृत्य (शृंखला बनाकर किये जाने वाले नृत्य) के साथ होता है। कुकेरे बकरी या भेड़ की खाल में छिपे रहते हैं। इनके मुखौटे लकड़ी के बने होते हैं और इनमें विभिन्न रंग, धागे, मोती, शीशे के टुकड़े आदि लगे रहते हैं। इन मुखौटों से जुड़ी हुई एक अंतर्कथा भी प्रचलित है। कहते हैं कि प्राचीन काल से ही यह देश ईडेन के बागीचे की तरह था और यहाँ सुख समृद्धि थी। यहाँ ईडेन दोब्रोदोर नामक एक बुद्धिमान राजा का शासक था। वह सबका आदर करता था। उत्तरी राज्य के राजा की पुत्री उसकी समृद्धि से ईर्ष्या करती थी। उसका नाम ज़िल्याना था। ज़िल्याना ने उससे बदला लेने की ठान ली। उसने कुछ ऐसा जादू कर दिया कि दोब्रोदोर के राज्य में जो व्यक्ति पशुओं को हल में जोतकर खेती शुरू करता वह घर लौटते-लौटते मर जाता। इस तरह अनेक पशु और अनेक व्यक्ति मर गए। राजा चिंताग्रस्त होकर बीमार पड़ गया। अंत में राजा के पिता को एक उपाय सूझा। उसने लोगों से कहा कि तुम जानवरों के मुखौटे लगाकर स्त्रियों की पोशाक पहन लो और घंटियाँ बाँध कर खेतों में जाओ और स्वयं जुताई करो। लोगों ने ऐसा ही किया और वे जुताई करने में सफल रहे। दुष्ट ज़िल्याना का जादू उन पर नहीं चला और वह स्वयं विद्वेष के कारण नष्ट हो गईं तबसे ही इस दिन को त्यौहार के रूप में मनाते हैं। बसंत के आगमन के पूर्व घंटियाँ बज उठती हैं और लोग धरती से और अधिक अन्न देने का आग्रह करते हैं।

एक मार्च बल्गारिया के लिए सर्वाधिक महत्व का दिन है। इसी दिन बाबा मार्ता या मार्तूवाने त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन सुबह-सुबह लोग अपने आँगन में आग जलाकर खूब धुआँ करते हैं और फिर उसके ऊपर कूदते हैं जिससे कि वे नीरोग और सुरक्षित रहें। वे अपना मुँह सूरज की ओर रखते

हैं। गृहस्वामिनी एक लाल कपड़ा लेकर घर के सामने पेड़ पर बाँधती है। इसके बाद प्रियजनों को मार्तेनित्सा बाँधा जाता है। यह लाल और सफेद धागों से बना कलावा होता है। बच्चे इसे दाहिनी कलाई पर, गले में या छाती पर बाँधते हैं जबकि युवतियाँ और नवविवाहिताएँ इसे बालों में या गले में बाँधती हैं। पुरुष इसे बाँई कलाई पर बाँधते हैं। इसे जानवरों और पेड़ों पर भी बाँधा जाता है। मार्तेनित्सा बसंत के आने के स्वागत में बाँधा जाता है। इसे तब तक बाँधे रखते हैं जब तक लकलक पक्षी या किसी पेड़ पर उगा हुआ फूल नहीं दिख जाता। इनके दिखते ही मार्तेनित्सा उतार कर किसी फूलदार या फलदार वृक्ष पर बाँध दिया जाता है और मन्नत भी माँगते हैं। इस त्यौहार के विषय में भी एकाधिक लोककथाएँ प्रचलित हैं।

बल्गारिया में अप्रैल के महीने में ईस्टर का त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसका संबंध ईसा मसीह के पुनर्जन्म से है। इस त्यौहार की सबसे महत्वपूर्ण परंपरा है अंडों का रंगा जाना। ये अंडे विशेष रूप से लाल रंग में रंगे जाते हैं। यह माना जाता है कि ईस्टर के अंडे में जादुई शक्ति होती है। वे मनुष्य की बीमारियों को भगाते हैं, तंत्र मंत्र के प्रभाव को समाप्त करते हैं और समृद्धि लाते हैं। लाल रंग के रंगे अंडों को माएँ बच्चों के गाल पर रगड़ती हैं ताकि वे स्वस्थ रहें और काले जादू ये बचे रहें। अंडा पुनर्प्रजनन का प्रतीक है। अंडों पर तरह तरह की चित्रकारी की जाती है और ये बल्गारियन लोक कला के अप्रतिम प्रमाण हैं। इस दिन एक विशेष प्रकार की ब्रेड भी तैयार की जाती है। ईस्टर की ब्रेड को कोलाक कहते हैं। ईस्टर के रविवार को हर व्यक्ति नए कपड़े पहनकर पूजागृह में जाता है। ईस्टर की रात पूरा गाँव एक साथ होरो नृत्य करता है। यह नृत्य उनकी उमंग और इस आशा का प्रतीक है कि आगामी ग्रीष्म ऋतु में उनकी मेहनत से धरती लहलहा उठेगी। वास्तव में यह त्यौहार जाड़े पर बसंत की जीत और बुराई पर अच्छाई की जीत का त्यौहार है। इस त्यौहार से जुड़ी हुई अनेक दंतकथाएँ लोकप्रचलित हैं।

मई माह में छः तारीख को ग्योरगियोवदेन मनाते हैं। इसका अर्थ है संत जार्ज का दिन। यह शब्द प्राचीन ग्रीक के गियोर्गियस से बना है जिसका अर्थ है किसान। यह दिन भेड़ बकरियों से विशेष रूप से सम्बद्ध है। बल्गारिया के कृषक समाज में इनका अत्यधिक महत्व है। भेड़ बकरियों से दूध, ऊन और मांस प्राप्त होता है। इस त्यौहार की पूर्व रात्रि को युवक खेतों का चक्कर लगाते हैं और ओस से नहाते हैं। ताकि स्वस्थ रहें। वे नाशपाती के पेड़ की शाखाएँ और बिच्छू बूटी लेकर घर आते हैं। उनसे वे घर, खलिहान, अस्तबल और जानवरों के बाड़े को सजाते हैं। वे मोमबत्ती जलाते हैं और पवित्र पानी की तीन घूँटे पीते हैं। इस उत्सव पर भी तरह-तरह की ब्रेड बनाई जाती है। ब्रेड के आटे को नौ झरनों से लाए गए पानी से साना जाता है। संत जार्जा के लिए एक विशेष ब्रेड बनाई जाती है। उस दिन भेड़ के मेमनों को भी सजाया जाता है। घर का एक पुरुष एक युवा भेड़ की बलि देता है। कुर्बानी देने से पहले उसे खूब खिलाया जाता है और शहतूत तथा बिच्छू घास की पत्तियों को लाल धागे में बाँधकर एक माला बनाकर उसे पहनाते हैं। उसके रक्त से बच्चों के चेहरे पर क्रास बनाते हैं ताकि वे स्वस्थ रहें। उस भेड़ की हड्डियाँ चींटी की बॉबी में दबा दी जाती हैं ताकि चीटियों की ही तरह भेड़ें भी अधिक से अधिक पैदा हों। पारंपरिक भोज के बाद गाँवों में लोग सामूहिक रूप से गाते और लोकनृत्य करते हैं। इस दिन अविवाहित लड़के कुश्ती लड़ते हैं और झूला झूलते हैं। झूला झूलना इसलिए भी आवश्यक माना जाता है क्योंकि ऐसा न करने पर व्यक्ति को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ सकता है। वर्तमान समय में इनमें से अनेक परंपराएँ लुप्त हो चली हैं।

बल्गारिया के गाँवों में एक लोक विश्वास है कि यदि मनुष्य प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करेगा तो प्रकृति रुष्ट हो जाएगी और धरती पर सूखा, बाढ़, अतिवृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाएँ आएँगी। इन आपदाओं को शांत करने

के लिए बल्गारिया में 'पेपेरुदा' जैसी परंपरा है। 'पेपेरुदा' का अर्थ है तितली। जब सूखा पड़ जाता है तब 'पेपेरुदा' का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर किसी अनाथ या घर की सबसे छोटी लड़की को पेपेरुदा बनाते हैं। एक पुराकथा यह है कि एक बार भीषण सूखा पड़ा और तब एक अनाथ लड़की पेपेरुदा जिसके पास वस्त्र के रूप में बस एक कुर्ता और वृक्ष की पत्तियाँ थीं, अपने बालों में ताजे फूल लगाकर पूरे गाँव में हर झरने और कुएँ के पास गई वह हर घर के सामने रुकी और उसने नृत्य किया। स्त्रियों ने उसके ऊपर पानी और छलनी से आटा छिड़का और कहा कि जैसे हमने पानी डाला वैसे ही यहाँ भी वर्षा हो। इसके बाद उन्होंने उसे गेहूँ, आटा, अंडे, अखरोट और मिठाइयाँ दीं। गाँव की परिक्रमा करने के बाद पेपेरुदा नदी के पास गई उसने सारी हरी पत्तियाँ नदी में डालकर बहा दीं ताकि ऐसे ही सूखा भी समाप्त हो। इसी परंपरा का निर्वाह आज भी किया जाता है।

ग्रीष्म ऋतु में मनाया जाने वाला एक त्यौहार है एनयोवदैन। यह चौबीस जून को मनाया जाता है। इस तिथि को दिन सबसे बड़ा होता है और रात सबसे छोटी। बल्गारिया में यह मान्यता है कि इसी दिन एनयो अपने कंधे पर फर का कोट डाल कर ठंडक और बर्फ की खोज में चल पड़ा था। इस दिन सूर्य अपनी स्थिति परिवर्तित करता है। इस त्यौहार के दिन लोग सुबह जल्दी उठते हैं। स्त्रियाँ और लड़कियाँ औषधियाँ एकत्र करने के लिए खेतों और चरागाहों में जाती हैं।

इस दिन के बारे में भी एक लोककथा प्रचलित है। किसी गाँव में एनयो और स्ताना रहते थे। दोनों परस्पर प्रेम करते थे किंतु स्ताना के पिता ने उसका विवाह किसी दूसरे गाँव में किसी अन्य से तय कर दिया। जब स्ताना को विवाह के लिए ले जाया जा रहा था तो रास्ते में पड़ने वाली नदी तुंद्जा के पुल पर से स्ताना ने नदी में छलाँग लगा दी। उसके विरह में एनयो बुरी तरह बीमार पड़ गया और नौ वर्ष तक बीमार रहा। इन नौ वर्षों में उस गाँव में वर्षा नहीं हुई, नदियाँ सूख गईं और लोग मरने लगे।

दसवें साल में एनयो की बहन को एक उपाय सूझा उसने करघे के तुर (लकड़ी) से एक पुतला बनाया। उसे स्त्री के कपड़े पहनाए और सफेद घूँघट उसके ऊपर डालकर वह उसे एनयो के पास ले गईं। उसने एनयो से कहा– ''उठो भाई देखो स्ताना तुम्हारी दुल्हन बन कर आई है।''

एनयो ने अपनी आँखे खोलीं, मुस्कुराया अपनी बाहें पसारी और अंतिम साँस ली। उसके बाद तेज बारिश हुई और फसलें लहलहा उठीं। नवयुवतियों ने प्रेम के गीत गाए। तब से एनयोवदैन के त्यौहार पर लड़कियाँ दुल्हन का पुतला बनाकर प्रेम और समृद्धि के गीत गाती हैं।

गोल्यामा बोगोरोदित्सा बल्गारिया का एक बड़ा लोकपर्व है। इस दिन कोई काम नहीं करता और पहली फसल के अनाज से बनी ब्रेड, फल, तरबूज, शहद और अंगूर को चर्च में पवित्र कराकर सगे संबंधियों तथा पड़ोसियों में बाँटा जाता है। यह सब पूर्वजों की स्मृति में किया जाता है।

ये परंपराएँ होली वर्जिन और धरती माता के बीच के संबंधों को भी अभिव्यक्त करती हैं। यह भी लोकविश्वास है कि पवित्र वर्जिन मातृत्व और माँओं की संरक्षक है। इस दिन युवतियाँ और गर्भवती स्त्रियाँ होली वर्जिन के लिए चर्च में उपहार स्वरूप वस्त्र लेकर आती हैं ताकि उनके बच्चे और उनकी गर्भावधि सुरक्षित रहे।

बल्गारिया के अनेक लोकपर्व घोड़ों, चूहों और साँपों से भी सम्बद्ध हैं क्योंकि इनका संबंध कृषक जीवन से है। इसी प्रकार बल्गारिया के अनेक त्यौहार किसी न किसी संत पुरुष के जन्मदिन के नाम पर भी हैं। उस दिन जन्मे लोग उसे अपने नाम दिन के रूप में भी मानते हैं। बल्गारिया के लोकपर्व उत्साह और जीवंतता से भरे हुए हैं हालाँकि आर्थिक दबावों और तथाकथित आधुनिकता की चकाचौंध ने इन्हें भी प्रभावित किया है।

❖

विजिटिंग प्रोफेसर-आईसीसीआर हिंदी पीठ
सोफिया विश्वविद्यालय, सोफिया, बल्गारिया
E-mail : anandsharma_64@yahoo.co.in

हमारे दोस्त परिन्दे

— सुरेश्वर त्रिपाठी

वन्य जीवों के लिए देश के सभी राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य जाने जाते हैं परन्तु केवल पक्षी प्रेमियों की सबसे ज्यादा पसंदीदा जगह राजस्थान के भरतपुर में स्थित केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान है। राजस्थान में भरतपुर को सबसे ज्यादा पहचान मिली केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी अभयारण्य से और केवल इसी कारण यहाँ बाहर से बहुत संख्या में पर्यटक आते हैं। पर्यटकों का मुख्य आकर्षण होता है अभयारण्य में निवास करनेवाले पक्षी और उससे भी बड़ा आकर्षण सर्दियों में आनेवाले प्रवासी पक्षी। वैसे तो यह अभयारण्य विश्व धरोहर की उपाधि से विभूषित है और यहाँ विदेशों से भी बड़ी संख्या में पक्षी प्रेमी आते ही रहते हैं परन्तु यह भारतीय पर्यटकों के लिए भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। 29 वर्ग किलोमीटर में फैले इस अभयारण्य में लगभग 400 प्रकार के पक्षी अपना निवास बनाते हैं तथा लगभग 150 की संख्या में ऐसी प्रजातियाँ हैं जो केवलादेव को ही अपने प्रजनन स्थल के रूप में चुनती हैं और इस दौरान यहीं उनका आवास होता है।

यह अजीब बात है कि हममें से बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो यह जानकारी रखते हैं कि उनके घर के आस-पास कितने प्रकार के कौन-कौन से पक्षी रहते हैं। ज्यादातर तो हम गौरैया, तोता, मैना, बुलबुल, कौआ, मोर, कबूतर आदि पक्षियों के बारे में जानते हैं। लेकिन किसी को भी यह जानकर हैरानी हो सकती है कि हजारों प्रजाति के पक्षी होते हैं, जिनमें से कुछ का सामना हमसे होता रहता है और कुछ के बारे में हम जानते ही नहीं हैं। जंगल के पक्षी, जल के पक्षी, मैदानों के पक्षी, पहाड़ों के पक्षी, तरह-तरह के रंगबिरंगे और छोटे-बड़े आकार के पक्षी होते हैं। कुछ पक्षियों को देखने के लिए लम्बी-लम्बी यात्राएँ भी करनी पड़ती हैं। कुछ पक्षी देश के भीतर ही हमेशा रहते हैं और कुछ हजारों किलोमीटर दूर की यात्रा करके खासकर सर्दियों में हमारे देश में अपना प्रवास बनाते हैं।

जब भी हम वन्य जीवों या पक्षियों की बात करते हैं तो हमारे जेहन में सबसे पहले देश के राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के चित्र उभरने लगते हैं। वैसे तो पशु-पक्षियों के लिए हमने चिड़िया घर बना रखे हैं जहाँ इन्हें मनुष्यों द्वारा बनाई गई बंदिशों के बीच एक प्रकार से कैदी की तरह रहना पड़ता है परंतु सीमा और कैद से परे इनका जीवन वहीं पर सामान्य रूप से बीत सकता है जहाँ इन्हें हर तरह की स्वतंत्रता मिले। पशु पक्षियों के संरक्षण के लिए विशाल क्षेत्र में फैले जंगलों तालाबों को चिह्नित करके राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों का रूप दिया गया और इन उद्यानों और अभयारण्यों में पशु पक्षियों को मूल आजादी प्रदान की गई। इन पक्षी अभयारण्यों ने परम्परागत रूप से शिकार किए जाने के कारण विलुप्त हो रही पक्षियों की तमाम प्रजातियों को बचाए रखने में बहुत सहायता की वरना आज हम विलुप्त प्रजातियों की सूची में कई और नाम जोड़ चुके होते।

प्रारम्भ में वन्य जीव अभयारण्य कहकर बुलाए जानेवाले इन वन्य जीव आश्रय स्थलों को बाद में राष्ट्रीय उद्यान के नाम से जाना गया। भारत में बाघों के लिए सुरक्षित घोषित किए जा चुके 28 अभयारण्य हैं जिनमें बाघों को बचाने के लिए विशेष उपाय किए गए हैं। कई अभयारण्य विशेष प्राणियों के संरक्षण के लिए

जाने जाते हैं, जैसे चम्बल वन्य जीव अभयारण्य जो घड़ियालों के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध है। भारत के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'भारत के राष्ट्रीय उद्यान' (लेखक-राजेन्द्र सिंह विष्ट) के अनुसार 2001 तक भारत में प्रमुख रूप से राष्ट्रीय उद्यानों की संख्या 80 थी। हालाँकि गूगल वीकिपीडिया के अनुसार देश में छोटे बड़े राष्ट्रीय उद्यानों की कुल संख्या 500 के आसपास है। जब हम केवल पक्षी अभयारण्यों की बात करते हैं तो देश में लगभग 60 पक्षी अभयारण्य हैं जहाँ पक्षियों की ढेरों प्रजातियों को देखा जा सकता है और ये सभी पक्षी अभयारण्य

सर्दियों में तरह तरह के पक्षियों के प्रवास के लिए भी जाने जाते हैं।

भारत का सबसे पुराना राष्ट्रीय उद्यान जिम कार्बेट के नाम से है जिसे 1935-36 में प्रारम्भ किया गया था। आज के उत्तराखण्ड के नैनीताल जिले में स्थित इस उद्यान को बाघों की रक्षा के लिए शुरू किया गया था। इसका नामकरण जिम कार्बेट के नाम से हुआ जिन्होंने इसकी स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई थी। हालांकि इसके पहले इसका नाम हेली नेशनल पार्क और रामगंगा नेशनल पार्क भी रह चुका है। 500 से 1320 वर्ग किलोमीटर में फैले इस राष्ट्रीय उद्यान का बड़ा क्षेत्र बाघों के संरक्षण के लिए निर्धारित किया गया है। इस व्यापक विस्तार वाले राष्ट्रीय उद्यान मे पक्षियों की 500-600 तक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। राष्ट्रीय उद्यानों में देश विदेशों में शायद यह सर्वाधिक लोकप्रिय जगह है जहाँ वन्यजीव प्रेमी बड़ी संख्या में आते रहते हैं।

जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान में हर तरह के पक्षी देखे जा सकते हैं। जलपक्षी, प्रवासी पक्षी, स्थानीय पक्षी, वृक्षों पर रहनेवाले पक्षी, शिकारी पक्षी आदि पक्षियों के लिए यह उद्यान प्रसिद्ध है। जिम कार्बेट अभयारण्य ऐसी जगह स्थित है जहाँ पहाड़ी इलाका तो है ही, मैदानी क्षेत्र भी पास में ही है इसीलिए इस अभयारण्य में स्थानीय प्रवासी पक्षी और दूर से आनेवाले प्रवासी पक्षी भी आते जाते रहते हैं। कुछ विशेष प्रकार के पक्षियों के यहाँ आराम से देख पाने के कारण पक्षी विशेषज्ञ इस अभयारण्य पर अपनी उपस्थिति जरूर दर्ज कराते हैं।

वन्य जीवों के लिए देश के सभी राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य जाने जाते हैं परन्तु केवल पक्षी प्रेमियों की सबसे ज्यादा पसंदीदा जगह राजस्थान के भरतपुर में स्थित केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान है। राजस्थान में भरतपुर को सबसे ज्यादा पहचान मिली केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी अभयारण्य से और केवल इसी कारण यहाँ बाहर से बहुत संख्या में पर्यटक आते हैं। पर्यटकों का मुख्य आकर्षण होता है अभयारण्य में निवास करनेवाले पक्षी और उससे भी बड़ा आकर्षण सर्दियों में आनेवाले प्रवासी पक्षी। वैसे तो यह अभयारण्य विश्व धरोहर की उपाधि से विभूषित है और यहाँ विदेशों से भी बड़ी संख्या में पक्षी प्रेमी आते ही रहते हैं परन्तु यह भारतीय पर्यटकों के लिए भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। 29 वर्ग किलोमीटर में फैले इस अभयारण्य में लगभग 400 प्रकार के पक्षी अपना निवास बनाते हैं तथा लगभग 150 की संख्या में ऐसी प्रजातियाँ हैं जो केवलादेव को ही अपने प्रजनन स्थल के रूप में चुनती हैं और इस दौरान यहीं उनका आवास होता है।

केवलादेव पक्षी अभयारण्य में सर्दियों के दौरान अनेक प्रजातियों के पक्षी दुनिया के विभिन्न भागों से यहाँ सर्दियाँ बिताने आते हैं। यहाँ आनेवाले इन प्रवासी पक्षियों में से बहुत से तो

यूरोप, मध्य एशिया, साइबेरिया, हिमालय क्षेत्र, ट्रान्स हिमालय, मंगोलिया, रूस, अफ्रीका, चीन आदि देशों से आते हैं। इतनी दूर से ये पक्षी भारत के कई हिस्सों में स्थित जल-क्षेत्रों को अपने आहार, निवास और प्रजनन के लिए चुनते हैं जिनमें भरतपुर का यह क्षेत्र भी आता है। केवलादेव पक्षी अभयारण्य के पक्षियों की सूची तो बहुत लम्बी है परन्तु कारमोरेण्ट, डार्टर, कई तरह के हेरोन, पेण्टेड स्टार्क जिनमें सफेद और काले रंग के गर्दन वाले भी होते हैं, स्पून बिल, पेलिकान, ओपेन बिल, कई तरह के उल्लू, बी ईटर, फ्लाई कैचर, कई किस्म की रंग-बिरंगी बत्तखें आदि आदि पक्षी प्रेमियों का मन लुभाते रहते हैं।

केवलादेव पक्षी अभयारण्य में बहुत पहले हर साल आनेवाले बहुत से प्रवासी पक्षियों ने बाद में आना ही बंद कर दिया। इसके कई कारण लोग मानते हैं। इनकी यहाँ आने में अरुचि का कारण इसके भीतर आनेवाले मवेशी भी थे। ये पशु अभयारण्य में खुले घूमते थे और पक्षियों की शांति को भी बाधित करने लगे। किसी ने इसके दूरगामी परिणाम को नहीं सोचा। ये पशु उन पौधों को भी चट करने लगे जो कई प्रकार के प्रवासी पक्षियों के आहार थे। दूसरी बात यह भी हुई कि पौधों की आड़ में रहकर ही पक्षी अपना शिकार करते हैं। मवेशियों ने कई ऐसे पौधों की प्रजाति ही समाप्त कर दी जिनकी ओट में पक्षी अपने आहार की व्यवस्था करते थे। 1982 में इसके भीतर मवेशियों के जाने पर रोक लगा दी गई। स्थानीय लोगों ने इसका भारी विरोध किया और हिंसा पर उतारू लोगों की भीड़ पर पुलिस को गोली चलानी पड़ी। प्राप्त जानकारी के अनुसार गोलीबारी में 8 लोग मारे भी गए थे।

चूँकि केवलादेव भरतपुर के महाराजा की सम्पत्ति थी इसलिए यहाँ शिकार करना बहुत शान की बात मानी जाती थी। यहाँ तक कि शिकार के लिए प्रतियोगिताएँ भी आयोजित होती थीं कि कौन कितने पक्षियों का शिकार करता है और इस प्रक्रिया में कई बार हजारों पक्षी मौत के शिकार हो जाते थे। ज्यादा पक्षियों को मारनेवाले को पुरस्कृत किया जाता था। 1964 में इस अभयारण्य में शिकार पर रोक लगाई गई। लेकिन ऐसा माना जाता है कि लगातार होते रहे शिकार के कारण कई पक्षियों ने यहाँ आना बंद कर दिया और कई पक्षियों की प्रजाति ही समाप्त हो गई। 1985 में केवलादेव पक्षी अभयारण्य को विश्व धरोहर का दर्जा दिया गया।

यहाँ का सबसे प्रिय और महत्वपूर्ण प्रवासी पक्षी था साइबेरियन क्रेन। बहुत पहले इस पार्क में साइबेरियन क्रेन आते थे परन्तु धीरे-धीरे ये पक्षी यहाँ के लिए स्वप्न बन गए। भरतपुर के जिला वन्य अधिकारी अनूप के राघवन बताते हैं कि 2001 से साइबेरियन क्रेन का प्रवास बिल्कुल समाप्त हो गया। इनके यहाँ न आने के पीछे अफगानिस्तान पाकिस्तान जैसे देशों में इनका अंधाधुंध शिकार भी एक प्रमुख कारण माना जाता है। भारत प्रवास के दौरान लगभग 5000 किलोमीटर की यात्रा इनके लिए खतरों से भरी होती थी और अंततः इन पक्षियों का यहाँ आना ही रुक गया।

एक और अत्यन्त सुंदर पक्षी है फ्लेमिंगो। फ्लेमिंगो की वैसे तो कई प्रजातियाँ हैं परन्तु इनमें से एक प्रजाति सर्दियों के दिनों में अल्प प्रवास के लिए आती है। जिला वन्य अधिकारी अनूप के राघवन बताते हैं कि पहले बहुत अधिक संख्या में फ्लेमिंगो भरतपुर आते थे परन्तु धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती गई। कुछ लोगों के अनुसार 2012 की सर्दियों में करीब 20 फ्लेमिंगो केवला देव पक्षी अभयारण्य में देखे गए थे। जरा कल्पना कीजिए कि आज भी गुजरात के कच्छ में लाखों की संख्या में फ्लेमिंगो आते हैं। ये जब एक साथ विचरण करते हैं तो उस सुन्दरता का वर्णन कोई कवि ही कर सकता है। अनूप के राघवन के अनुसार पिछले कई सालों में यह देखा गया कि फ्लेमिंगो किसी भी जलाशय को अपना आवास बना लेते हैं। यही

नहीं उनके प्रवास की अवधि भी दो-तीन सप्ताह से ज्यादा नहीं होती।

केवलादेव में जलचरों और नभचरों के अलावा थलचर भी निवास करते हैं जिनमे सियार, भेड़िए, लकड़बग्घे, पायथान, नीलगाय, हिरण आदि हैं। भले ही कई प्रकार के पक्षी अब केवलादेव नहीं आते परन्तु यह इतना विशाल है और इसकी स्थिति कुछ प्राकृतिक स्थल जैसी बनी हुई है इसलिए पक्षी प्रेमियों को यहाँ आना अब भी बहुत अच्छा लगता है और उन्हें हमेशा यहाँ आकर संतुष्टि मिल जाती है।

देश की राजधानी दिल्ली के आसपास कई राष्ट्रीय पार्क और पक्षी अभयारण्य हैं। इन सभी पक्षी अभयारण्यों में सबसे व्यवस्थित एवं आसानी से सबकी पहुँचवाला पक्षी अभयारण्य भरतपुर का ही है। यह इतना व्यवस्थित है कि आप रिक्शे से, किराए की साइकिल से और बैटरी चालित आटो से यहाँ घूम सकते हैं। यहाँ की हैरान कर देने वाली बात यह है कि सभी रिक्शेवाले पक्षियों के जानकार होते हैं और यदि आपने रिक्शा किया है तो आपको गाइड करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। रिक्शेवाला ही आपको बताता जाएगा कि कहाँ कौन सी चिड़िया है और वह स्वदेशी है या बाहर से आई है। बाकी पक्षी अभयारण्यों में पैदल ही घूमना पड़ता है और वहाँ बतानेवाला भी कोई नहीं होता कि कहाँ कौन सी चिड़िया मिलेगी। इसके अलावा रिक्शे से एक दिन में कोई भी 18-20 किलोमीटर घूम सकता है परन्तु पैदल इतना लम्बा घूमना बहुत कठिन कार्य है। यही नहीं भरतपुर में आसानी से कई होटल मिल जाते हैं और कई दिन रुककर पक्षियों पर शोध करनेवालों को यहाँ आसानी होती है।

भारत में पक्षियों के लिए जो प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान हैं उनमें से जिम कार्बेट, राजस्थान के भरतपुर का केवलादेव के अलावा कुछ और राष्ट्रीय उद्यान हैं जैसे कच्छ और ग्रेट रन आफ कच्छ-गुजरात, काजीरंगा-असम, गोवा, थाटेकड-केरल, लावा एंड नेवोरा घाटी-पश्चिम बंगाल, ईगलनेस्ट-अरुणाचल प्रदेश, पैंगोट और साततात-उत्तराखंड जैसी जगहें हैं जहाँ पक्षी प्रेमी जाना पसन्द करते हैं। पूरे भारत में पक्षियों के लिए इतने आश्रय स्थल हैं कि उन सबका वर्णन करने के लिए एक महाग्रंथ लिखने की जरूरत पड़ सकती है। हालाँकि हमारे देश में कई पक्षी वैज्ञानिक ऐसे हुए हैं जिन्होंने न केवल पक्षियों पर विस्तृत अध्ययन किया है बल्कि उन्होंने पक्षियों पर पुस्तकें भी लिखी हैं। सालिम अली के नाम पर गोवा में पक्षी अभयारण्य भी है।

जो लोग पक्षियों से प्यार करते हैं और उनके बारे में जानकारी करने के लिए देश भर में घूमते रहते हैं, उन्हें यह पता रहता है कि पक्षियों की किसी नई प्रजाति को जब वे अपनी आँखों से देखते हैं और उनके बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं तो उन्हें कितनी खुशी मिलती है। पक्षियों का केवल अध्ययन करनेवालों को तो फिर भी एक दुरबीन और कागज-कलम से काम चल जाता है परन्तु पक्षियों का छायांकन करने वाले महंगे और वजनी कैमरों के साथ भ्रमण करते रहते हैं। वाइल्ड लाइफ फोटोग्राफर को किसी नए पक्षी को देख लेने भर से काम नहीं चलता बल्कि उन्हें उसकी सुन्दर और स्पष्ट तस्वीर भी उतारनी पड़ती है। यह काम कठिन तो होता है पर बहुत ही सुकून देनेवाला होता है। यदि वाइल्ड लाइफ फोटोग्राफरों का सहयोग नहीं होता तो हम पहले की तरह पक्षियों के रेखाचित्रों से ही काम चला रहे होते। आज इन छायाकारों की मेहनत और उनके जुनून ने हमें ऐसी ऐसी पुस्तकें दे दी हैं जिनमें हर एक पक्षी का रूप, रंग और आकार हमारे सामने होता है। इन रंगीन छायाचित्रों ने ही

आज हमें हर पक्षी की पहचान को सुनिश्चित करने में हमारी भरपूर सहायता की है।

पक्षी प्रेमी और छायाकारों के लिए उनके काम की सबसे पसंदीदा जगह पक्षी अभयारण्य होते हैं, जहाँ जाकर वे इन पक्षियों का अध्ययन करते हैं और उनके चित्र उतारते हैं। इन पक्षी अभयारण्यों में जाने के बाद बहुत मेहनत करनी पड़ती है और धैर्य के साथ कोने-कोने को, एक एक पेड़ की डाल को देखना पड़ता है। कई बार ऐसा होता है कि पूरी यात्रा के दौरान किसी नए पक्षी का दर्शन नहीं हो पाता। निराश होने वाले लोग पक्षी प्रेमी नहीं हो सकते, इसलिए पक्षियों का अध्ययन करना हो या उनकी तस्वीरें उतारनी हों, निराशा को दूर रखकर ही काम करना पड़ता है।

उत्तराखंड में नैनीताल के पास सात ताल और पैंगाट भी ऐसी जगहें हैं जहाँ काफी पक्षियों को देखा जा सकता है और उनकी तस्वीरें उतारी जा सकती हैं। सातताल में जंगल के बीच एक ऐसी जगह है जिसका नाम ही लोगों ने 'स्टूडियो' रख दिया है। स्टूडियो में प्रतिदिन तीन बजे के बाद काफी पक्षी दिखाई देते हैं। मुख्य सड़क से नीचे जंगल में जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। वहाँ नीचे उतरते ही चारों ओर से चिड़ियों के चहचहाने की आवाजें आने लगती हैं।

कुछ दूर चलने पर ही वहाँ एक तालाब नजर आता है और चारों तरफ हरियाली का साम्राज्य दिखाई देता है। पास में ही पानी का एक सोता बहता रहता है और झाड़ियों के पस एक ऐसी जगह है जहाँ थोड़ी-थोड़ी देर पर पक्षी आते हैं और एक धनुषाकार पतली सी टहनी पर बैठ जाते हैं। कुछ देर इधर-उधर वे पक्षी पानी में छपाछप नहाने लगते हैं। पक्षी प्रेमियों और छायाकारों के बीच यह जगह इतनी मशहूर है कि वहाँ हमेशा कैमरे की क्लिक की आवाजें लगातार आती रहती हैं। रह रहकर अलग-अलग प्रजाति के पक्षी आते रहते हैं और चले जाते हैं। सातताल के बारे में लोग बताते हैं कि यह ऐसी आश्चर्यजनक जगह है, जहाँ एक ही जगह बैठकर सैकड़ों प्रजाति के पक्षियों को देख सकते हैं, उनकी तस्वीरें ले सकते हैं। वैसे तो सातताल में 125 से भी अधिक तरह के पक्षी देखे गए हैं और यह जो पक्षियों का आश्चर्यजनक स्टूडियो है, यहीं पर 70 से 75 प्रकार के पक्षी आ जाते हैं। एक विशेष बात और है कि सातताल में जो पक्षी दिखाई देते हैं, वे मैदानी इलाकों से बिल्कुल अलग होते हैं और इन्हें हम केवल पहाड़ी इलाकों में ही देख सकते हैं। सातताल में जिन पक्षियों की तस्वीरें उतारने को मिलती हैं उनकी सूची मौसम के हिसाब से बदलती रहती है पर मुख्य रूप से एशियन पैराडाइज फ्लाईकैचर, ब्राड बिल, नीले पंखों वाली शिवा, नीले गलेवाली फ्लाईकैचर, सलेटी सिर वाला तोता, भारतीय पीले रंग वाला टिट, नारंगी सिर वाली थ्रस, लाल चोंच वाली काली मैगपाई, लाल चोंच वाली लियोथ्रिक्स, वर्डिटर फ्लाईकैचर, ह्विसलिंग थ्रस, सफेद गले वाली लाफिंग थ्रस, एलोनेप, इमराल्ड डोव, फैनटेल, मिनीवेट आदि प्रमुख रूप से दिखाई देती हैं।

नैनीताल से केवल 13 किलोमीटर दूर पैंगाट भी पक्षी प्रेमियों के बीच काफी लोकप्रिय है क्योंकि यहाँ पर 150 प्रकार के पक्षियों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें कई किस्म के गिद्ध (लैमरगियर, हिमालयन ग्रिफान), नीली पंखोंवाली मिनला, फोर्कटेल, रूफस बिल्ड वुडपिकर, रूफस बिल्ड निल्तवा, खलीज फिजेंट, थ्रस की कई प्रजातियों सहित अन्य खूबसूरत पक्षियों को देखने का अवसर मिलता है।

दिल्ली के पास हरियाणा में सुल्तानपुर और भिण्डवास पक्षी अभयारण्य, दिल्ली शहर के बीच स्थित ओखला पक्षी अभयारण्य, नोएडा में सूरजपुर वेटलैण्ड के साथ कई ऐसे स्थल हैं जहाँ पक्षियों का जमघट होता रहता है। सुल्तानपुर अभयारण्य केवल सर्दियों में आम जनता के लिए खुलता है और यहाँ पर सर्दियों में प्रवासी पक्षियों की सौ से भी अधिक प्रजातियाँ आती रहती हैं। सुल्तानपुर से आगे झज्झर के पास भिण्डवास पक्षी अभयारण्य है। वैसे तो यह विशाल क्षेत्र में फैला है और यहाँ पर भी सर्दियों में बहुत से प्रवासी पक्षी अपना डेरा जमाते हैं परन्तु यह सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में है और यहाँ पहुँचना भी आसान नहीं है इसलिए स्थानीय गाइडों के साथ गिने चुने पक्षी प्रेमी ही यहाँ आते रहते हैं।

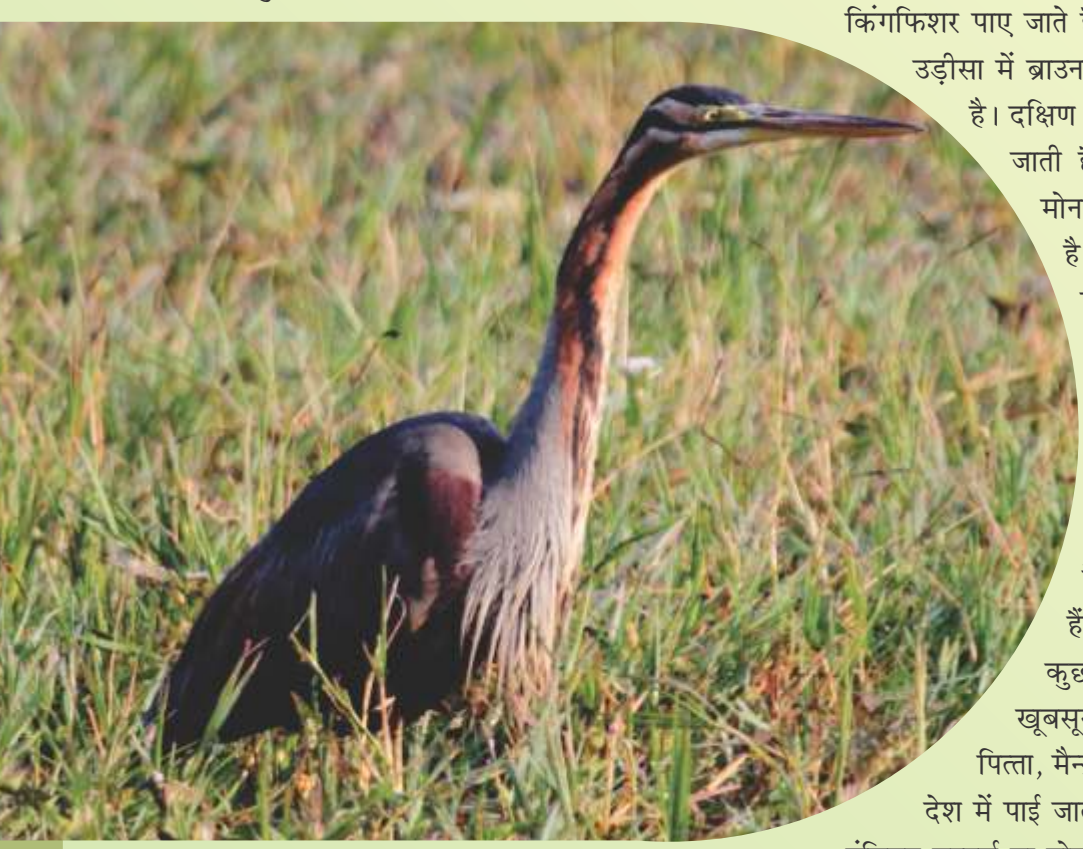

भिण्डवास में गिद्धों की और उल्लुओं की कुछ प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनके कारण लोग यहाँ पहुँचते रहते हैं। भारत के अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में कई तरह के पक्षी पाए जाते हैं जो और कहीं नहीं दिखाई देते। भूरी कोयल, (ह्यूम्स हॉक आउल) भूरा अण्डमानी उल्लू, सुण्डा बत्तख, अण्डमानी शमा, अण्डमान का एक विशेष प्रजाति का तोता, पैसिफिक रीफ इग्रेट आदि कई प्रकार के पक्षी सिर्फ अण्डमान में ही मिलते हैं।

शायद पूरी दुनिया में ही जहाँ भी जल और जंगल हैं वहाँ पर पक्षियों के ठिकाने होते हैं। कुछ पक्षी मौसम के अनुसार अपने ठिकाने बदलते रहते हैं। सर्दियों में पूरे देश में प्रवासी पक्षियों का आना लगा रहता है और ज्यादातर पक्षी अभयारण्यों में आने वाले पक्षी सामान्य प्रजातियों के होते हैं परन्तु कुछ पक्षी कुछ विशेष जगहों पर ही पाए जाते हैं और पक्षी प्रेमी इन विशेष पक्षियों के लिए पूरे देश का भ्रमण करते रहते हैं। किंगफिशर की कई प्रजातियाँ अलग अलग जगहों पर पाई जाती हैं। पश्चिमी घाट के जंगलों में ओरियन्टल और ब्लू इयर्ड किंगफिशर पाए जाते हैं। सुन्दरवन में रूडी किंगफिशर तथा उड़ीसा में ब्राउनविंग किंगफिशर की प्रजाति पाई जाती है। दक्षिण भारत के हम्पी में ग्रे हेडेड बुलबुल पाई जाती है और अत्यन्त रंगबिरंगी सुन्दर पक्षी मोनाल उत्तराखंड के चोप्टा में पाया जाता है। मोनाल से मिलती जुलती एक प्रजाति फेजेन्ट की होती है जिसमें से कलीज और ब्लड फेजेन्ट की प्रजाति हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है और कोकलस फेजेन्ट मध्य प्रदेश में पाई जाती है। दक्षिण भारत के थाटेकड में श्रीलंकन फ्रागमाउथ नाम का पक्षी पाया जाता है। इंडियन पित्ता जिसे नवरंग भी कहते हैं इसकी कुछ प्रजाति जिम कार्बेट में तो कुछ अन्य क्षेत्रों में पाई जाती है। अत्यन्त खूबसूरत पित्ता की कुछ प्रजातियां फेयरी पित्ता, मैन्ग्रोव पित्ता और ब्ल्यू विंग्ड पित्ता हमारे देश में पाई जाती हैं। एक लुप्तप्राय भारतीय पक्षी ग्रेट इंडियन बस्टर्ड या गोडावड़ केवल गुजरात और राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में पाया जाता है।

❖

फोटोग्राफर, पत्रकार, कवि, कथाकार, प्रकृति एवं पक्षी प्रेमी तथा यायावर
281, सेक्टर-19, फरीदाबाद-121002 मोबाइल : 9871469579
ई-मेल : stripathi_100@yahoo.co.in

भारतीय संस्कृति में गुप्तकाशी

— सनोज तिवारी

शैव साधकों के आगमन के कारण गुप्तकाशी तंत्र साधना का प्रमुख केंद्र बन गया। साधक यहाँ के ओबरा-ओबरी गुफाओं कन्दराओं में बैठकर गुप्त साधना करते थे। शिव साधकों का गढ़ होने के कारण पुराणों में भगवान शिव की इस तपोभूमि को गुप्तकाशी की संज्ञा से विभूषित किया गया है। कालांतर में मूर्ति तक्षकों का समूह गुप्तकाशी की धरती पर आया और एकमुखी, पंचमुखी, सहस्त्रमुखी शिवलिंग, उमा-महेश्वर की ललिता सन मुद्राओं वाली विभिन्न स्वरूपों वाली शिव, पार्वती, कार्तिकेय, गणेश, नंदी की मूर्तियाँ गढ़कर गुप्तकाशी के मंदिरों में स्थापित किया। शिवालयों की अधिकता शिव साधकों की गुप्त साधना स्थली होने के कारण इस क्षेत्र को गुप्तकाशी कहा गया।

भारतीय संस्कृति बहुआयामी, प्राचीन, विभिन्न संस्कृतियों को अपने आप में समाहित करने वाली अद्वितीय कर्म प्रधान संस्कृति है। भारत में सनातन धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म, पारसी धर्म आदि धार्मिक प्रणालियाँ कायम हैं, जो विविधता में एकता का परिचायक है।

हमारे देश में प्रचलित सनातन धर्म वैदिक कालीन है। इस धर्म का प्रचार प्रसार भारत सहित विदेशों में हुआ है। देश की हृदयस्थली उत्तर प्रदेश के अंतिम छोर पर अवस्थित अरण्य और नगरीय संस्कृति की संगमस्थली गुप्तकाशी (सोनभद्र) में लघु भारत का दर्शन होता है। गुप्तकाशी में पारंपरिक विरासत संस्कृति धर्म कला साहित्य की परंपरा आज भी कायम है।

उत्तर वैदिक काल में काश्य आर्य जाति के महानायक थे, जिन्होंने अनार्यों (द्रविड़ों) को पराजित कर बनारस (वाराणसी/काशी) को अपना प्रधान अड्डा बनाया था। कालांतर में पुरूरवा वंश के राजा सुहोत्र के पुत्र काश्य ने काशी राज्य की स्थापना कर वाराणसी को राजधानी बनाया। काशी के नाम पर आधारित काशी सांस्कृतिक और व्यापारिक नगरी थी और यहाँ पर यक्षपूजा का प्रचलन था, लेकिन शैव धर्म के उदय, विकास और अनुयायियों की अधिकता के कारण काशी में शिव पूजा का प्रचलन व्यापक स्तर पर चल पड़ा। शिव पूजा ने यक्ष पूजा को इतना प्रभावित किया कि यक्षधर्म, शैव धर्म में विलीन हो गया। शिव प्रमुख देवता हो गए, जितने यक्ष थे सभी पार्षद हो गए।

शैव धर्म तपस्या प्रधान धर्म था काशी व्यापारिक सांस्कृतिक धार्मिक गतिविधियों का प्रमुख केंद्र होने के कारण शैव साधकों ने साधना के लिए भगवान शिव की तपोभूमि शोण महानद के किनारे गुप्तकाशी का चयन कर अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त कर शैव धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

वनों, कंदराओं, गुफाओं, ओबरा-ओबरी से भरपूर गुप्तकाशी को पुराणों में तपोभूमि कहा गया है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार, "राजा दक्ष के यज्ञ विध्वंस के बाद भगवान शिव अश्रुपूरित नेत्रों से माँ सती के विदग्ध शरीर को कंधे पर लादकर घूमने लगे। सृष्टि में हाहाकार मच गया। सभी देवताओं के निवेदन पर भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से माँ के शरीर के अंगों को काटना शुरू कर दिया। गुप्तकाशी (सोनभद्र) में माँ की जिह्वा स्खलित होकर गिरी

और यह स्थल ज्वालामुखी नामक सिद्ध पीठ बन गई। इसके बाद भगवान शिव ने गुप्तकाशी में अज्ञातवास किया, जिसके कारण इस क्षेत्र का शिवद्वार, अगोरी, गोठानी ज्वालामुखी, मारकुंडी घाट, पंचमुखी आदि स्थल भगवान शिव के चरण स्पर्श सिद्धपीठ बन गए।"

शैव साधकों के आगमन के कारण गुप्तकाशी तंत्र साधना का प्रमुख केंद्र बन गया। साधक यहाँ के ओबरा-ओबरी गुफाओं कन्दराओं में बैठकर गुप्त साधना करते थे। शिव साधकों का गढ़ होने के कारण पुराणों में भगवान शिव की इस तपोभूमि को गुप्तकाशी की संज्ञा से विभूषित किया गया है। कालांतर में मूर्ति तक्षकों का समूह गुप्तकाशी की धरती पर आया और एकमुखी, पंचमुखी, सहस्त्रमुखी शिवलिंग, उमा-महेश्वर की ललिता सन मुद्राओं वाली विभिन्न स्वरूपों वाली शिव पार्वती कार्तिकेय, गणेश नंदी की मूर्तियाँ गढ़कर गुप्तकाशी के मंदिरों में स्थापित किया। शिवालयों की अधिकता शिव साधकों की गुप्त साधना स्थली होने के कारण इस क्षेत्र को गुप्तकाशी कहा गया।

डॉ. डी.एल. टेकू वॉकमैन द्वारा रचित सन् 1911 ईस्वी में प्रकाशित मिर्जापुर गैजेटियर के अनुसार, "11वीं शताब्दी तक यह (सोनभद्र) अपने पूर्व समृद्धि को प्राप्त हो चुका था। इसे द्वितीय काशी (गुप्तकाशी) अगोरी से कड़िया तक का क्षेत्र के नाम से जाना जाता था।"

गुप्तकाशी की धरती पर जप-तप करने आने वाले पक्के शैव थे। इनका मूल स्थान काशी से कौशांबी तक था। कौशाम्बी से विंध्याचल की पहाड़ियों से होते हुए गुप्तकाशी से मिर्जापुर तक आए और विंध्यवासिनी देवी के पास किला बनाकर रहने लगे। कालांतर में अपना राज्य काशी में स्थापित कर दशाश्वमेघ यज्ञ करने में सफल रहे, इनका राज्य उत्तर में भदोही (संत रविदास नगर) दक्षिण में बड़हल (आधुनिक जनपद सोनभद्र गुप्तकाशी के मुख्यालय राबर्ट्सगंज का एक परगना अप्रयंश बड़हर तक था) यह दोनों परगने इनके नाम पर हैं।

गुप्तकाशी में इस राजवंश के राजाओं द्वारा बनवाए गए गढ़ी, तालाब, किला, बावली आज भी विद्यमान हैं। शिवद्वार पंचमुखी, मधुरेश्वर, मड़रा, बरैला, गौरीशंकर, नलराजा, मऊ, शिवल्ला, कंडाकोट व गोठानी आदि स्थानों पर स्थापित शिवलिंग ललितासन मुद्रा में उमा-महेश्वर एकमुखी, पंचमुखी, सहस्त्रमुखी शिवलिंग पाँचवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी के शिल्पकारों द्वारा निर्मित हैं, जो साधकों कलाकारों के आस्था, विश्वास, कुशल, सिद्धहस्त शिल्पकला का द्योतक है। इस काल के कलाकारों ने बिना सुर्खी, चूना, मसालों के प्रयोग से पत्थर पर पत्थर रखकर मंदिर और तालाबों घाटों का निर्माण किया। आज इस प्राचीन विधि को इंटरलश्वकिंग सिस्टम करते हैं, इस विधि से निर्मित मड़रा का शिवालय, पुरखास व कड़िया अट्ठाईस का तालाब, घाट दर्शनीय है।

भारशिवों की तपोभूमि कर्मभूमि बाबा भोले की साधना स्थली को गुप्तकाशी (सोनभद्र) बनाया, जहाँ के कण-कण में शिव, गुफाओं, कन्दराओं, शिवालयों में शिव तत्व विद्यमान हैं।

गुप्तकाशी में तंत्र साधना

भारतीयों का शासन काल दीर्घकाल तक चला इस काल में तंत्र सिद्धि के लिए तांत्रिकों का दल गुप्तकाशी आया जिसमें अघोरभद्र प्रमुख था।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित रघुवंश महाकाव्य के अनुसार, "संवत् 467 विक्रमी में तंत्र साधना अघोरभद्र ने शोण महानद के तट एवं सोन-रेणु-विजुल के संगम पर अघोरी (अगोरी) दुर्ग का निर्माण कराया। अघोरी क्षेत्र 84 गाँव का राज्य ना होकर एक मठ था। अघोरी पीठ पर 10 अघोरी विराजमान हुए। औघड़ अघोरभद्र (410-440 ई.) औघड़ वीरभद्र (440-470 ई.) औघड़ रुद्रभद्र (470-495 ई.) औघड़ भैरवभद्र (495-525 ई.) औघड़ वीरभद्र (525-560 ई.)

औघड़ गोरक्षभद्र (560-580 ई.) औघड़ शोणभद्र (580-615 ई.) औघड़ चंद्रचूड़ (615-640 ई.) औघड़ जयेन्द्रभद्र (640-665 ई.) औघड़ अरण्यभद्र (665-678 ई.) अघोर तंत्र साधकों की गुरु शिष्य परंपरा लगभग 268 वर्षों तक चली। यह साधक शैव धर्म को मानने वाले थे। अघोरभद्र का कार्यकाल शैव धर्मावलंबियों का स्वर्णकाल था। अघोरभद्र ने गोठानी गाँव में शिवकेंद्र (शोभनाथ) स्थापित कर शिवपीठ बनाया। अघोर काल में अघोर मठ के अंतर्गत एक गुजारिन अधिकारी रहती थी, जिसने अघोर परंपरा के तत्कालीन स्वामी के आदेश पर लगभग 500 संवत् में कुण्डवासिनी नदी का निर्माण कराया। महादेवी कुंडवासिनी देवी की प्रतिमा तंत्र साधना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अघोरी (अगोरी) से कड़िया तक के क्षेत्र में अघोर तांत्रिकों का जमावड़ा था। इन साधकों के अधिकता के कारण तंत्र साधना पीठ का नाम घोरावल पड़ा। अघोर अवील अर्थात अघोरियों का कूरा या कतार। अघोरियों के पंथ की जीवंतता का प्रतीक अघोरी मठ अघोरी साधक जुड़े थे। इन साधकों का अपना एक संगठन विकसित कला एवं तंत्र साधना था।

कालांतर में कौल संप्रदाय के बामाकौल तांत्रिकों की एक टोली गुप्तकाशी आई और शक्तिपीठों में बैठकर सिद्धि प्राप्त किया। इस टोली में स्त्री और पुरुष दोनों ही सम्मिलित थे। टोना-टोटका, तंत्र-मंत्र, मारण-उच्चारण आदि क्रियाएँ करते थे, यह तांत्रिक अपने शरीर को कष्ट देकर सिद्धियाँ प्राप्त करते थे। कान, नाक, जीभ, जनेंद्रिय छिद्र करना, शरीर को दागना, काला वस्त्र धारण करना, नग्न धग्न रहना, गले में सर्प पहनना, विषकन्याएँ तैयार करना, मुर्दे को जिंदा करना आदि चमत्कारी क्रियाएँ श्मशान भूमि में करते थे। शरीर पर भस्म लगाना, मनुष्य को यंत्र के बल पर पशु-पक्षी बनाना आदि चमत्कारिक तांत्रिक क्रियाएँ करते थे और अपने नाम के आगे राम लगाते थे। संत कीनाराम पुजारिन बाई इसी पंथ के अनुयायी थे। इन तांत्रिकों ने अमिला भवानी मुख्खादरी में तंत्र साधना कर सिद्धियाँ प्राप्त की।

सोनभद्र जनपद मुख्यालय राबर्ट्सगंज के सहिजन कला गाँव में अंधकासुर का वध करते हुए शिव की मूर्ति रूप गाँव में अवस्थित पंचमुखी पहाड़ी तांत्रिकों की सिद्ध पीठ थी। पंचमुखी पर्वतमाला पंचमुखी की है, जिसमें पंचमुखी शिव की परिकल्पना समाविष्ट है। अघोर साधना का प्रथम सोपान अघोर तांत्रिक इसी दुर्लभ परम पुरातन सिद्ध पर्वत के बराबरी में बैठकर साधना करते थे। इसके बाद मार्कंडेय ऋषि की तपोभूमि मारकुंडी पहाड़ी की पंच परिक्रमा करके छोड़ महानद के किनारे बैठे थे। परिक्रमा करते हुए गोठानी गाँव में शक्तिपीठ के साधना पीठ रेनू के संगम तट पर स्नान कर पुनः साधना सिद्धि के ओबरा-ओबरी में बैठकर जब तक चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त करते थे।

कौल संप्रदाय की एक उप शाखा का आगमन गुप्तकाशी में हुआ था। साधक अपना एक कान फड़वा कर मुद्रा धारण करते थे, इसलिए इनको कनफटा योगी कहा जाता था। यह चक्र पूजा करते थे और हठयोग के माध्यम से शरीर में प्राण अपान सूर्य चंद्रमा नामक बहिर्मुखी, अंतर्मुखी शक्तियों के प्राणायाम आसन बंद के माध्यम से सिद्धियाँ प्राप्त करते थे और वीर लोरिक इसी संप्रदाय का अघोर तांत्रिक था उसमें चमत्कारिक शक्तियाँ निहित थी। मंजरी उसकी शिष्य योगिनी अथवा तंत्र साधना में सहयोगिनी थी। राजा भर्तहरि भी इसी संप्रदाय के हैं, जिनकी समाधि चुनार किले में अवस्थित है।

सातवीं शताब्दी में घोरावल क्षेत्र शास्त्र के अनुयायियों का केंद्र बन गया था। असंख्य स्त्री पुरुष तपस्यारत रहते थे। यहाँ पर तांत्रिकों के पुर, कुरा टोला थे, जहाँ यह अवील, कुरा, कतार में रहते थे।

अघोर पीठ के प्रथम मठाधीश्वर अघोरभद्र का काल अघोर पंथ और इससे जुड़ी हुई शाखाओं के साधकों का

उत्कर्ष काल था, परंतु अन्य संप्रदाय के प्रभाव के कारण अघोर पंथ के साधकों में विकृतियाँ उत्पन्न हो गई। जप-तप की जगह पंचम कार के अलौकिक अर्थ में ले लिया। मद्य, मांस और मैथुन प्रधान हो जाने के कारण अघोर पीठ का प्रभुत्व समाप्त हो गया। मठ का स्थान दुर्ग ने ले लिया। अगोरी दुर्ग से संपूर्ण क्षेत्र को नियंत्रित किया जाने लगा। कपालिक मत का महोबा आधुनिक बुंदेलखंड कलिंजर पर प्रभाव था। तंत्र विद्या में कलिंजर को सिद्धपीठ माना गया है। चंदेल राजा गढ़ विद्याधर के शासनकाल में खजुराहो में देवी जगदंबिका नंबर दिया महादेव आदि मंदिर की स्थापना तांत्रिक विधि विधान से की गई है पशुपति तांत्रिक गंड को गार्गी समुदाय के साधक उपनाम धारण करते थे संभवत: राजा गंड देव या गंड तांत्रिकों की देन है कलिंजर महोबा की काली देवी प्रसिद्ध हैं और दूसरी ओर विद्याधर हिंदू और बौद्ध तांत्रिकों में स्वीकृत उपाधि थी यह तथ्य इनके शिलालेख प्रमाणित करते हैं।

सन 1202-03 में चंदेल राजा परमाधिदेव के चौथे पुत्र आशाजीत उनके पुत्र परिमल धारीवाल ने गुप्तकाशी के अघोरी राज पर कब्जा जमाया। कालांतर में इन राजाओं के कार्यकाल में तंत्र-मंत्र को राजकीय संरक्षण मिला कौल संप्रदाय के 16 योगिनियों की पूजा की परंपरा रही है। माँ विंध्यवासिनी ज्वालामुखी देवी, माँ अष्टभुजा, तारा देवी, चुनार की दुर्गा जी सोनभद्र में अमिला भवानी, अमरा भगवती, बंसला देवी, महिषासुर मर्दिनी शीतला देवी, दुर्गा जी, कुड़री देवी, चाँदी देवी, अष्टभुजा देवी आदि सिद्ध पीठ के रूप में विद्यमान हैं।

विभिन्न तंत्रिका का गढ़ होने के कारण जन सूचियों में गुप्तकाशी को बंगाला देश कहा जाता था। सुंदर तांत्रिक स्त्रियों द्वारा पुरुषों को तोता मैना बनाकर पिंजरे में कैद करने, तंत्रिका द्वारा सम्मोहित करने, रोग व्याधि को ठीक करने की लोक कथाएँ प्रचलित हैं।

गुप्तकाशी की सिद्ध पीठों में तांत्रिक क्रियाओं को नवरात्रि अमावस की रात में साधक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। जनजाति अंचल में निवास करने वाली आदिवासी जातियों में तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका का प्रचार-प्रसार है। आदिवासी नृत्य करमा नृत्य में इतने भाव विभोर हो जाते हैं कि सांगा, नुकीली सरिया से अपनी जिह्वा गाल छेद कर सांगा धारण कर लेते हैं, गुरुदेव मानते हैं। अमावस की अंधेरी रात में दिया नग्न होकर सुई में डोरा डालकर सिद्धियाँ प्राप्त करती हैं। गुप्तकाशी के शिवालय देवी धाम सहमत सहमत के तांत्रिकों के साधना केंद्र हैं। इस क्षेत्र की प्रत्येक खिलाए गुफाएँ कंदराएँ ओकराबरी ऋषि-मुनियों तांत्रिकों के जप-तप की साक्षी है।

मौर्य, शक्य, कुषाण, नाग, वाकाटक, मौखरी, गटवाल, कलचुरी, चंदेल राजवंश के शासनकाल में शैव वैष्णव शाक्त सर गणपत्य जैन आदि धर्म का महत्वपूर्ण केंद्र गुप्तकाशी था जहाँ पर सभी धर्म के लोग साथ-साथ रहते थे और अपनी परंपराओं का पालन करते थे। इस क्षेत्र में भव्य मंदिर स्थापित थे परंतु विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं ने यहाँ के मंदिरों मठों को ध्वस्त कर दिया। बावजूद इसके इस क्षेत्र के मंदिर शिवालय देवालय गुप्तकाशी के इतिहास के स्वर्णिम अध्याय के साक्षी हैं। धर्म संस्कृति साहित्य कला की दृष्टि से गुप्तकाशी में लघु भारत दृष्टिगोचर होता है।

❖

प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार
तिवारी कटरा, डाला, सोनभद्र (उ.प्र.)
मोबाइल : 9415638777 ई-मेल : sanojtiwari@gmail.com

एक और घटना का पुनर्जन्म

— गिरिराज शरण अग्रवाल

'पर मुझे लगता है राजहंस, विश्लेषण करने में तुमसे कहीं-न-कहीं चूक अवश्य हो गई है।' राव का स्वर गंभीर हो गया, 'समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति जीवन-भर अपनी संतानों को प्यार देता रहा हो, वह वृद्धावस्था में एकदम इतना क्रूर कैसे हो सकता है क्रूर? कैसे हो सकता है वह?' राव ने अपने वाक्य का अंतिम टुकड़ा जोर देकर दोहराया।

'यह भी तो हो सकता है राजहंस, पत्नी के निधन से नानकचंद अधिक चिड़चिड़े हो गए हों, पर यह कोई उनका अपराध तो नहीं, एक स्वाभाविक प्रक्रिया है यह।'

'लेकिन इसका दंड हम लोगों को क्यों भुगतते रहना चाहिए?' बात के अंदर राजहंस ने अपने लिए तर्क ढूँढ़ लिया था।

'...तो बूढ़े नानकचंद को तुम घर में बिलकुल अकेला छोड़ आए, क्यों राजहंस?' एक प्रश्न धीमे से हवा में उभरता है और कमरे में पुनः मौन छा जाता है।

भारी डीलडौल वाले ठाकुर विक्रमराव अपने सामने निश्चित भाव से बैठे राजहंस की ओर देखते हैं। उनकी मुखाकृति पर खुशी या दुःख का कोई भाव स्पष्ट नहीं है।

'मुझे लगता है राजहंस, भविष्य में एक दिन तुम्हारे साथ भी वही घटना घटने वाली है, जो दूर अतीत में तामस के साथ घटी थी।'

राव ने अपनी सफेद हो गई मूँछों को उँगली से होंठों पर सीधा किया और राजहंस के अधरों पर बरफ की तरह जमे मौन को तोड़ने का एक प्रयास और किया।

'तुम पुनर्जन्म में विश्वास रखते हो राजहंस?'

'हाँ, क्यों नहीं।' नौजवान राजहंस ने कुछ इस प्रकार से उत्तर दिया, जिसमें विश्वास अथवा अविश्वास का कोई भाव नहीं झलकता था।

'अच्छा तो राजहंस, मैं तुम्हें बताता हूँ। जिस तरह आदमी पुनर्जन्म लेता है, बार-बार और बार-बार, इसी तरह घटनाएँ भी पुनर्जन्म लेती हैं। वे बार-बार घटती हैं। मनुष्य इस चक्र से तभी मोक्ष प्राप्त कर सकता है, जब वह स्वयं को संसार के मायाजाल से मुक्त कर ले। दुर्घटनाओं के पुनर्जन्म पर विराम लगाना तभी संभव है, जब मनुष्य अपने आचरण को बदलने में सफल हो जाए। वह आचरण को नहीं बदलेगा तो वैसा कुछ घटता ही रहेगा, जैसा अतीत में मूर्ख तामस के साथ घटा था।'

राव ने लंबे वाक्यों का जाल राजहंस के चारों ओर बुन दिया।

कमरे में पुनः निस्तब्धता छा गई।

राव ने दुःख-भरी दृष्टि से राजहंस की ओर देखा। वह जानते थे कि राजहंस अपनी पत्नी शारदा और सात-आठ वर्ष के बालक के साथ कुछ दिनों से उनके पड़ोस में किराए का मकान लेकर रह रहा है। राव जानते थे कि वह अपने बूढ़े और बीमार पिता को घर पर अकेला छोड़ आया है। वह यह भी जानते थे कि उसकी पत्नी की बूढ़े नानकचंद से बनती नहीं थी। पर क्या असहाय वृद्धों को यों ही मरने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए?

राव ने सोचा और उनके शरीर में आप-ही-आप झुरझुरी-सी होने लगी। 'लेकिन वृद्धावस्था में बूढ़ों को अपनी संतानों के साथ एडजस्ट करने का ढंग तो आना ही चाहिए।' लंबे कठोर मौन को तोड़ते हुए राजहंस बोला।

'हाँ, तुम ठीक कहते हो। पर एडजस्टमैंट एकपक्षीय नहीं होता है। दोनों ही पक्षों को झुकना पड़ता है, थोड़ा-बहुत।' राव ने राजहंस को अपनी बात समझाने का प्रयास किया।

'झुकने की बात मत पूछिए। अकेले मैंने ही नहीं, शारदा ने भी पापा के साथ एडजस्ट करने की बहुत कोशिश की, लेकिन हम लोग नहीं कर सके। मम्मी के देहांत के बाद तो मानो वह बिलकुल ही असहनीय हो गए हैं, बिलकुल असहनीय।'

'मनुष्य की उपयोगिता समाप्त हो जाती है, तो अक्सर परिवार में उसके साथ ऐसा ही होता है।' राव ने अनुभव की राख कुरेदनी चाही।

'दरअसल, अंकल! शारदा और मैं दोनों ही तंग आ गए थे घर के वर्तमान वातावरण से। अब हमारे सामने एक ही रास्ता रह गया था, घर छोड़ दें या आत्महत्या कर लें? हमने आत्महत्या नहीं की, घर छोड़ दिया।'

'ताकि अब तुम्हारा बूढ़ा बाप आत्महत्या कर ले?' राव ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा।

'नहीं, वह ऐसा नहीं करेंगे। उन्हें मुझमें और शारदा में कोई दिलचस्पी नहीं है। कोई लगाव नहीं है, हमसे उन्हें।'

'और तुम्हारे बेटे पिंकी से?' राव ने पूछा।

'लेकिन वह तो उनके लिए मात्र खिलौना है। पापा समय बिताने के लिए उसे अपने साथ लगाए रखते थे। पिंकी उनके साथ घुल-मिल गया।'

'पर मुझे लगता है राजहंस, विश्लेषण करने में तुमसे कहीं-न-कहीं चूक अवश्य हो गई है।' राव का स्वर गंभीर हो गया, 'समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति जीवन-भर अपनी संतानों को प्यार देता रहा हो, वह वृद्धावस्था में एकदम इतना क्रूर कैसे हो सकता है क्रूर? कैसे हो सकता है वह?' राव ने अपने वाक्य का अंतिम टुकड़ा जोर देकर दोहराया।

'यह भी तो हो सकता है राजहंस, पत्नी के निधन से नानकचंद अधिक चिड़चिड़े हो गए हों, पर यह कोई उनका अपराध तो नहीं, एक स्वाभाविक प्रक्रिया है यह।'

'लेकिन इसका दंड हम लोगों को क्यों भुगतते रहना चाहिए?' बात के अंदर राजहंस ने अपने लिए तर्क ढूँढ़ लिया था।

'तुम वृद्धावस्था में होते और यही स्थिति तुम्हारी होती, जो अब नानकचंद जी की है तो विश्वास करो तब तुम ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

चुप के कुछ बोझिल क्षण दोनों के बीच में दीवार बन गए।

'राजहंस, वह जो कहा है पुरखों ने कि बुढ़ापे में पत्नी और जवानी में पति न मरे किसी दुश्मन का भी, गलत नहीं है। बुढ़ापे को संगत की जितनी आवश्यकता होती है...'

राव अभी अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाए थे कि बाहर से भागता हुआ पिंकी आया और राजहंस की गोद में बैठकर इठलाने लगा।

'बाबा के पास चलूँगा पापा, बाबा के पास चलूँगा।'

राजहंस ने उसे कड़ी आवाज में चुप कर दिया, 'हर समय बाबा-बाबा की रट लगाए रखता है, मूर्ख कहीं का!'

पिंकी दम साधकर एक ओर बैठ गया।

'मुझे लगता है राजहंस, हजारों वर्ष पहले जो घटना तामस के साथ घटी थी, उसका पुनर्जन्म हो रहा है, एक बार फिर।'

'किस घटना की बात कर रहे हो, अंकल! कौन तामस था वह?' राजहंस ने राव की बात में कोई विशेष दिलचस्पी न लेते हुए पूछा।

'हाँ बाबा जी, तामस की बात सुनाइए। मैं भी सुनूँगा उसकी कहानी।' नन्हे पिंकी ने रुचि दिखाई।

'हजारों वर्ष पहले की बात है बेटे।' राव ने स्मृतियों के जंगल से तामस की कहानी को खोज निकालते हुए बात शुरू की। 'मथुरा राज्य की उत्तरी दिशा में एक छोटा-सा गाँव था, जिसमें एक साधारण-सा किसान निवास करता था। उसके एक ही बेटा था, तामस।'

'जैसे मैं बाबा।' पिंकी सरल-भाव से बोला।

'बिलकुल-बिलकुल, जैसे तुम अपने पापा के इकलौते बेटे हो।' राव ने बच्चे की पीठ थपथपाते हुए बात आगे बढ़ाई।

'तो पिंकी बेटे, वह किसान अपने बेटे तामस को इतना प्यार करता था, इतना प्यार करता था कि पूछो मत। रात में जब भी

क्रमशः ..... पृष्ठ 44 पर

लॉक डाउन में एम्बुलेंस

— मुक्ता

यह एम्बुलेंस वाली बात तुम्हीं ने मोहल्ले भर में फैलाई है... बेटा मेरा बीमार है...मोहल्ले वालों से क्या मतलब...मेरी कोई जवाबदेही नहीं बनती...किस बात की सफाई दूँ मैं... कोरोना ही केवल एक बीमारी है...और सब बीमारियाँ क्या बीमारियाँ नहीं है...अस्पताल में डॉक्टर नहीं...डॉक्टर मिल भी जाएँ तो हाथ लगाने को तैयार नहीं...हम अस्पतालों के चक्कर काटते रहे...कहीं कोई टेस्ट करने को तैयार नहीं... डॉक्टर समझ नहीं पा रहे थे...बस कोरोना हो गया... टेस्ट... कोरोना नहीं है...लेकिन डॉक्टरों की लापरवाही से मेरा बेटा लीवर कैंसर की दूसरी स्टेज में पहुँच गया...कैंसर कोई बीमारी नहीं है क्या...कोरोना से बड़ी बीमारी है कैंसर...हाँ, आई थी एम्बुलेंस...मेरे बीमार बेटे को अस्पताल ले जाने आई थी...मेरा बेटा कोई अपराधी है क्या...सबकी आँख में नफरत...ओह...हम क्यों बताएँ सबको...हमारी कोई जवाबदेही नहीं बनती।

"सुबह सुबह एम्बुलेंस आई थी।"

"कहाँ?"

"यहीं आपकी बिल्डिंग के पास खड़ी थी।"

"हमने तो नहीं देखा..."

"देखेंगीं कैसे...सुबह पाँच बजे ही आई थी...आप सो रही होंगी..."

"किसी मरीज को लेने आई थी...आपने देखा क्या?"

"हाँ...एक लड़के को ले गई है...ऐसा सुना है..."

"सुना है...देखा तो नहीं..."

"कोई बंगाली है.." मिश्रा जी ने झल्लाते हुए बात पूरी की।" एम्बुलेंस आई थी तो किसी मरीज को ही ले जाएगी न...अच्छे भले आदमी को तो नहीं उठा ले जाएगी।" सामने वाली बिल्डिंग के प्रथम तल में खड़े मिश्रा जी ने बात पूरी की और घर के भीतर चले गए।

"सुना तुमने...मिश्रा जी कह रहे थे एम्बुलेंस आई थी..." भीतर घुसते हुए राजेश ने पत्नी को आवाज दी।

"अखबार वाले को मना कर दिया न...बिल्डिंग वालों ने कब का बन्द कर दिया...एक हमें छोड़कर...तुम मेरी कहाँ सुनते हो..." "आज तो मैं सुबह से से ही खड़ा हूँ...जाने कब डाल कर चला गया...जाने दो उसकी भी रोजी रोटी है...खबरें भी पता चलनी चाहिए..."

"कोरोना के अलावा होता क्या है...टी.वी. खोलो तो कोरोना...अखबार खोलो तो वही...कोरोना...अब तो कहाँ रख कर पढ़ा जाए अखबार समझ में नहीं आता...मेज सेनीटाइज करो...बिस्तर पर रखा हो तो चद्दर धोना पड़े...अब अखबार को तो सैनिटाइजर में डुबा नहीं सकते...रद्दी वाला आ नहीं रहा... पहले से ही घर में अंटा पड़ा है...रक्खें कहाँ..."

"परेशान मत हो...कल पाँच बजे सुबह जग कर चौकसी करूँगा...मना तो करना ही पड़ेगा...इतनी पुरानी आदत... अखबार न पढ़ो तो जैसे सवेरा नहीं होता...अब छोड़नी पड़ेगी... राजेश के चेहरे पर उदासी तैर गई।"

सरला ने बात का रुख मोड़ते हुए पूछा—"तुम कुछ... एम्बुलेंस की बात कर रहे थे..."

"हाँ...लगता है कोई बीमार है...सुबह एम्बुलेंस आई थी... कोई बंगाली..." "बंगाली...सरला चौंकी " बंगाली परिवार तो अपनी बिल्डिंग में ही है..."

"हाँ...तो कोरोना यहाँ भी पहुँच गया...मुश्किल और बढ़ गई।"

"मास्क पहन रहे हैं...सैनिटाइजर इस्तमाल कर रहे हैं... साबुन से हाथ धो ही रहे हैं...और अब और क्या कर सकते हैं?"

"ईश्वर का ही भरोसा है..." सरला ने लंबी साँस छोड़ते हुए कहा।

"भगवान को भी कहाँ फूल मिल रहे हैं...फूल की दुकानें और मंडियाँ भी बन्द हैं..." सरला ने राजेश की बात काटी—"ऐसा मत कहो...इन सबके पीछे भी प्रकृति का कोई उद्देश्य रहा होगा..."

सरला के मन में आशंकाएँ घिरने लगीं। पहली नवरात्रि ऐसे बीती कि पंडित जी ने पाठ करने से मना कर दिया। कहने लगे दिल्ली में धर्म गुरुओं की सभा हुई है और यह निश्चय किया गया है कोई कहीं पूजा पाठ नहीं करेगा। सरला ने बड़ी बिनती की "दूर बैठ कर केवल हवन ही करा दीजिए...यही तो परीक्षा की घड़ी है।" पंडित जी रोष में भरे हुए थे—"जान है तो जहान है...हम नहीं आ सकते..." सरला के मन में आज भी प्रश्न बना हुआ है—"काशी में तो हर समस्या का हल पूजा पाठ, यज्ञ, हवन, अनुष्ठान से होता है...सूर्य, चंद्रमा और अन्य ग्रह नक्षत्रों की गति को अपनी गणित से बदल देने वाले काशी के पंडितों पर यह दिल्ली का कौन सा पुरोहित मण्डल हावी हो गया? लॉक डाउन में सब शांत...क्या आस्थाओं की सीमाएँ इतनी संकरी हैं... "राजेश रोज ही कहते हैं—"विज्ञान ही समाधान है। डॉक्टर वैक्सीन की खोज में लगे हैं। यह तो सही है कि वैक्सीन के बिना यह रोग खत्म होने वाला नहीं...लेकिन एम्बुलेंस आई क्यों थी।"

एम्बुलेंस की याद आते ही सरला सजग हो गई और शाम को पता करने का फैसला किया।

शाम को बगल वाली पड़ोसन गेट के बाहर खड़ी दिखाई दी। सरला मास्क लगाए उनसे कुछ दूरी पर जा खड़ी हुई। एम्बुलेंस के बारे में सुनते ही पड़ोसन बोल पड़ी—"नाटा...कुछ तो कह रहा था, यह बात उसी ने मोहल्ले में फैलाई है...मिश्रा जी ने देखा नहीं है...नाटे ने ही उन्हें भी बताया है। मैं पता करूँगी, वैसे...इस बिल्डिंग में कोई बीमार तो है...शायद आठ नम्बर वाले सिंह साहब का बेटा..."

"मैंने तो सुना है कोई बंगाली...बंगाली तो मुखर्जी का परिवार हुआ..."

"लेकिन उनके बेटे को तो आज सुबह ही सब्जी लाते हुए देखा है..." पड़ोसन ने टोकते हुए कहा—"देखिये यही अंतर है... दिल्ली में मेरी बेटी के ससुर बेटे के पास रहने पहुँच गए तो सोसायटी वाले खड़े हो गये...हारकर उन्हें वापस लौटना पड़ा... यहाँ बनारस में तो खुली छूट है..."

"हाँ...लेकिन आप भी तो अकेली हैं...आपकी बेटी आकर आपकी देखभाल कर रही है...सोचिए अगर उसे भी न आने दिया जाता तो?"

"हाँ...यह तो है..."

"लॉक डाउन ठीक है...हम घर में रहें, साबुन से हाथ धोएँ, मास्क लगाएँ, शारीरिक दूरी बनाकर रखें, लेकिन अपने आपसी रिश्तों को बना कर रखना जरूरी है...इस समय हमें एक दूसरे की पहले से अधिक जरूरत है...सोच रही हूँ कल ऊपर सिंह साहब के घर जाकर हाल ले लूँ...वही बेटा जिसकी पिछले साल शादी हुई थी...बड़ी अच्छी तरह रिसेप्शन दिया था उन्होंने...बहू भी बहुत सुंदर है...लेकिन बेटा बहू तो कहीं और रहते थे..."

"हाँ...अब दो कमरे में बेटा-बहू कैसे रहेंगे...लेकिन आजकल बहू मायके में है...बेटा यहीं है...अभी आपका उनके घर जाना ठीक नहीं है...पूरा परिवार घर में ही बन्द रहता है...दरवाजा खुलता ही नहीं है...बीमारी की बात भी पता नहीं सही है या गलत..."

"कुछ तो होगा...बात ऐसे ही नहीं फैलती...उन्हें डॉक्टर को बताना चाहिए...यदि कोरोना हुआ तो..." भय की कालिमा हावी हो उठी। दोनों महिलाओं ने घर का रुख किया।

लैपटॉप पर नजरें गड़ाए राजेश ने सरला को संबोधित किया—"प्रथम विश्वयुद्ध के समय आज से सौ साल पहले भी 'स्पेन फ्लू' फैला था। इसकी शुरुआत स्पेन से हुई। इसीलिए इसे 'स्पेन फ्लू' नाम दिया गया। कोरोना की तरह ही यह भी वायरस संक्रमण था जिसने उस समय करोड़ों लोगों की जान ले ली थी। तुम्हारे प्रिय कवि निराला जी की पत्नी मनोहरा देवी की मृत्यु भी इसी संक्रमण से हुई थी और ऐसा भी अनुमान है कि गाँधी जी को भी यह संक्रमण हुआ था...जरा सोचो सरला अगर गाँधी जी उस संक्रमण का शिकार हो गए होते तो...शायद हम आज भी गुलाम होते। उस समय भी लोग घरों में 'क्वारंटाइन' हुए थे। उस समय के अखबार और कवियों लेखकों की रचनाओं से बहुत से तथ्य सामने आते हैं। लोगों ने नई जीवन शैली विकसित की थी, नए ढंग से शिक्षा, नए ढंग के खेल जो बंद घरों में संभव हो सकें...उस समय संचार माध्यम के नाम पर केवल पुराने ढंग का फोन ही कुछ जगह था...लोगों ने मास्क को अपने जीवन का अंग बना लिया था। मैं तुम्हें यह सब इसलिए बता रहा हूँ कि तुम एम्बुलेंस का चक्कर छोड़ो और कुछ क्रिएटिव करो...एक समय था तुम बहुत अच्छी पेंटिंग करती थी. ..तुम फिर से शुरू करो..."

क्रमशः ..... पृष्ठ 46 पर

बुढ़ापे के अमलतास

— कृष्ण कुमार

बच्चों तुम सब सोचते होगे कि आज क्या हो गया कम बोलने वाले जॉन को कि वह अबाध गति से बोलता ही जा रहा है। न कोई कामा है न फुलस्टाप। बच्चों बोल तो मैं जरूर रहा हूँ किन्तु यह सब तुम्हारी फिलफिला और ईश्वर ही करा रहा है। यह सारा नियोजन केक से ही नहीं समाप्त हो जाता। बाद में खाने के समय उसने सब का ध्यान रखा है। तुम लोग पाओगे कि सबके स्वाद का ध्यान रखा गया है। उसको तो यहाँ तक याद है कि तुम्हारे दूध के दाँत कब और कितने निकले थे। तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लड़खड़ाते, गिरते, उठते चलने की अदा सब फिलफिला के मन-मस्तिष्क के कैमरे में कैद हैं। विभिन्न केटरिंग कंपनियों से अच्छे से अच्छा सामान मँगवाया गया है। हमारे तीनों दामादों को एशियन खाना बहुत पसंद है, यह किसी से छिपा नहीं। चाँदनी चौक केटरर्स के मालिक सुख देव कोमल इस अवसर के लिए अपनी ओर से हमारे प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए अनेकानेक रोचक-स्वादिष्ट डिशेज लेकर आए हैं। बच्चों जिस इंसान में कृतज्ञता नहीं होती या कृतज्ञता के भाव मर जाते हैं वह बड़ा मानव बन अमानव हो जाता है।

आज परिवार के सभी लोग जॉन की 92वीं वर्षगाँठ मनाने के लिए जॉन-फिलफिला के घर सुबह से ही एकत्रित हो रहे थे। चारों बच्चों एवं उनके पति-पत्नियों के साथ जॉन के आठों पौत्रों-पौत्रियों ने जॉन को प्यार करते हुए दीर्घायु की कामना की। जॉन और फिलफिला बड़े कमरे के बीचोबीच अपनी-अपनी कुर्सियों में बैठे थे और अन्य सभी उनके चारों ओर। जॉन ने सबको धन्यवाद देने के बाद पत्नी फिलफिला के मस्तक को सूँघते हुए उस पर एक बड़ा ही आत्मीय चुम्बन देने के साथ 67 वर्षीय सबसे बड़ी पुत्री फिलफिदा से कहा:

"बेटी मेरे कमरे में जाकर मेरा ब्रीफकेस ले आओ। आज तुम सबसे गंभीर बातें करने का समय आ गया है। बेटी तुमने ही मेरा एवं अपनी माँ का बराबर हर तरह का ध्यान रखते हुए, भाई एवं अन्य बहनों को एक साथ रखते हुए सारा काम किया है। अत: तुमको ही सारी बातों की जिम्मेवारी देना चाहता हूँ।" ब्रीफकेस जॉन को देते हुए फिलफिदा ने कहा:

"डैडी! क्या आज्ञा है? हम लोगों को क्या करना है?" "बच्चों सबसे पहले मैं तुम लोगों को ब्रीफकेस का गुप्त कोड बताता हूँ। ध्यान से इसको कहीं नोट कर लो।" फिलफिदा को ब्रीफकेस वापस देते हुए जॉन ने फिर से कहना शुरू किया:

"बेटी अंदर की पॉकेट में तुम लोगों के नाम लिखे चार लिफाफे हैं। सबसे पहले भाई-बहनों में सबसे छोटे ऐडम के नाम का लिफाफा खोल कर मुझे दे दो। बच्चों मैंने अपनी वसीयत काफी समय पहले, तुम्हारी माँ से बात करने के बाद, लिखी थी। इस वसीयत की एक प्रतिलिपि वकील डैनियल के पास सुरक्षित है। बेटी लाओ ऐडम के नाम का लिफाफा।"

इस बड़े से कमरे में मौजूद 16 चेहरों पर कौतूहलता एवं प्रश्नाकुलता भरे भाव स्पष्ट नजर आ रहे थे। लोग इधर-उधर अपनी ही जगह पर सरक रहे थे। संभवत: यह सोच कि अब आगे क्या होगा के क्षणिक मौन का यह कोलाहल सब को सता रहा था किंतु सब मजबूर थे।

"ऐडम यद्यपि तुम काफी बड़े हो गए हो। बुढ़ापे की कगार

पर हो। किन्तु हमारे लिए इस घर में सबसे छोटे हो। तुम्हारे जन्म के साथ ही हमारी तकदीर बदलने लगी थी। मैंने अपनी नौकरी छोड़कर फिश ऐंड चिप्स की दुकान खोली। इस दुकान से अभूतपूर्व फायदा हुआ। तुम्हारी माँ की मदद एवं सुझावों से मैं काफी संपत्ति एकत्रित करने में सफल हुआ। मैं अपने पहले मकान को तुम को देता हूँ जो तुम्हारे बाद तुम्हारे बेटों का हो जाएगा।" इसी प्रकार जॉन ने तीनों लड़कियों के लिफाफे खुलवाकर पढ़कर बताया कि किस को कौन सा मकान दिया जा रहा है। जॉन की बातों को सुनकर सभी बच्चों ने एक ही आवाज में कहना शुरू किया: "डैडी आपने और माँ ने हम लोगों को सक्षम एवं समर्थ बनाया। हम लोगों के पास आप ही का दिया सब कुछ है। इनकी जरूरत क्या थी?"

"बच्चों तुम ठीक कह रहे हो। समय की गति और नियति को किसी ने नहीं देखा है। कब किसमें परिवर्तन आ जाए कोई नहीं कह सकता। अत: मैं यह नहीं चाहता कि समय की इस अनिश्चितता का किसी पर बुरा असर पड़े। और मेरे जिंदा न रहने पर तुमको अपने-अपने हक के लिए कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़ें। जो मैंने किया है और क्यों किया है उसमें तुम लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं है?"

"डैड हम सब बड़े भाग्यशाली हैं कि हमको आप जैसा संवेदनशील एवं दूरदर्शी पिता मिला। आपने न कभी कुछ गलत किया है और आगे भी आप कोई गलती कर ही नहीं सकते। इसी कारण हम सब एक हैं। जहाँ भावनाएँ शुद्ध होती हैं वहाँ हर चीज ठीक होती है।"

बड़ी बेटी फिलफिदा को संबोधित करते हुए जॉन ने कहा: "बेटी! अब अंदर रखे दो अन्य लिफाफों को निकालो। एक पर 'फॉर ग्रैंड चिड्रेंस' लिखा है तथा दूसरे पर कुछ नहीं यानी कि ब्लैंक है।" ग्रैंड चिल्ड्रेन्स वाले लिफाफे को खोलकर पढ़ते हुए जॉन कहने लगे-"बच्चों मैं और फिलफिला बड़े भाग्यशाली हैं। तुम लोगों ने हम को सुन्दर स्वस्थ आठ पोते-पोतियाँ दिए। इनकी किस्मत से दुकान में अभूतपूर्व लाभ होने के कारण मैं बराबर ब्लूयचिप कम्पनी के शेयर खरीदता रहा। कई ऐसी कम्पनियों के सैकड़ों शेयर सर्टिफिकेट हैं।

मैं फिलफिदा तुमको यह जिम्मेवारी देता हूँ कि मेरे न रहने पर सारे शेयर सर्टिफिकेट को आठ बराबर के हिस्सों में बाँटकर इनके नाम करवा देना। मैं जानता हूँ कि यह काम न सीधा होगा और न आसान ही। इसीलिए तो यह काम तुमको दे रहा हूँ। और फिलफिदा अब वह ब्लैंक लिफाफा खोलकर मुझे दो।" जॉन ने फिर से पढ़ना शुरू किया:

"बच्चों हारबोर्न की बहुत ही अच्छी जगह पर मैंने एक प्लाट कई साल पहले खरीद कर डाल दिया था। रोजाना लोग आते रहे उसको खरीदने के लिए। किन्तु मैंने अब तक नहीं बेचा क्योंकि मुझे पैसों की कोई जरूरत ही नहीं पड़ी। मैं इस प्लाट को परिवार में पैदा होने वाले अपने पहले ग्रेट ग्रैंड चाइल्ड के नाम करता हूँ। अगर संयोगवश कहीं ऐसा हुआ कि एक ही दिन एक ही तारीख को कई ग्रेट ग्रैंड चिल्ड्रेन होते हैं तो यह जमीन उनमें बराबर के हिस्सों में बाँटी जाएगी। यह फिलफिदा तुम कैसे करोगी समय ही बताएगा।" अंत में एक लिफाफा अपनी जेब से निकाल कर पढ़ते हुए जॉन ने कहना शुरू किया:

"बच्चों अब बारी है इस मकान की जिसमें हम दोनों रह रहे हैं तथा पेंशनों से मिलने वाली रकम की। मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा सत्य है। हम सबको इस नश्वर शरीर को एक न एक दिन छोड़ना ही है। हम दोनों में से कौन पहले इस संसार से जाता है केवल विधाता ही जानता है। अगर मेरी मृत्यु पहले होती है जो साधारणतया होता आया है तब इस मकान पर एवं मेरी पेंशन पर तुम्हारी माँ फिलफिला का पूरा अधिकार होगा। बच्चों हिंदू वैदिक मान्यताओं के अनुसार मृत्यु-जीवन का लेखा काल एवं यम मिल कर करते हैं। काल श्री हरि की माया से उत्पन्न उसका बेटा है। जब विष्णु जी के अंशों से पैदा राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के प्राण छोड़ने का समय आया तब काल ने श्रीराम से जाकर सारी बातों की सूचना दी थी। इसके फलस्वरूप वे अपने बैकुंठ धाम पधार गए थे। बेटा यह सबके साथ होता है। अंततोगत्वा हम दोनों के न रहने पर, इस घर को बेच कर इससे मिलने वाली रकम को फिलफिदा तुम चार हिस्सों में बाँट देना। किन्तु मकान बेचने से पहले सलाह सबसे कर लेना, जो तुम हमेशा करती रही हो पिछले 25-30 वर्षों से। मकान में जो नई-पुरानी चीजें हैं उन पर तुम लोग आज से ही अपने-अपने नाम के लेबल लगाना शुरू कर दो।"

क्रमशः ..... पृष्ठ 48 पर

आग

— शैलजा सक्सेना

इस बीच मैं भी सोचता रहा कि इस समस्या का क्या तोड़ हो सकता है? अग्रवाल जी इस उमर में बच्चों की बेवकूफी से कितने परेशान हैं, यह बच्चे क्यों नहीं देख पा रहे? ध्यान से देखो तो यह न बेवफाई का केस है और न घरेलू हिंसा का, न दहेज का और न पति-पत्नी के बीच किसी अन्याय का! यह सब हो तो चलो भई रहो अलग, जियो अपनी जिंदगी पर यहाँ तो यह सब समस्या है ही नहीं। बस, अहंकार है, गलतफहमी है और एक बिना सिर-पैर की जिद्द है। क्या हम बच्चों को इस दिन के लिए पालते हैं कि वे गलतफहमियों को लेकर झक्की बन जाएँ और घर को तबाह कर दें? यह केस कुछ अलग है पर होता तो यही सब है ऐसे केसों में! और बच्चे, उनकी जिंदगी बिन पैंदे के लोटे जैसी हो जाती है। वे जॉइंट कस्टडी में कभी माँ के पास जाएँगे तो कभी बाप के पास। यहाँ तो बच्चे छोटे हैं यानि सालों चलेगा ऐसे। माँ-बाप को जॉइंट कस्टडी मिलेगी पर उन बाबा-दादी का क्या, जिनके पास ये बच्चे अभी तक दिन-रात रहे हैं? अग्रवाल जी बता रहे थे कि प्रशांत का बड़ा वाला बेटा रात को बाबा से चिपट कर तो निशांत का इकलौता बेटा दादी से चिपट कर सोता है।

पता चला कि रात घर के आदमियों ने खाना नहीं खाया और औरतों में देर तक चिल्ल-पौं मची रही। बड़ी बहू जो गाय जैसी ही दिखाई देती थी, रस्सा तुड़ा कर आपे से बाहर हो गई और छोटी का मुँह तो पहले से ही खुला था सो और दस बातें झड़ीं उसके मुँह से। दयावती जी, यानि मिसेज अग्रवाल ने अपनी बहुओं का विकराल रूप देख कर अपने बेटों को समझाना शुरू किया पर बेटे भी उल्टी चाल पर थे। आप पूछेंगे कि इस में नया क्या है? यह तो हर घर की कहानी है! कितने दुख की बात है न कि अब किसी के चोट खाए मन या किसी की शाब्दिक हिंसा से हमारी संवेदना नहीं जागती। यहाँ तो शारीरिक हिंसा इतनी आम बात हो गई है कि लोगों ने उस पर चौंकना भी बंद कर दिया है, बस सब आँचल से अपने घर की आग को ढाँकने की कोशिश करते हैं जब तक कि वह आग उनका पल्ला जला कर बाहर वालों को न दिखने लगे। खैर, बात यह नहीं थी कि बहुएँ आपस में लड़ रहीं थीं या बेटे आपस में लड़ रहे थे, बात यह थी कि दोनों बेटे मिलकर दोनों बहुओं से लड़ रहे थे। जी हाँ, जनाब यही चौंकाने वाली खबर मुझे मिली और यह भी कि मुझे तुरंत का तुरंत अग्रवाल जी के घर पहुँचना है।

मैं? मैं कौन? मैं वकील रामप्रसाद तालेवाला! तालेवाला!! इस नाम पर हँसिए मत! बहुत काम आता है यह नाम, मेरा मोटो है कि मैं कहीं भी ताले लगवा सकता हूँ और कहीं भी ताले खुलवा सकता हूँ। बाप-दादों के तालों का व्यवसाय मेरे काम में भी नारे की तरह काम आ रहा है। मेरी कहानी फिर कभी, अभी तो अग्रवाल साहब के घर की कहानी देखनी है। मैं उन का भी वकील हूँ, महीने में एक बार चक्कर लगा कर वो कोर्ट के मामले में फँसी अपनी दो-तीन जमीनों के बारे में राय-मश्विरा मुझ से कर लेते हैं बल्कि कहूँ कि पिछले चार-पाँच सालों में उनसे इतनी बार मिलना हुआ है कि दोस्ताना हो चला है।

अग्रवाल साहब की कोठी पंखा रोड पर, चन्ननदेवी अस्पताल के चौराहे से पहले, सी-1 में पड़ती है। सुबह का

ट्रैफिक का समय और मेरा अपना पूरा व्यस्त दिन! पर अग्रवाल साहब की रुलासी प्रार्थना कि आप अभी कि अभी आ जाएँ, मैं मना नहीं कर पाया। वैसे भी झगड़े, झँझट की नींव पर ही तो खड़ी होती है वकीलों के व्यवसाय की इमारत! कोई लड़े, झगड़े, यह तो हमारे लिए अच्छे शकुन वाली बात ही है! पर अग्रवाल जी का मैं सम्मान करता हूँ, ईमानदार आदमी हैं, पढ़े-लिखे, खुली सोच के अमीर आदमी! नेक ऐसे कि अपनी अमीरी का रौब गाँठना उन्हें सुहाता नहीं। मैंने ऐसे आदमी गिनती के ही देखे हैं! मेरे मन में उनके लिए इज्जत है सो उनकी आवाज के दर्द से मैं पिघल गया और अपने दिन के कार्यक्रम स्थगित करके उनके घर पहुँचा।

घर में सन्नाटा था। भीतर से भी कोई आवाज नहीं आ रही थीं। कमलाबाई ने दरवाजा खोला और ड्राइंगरूम में बिठा कर पानी लेने चली गई। अग्रवाल साहब का घर बहुत बढिया सजा है। बहुत मन से उन्होंने यह कोठी बनवाई है, तिमंजला कोठी। पंखा रोड का व्यस्त मुहाना, पास में अस्पताल, आगे सीधे उत्तम नगर और दाएँ मुड़ गए तो तिलक नगर यानि 'लोकेशन' बिल्कुल फर्स्ट क्लास और अब तो पास में मैट्रो भी आ गई है, घरों के दाम आसमान छूने लगे हैं। '...हम्म.. आज के समय में यह कोठी नौ-दस करोड़ से तो कम क्या ही होगी..' मेरा दिमाग जमा-जोड़ मे लग रहा था। किसी की हैसियत नापनी हो तो उसके बँगले और गाडियों, बीबी के शरीर पर सजे गहनों और साहब के कपड़ों से ही नापी जाती है। बाकी छोटे से घर में सादा रहने वाला आदमी करोडों जमा कर ले, उसे कौन अमीर कहेगा साहब! जो दिखता है, वही कहा भी जाता है। दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई पर हमारी सफलता मापने के आँकड़े वही हैं, बाकी कहने को आदर्शवादी बहुत कह गए हैं, हम भी सुन लेते हैं पर हो तो वही रहा है जो होता आया है। इस वातानुकूलित साफ-सुथरे, सुरुचिपूर्ण ढंग से सजे ड्राइंगरूम में गद्देदार सोफे पर धँसे, मेरे यह सब ख्याल, मेरे साथ ही दो मिनट को साँस लेने बैठ गए थे, वरना इन बातों पर सोचने की मुझे कहाँ फुरसत! इन बातों का जमा जोड़ यह कि अग्रवाल साहब का कपड़े के शो रूम का बिजनेस अच्छा चल रहा है और उन्हें सफल कहा जा सकता है।

अग्रवाल साहब आए तो गंभीर थे, आँखें लाल, चेहरे पर तनाव की स्याही! दोनों बेटे भी साथ-साथ ही आए। बड़ा 35-36 का है और छोटा 32-33 का। दोनों के जबड़े भिंचे हुए!

अग्रवाल साहब ने ही बात शुरू की, "ये दोनों अड़े हुए हैं कि अब ये अपनी पत्नियों के साथ नहीं रह सकते!"

प्रशांत, बड़े बेटे ने बात जोड़ी, "अगर कोई और रास्ता न दिख रहा हो तो हम भी क्या कर सकते हैं? कितना समझाएँ!"

निशांत ने उबल कर कहा, "देख लिया बहुत समझा कर, अब कुछ नहीं हो सकता! ऑफिस में सिर खपाएँ और यहाँ आकर इनके तेवर देखें, कब तक?"

अग्रवाल साहब ने बेबसी से देखा, "अब बताइए क्या करूँ मैं? मैं भी तंग आ गया हूँ! चैन से आदमी रहे तो कैसे? बाहर जाओ तो वहाँ की ख्वाँ-ख्वाँ, भीतर आओ तो यहाँ की! दोनों तरफ आग लगी है!"

विचित्र कहानी है! दोनों लड़के एक साथ अपनी पत्नियों से अलग होना चाहते हैं! दोनों के शायद एक-एक बच्चा भी है, बड़े के तो शायद दो! ऐसी बात पहले कभी नहीं सुनी थी। मेरी उत्सुकता बढ़ी।

"बात विस्तार से बताएं तो कुछ सोचा जाए। दोनों पक्षों से बात करनी होगी, अलग होने का क्या मतलब है, यह सब भी आप लोगों को जानना होगा। कोर्ट तक पहुँचने से पहले जो किया जा सके, वह करना जरूरी है।"

मेरी बात खत्म होने से पहले मिसेज अग्रवाल, चाय-नाश्ते की ट्रे और कमलाबाई समेत उपस्थित हुईं। मैंने उनकी बहुओं को भी बुलवा लिया ताकि जो भी बात हो सब के सामने हो। रात की घमासान बहसबाजी के निशान बहुओं की रोई, सूजी आँखों पर थे। मन के झंझावात भी चेहरे पर काँप रहे थे। लड़कों की हालत भी कुछ-कुछ वैसी ही थी। उनकी लाल आँखें रात भर के जागरण को बता रहीं थीं। मिसेज अग्रवाल ने कमला बाई से सब के लिए चाय परसने को कहा। कम से कम इस बहाने कुछ पेट में तो जाएगा, कल से सब निराहार ही थे। पति और लड़कों को मेरे साथ बिठा कुछ खिला लेने के आतुर आग्रह में उन्होंने बात

क्रमशः ..... पृष्ठ 51 पर

ईश्वर भी बस तुम्हें देखने आते थे

— सर्वेश सिंह

मैंने देखा कि ब्रह्म मुहूर्त लग गया था। नीचे केदारनाथ परिसर में रोशनियाँ अभी भी चमक रही थीं। जड़वत उन्हें देखता मैं खड़ा था। बाबा की जटाओं में मुझे वही बादल फिर नजर आए और कमंडल में वे ही दोमुखी नाग। उन्हें प्यास लगी तो मैंने देखा कि बाबा ने कमंडल उनके सामने कर दिया। मैं सहम उठा, पर वे गट गट उसका पानी पीने लगीं। नाग उनके मुँह में गिरने लगे। कहते हैं कि संन्यासी अपने कमंडल का जल दूसरों को नहीं देते। वह अमृत का प्रतीक है। यह इस तपोभूमि का संभवत: सबसे पावन दृश्य था मेरे लिए। संन्यास, प्रेम, गुफा, योग, साधना, आदि के प्रत्यय मेरे मन में गड़बड़ाने लगे थे। अंतर्मन में बस यही लग रहा था कि यह जो कुछ मैं देख रहा था, वह शायद कहीं किसी कविता या कहानी में पहले से ही लिखा हुआ है, जिसका प्रक्षेपण इस गुफा में हो रहा है।

आशिकी से मिलेगा ऐ जाहिद
बंदगी से खुदा नहीं मिलता (दाग देहलवी)

वे शब्दों की एक बेहतरीन कीमियागर थीं। कलम से उन्होंने नक्षत्र रचे थे। इस सदी में, मानुषिक जीवन के बेहद नए और संवेदनशील आख्यानों की रचना के लिए उन्हें पूरी दुनिया में जाना जाता था। नई पीढ़ी की वे रोल मॉडल थीं। अदब का ऐसा कोई ताज नहीं, जो उनके माथे न लगा हो।

चर्चे उनके शानदार व्यक्तित्त्व एवं अप्रतिम सौंदर्य के भी थे। उनकी आशनाइयों के किस्से आम लोगों में बेतरह मशहूर थे। उनका एक मानीखेज चित्र आज भी लोगों को याद है, जिसमें उनकी निर्वस्त्र छातियों पर किताबें बिखरी हैं, और वे हँसते हुए उँगलियों से 'वी' का इशारा कर रही हैं। वह चित्र देश की सबसे ज्यादा बिकने वाली पत्रिका के कवर पेज पर छाया हुआ था। इसे स्त्री की बौद्धिक और शारीरिक आजादी का युगीन प्रतीक बताया गया था। अदब के एक बड़े आलोचक ने उनकी इसी शख्सियत को देखते हुए, उनकी शान में जो लेख लिखा था, उसका शीर्षक था- 'हेमा वशिष्ठ : धुंध और धुन'।

ऐसी शोहरत मिले तो भला और क्या चाहे कोई पर, न जाने एक दिन क्या हुआ कि अचानक उन्होंने शहर छोड़ दिया। जिस काफी हाउस में वे रोज कहानियाँ खोजने जाती थीं, वहाँ उनके दीवाने उदास बैठे मिले। कहते हैं कि उनके नजदीकी लोगों ने बहुत रोका पर वे नहीं मानी। चर्चा यह भी थी कि वे वैरागिन हो गई हैं। लोग अचंभित हुए कि अपनी सारी सम्पत्ति उन्होंने किसी स्वयं सेवी संस्था को दान कर दी थी। उनसे नजदीकी का दम्भ भरने वाले एक कवि की गुप्त सूचना को मानें, तो पहाड़ों पर जाने से पहले उन्होंने पाश की यह कविता सुनाकर उसको स्तब्ध कर दिया था- 'तुम भूल जाना / मैंने तुम्हें किस तरह पलकों में पाल कर जवान किया/कि मेरी नजरों ने क्या कुछ नहीं किया/ तेरे नक्शों की धार बाँधने में / कि मेरे चुम्बनों ने / कितना खूबसूरत कर दिया तेरा चेहरा /...कि मैं गले तक जिंदगी में डूबना चाहती थी। मेरे भी हिस्से का जी लेना मेरे दोस्त / मेरे भी हिस्से का जी लेना।'

पर उससे भी ज्यादे हैरान कर देने वाली बात यह थी कि उम्र की इस ढलान में उन्होंने शहर छोड़ पहाड़ों की ओर रुख किया। बसें बदल बदल कर, और पैदल चल चल कर, इतनी दूर, इतने उपर, वे अकेले चली आईं थीं। वे कितनी बेचैन थी, यह इससे भी पता चलता है कि यहाँ उपर आकर, इस सिद्ध शिव मंदिर के दर्शन भी उन्होंने बड़े ही बेमन से किया। वे गर्भगृह में गईं तक नहीं। मंदिर परिसर में हाथ मलते टहलती रहीं यहाँ वहाँ।

यह केवल मुझे, और वह भी बहुत बाद में जाकर पता चला, कि उनके मन में तो जैसे अब बस एक ही अंतिम इच्छा बची रह गई थी। दरअसल वे, बस एक बार उनको देखना, उनसे मिलना, चाहती थी, जो कभी, सब कुछ को एक झटके में छोड़ कर, यहाँ उपर, बर्फीले पहाड़ की तलहटी में स्थित वशिष्ठ गुफा में रहने चले आए थे। यह एक ऐसी गुफा थी, जिसके बारे में कहते हैं कि, पृथ्वी पर होते हुए भी, सबको वह नहीं दिखती थी। यह भी सुना जाता है कि एक बार उस गुफा में गए संन्यासी, फिर नीचे, वापस लौट कर नहीं आते। कहते हैं कि यह गुफा सदियों से इस जीवन का कोलाहल छोड़ कर आने वाले लोगों की पनाह रही है। बड़े बड़े विद्वान, डाक्टर, वैज्ञानिक, साहित्यकार, न जाने क्यों, मैदानी जीवन छोड़ कर यहाँ आए और न जाने किसके ध्यान में डूब गए। यह गुफा सफल साधनाओं के कई रहस्य समेटे थी। हजारों साल से साधक यहाँ सिद्धियाँ पाते आए हैं।

सुना यह भी जाता है कि यह गुफा सिर्फ उन्हीं लोगों को स्वीकार करती है, जिनके भाव पवित्र हैं, अन्यथा कोई इसमें पहुँच नहीं पाता। दावा तो यहाँ तक है कि संसार से मुक्ति की बेचैनी जिनके मन में न हो, उन्हें यह गुफा दिखती ही नहीं। यहाँ साधना का अवसर मिलना, दरअसल, सौभाग्य की बात मानी जाती है। मान्यता है कि इस गुफा के मुहाने पर स्थित धूनी, हजारों साल पहले 'योगवशिष्ठ' जैसी महान कविता के रचयिता, ऋषि वशिष्ठ द्वारा जलाई गई थी।

केदार मंदिर से चलकर अब वे वहाँ थीं जहाँ आगे जाने का कोई रास्ता नहीं था। उखड़ती साँसों को थामे उन्होंने नजरें उठाईं सामने धुंध थी और बादल तैर रहे थे। चश्मा उन्होंने लगा लिया था। उन्हें शायद यह आशंका थी कि गुफा उन्हें दिखेगी भी या नहीं! मुक्ति की चाहना उनके मन में थी नहीं। फिर भी उन्हें उम्मीद थी कि उनसे मिलने की बेचैनी जरूर वह गुफा समझेगी।

सहसा धुंध हटी और गुफा उन्हें एकदम सामने झलकने लगी थी। उपर तलहटी में। उसके भी उपर बर्फ में लिपटी चोटी चमक रही थी...स्वर्णाभ। उसके इधर-उधर भी बर्फ ही बर्फ थी-पत्थरों, झाड़ियों से लिपटी हुईं।

पर गुफा और उनके बीच बर्फ न थी। एक अबूझ सी हरियाली थी। जैसे उसे किसी ने यहाँ बिछा दिया हो। बर्फ के बीच यह हरियाली उन्हें रहस्यमय लग रही थी।

'उदासी बाबा की गुफा तक पहुँचने में कितना समय लगेगा'-उन्होंने मुझसे पूछा।

उनके इस प्रश्न को सुनकर मैं हैरान हो उठा। आज सुबह फोन कर उन्होंने मंदिर में मिलने को मुझे बुलाया था और तबसे मैं उनके साथ था। मैं उनके लिखे का एक छोटा मोटा समीक्षक भी था, अत: उनका साथ एक पवित्र कामना सा भी था मेरे लिए। पर गुफा क्यों जाना? बाबा से मिलने का क्या रहस्य! मुझे यह निरर्थक सा लगा। मैंने तत्क्षण उन्हें वहाँ जाने से मना किया।

पर वे न मानी और दृढ़ता से कहा कि यदि मैं न जाना चाहूँ तो वे अकेले ही चली जाएगीं।

बंद आँखों उनके होंठ बुदबुदाए-'जाना ही है। कितने तो पास हैं वे! अब पीछे नहीं लौटना।'

मजबूरन अपना अनुभव मुझे उनको बताना पड़ा-'कुछ पत्रिकाओं में छपे लेखों के माध्यम से मैं उदासी बाबा से परिचित हुआ। साहित्य और अध्यात्म के सह संबंधों पर उनके विचार मुझे बहुत अपीलिंग लगे। मेरी रूचि भी उसमें थी। सो, गुफा में एक बार उनके दर्शन की अभिलाषा से मैं पिछले साल गया था। जाने का कोई पक्का रास्ता नहीं, सो समय का पता ही नहीं चला। दिखने को तो यहाँ से कितनी पास दिखती है वो गुफा, पर उस रोज ऐसा लगा कि न जाने कितने दिनों मैं चला। दिन भी दिखे और रात भी। बादल दिखे, मरुस्थल दिखे और कितने तो चाँद दिखे। गुफा के बाहर, धूनी के पास, बस वे ही खड़े मिले। मैंने पैर छुए और कुछ देर उनके पास खड़ा रहा। उनकी सौम्यता इतनी गहरी थी कि कुछ पूछने की इच्छा ही नहीं हुईं भीतर लौटते हुए उन्होंने मुझसे कहा कि 'मुझे उधर के बारे में लिखना चाहिए जिधर सूरज डूबता है'। ठिठक कर मैं उनकी इस बात पर सोचता रहा। फिर उलटे पाँव लौट आया। वे मुझे अजीब से लगे। उनकी जटाओं में बादल घूम रहे थे। उनके कमंडल में दोमुखी नाग थे।'

वे हँसने लगीं। हँसते हुए उन्होंने कहा-'वहाँ कुछ लिखा रखा होगा कहीं। वही उड़कर आपको बादलों और नागों के रूप में दिखा होगा।'

मैंने आश्चर्य से उन्हें देखा। मैंने सोचा, लिखे हुए में इतना जादू भरा होता है क्या! शब्दों में दृश्य बनने की क्षमता होती है क्या? कहीं ऐसा तो नहीं कि बाबा को वे पहले से ही जानती हैं? वो भी इतनी गहराई से!!

मुझे उत्सुकता हुईं मैं उनके साथ चलने को तैयार हो गया।

क्रमशः ..... पृष्ठ 56 पर

कितनी अधूरी किताब

— कृष्ण नागपाल

मेरे पास कोई और चारा नहीं था। तीन लाख लेकर भैय्या तक पहुँचा दिए। अब मेरी तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि माता-पिता तथा भैय्या पूरी तरह से स्वस्थ हो जाएँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उनसे मिलने की बड़ी तमन्ना है। देखते हैं कैसे कोई रास्ता निकलता है। राजेश से लगभग घंटे भर तक बात होने के ठीक तीसरे दिन सुबह सात बजे के आसपास मेरा सेलफोन बजा। देहरादून से रजनी भाभी थीं। राजेश रंजन की पत्नी। "भाई साहब, मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ। यह आपके पुराने मित्र हैं, इसलिए सुबह-सुबह आपको अपनी चिंता और पीड़ा से अवगत करा रही हूँ। इन दिनों यह बहुत परेशान रहते हैं। ऐसी चिंता और घबराहट मैंने इनमें पहले कभी नहीं देखी। न ठीक से खाते-पीते हैं और न नींद लेते हैं। आधी रात को उठकर लिखने बैठ जाते हैं। कहते हैं कि मुझे हर हाल में अपना उपन्यास पूरा करना है। मेरे यह कहने पर कि ऐसी भी जल्दी क्या है, तो कहते हैं कि रजनी मेरे इस अधूरे उपन्यास के पात्र मुझे सोने नहीं देते।

अभी बीस दिन भी नहीं नहीं बीते थे, जब राजेश रंजन से कितनी देर तक बातचीत हुई थी। उसने बताया था कि वह इन दिनों बेहद तनाव से गुजर रहा है। पिछले कुछ दिनों से खुद की तबीयत ढीली-ढीली थी। तीन दिन पहले उम्रदराज माता-पिता और बड़े भाई कोरोना पॉजिटिव पाए गए हैं। सबकुछ बिखरा-बिखरा-सा लग रहा है। मैं यहाँ देहरादून में हूँ और वे हजारों मील दूर अकेले सीतापुर में कोरोना से लड़ रहे हैं। सीतापुर कहने को तो शहर है, लेकिन वहाँ पर अच्छे अस्पतालों का अभाव शुरू से रहा है। सरकारी अस्पतालों पर लोग वैसे भी ज्यादा भरोसा नहीं करते। निजी चिकित्सालय और डॉक्टर मरीजों की जेबें खाली करने के लिए कुख्यात रहे हैं। उस पर इस आँधी की तरह आई कोरोना की बीमारी ने तो अधिकांश डॉक्टरों को मरीजों के साथ लूटपाट करने का बहाना उपलब्ध करवा दिया है। धन के लालची ऐसे मुँह फाड़ रहे हैं, जैसे इससे पहले नोटों के दर्शन करने से वंचित रहे हों। अस्पताल में भर्ती करने से पहले डेढ़-दो लाख रुपए जमा करने का फरमान सुनाते हैं, जैसे मरीजों के घर में ही नोटों की छपाई हो रही हो। मुझे जैसे ही खबर लगी, मैंने अपनी जीवनभर की जमा पूँजी के चार लाख रुपए माँ-बाबू जी के पास भिजवा दिए थे। कल सुबह-सुबह फिर अस्पताल में भर्ती भैय्या का मैसेज आया कि और तीन लाख रुपए की तुरंत जरूरत है। बड़े भाई की माँग ने मुझे असमंजस में डाल दिया। मुझे परेशान देख तुम्हारी भाभी ने अलमारी से अपने सारे सोने के गहने निकालकर मुझे सौंपते हुए कहा कि, 'ज्यादा मत सोचो। फौरन अपनी पहचान वाले रोहित ज्वेलर्स के यहाँ जाकर इन्हें बेचो और जो भी रकम मिले भाई जी को भेज दो। ज्वेलर्स ने गहनों का वजन कर बताया कि इस दस तोले सोने के मैं आपको तीन लाख दे सकता हूँ। मैंने ज्वेलर्स को याद दिलाया कि इन दिनों प्रतिदिन अखबारों में सोने के भाव बढ़ने की खबरें हैं। कल ही मैंने पढ़ा था कि सोने का भाव पचपन हजार तक जा पहुँचा है। ऐसे में दस ग्राम के पचास हजार नहीं तो चालीस हजार तो दे दीजिए ताकि मेरी

समस्या का समाधान हो जाए। ज्वेलर्स मेरी बात सुनकर मुस्कुराया, सर आप भी कौन-सी दुनिया में रहते हैं, जो अखबारों में छपी खबरों पर यकीन करते हैं। आपको पता होना चाहिए कि बाजार से रकम गायब हो गयी है। हम कैश के अभाव से जूझ रहे हैं। आप जैसे पाँच-सात मुसीबत के मारे तो रोज अपने गहने बेचने चले आते हैं। हम तो उन्हें दस ग्राम के बीस-पच्चीस हजार थमाकर चलता कर देते हैं, लेकिन आपसे पुरानी पहचान है। उस पर आप लेखक और पत्रकार हैं, इसलिए आपका मान रख रहे हैं। आप चाहें तो कहीं दूसरे आभूषण विक्रेता के यहाँ जाकर पता लगा लें। शहर के इस ज्वेलर्स की नोटबंदी से पहले एक छोटी-सी दुकान थी। नोटबंदी के दौरान इसने जमकर अवैध सोना का कारोबार कर करोड़ों की कमाई की। कुछ ही महीने के बाद इसने शहर में देखते ही देखते तीन भव्य शोरुम खोल लिए। इसके सर पर देश के एक केंद्रीय मंत्री का हाथ चर्चा में रहा है। दरअसल, ऐसे लोगों ने ही 'नोटबंदी' का जमकर फायदा उठाया और बदनाम हुई सरकार। ऐसे आभूषण कारोबारी देश के नगरों, महानगरों में भरे पड़े हैं। इन जैसे लोग ही देश को आर्थिक दुष्चक्र में फंसाने के जिम्मेदार हैं। उस पर भ्रष्ट राजनेताओं का साथ ही इन्हें बलशाली बनाता चला जाता है। देश में संकट काल की छाया पड़ते ही यह लोग लूटपाट मचाने के रास्ते पर चलने लगते हैं।

मेरे पास कोई और चारा नहीं था। तीन लाख लेकर भैय्या तक पहुँचा दिए। अब मेरी तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि माता-पिता तथा भैय्या पूरी तरह से स्वस्थ हो जाएँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उनसे मिलने की बड़ी तमन्ना है। देखते हैं कैसे कोई रास्ता निकलता है। राजेश से लगभग घंटे भर तक बात होने के ठीक तीसरे दिन सुबह सात बजे के आसपास मेरा सेलफोन बजा। देहरादून से रजनी भाभी थीं। राजेश रंजन की पत्नी। "भाई साहब, मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ। यह आपके पुराने मित्र हैं, इसलिए सुबह-सुबह आपको अपनी चिन्ता और पीड़ा से अवगत करा रही हूँ। इन दिनों यह बहुत परेशान रहते हैं। ऐसी चिन्ता और घबराहट मैंने इनमें पहले कभी नहीं देखी। न ठीक से खाते-पीते हैं और न नींद लेते हैं। आधी रात को उठकर लिखने बैठ जाते हैं। कहते हैं कि मुझे हर हाल में अपना उपन्यास पूरा करना है। मेरे यह कहने पर कि ऐसी भी जल्दी क्या है, तो कहते हैं कि रजनी मेरे इस अधूरे उपन्यास के पात्र मुझे सोने नहीं देते। नींद लेने की कोशिश में होता हूँ तो यह मुझे उठ खड़ा होने को मजबूर कर देते हैं। मैंने पहले भी कई कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। फिर जिन्दगी का भी क्या भरोसा। कब ऊपर वाले का बुलावा आ जाए और मेरी किताब अधूरी रह जाए। दिन में जब-तब दोस्तों को फोन लगाते रहते हैं। कोई दोस्त जब फोन नहीं उठाता तो उदास और बेचैन हो जाते हैं। आप ही इन्हें समझा सकते हैं। मैं तो हार गई हूँ।' बोलते-बोलते रजनी भाभी चुप हो गईं। मैं समझ गया कि रो रही हैं।

दो कहानी संग्रह, तीन उपन्यास और एक व्यंग्य संग्रह के प्रकाशन के साथ-साथ निष्पक्ष और निर्भीक पत्रकारिता करने में यकीन रखने वाले राजेश रंजन की तड़प को मेरे साथ-साथ रजनी भाभी भी अच्छी तरह से समझती रही हैं। लगभग सात वर्ष पूर्व जब अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के खात्मे तथा लोकपाल बिल पास करवाने के लिए देश की राजधानी दिल्ली के रामलीला मैदान में आंदोलन-अनशन की मशाल जलायी थी तब यह बेचैन लेखक, पत्रकार रातों-रात सबकुछ छोड़कर राजधानी भाग खड़ा हुआ था। तब इसने बार-बार लिखा और कहा था कि हिन्दुस्तान में काफी वर्षों के बाद किसी निहायत ही ईमानदार, भरोसे के काबिल समाज सेवक ने नयी क्रांति का बिगुल फूँका है। उसकी तपस्या तभी पूरी तरह से रंग लाएगी, जब हर सजग भारतीय उसके साथ खड़ा होगा। 'मैं अन्ना' की टोपी पहनकर राजेश तब तक रामलीला मैदान में अन्ना हजारे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर डटा रहा था, जब तक लोकपाल बिल पर सरकारी सहमति नहीं मिली। राजेश अपने शहर देहरादून लौट आया था। सरकार भी बदल गयी थी, लेकिन वो दिन पूरी तरह से नहीं आए, जिनके लिए अन्ना हजारे ने आंदोलन-सत्याग्रह किया था। लोग उसका मजाक उड़ाते। व्यंग्य बाण चलाने वाली मित्रमंडली के सवालों के जवाब में

आशावादी राजेश यही कहता कि दोस्तो, अभी सबकुछ खत्म नहीं हुआ है।

जब मुझे उसके गुजर जाने की खबर मिली तो ऐसा लगा कि किसी ने मेरे दिल और दिमाग को निचोड़कर समंदर में फेंक दिया है। मैं लाख हाथ-पैर मारने के बावजूद भी बाहर नहीं निकल पा रहा हूँ। यह कोविड-19 और कितनों की जान लेगा? जब से कोरोना ने विकराल रूप अख्तियार किया है, अपनों को खोने की चिंता दबोचे रहती है। सुबह का अखबार हाथ में लेते ही सबसे पहले नज़रें उस पन्ने पर टिक जाती हैं, जिस पर तस्वीर के साथ मृतकों की जानकारी दी गयी होती है। कोरोना की चपेट में आकर मौत के मुँह में समाने वालों की तादाद बढ़ती ही चली जा रही है। पहले अखबार में 'निधन वार्ता' के लिए छोटी-सी जगह निर्धारित थी, जिसमें प्रतिदिन अधिक से अधिक बारह-पंद्रह की मौत तथा अंत्येष्टि की जानकारी छपी होती थी, लेकिन अब तो पूरा पेज भी कम पड़ता नज़र आता है।

चार सितंबर 2020 को रजनी भाभी ने कोरोना की चपेट में आने के बाद हुए हार्ट अटैक से हुई राजेश की मौत की खबर दी। राजेश सोशल मीडिया से दूर रहता था। लिखने-पढ़ने, दोस्ती करने तथा उसे दिल से निभाने के जुनून में मस्त रहने वाले इस लेखक-पत्रकार की असामयिक मौत की दोस्तों को भी खबर नहीं लगी। अकेली पड़ चुकी रजनी भाभी ने हर दोस्त को उसकी मौत की जानकारी दी। राजेश को जितनी चिंता अपने मित्रों की थी, उतनी या उससे कम चिंता फिक्र यदि दोस्तों ने की होती, समय-समय पर उसका हालचाल जाना होता, तो वह इस कदर अकेला न पड़ा होता। उसका मनोबल बना रहता। मौत भी उसे इतनी आसानी से नहीं दबोच पाती। जब भाभी ने उसके गुजर जाने के बारे में बताया तो मेरे मन में यह विचार आया कि उनसे पूछूं कि राजेश ने अपनी अधूरी किताब पूरी की या नहीं। फिर यह सोचकर रह गया कि जब वह ही नहीं रहा तो किताब का क्या। कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के अत्यंत सजग और अनुभवी शोधकर्ताओं ने अपने काफी सघन अध्ययन के बाद यह दावा किया है कि दोस्तों के साथ नियमित की गयी बातचीत और गपशप तनाव घटाने का सर्वोत्तम जरिया है। बढ़ती उम्र के साथ पाँच-सात सकारात्मक सोच वाले दोस्तों का साथ तनाव, बेचैनी, उदासी चिड़चिड़ेपन, हृदयरोग तथा स्ट्रोक के खतरे को पांच गुना कम कर देता है। गुमसुम रहने वाला इंसान चहकने लगता है। उसके चेहरे पर ताजगी तथा खुशी की चमक आ जाती है।

5 सितंबर की दोपहर कवि, गज़लकार, मित्र सुशील साहिल की फेसबुक पर दिखी इस पोस्ट ने फिर रूला दिया : "आज मैंने अपना जीवन साथी खो दिया।" इन चंद शब्दों ने भावुक शायर पर बिजली की तरह गिरे गम के पहाड़ की वजह से नितांत अकेले पड़ जाने की अथाह पीड़ा से रूबरू कराने के साथ गमगीन कर दिया। कोविड-19 ने बड़ी बेदर्दी से जिनके अपनों को छीना, इसके कहर के दौरान नितांत अकेले पड़ गए, जिनके अपनों की असामयिक मौत हो गई, उन्हें हौसला और सांत्वना देने वालों की कमी को काफी हद तक सोशल मीडिया के विशेष प्लेटफार्म फेसबुक ने पूरा करने में जो भूमिका निभायी, वह अकल्पनीय थी। कुछ लेखक, संपादक पत्रकार, व्यापारी एवं विभिन्न पेशे से जुड़े जागरूक लोग ऐसे हैं, जो सोशल मीडिया पर काफी एक्टिव रहकर अपने आभासी मित्रों के मार्गदर्शन और उत्साहवर्धन में लगे रहते हैं। कोविड-19 की जब ऐसे कुछ प्रतिष्ठित चेहरों पर एकाएक बिजली गिरी और उन्हें अपने स्वजनों को खोना पड़ा तो वे बेहद हताश, निराश और विचलित हो गए। उनके लिए गम के अथाह सागर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। ऐसे में सच्ची मित्रता निभायी सोशल मीडिया के जाने-अनजाने मित्रों ने। जो कल तक उन्हें दु:ख और संकट की घड़ी का डटकर मुकाबला करने की सीख देते थे, उन्हें टूटता बिखरता देख जाने-अनजाने मित्रों की नींद उड़ गयी। उन्होंने बार-बार उन्हें याद दिलाया कि देश और समाज के लिए वे कितने उपयोगी तथा मूल्यवान हैं। जो दूसरों के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं उनका घबराना और डगमगाना उन्हें आहत कर रहा है। हर कोई चाहता है कि वे अपने उसी साहस के साथ खड़े रहें, जिसके लिए वे जाने जाते हैं। कोई भी नहीं चाहता कि उनकी किताब अधूरी रहे। सभी की उसको पढ़ने की दिली तमन्ना है।

❖

प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार एवं संपादक
कार्यालय राष्ट्र पत्रिका, टेलीफोन एक्सचेंज चौक, सीए रोड
नागपुर (महाराष्ट्र) मोबाइल : 9325378457

दो रंग की गोटियाँ

— सुमन बाजपेयी

तकनीक ने दुनिया को विस्तृत भी किया है और समेटा भी है। घर बैठे-बैठे किसी भी कोने में रह रहे इंसान से बात कर लो, वर्क फ्रॉम होम का कंसेप्ट इसी वजह से तो लोकप्रिय हुआ है। बेशक रिश्तों पर तकनीकी तार ज्यादा कस गए हैं, पर फायदा भी हुआ है, क्योंकि एक्सपोजर मिलने की वजह से इंसान का ग्रोथ लेवल बढ़ा है और तमाम तरह से प्रगति भी हुई है। उसे मोबाइल, लैपटॉप, या अन्य किसी गैजेट के ड्रांइगरूम से लेकर बेडरूम, किचन, बालकनी, वॉशरूम तक, अपनी पैठ बनाने को लेकर कोई गुरेज नहीं है। वह कोई शिकायत नहीं कर रही है। जिस समय जैसे जिंदगी जीने का तरीका निर्धारित हो, वह जी लेती है। बहुत आसानी से एडजस्ट भी कर लेती है और चीजों को समझ भी लेती है। एकदम शांत बनी रहती है चाहे भीतर कितना ही बड़ा चक्रवात क्यों न उठ रहा हो। लड़ना-झगड़ना, बहस, बात-बात पर गाली देना या शराब पीना उसे पसंद नहीं है।

आजकल इंडोर गेम्स कौन खेलता है, सब बीते जमाने की बाते हैं। बीते जमाने से मेरा मतलब है कोई तीन-चार दशक पहले की, जब इंटरनेट ने हमारी दुनिया में कदम नहीं रखा था, जब एक्सपोजर या मनोरंजन के नाम पर दूरदर्शन का एकमात्र चैनल था और बहुत ही भक्ति भाव से चित्रहार और रविवार को आने वाली फिल्म को टकटकी बाँधे इस तरह देखा जाता था कि एक भी सीन नहीं छूटे। टीवी भी किसी-किसी घर में होता था और उस दिन वह घर आस-पड़ोस के लोगों से भर जाता था। बच्चे, बूढ़े, किशोर, हर उम्र के लोग बिना संकोच के टीवी पर फिल्म देखना जैसे अपना अधिकार ही समझा करते थे। उन दिनों गर्मियों की छुट्टियों में लूडो, कैरम बोर्ड, चाइनीज चौकर और न जाने गेम्स बच्चों से लेकर उनके मम्मी-पापा, दादा-दादी, यानी घर के हर सदस्य के समय बिताने और मन बहलाने का बेहतरीन जरिया हुआ करते थे। कोई खर्च नहीं होता था, सिवाय एक बार इन चीजों को खरीदकर लाने के।

उसके बाद जितनी तेजी से तकनीक की घुसपैठ हुई। उतनी ही तेजी से जिंदगी बदल गई। सोच, सपने, जीने का तरीका और रिश्ते-नाते, सब कुछ तो जैसे बदल गया था। मिट्टी से उठने वाली सोंधी खुशबू मानो ईंट की ठोस और कठोर दीवारों में सिमट कर डिब्बानुमा फ्लैटों में कहीं दफन हो गई थी। एकल परिवारों में दो लोग भी अपनी स्पेस ढूँढने लगे, और महत्वाकांक्षाओं ने ऐसा जाल बुना कि तब से सब लगातार उसमें उलझे होने के बावजूद दूसरे को धक्का देकर आगे निकल जाने की होड़ में ही दौड़ रहे हैं। साथ बैठकर बात करने का वक्त न हो तो साथ बैठकर गिट्टे या शतरंज खेलने का वक्त कहाँ से मिलेगा। विराम नहीं है तब से क्योंकि गूगल से जानकारी एकत्र करनी है, क्योंकि फेसबुक पर कितने लाइक्स आए हैं, ये चेक करना है, क्योंकि व्हाट्सअप पर मैसेज पढ़ने हैं, क्योंकि मोबाइल पर गेम खेलने हैं, क्योंकि लैपटॉप पर से हटने का मतलब है न जाने कितने लाखों रुपयों का नुकसान हो जाएगा।

हालाँकि जब वायरस ने पूरे संसार को अपने आगोश में समेट लिया था और लॉकडाउन का पीरियड किसी लक्ष्मण रेखा से सबके जीवन में खिंच गया था, तब दो साल तक चीजें एकदम बदल गई थीं। प्रकृति के खिलाफ लड़ने की किसी की हिम्मत नहीं थी, उनकी भी नहीं जो बेतहाशा किसी मरीचिका के पीछे भाग रहे थे। उन्हीं दिनों जब सबको घर में कैद होकर रहना पड़ा तो अचानक इंडोर गेम्स की मांग बढ़ गई थी। घर में लूडो, कैरम, शतरंज, व्यापार, तंबोला यहाँ तक की ताश भी खेले जाने लगे थे। कितने सारे

व्हाट्सप ग्रुप बन गए थे, केवल लूडो ही खेलने के लिए। यहाँ तक कि जूम पर भी तंबोला खेला जाने लगा था। वह तो एक अलग ही समय था। 2020 का साल बीत चुका है, बेशक उससे जुड़ी भयावह यादें अब भी दिल को डरा जाती हैं। बंदी जीवन क्या होता है, डर-डर कर जीना कैसा होता है, इसका अंदाजा तभी हुआ था।

इंसान की फितरत है जब दुखों से घिरा होता है तो बस उसी के बारे में बात करता है, उसी में जीता है और जैसे ही मुसीबत टल जाती है, समस्या खत्म हो जाती है, वह सब कुछ ऐसे भूल जाता है जैसे बारिश में सब कुछ धुल जाता है। हालाँकि उस समय जिंदगी जीने का ढंग बदल गया था और इंसान की सोच और फितरत भी...लगा था कि अब नए सिरे से शुरुआत होगी, जिसमें फील गुड फैक्टर ज्यादा होगा और छल-कपट कम। इंसानियत ज्यादा होगी और धोखाधड़ी-बेईमानी कम। 2020 को तो हर कोई अपनी जिंदगी से डिलीट कर देना चाहता था और उसके बाद के कुछ साल भी, जो अपने साथ रिसेशन के अलावा कई तरह की अन्य परेशानियाँ भी लाए थे और संघर्षों के पहाड़ लांघते-लांघते कई बार सभी थके थे, पर समय तो बदलना ही था...आखिर बदलाव नियति का नियम जो है...

उस भयानक वायरस को पीछे छोड़ जब आगे बढ़े तो तकनीक पहले से भी कहीं अधिक हमारे जीवन का हिस्सा बन चुकी थी। तभी इंटरनेट और मोबाइल खेलों की दुनिया को बदल ही चुका था। तकनीक के और विकास करने के बाद, मोबाइल या लैपटॉप पर ही खेल खेलने से किसी को फुर्सत नहीं मिलती। सोशल मीडिया और इंटरनेट की दुनिया सब पर हावी है। बोर्ड गेम्स के बारे में तो जैसे नई पीढ़ी के बच्चे जानते ही नहीं हैं। लूडो, कैरम, शतरंज, साँप-सीढ़ी, तंबोला, ट्रेड...न जाने कितने गेम्स खेला करते थे और अब देखो पबजी और कैंडी क्रश और न जाने कितने उटपटांग नामों वाले वीडियो गेम मोबाइल पर डाउनलोड कर रात-दिन उन्हीं में आँखें गड़ाए रहते हैं। अंगुलियाँ भी नहीं थकतीं उनकी। बच्चों का नाम लेना ऐसी बातों में आसान होता है और उन पर टीका-टिप्पणी करना भी। पर वयस्क कौन से पीछे हैं। बच्चों से कम नहीं है उनकी दीवानगी गेम्स को लेकर। खासकर पुरुष जो वैसे ही खेल खेलने में माहिर होते हैं, और हर दिन कुछ नया करने की चाह उन्हें बेचैन किए रहती है, इन दिनों फोन और लैपटॉप से ज्यादा ही चिपके रहते हैं। प्ले स्टेशन पर बच्चे ही नहीं बड़े भी खेलते हैं। फिर नेटफलिक्स और हॉट स्टार पर आने वाली वेब सीरीज ने रिश्तों के मायने बदलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। अपराध, शराब, नशीली दवाइयों का सेवन, बदला, हत्या, किसी के साथ भी सेक्स कर लो, शादी जैसी चीज के कोई मायने नहीं हैं, और बात करते हुए माँ-बहन की गालियाँ ऐसी निकलती हैं किरदारों के मुँह से कि मानो ऐसी बोलचाल की भाषा आम है। जिस तरह से उसमें ये सब दिखाया जाता है, उसे देख सब कुछ आसान लगता है जैसे ये सब चीजें रोटी, कपड़ा और मकान की तरह हैं।

तकनीक ने दुनिया को विस्तृत भी किया है और समेटा भी है। घर बैठे-बैठे किसी भी कोने में रह रहे इंसान से बात कर लो, वर्क फ्रॉम होम का कंसेप्ट इसी वजह से तो लोकप्रिय हुआ है। बेशक रिश्तों पर तकनीकी तार ज्यादा कस गए हैं, पर फायदा भी हुआ है, क्योंकि एक्सपोजर मिलने की वजह से इंसान का ग्रोथ लेवल बढ़ा है और तमाम तरह से प्रगति भी हुई है। उसे मोबाइल, लैपटॉप, या अन्य किसी गैजेट के ड्रांइगरूम से लेकर बेडरूम, किचन, बालकनी, वॉशरूम तक, अपनी पैठ बनाने को लेकर कोई गुरेज नहीं है। वह कोई शिकायत नहीं कर रही है। जिस समय जैसे जिंदगी जीने का तरीका निर्धारित हो, वह जी लेती है। बहुत आसानी से एडजस्ट भी कर लेती है और चीजों को समझ भी लेती है। एकदम शांत बनी रहती है चाहे भीतर कितना ही बड़ा चक्रवात क्यों न उठ रहा हो। लड़ना-झगड़ना, बहस, बात-बात पर गाली देना या शराब पीना उसे पसंद नहीं है। वह आधुनिक है, पर विचारों से, सोच से—न कि जाम टकराकर, बेसुध होकर या देह प्रदर्शन करते हुए।

बहुत ज्यादा तो वह भी नहीं बोलती, पर घर पर जितना समय वह और रितेश साथ होते हैं, वह चाहती है कि वे आपस में बात करें। कुछ भी, चाहे बेफिजूल की क्यों न हों। कई बार सोचती है कि अच्छा ही हुआ कि उसकी शादी लॉकडाउन के जमाने में नहीं हुई, वरना सारा दिन चुप रहकर काटना कितना कठिन हो जाता। रितेश कम बोलता है, यह बात उसे शादी से पहले पता थी, लेकिन शब्दों की इतनी कंजूसी करता है, यह बात तो अब पता चली है और शादी के दो साल होने पर भी वह उसकी इस आदत को बदल नहीं पाई है। शायद यह सच है कि कोई किसी के लिए अपनी आदतें नहीं बदल सकता है और जो ऐसा करने का दावा करता है, वह मात्र छल रहा होता है। क्योंकि आदतों की नींव बचपन में पड़ी होती है और बड़े होने तक वह इतनी पुख्ता हो चुकी होती है कि कितनी भी हथौड़ियाँ मार लो, मशीनें लगाकर उसे खोदकर बाहर लाने की कोशिश करो, वह टस से मस नहीं होती है।

लेकिन कम बोलने का मतलब यह नहीं है कि वह बोर इंसान है या लाइफ को उमंग के साथ जीना नहीं जानता...एक्सप्रेसिव भी है, बस यूँ ही कुछ बोलना उसे एनर्जी वेस्ट करना लगता है। जरूरी है तो बोलेगा, फालतू बकवास करना उसे पसंद नहीं है। हालाँकि फोन पर वह काफी देर तक बातों का सिलसिला कायम रखता है इन दिनों...पिछले कुछ महीनों से तो वह ऐसा ही कुछ महसूस कर रही है। एक-दो बार पूछा तो हँसकर बोला, पुराना दोस्त है, बातूनी किस्म का...कॉलेज टाइम का...बोलना उसका शौक है। प्यारा इंसान है, इन दिनों थोड़ा डिप्रेस्ड रहता है, इसलिए उससे बात कर लेता हूँ। इसमें खटकने जैसी या सवाल पूछने की कोई गुंजाइश नहीं दिखी थी उसे। पुरानी दोस्ती है...सब चलता है।

''कभी मिलवाओ न उससे,'' एक दिन उसने कहा था तो रितेश किचन में ही आ गया था। पीछे से उसकी कमर में हाथ डालकर गर्दन पर अपने होंठ रख दिए थे। सिहर गई थी वह। ''ये रिस्क मैं नहीं ले सकता, पूरा फ्लर्ट है। तुम पर डोरे डालने लगा तो मैं कहाँ जाऊँगा। पेरेंट्स की एक हादसे में मौत हो चुकी है, यहां अकेला ही रहता है किराए के घर में। डिप्रेस्ड हो जाता है तो मुझे फोन कर लेता है। अच्छी नौकरी करता है, पर यू नो, आप चाहे कितने ही व्यस्त क्यों न हों, कभी-कभी अकेलापन हावी हो ही जाता है। इसीलिए चला भी जाता हूँ कभी-कभी उसके घर ड्रिंक के लिए।''

''तो शादी क्यों नहीं कर लेता?''

''शादी इज नॉट हिज कप ऑफ टी। फ्लर्ट कर सकता है बस।'' बात तब वहीं खत्म हो गई थी। उसके बाद उसने कभी इस बारे में बात नहीं की। रितेश को वैसे भी किसी बात को खींचना पसंद नहीं, न ही उसे बातों को खरोंचना।

''कुछ खास बात करनी है क्या?'' रितेश का यह पूछना उसे कई बार चिढ़ा देता है, पर वह हँस कर टाल जाती है। रितेश जब घर पर होता है तो मोबाइल या लैपटॉप पर आँखें गड़ाए बैठा रहता है। उसकी कंपनी का हेड ऑफिस कैलीफोर्निया में है, इसलिए रात को ही कांफ्रेस कॉल पर काम चलता है, जब वहाँ सुबह होती है। व्टासअप मैसेज तो रुकते ही नहीं हैं उसके। अमेरिकी कल्चर उसके अंदर काफी पैठ जमा चुका है, क्योंकि साल में तीन बार तो कम से कम वह एक-डेढ़ महीने के लिए कैलीफोर्निया जाता ही है।

स्मार्ट, गोरा रंग और लंबा कद...पर्सनाल्टी भी खूब पाई है रितेश ने। काली भौंहें तक किसी सधे हुए हाथों का कमाल लगती हैं, मानो बहुत ध्यान से उन्हें वहां अंकित किया गया हो। जब से फ्रेंच कट दाढ़ी रखने लगा है, और आकर्षक लगने लगा है। देखते ही उस पर प्यार उमड़ आए, ऐसी भावना मन को आलोड़ित करने लगती है। वह तो उसकी बीवी है, प्यार पर अधिकार है, इसलिए जब चाहे उसके गोरे गालों पर चुंबन जड़ देती है। गोरी वह भी है और खूबसूरत भी, योगा करती है इसलिए चर्बी शरीर को छू भी नहीं पाती है। उसकी तारीफ करते रितेश भी कभी नहीं थकता। किसी से मिलवाना हो तो यही कहता है, मीट माई ब्यूटीफल एंड सुपर इंटैलीजेंट वाइफ। औरतों का सुंदर होना कोई विशेष बात नहीं है, प्रकृति-प्रदत्त उपहार की स्वामिनी होती हैं, पर विरले ही ऐसे पुरुष होते हैं जो स्मार्ट भी हों, सुंदर भी और आकर्षित करने वाले और साथ ही दिमाग भी रखते हों। रितेश उसका पति है, इसलिए कोई पक्षपात करते हुए वह ऐसा नहीं कह रही है, पुरुषों के हिसाब से वाकई वह सुदर्शन है और अपने काम में माहिर भी।

उनके रिश्ते में ऊब की कोई जगह नहीं है। सामान्य ही है सब, बिना किसी बोझिलता के। उसके साथ प्यार जताने में रितेश कोई कमी नहीं रखता। उनकी सेक्स लाइफ भी एकदम बढ़िया है। टोटल सरेंडर वाली स्थिति है। दोनों ही एक-दूसरे का साथ चाहते हैं। किसी तरह की वर्जनाएँ जो नहीं हैं, सेक्स को लेकर। नीड है, तो उसकी पूर्ति भी आवश्यक है, वह संकोच नहीं करती। खुद ही पहल कर लेती है, क्योंकि रितेश की विदेश यात्राएँ और देश में लगने वाले ट्रिप...बेशक वे दो-तीन दिन के लिए हों...वह उसके सान्निध्य का एक भी मौका नहीं छोड़ना चाहती है, उसका स्पर्श पाने के लिए हमेशा इसीलिए लालायित रहती है वह। कौन जाने सुबह ही फोन आ जाए और बैग उठाए वह निकल जाए। एक ट्रैवल बैग भी हमेशा तैयार रहता है उसका।

कुछ बात करे न करे, ''आई लव यू,'' वह दिन में कई बार उससे कहता है। उसे जब-तब चूमता रहता है। अच्छा लगता है उसे। पर यह खलता है कि वह उससे बात करने के बजाय, फोन पर ज्यादा वक्त गुजारता है। न जाने किन-किन से बात करता रहता है। वह यह नहीं कह सकती कि वह उसे निगलेक्ट करता है या उसकी परवाह नहीं है उसे। एक अच्छे पति और उससे कहीं अधिक दोस्त की भूमिका में वह पूरी तरह से खरा उतरता है। वह भी कोई टिपिकल हाउसवाइफ नहीं है। इवेंट मैनेजमेंट कंपनी

चलाती है। शहर से बाहर भी जाना पड़ता है। डिमांडिग तो बिलकुल नहीं है, क्योंकि प्रोफेशनल जीवन की जिम्मेदारियों को समझती है।

शादी से पहले डेटिंग पीरियड में ही उन्होंने तय कर लिया था कि वे बच्चा नहीं करेंगे। कम से कम पाँच-छह साल तो नहीं। उसके बाद मातृत्व-पितृत्व भाव मन में जागा तो सोचेंगे। अभी तो दो साल ही हुए हैं उनके विवाह को और अपने-अपने प्रोफेशन में दोनों कमेटिड हैं। बच्चा उनकी जीवन की प्राथमिकता बन पाएगा, ऐसा उसे नहीं लगता। मदर इंस्टिंक्ट जिसके बारे में वह अपनी उन फ्रेंड्स से सुनती है जो माँ बन चुकी हैं, उसकी अंदर वैसी कोई चीज नहीं है। छोटे बच्चे अच्छे लगते हैं, पर उन्हें छाती से लगाकर चूम ले, ऐसा कभी महसूस नहीं हुआ। उसे इस बात को लेकर कोई ग्लानि भी नहीं है, न ही रितेश की इस बारे में कोई प्लानिंग है। वे मानते हैं वक्त के साथ चीजें जिस तरह ठीक लगेंगी, उसके हिसाब से सोच लेंगे, पर फिलहाल कोई इरादा नहीं है। वैसे भी उसे लगता है कि बच्चा तभी जीवन में आना चाहिए जब पूरी तरह से, मन से, उसके आने के लिए आप तैयार हों, ताकि उसकी परवरिश करते समय कोई कटौती न हो, परफेक्ट तरीके से उसे दुनिया में जीने लायक बनाना होगा, तभी तो उसे भी अपना आना सार्थक लगेगा। वरना यूँ ही पल जाते हैं, वाला एटीट्यूड उसे बहुत खलता है। समय अब पहले जैसा नहीं रहा है, इसलिए हर चीज के बारे में सोचना जरूरी हो गया है।

खैर वह कम बोलता है, तो कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं है। इस बात का इश्यू बनाए, इस तरह की नहीं है। बस उसके साथ समय बिताना चाहती है, इस बात के लिए जरूर कभी-कभी उसे ताना-सा मार देती है। उस दिन बाजार में संगमरमर का बहुत ही सुंदर लूडो दिखा तो वह खरीद लाई थी। किनारों पर हरे और सुनहरे रंग से नक्काशी की हुई थी। चारों रंग के खाने एकदम चमक रहे थे और गोटियाँ पर भी एक पत्ती बनी हुई थी। पासे के बिंदू सुनहरे रंग के थे, इसलिए जब फेंको तो संगमरमर के लूडो पर रोशनी से जगमगाती थी। शतरंज तो देखी थी उसने इससे पहले संगमरमर की, पर लूडो नहीं। रितेश उसके साथ लूडो खेलने के वक्त तो नहीं निकाल पाया पर उसे देख खुश अवश्य हुआ। ''वाह खूब च्वाइस है तुम्हारी। कहाँ से लाई हो?'' उसने जब पूछा था तो नव्या ने दुकान का कार्ड ही उसकी ओर बढ़ा दिया था।

उसकी फ्रेंड्स उसे छेड़ने का कोई मौका नहीं छोड़ती हैं। चार की चौकड़ी है उनकी। दोस्ती इतनी गहरी है कि कोई भी एक-दूसरे की बात का बुरा नहीं मानता है और साथ वक्त गुजारने का समय वे निकाल ही लेती हैं। लेकिन नव्या चूँकि पति पर लगाम कसने पर विश्वास नहीं रखती, इसलिए सबसे ज्यादा उसे ही समझाया या कहें छेड़ा जाता है।

''यार, नव्या, माना कि तू टिपीकल वाइफ के खाके में खुद को नहीं रखना चाहती है, पर थोड़ी बहुत पति पर नजर रखना जरूरी होता है। लूडो का खेल खेलने में ये पति नाम का प्राणी बहुत कुशल होता है। रंग-रंग की गोटियाँ अच्छी लगती हैं इन्हें। जस्ट फॉर द सेक ऑफ नॉवल्टी। कुछ दिन दूसरे रंग की गोटी के साथ खेल लिया तो वह कोई अपराध नहीं माना जाता है। पहले रंग की गोटी के साथ तो लूडो वह लगातार खेलता ही है। वह तो उसकी ही है और खेल में जीत भी उसी की होगी, इसका उसे हमेशा भरोसा रहता है। यू नो हुयूमन नेचर, खासकर पुरुषों का...हर चीज को ग्रांटेड लेने की आदत जैसी उन्हें घुट्टी में घोलकर उनके अंदर डाली जाती है। सो जस्ट कीप ए वॉच,'' रीमा तीन गिलास वाइन के खाली कर चुकी थी और अपने भारी बदन में फँसे कॉटन के स्लीवलेस टॉप और टाइट जींस के बावजूद यह जताने की कोशिश कर रही थी कि वह कंफर्टेबल है। हालाँकि अपने वजन को लेकर वह हमेशा कांशस रहती थी। स्वाभाविक भी है।

''चढ़ गई है तुझे, कुछ भी बोलती जा रही है,'' नव्या ने अपना वाइन का गिलास होंठों से लगाते हुए कहा। पार्टी चाहे कितनी देर चले, वह एक गिलास वाइन से ज्यादा कभी नहीं पीती। ''रिश्ता कोई लूडो का खेल नहीं है, जो जब चाहे गोटियाँ बदल लो। रितेश की गोटी मैं हूँ और मैं ही रहूँगी।'' नव्या ने पनीर टिक्का जबरन रीमा के मुँह में ठूँसते हुए कहा। ''खा ले, वरना तुझे घर तक पहुँचाना मुश्किल हो जाएगा और मैं तुझे आज अपने घर पर रुकने के लिए भी नहीं कह सकती, क्योंकि एक महीने बाद रितेश आज कैलीफोर्निया से वापस लौट रहा है।''

''दैट मींस फुल नाइट सेक्स...'' मान्या ने आँख मारते हुए कहा। छरहरी काया वाली मान्या के शरीर का हर अंग हमेशा फड़कता महसूस होता था। सेक्स बम की उपाधि से उसे नवाजा जा चुका था। उसकी मैरून रंग की शिफॉन की साड़ी का पल्लू जिस पर हलके पीले रंग के छोटे-छोटे फूल छटा बिखेर रहे थे, लापरवाह सा फर्श पर लहरा रहा था। साड़ी में तो ज्यादा ही सेक्सी लगती है, फिर उस पर से ढीला जूड़ा गर्दन

पर झूलता हुआ, उसके सौंदर्य का और यशोगान-सा करता प्रतीत होता है।

''शटअप, यू डर्टी माइंड, नव्या इतनी भी कामातुर नहीं है,'' मंजरी ने चिप्स को बहुत अंदाज से कुतरा और होंठों और हाथों को तुरंत टिश्यू पेपर से पोंछा। सफाई को लेकर उसका पागलपन सब जानते हैं और मजाक भी उड़ाते हैं, पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने पति, बच्चों और घर को लेकर बहुत पजेसिव है और इसीलिए शादी होते ही अच्छी खासी नौकरी छोड़ दी थी, जिसका उसे कोई पछतावा तक नहीं था।

''पर रीमा चाहे कितनी ही टल्ली क्यों न हो गई हो, बात में दम है उसकी। मैं तो अपने पति के सारे फोन कॉल्स पर नजर रखती हूँ। उसके कपड़ों से कोई और गंध तो नहीं आ रही, चेहरे या गर्दन पर कोई निशान तो नहीं, बारीकी से देखती हूँ। सावधानी हटी, दुर्घटना घटी। पता भी नहीं चलेगा, कब लूडो की गोटियाँ बदल गईं। कहा जाता है कि लूडो को अगर केवल एक खेल समझा जाए तो यह थोड़ी-सी नासमझी होगी, क्योंकि लूडो का खेल खेलते समय दिमाग भी चलाना पड़ता है और यह भी ध्यान रखता होता है कि हमारी चाल के बाद दूसरे खिलाड़ी की चाल क्या हो सकती है। सो बी केयरफुल। ज्यादा स्पेस देने के चक्कर में इतनी जगह मत बना देना कि दूसरी गोटी वहाँ फिट हो जाए,'' मंजरी ने वाइन का एक घूँट भरा और फिर होंठों को पोंछा।

''थैंक यू फॉर यूअर एडवाइस। तुम लोग मुझे शक्की बीवी बनाने पर क्यों तुली हो। सब ठीक है। अब तुम लोग जाओ। रितेश का मैसेज आया है, उसकी फ्लाइट लैंड कर गई है।''

''चले जाते हैं, पर आखिरी बाजी हो जाए लूडो की। हाय रे तेरा संगमरमर का लूडो।'' मान्या ने जल्दी से वाइन एक ही साँस में खत्म कर दी और गुनगुनाते हुए बोली। कम से कम वे दस गेम खेल चुकी थीं, पर हर बार जीत नव्या और मंजरी की टीम की ही हो रही थी।

इस बार भी वही जीतीं।

''इट्स योअर लकी डे टुडे,'' रीमा उठती हुई बोली। इस समय अपना ही भार उससे सँभाला नहीं जा रहा था। अच्छी तरह से टल्ली हो चुकी थी। वाइन के साथ विहस्की भी चाहिए होती है उसे हमेशा।

सुबह से मोबाइल फोन बज रहा था, पर रितेश का फोन वह नहीं उठाती और वह अभी तक सो रहा था। वैसे भी इतवार था, इसलिए वह अपनी नींद पूरी करना चाहता था और जैट लैग भी उतारना चाहता था। रात को ही कहकर सोया था कि दोपहर से पहले उसे मत उठाना। लेकिन जब दो-तीन बार फिर फोन बजा तो उसने नाम पढ़ा। हिमेश नाम फ्लैश हो रहा था। याद आया रितेश ने यही तो नाम बताया था अपने पुराने दोस्त का। बजने दो...रिंगर बंद कर दिया उसने। कम से कम अब शोर तो नहीं होगा।

कुछ देर बाद जब फोन फिर वाइब्रेट हुआ तो उसने सोचा कि बता देती है कि रितेश सो रहा है। हद होती है, जब कोई फोन नहीं उठा रहा तो बार-बार क्यों मिलाना...हो सकता है कोई इमरजेंसी हो...वह ड्राइंगरूम में आ गई।

''हैलो, रितेश...कम सून। आई नो कल ही वापस आए हो... पर आई नीड टू टैल यू समथिंग...,'' पल भर को आवाज सुन नव्या हैरान हो गई। कितनी पतली आवाज है, बिलकुल लड़कियों जैसी...फिर एहसास हुआ कि दूसरी ओर एक लड़की ही है।

''यह हिमेश का फोन है न...कुछ हुआ है क्या? वह ठीक तो है न?'' नव्या अभी भी कुछ समझ नहीं पा रही थी। चिंतित हो गई थी कि कहीं कुछ हो न गया हो। रितेश को जगाने के लिए वह बेडरूम की ओर बढ़ी ही थी कि दूसरी ओर से आवाज आई, ''हिमेश नहीं, हिमा बोल रही हूँ। आपको कुछ गलतफहमी हो रही है। यह नंबर तो रितेश का ही है...फिर आप कौन?'' हैरानी और संशय के बादलों का एक टुकड़ा फोन को लाँघकर नव्या के मन के आकाश पर तैरने लगा। लेकिन इतनी जल्दी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना या किसी को जज करना उसकी फितरत नहीं है। लेकिन काले बादल के उस टुकड़े को उड़ाना भी जरूरी था।

''अपना पता बता सकती हो, मिलकर बताती हूँ मैं कौन हूँ,'' न चाहते हुए भी उसके मुँह से निकला। जिज्ञासा, कौतूहल या भीतर अचानक चलने लगे बवंडर को शांत करना चाहती थी...मिलना ठीक होगा या नहीं, इस बात के लिए स्वयं को उसने कुछ ऐसा ही सोचकर समझाया। रितेश तो अभी जल्दी उठने वाला नहीं है। उसने उसका फोन अपने बैग में डाल लिया।

''मैं नव्या हूँ। तुमने ही फोन किया था न रितेश को?'' नव्या, हिमा के सामने बैठी थी। उसका स्टूडियो अपार्टमेंट बहुत ही करीने से सजा हुआ था। फर्नीचर के नाम पर एक कम ऊँचाई वाली चौकोर लकड़ी की मेज थी। मेज पर लूडो रखा था। नव्या के होंठों पर मुस्कान खेल गई। वैसा ही था हूबहू...रितेश को कार्ड उसने ही तो दिया था। मेज पर जो जगह बची थी, उस पर उसका फोन रखा था। एक तरफ फर्श पर दोनों तरफ गद्दे बिछे

थे। खिड़की वाली तरफ दीवार से कुशन सटे थे, ताकि बैठने के बाद पीठ टिकाई जा सके। खिड़की के पारदर्शी काँचों के परे जो एक स्लैब सी निकली हुई थी, उस पर दो गमलों में मनीप्लांट लहरा था। बड़े-बड़े पत्तों वाला। कमरे की दीवार पर एक पेंटिंग लगी हुई थी...एब्सट्रैक्ट थी। झूमर बहुत ही सुंदर थे और किचन भी एकदम सारी सुविधाओं से लैस। सामान कम हो तो भी घर सुरुचिपूर्ण लग सकता है...उसने सोचा।

हिमा ने उसके सवाल पर अपनी आँखें उसके चेहरे पर टिका दीं। बोली कुछ नहीं, बस हाँ में सिर हिलाया। जब आश्चर्य और ढेर सारे सवाल मन में उमड़-घुमड़ रहे हों तो शब्द चुक से जाते हैं जैसे। नव्या फिर से उसे गौर से देखने लगी। उफ...आज न जाने क्यों जज करने का मन हो रहा था, मानो जो लड़की सामने बैठी है, उसकी चीड़-फाड़ करना चाहती हो। शरीर का आकार, लंबाई और अंगों का सौष्ठव देख पता लग रहा था कि रोज जिम जाती है। ढीली टी-शर्ट और शॉर्ट्स पहनी हुई थी। गोरी टाँगों की चिकनाई फर्श की टाइलों की तरह चमक रही थी। छोटे बाल, लकीर की तरह भौंहें और पतले होंठ...नीचे चिबुक के पास एक छोटा-सा तिल था। सामान्य जैसी लड़की होती है, वैसी ही थी...कुछ खास था तो हलका सा यूँ ही मुस्करा पड़ना और तब गालों पर पड़ने वाले गड्ढे। नव्या से अगर उसकी तुलना की जाए तो उसका व्यक्तित्व गौण ही प्रतीत होगा।

''रितेश जब भी आता है, हम लूडो खेलते हैं। उसे बेहद पसंद है लूडो खेलना। वही इसे लाया था।'' नव्या को लूडो की तरफ हैरत से मुस्कुराते वह देख चुकी थी। पर हैरानी की वजह, उसके यहाँ आने की वजह की तरह ही उलझी हुई थी।

सवाल तो उसके पास भी थे अनगिनत...एक अजनबी महिला उसके घर आती है, और उसी से निरंतर सवाल कर रही है। रितेश को दुबारा फोन मिलाने के ख्याल से उसने फोन उठाया तो फोन बज उठा। ''मैंने डायल किया है तुम्हारा नंबर।''

''इस नंबर से तो अकसर रितेश के फोन पर कॉल आती है। लगातार कई बार...तभी मैंने नाम पढ़ा था, किसी नवजोत का नाम फ्लैश करता है...'' शब्द अटक-अटक कर निकल रहे थे। ''उसने बताया कि कोई पुराना दोस्त है, डिप्रेस्ड रहता है, माँ-बाप नहीं हैं, अकेला रहता है पर है फ्लर्ट किस्म का इसलिए मुझसे मिलवाने का रिस्क नहीं ले सकता है। रितेश को बिना बताए ऐसे ही मैंने भी यह नंबर अपने फोन में सेव कर लिया था कि कभी जरूरत ही पड़ जाए...पर आप? नंबर आपने मिलाया है न?'' कौतूहल के न जाने कितने गवाक्ष उसके छोटे से कमरे में खुलते दिखाई दिए...पर रोशनी किसी से भीतर नहीं आ पा रही थी।

''रितेश का फोन साथ लाई हूँ। तुम चाहो तो उसका नंबर मिलाकर देख सकती हो।'' उसने रितेश का फोन निकालकर उसके आगे रख दिया।

फोन पर फ्लैश होते नाम को देख हिमा ने कुशन उठाकर गोदी में रख लिया और अपनी कोहनियाँ उस पर टिका दीं। संभलने के लिए किसी का सहारा ढूंढ रही हो जैसे।

'' मैं नवजोत हूँ, उसकी बीवी और तुम हिमेश हो, उसका पुराना दोस्त...इंटरेस्टिंग...'' नव्या को लगा बादल के टुकड़े को अचानक हवा उड़ाकर ले गई है। जो बादल कुछ बूँदें भी धरती को न दे सके...उनका क्या अस्तित्व...

रास्ते से गुजरते समय उसकी नजर एक दुकान पर गई। 'स्मार्ट शॉपिंग,' इस दुकान से ही वह खरीददारी करती है। संगमरमर का स्टाइलिश लूडो भी तो उसने यहीं से खरीदा था। अनायास ही नव्या के होंठों पर से होते हुए चेहरे पर हलकी से मुस्कान तैर गई। अचानक नव्या को मंजरी की बात याद आ गई। 'पुरुष लूडो की तरह होते हैं। उन्हें गोटियों से खेलना अच्छा लगता है—रंग-बिरंगी अलग-अलग गोटियों से खेलना उनका पसंदीदा शौक होता है। जस्ट फॉर इनोवेशन एंड एक्सपेरिमेंट। वे ये देखना चाहते हैं कि कितने रंग की गोटियाँ जीतने की उनमें काबिलियत है। दे माइट नॉट बी सीरियस मोस्ट ऑफ द टाइम्स, बट फॉर फन सेक, दे ट्राई।'

ठीक ही कहा था मंजरी ने...सोचो तो लूडो, बोर्ड पर खेला जाने वाला एक रणनीति-खेल है जिसे दो, तीन या चार लोग खेलते हैं, पर रितेश तो इतना बड़ा खिलाड़ी निकला कि अकेले ही खेलता रहा और दोनों रंग की गोटियों को लगा कि वह उसे जिता रहा है। वास्तव में जीतने की खुशी तो वह हासिल कर रहा था।

उसे लगा कि जैसे लूडो जैसे इन्डोर गेम्स फिर से चलन में आ गए हैं या शायद तकनीक से उकताए लोग मोबाइल पर अपनी अंगुलियों को विराम देने के लिए मनोरंजन के लिए इसे वापस जिंदगी में लौटा रहे हैं। आखिर गोटियाँ फेंकने और गेम जीतने का मजा ही कुछ अलग होता है।

❖

लेखक, संपादक व अनुवादक
12, एकलव्य विहार, सेक्टर-13, रोहिणी
दिल्ली-110085 मोबाइल : 9810795705

..... *पृष्ठ 26 का शेष* **(एक और घटना का पुनर्जन्म)**

आँख खुलती, वह अपने बेटे को देखे बिना नहीं रह सकता था। वह तामस के लिए कड़ी-से-कड़ी मेहनत करता था ताकि उसकी हर माँग, हर जिद पूरी होती रहे।

पत्नी कभी-कभी उसे समझाती, 'तुम लाड़-प्यार में बिगाड़ रहे हो तामस को।' पर किसान मानता नहीं था, कहता था, 'कि एक ही तो बेटा है अपना, एक ही तो दीपक है यह घर का।'

'तो बाबा जी, बच्चों से प्यार करना अच्छा नहीं होता क्या?' पिंकी ने सादगी से पूछा।

'नहीं बेटा, अच्छा होता है, बहुत अच्छा होता है।' राव ने उत्तर दिया।

'फिर किसान की पत्नी, प्यार करने को रोकती क्यों थी उसे?'

अबोध बालक के प्रश्न पर विक्रमराव चकित होकर रह गए। सोचकर बोले, 'बात यह है बेटा, कोई चीज जब हद से बढ़ जाती है तो वह गुण की जगह अवगुण हो जाती है।'

राजहंस चुप बैठा राव की ओर निहारता रहा।

'फिर क्या हुआ बाबा?' नन्हे पिंकी ने पुनः जिज्ञासा दिखाई। राव ने कहानी का क्रम आगे बढ़ाया।

'हाँ तो बूढ़ा किसान बहुत प्यार करता था, अपने बेटे तामस से। दिन-भर कड़ी मेहनत करता, पर वह अपने पुत्र को कुछ भी कष्ट नहीं देता था। कालचक्र धीरे-धीरे अपनी गति से चलता रहा, चलता रहा, यहाँ तक कि तामस बड़ा हो गया। स्वस्थ, सजीला जवान।'

'जैसे मेरे पापा।' पिंकी ने टोका।

'हाँ-हाँ! बिलकुल तुम्हारे पापा जैसा।' राव ने बच्चे की पीठ थपथपाई।

'तो पिंकी बेटे, तामस जब बड़ा हो गया, तो किसान ने धूमधाम से उसका विवाह रचाया। पूरे गाँव को दावत दी। एक सुंदर-सी बहू घर में आई उसके।'

'जैसी मेरी मम्मी।' पिंकी फिर चहका।

'हाँ-हाँ बिलकुल तुम्हारी मम्मी जैसी।' राव ने खुश होकर पिंकी का वाक्य दोहराया। 'तो बेटे, कई वर्ष बीत गए। एक दिन अचानक गाँव में हैजा फैला। किसान की पत्नी चल बसी। बूढ़े किसान ने उसकी बहुत सेवा की। इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी। पर वह बच नहीं सकी।'

'जैसे मेरी दादी अम्मा।' नन्हे पिंकी ने अपनी याददाश्त पर जोर देते हुए कहा।

'हाँ-हाँ! बिलकुल-बिलकुल।' राव ने हाँ में हाँ मिलाकर बच्चे को संतुष्ट किया।

'आगे चलकर ऐसा हुआ बेटे कि तामस केवल अपनी पत्नी में मगन रहने लगा। वह जब तक घर में रहता पत्नी के आस-पास घूमता रहता। उसे देखे बिना चैन ही नहीं आता था, तामस को।'

'बिलकुल ऐसे ही बाबा, जैसे मेरे पापा को।' बच्चे ने सरल स्वभाव से अपने भाव व्यक्त कर दिए।

राव बच्चे की बात सुनकर अपनी हँसी नहीं रोक सके। उन्होंने बालक की पीठ फिर थपथपाई।

राजहंस बेटे की बात पर थोड़ा चिढ़ गया। डॉटकर बोला, 'गंदी बात नहीं करते पिंकी, कनपकड़ी हो जाएगी नहीं तो।'

'बेटे को सच बोलने से रोको मत राजहंस।' राव ने नर्मी से राजहंस को समझाया।

'फिर क्या हुआ बाबा?' पिंकी ने कहानी की टूटी हुई डोर फिर थामनी चाही।

'हाँ तो फिर यों हुआ बेटे, किसान धीरे-धीरे बहुत बूढ़ा हो गया और बीमार रहने लगा। अब घर में उससे कोई बात करने वाला नहीं था। दिन-भर और रात-भर अकेला पड़ा खाँसता रहता, अपनी खाट पर।'

'कोई मुझ जैसा बेटा नहीं था क्या बाबा जी उसका?' पिंकी ने आश्चर्य से पूछा।

'था मेरे बेटे।' सुबुद्धि नाम था उसका। वही उसके पास खेलता-बतियाता रहता।'

'अब सुनो बेटे।' राव ने बालक के चेहरे पर अपना ठंडा हाथ फेरते हुए कहा, 'किसान जब बहुत दुर्बल हो गया, बहुत ही बूढ़ा और बीमार तो वह तामस और उसकी पत्नी को बोझ लगने लगा। एक दिन क्या हुआ पिंकी बेटे।'

'क्या हुआ बाबा जी।'

तामस से उसकी पत्नी बोली, 'कहाँ जाएगा, यह बुड्ढा। यह तो मरने का नाम ही नहीं लेता जी। तुम इसे छोड़कर या तो मुझे

कहीं ले चलो या इसे किसी और स्थान पर पहुँचा दो। मैं और अधिक सहन नहीं करूँगी इसे।'

'जैसे मम्मी ने कहा था, बाबा जी।' पिंकी फिर बोला।

राजहंस ने डाँटा, 'चुपता है कि नहीं। पागल कहीं का।'

'बच्चे पागल नहीं होते राजहंस। बड़ों से ज्यादा संवेदनशील होते हैं वे। पिंकी को कहानी सुनने दो तुम।

तो बेटे अंत में दोनों ने लंबा विचार-विमर्श कर निर्णय लिया कि दूर जंगल में ले जाकर बुड्ढे को गड्ढा खोदकर दबा दें। किसी को पता भी नहीं चलेगा और उससे जान भी छूट जाएगी।'

'ओ माई गॉड।' बच्चे के मुख से निकला। राव ने बात जारी रखी।

'एक दिन मुँह-अँधेरे तामस उठा। कपड़ों में लपेटकर उसने बूढ़े पिता को बैलगाड़ी पर लाद दिया और फावड़ा साथ लेकर गाड़ी हाँक दी।'

'सुबुद्धि नहीं था वहाँ, बाबा जी!' पिंकी ने पूछा।

'था।' राव ने उत्तर दिया। 'वह भागा-भागा आया। उसने पूछा, 'कहाँ ले जा रहे हो पिता जी, बाबा को?'

'शहर। इलाज के लिए, यह बीमार हैं न!' तामस ने सुबुद्धि को बहलाना चाहा। लेकिन सुबुद्धि ने जिद पकड़ ली।

'मैं भी चलूँगा बाबा के साथ। मैं भी चलूँगा बाबा के साथ।' और वह झपटकर गाड़ी में बीमार बाबा से चिपटकर बैठ गया।

'तामस विवश था उसे अपने साथ ले चलने के लिए। गाड़ी आगे बढ़ी। और आगे बढ़ी। और आगे बढ़ी। आखिर तामस एक घने जंगल में पहुँच गया।'

'सुबुद्धि डरा नहीं बाबा?' पिंकी ने पूछा।

'सचमुच वह बहुत डर गया था बेटे।' उसने कई बार पूछा, 'कहाँ ले जा रहे हो बाबा को?' पर तामस ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। घने जंगल में पहुँचकर तामस ने गाड़ी रोक दी और फावड़ा लेकर गड्ढा खोदने लगा।

सुबुद्धि ने देखा तो असमंजस में पड़ गया। पूछा, 'पिताजी, यह गड्ढा क्यों खोद रहे हैं आप?'

अब बेटे को विश्वास में लेने के सिवा और कोई रास्ता नहीं था, तामस के सामने। उसने सुबुद्धि को प्रेमपूर्वक समझाया। बेटे, तुम्हारे बाबा अब बहुत बूढ़े हो गए हैं, दमे का रोग लग गया उन्हें। रात-भर खाँसते हैं और पीड़ा भोगते हैं। अब उन्हें सुख की नींद सोने की जरूरत है।'

'तो क्या तुम बाबा को इस गड्ढे में दबा दोगे, पिताजी?' सुबुद्धि ने पूछा।

'हाँ बेटे, उन्हें सुख देने और संसार के दु:खों से मुक्त कराने का यही एक रास्ता रह गया है बेटे।' तामस ने सुबुद्धि को समझाया।

'अच्छा!' सुबुद्धि बोला, 'तो क्या पिता जी, जब आदमी बूढ़ हो जाता है तो उसे सुख देने के लिए यही करते हैं सब?'

तामस कुछ नहीं बोला। बस गड्ढा खोदने में लगा रहा।

राव ने देखा कि नन्हा पिंकी चुप साधे कहानी सुन रहा था, 'तो पिंकी बेटे!' राव ने बच्चे को संबोधित किया, 'जब तामस गड्ढा खोद चुका तो सुबुद्धि ने बाप के हाथ से फावड़ा ले लिया और उसी के निकट अपने नन्हे-नन्हे हाथों से एक और गड्ढा खोदने लगा।'

तामस ने बेटे से पूछा, 'यह तुम क्या कर रहे हो बेटे! दूसरा गड्ढा खोदकर क्या करोगे तुम?' सुबुद्धि ने जो उत्तर दिया उससे तामस घबरा गया। उसकी बंद आँखें खुल गईं।'

'क्या कहा बाबा सुबुद्धि ने?' पिंकी ने पूछा।

उसने कहा, 'यह दूसरा गड्ढा मैं तुम्हारे लिए खोद रहा हूँ, पिता जी। जब आप बहुत बूढ़े हो जाएँगे, दमे का रोग लग जाएगा आपको, रात-भर सो नहीं सकेंगे तो मैं आपको सुख की नींद सुलाने के लिए बाबा के पास वाले गड्ढे में दबाने ले आऊँगा।'

राव ने कहानी समाप्त की तो राजहंस की आँखों में आँसू थे। उन्होंने सहज स्वर में कहा, 'बेटे, लकड़ी की आग सदा पीछे की ओर जाती है। यह भी तो लकड़ी ही की आग है न!'

'पर यह कहानी पिंकी के सामने नहीं सुनानी चाहिए थी अंकल आपको। यह आपने ठीक नहीं किया, ठीक नहीं किया।' राजहंस बोला और फिर सन्नाटे में गुम हो गया।

❖

ए 402, पार्क व्यू सिटी 2, सोहना रोड
सेक्टर 49, गुरुग्राम (हरियाणा) 122018
मोबाइल : 7838090732

..... *पृष्ठ 28 का शेष* **(लॉक डाउन में एम्बुलेंस)**

"आजकल काम वैसे ही बहुत बढ़ा है...तुम्हारे कहने पर कामवाली को भी मना कर दिया है..."

"कोरोना काल में खुद घर का काम करना ही सुरक्षित है, संक्रमण दूर हो जाने पर फिर से रख लेंगे...उसके पैसे तो काट नहीं रहे हैं..."

"लेकिन कब तक... ?"

"यह तो कोई नहीं जानता सरला...मैं भी घर में बैठा ऑनलाइन काम कर रहा हूँ..पता नहीं कब तक चलेगा यह सब...प्राइवेट नौकरी है, सरकारी तो है नहीं...कभी भी हटा सकते हैं...पहले भी कितनों को हटाया गया है...तलवार तो लटकी ही रहती है।"

शाम गहरा गई थी। सरला रसोई की ओर बढ़ी।

रात में मोबाइल की घंटी बजी। नंदिनी जी का फोन था। उनकी बूढ़ी कामवाली मना करने पर भी रोज आ जाती है, मान नहीं रही। उनका आग्रह था कि सरला सुबह उसके आने पर कह दे कि वह जरूरी काम से गाँव चली गई हैं। लौटेंगी तब बुला लेंगी। नंदिनी सामने के दरवाजे पर ताला लगा देंगी, उसे शक नहीं होगा और वह लौट जाएगी। सरला ने बात सुन ली लेकिन मन की उलझन होठों पर आ गई—"बेचारी कामवालियाँ...खाने की मोहताज हो जाएँगी..."

सुबह बाहर का दरवाजा पीटने की आवाज से नींद खुली। नंदिनी की बूढ़ी कामवाली ने दरवाजा खुलते ही गुहार लगाई—"हम सब जानें लीं...ताला मार कर अन्दर बैठल हईं... हमरे पेट पर लात मरीहैं...हमहूँ इहैं उनके दरवाजे पर धरना देब.. .बतावे कहाँ हई..."

"उन्हें अचानक गाँव जाना पड़ा है आएँगी तो बुला लेंगी..."

"तू हमें बहकावत हऊ...हम जाए वाली नाहीं हई..."

बुढ़िया नंदिनी जी के दरवाजे पर जाकर बैठ गई। नंदिनी जी ताले के अन्दर बुढ़िया बाहर। पूरा मोहल्ला यह दृश्य देख रहा था। नंदिनी बार-बार सरला को फोन करके उसे समझा कर वापस भेजने का आग्रह कर रही थीं। धूप चढ़ने लगी थी। सरला और राजेश के समझाने के बावजूद बुढ़िया डटी हुई थी। दो घण्टे बाद हारकर बुढ़िया यह कहते हुए चली गई कि "कल फिर आऊब...देखब कइसे दरवाजा न खोलीहैं...हमार दस बरस का काम ऐसे ही छूट जाई...।"

नाश्ता करने के बाद सरला ने पोछे की बाल्टी में पानी में लाईजोल डाला और गेट के बाहर बनी पत्थर की सीढ़ी को रगड़-रगड़ कर झाड़ू से साफ करने लगी, फिर दरवाजे पर पानी डाला तो राजेश ने टोका—"आज इतनी सफाई क्यों हो रही है?"

सरला ने पास आकर फुसफुसा कर कहा—"तुम्हें पता है न दस नम्बर वाले इसी सीढ़ी के रास्ते मेन गेट तक जाते हैं... दरवाजे को भी हाथ लगते ही होंगे..."

राजेश ने चुटकी ली "संगमरमर की सीढ़ी पर कौन न चढ़ना चाहेगा...एम्बुलेंस अभी भी तुम्हारे दिमाग में घूम रही है।"

"जब घर में ही कोरोना आ घुसा है...तो यह सब तो करना ही पड़ेगा..."

"आज सब्जी वाला नहीं आया...अभी तक तो ठेला लेकर आ जाता था..." सरला की दृष्टि सड़क पर घूमी तो याद आया, शाम के लिए सब्जी नहीं है।

"अभी दूध लेने जाऊँगा तो देख लूँगा...कभी-कभी ठेले वाले उधर भी खड़े होते हैं।" राजेश ने समाधान दिया।

मास्क लगाकर, चप्पल बदल कर राजेश सड़क की ओर बढ़ा तो सरला राजेश के स्नान की तैयारियाँ करने लगी।

कुकर ने अंतिम सीटी मारी, दाल पक चुकी थी। कॉलबेल बजी। अन्दर आकर राजेश ने सभी सामान बरामदे में रखते हुए कहा—"सब्जी तो मिली नहीं...बस आलू मिला है..."

"क्यों... ?"

"रात में तीन घंटे के लिए सब्जी मंडी खुलती है...आज सब्जी वाले को उठने में देर हो गई। आलू ले पाया था कि पुलिस वालों ने डंडे बरसाने शुरू कर दिए...बेचारे को काफी चोट लगी है। रास्ते में नौ नम्बर वाले मिल गए। दस और ग्यारह नम्बर तो आमने-सामने है। बड़े परेशान लग रहे थे...उन्हें भी शक है कि दस नम्बर वाले सिंह साहब छिप रहे हैं...उनके बेटे को कोरोना हो सकता है...घर को एकदम बन्द कर रखा है...दूध लेने भी नहीं निकलते हैं। एम्बुलेंस की जानकारी उन्हें नहीं थी लेकिन डर के मारे उन्होंने अपनी पत्नी और बेटे को सोनारपुरा में उसके मायके भेज दिया है...वे अकेले ही रह रहे हैं।" सरला ने टोकते हुए कहा—"मैं तो पहले से ही कह रही हूँ, पूरी बिल्डिंग के लोग मिलकर चलें और उनसे बात करें...हमेशा घर में बन्द रहते हैं...न बोलना...न बतियाना।"

"लेकिन बिल्डिंग में इतनी एकता कहाँ है...सबकी अपनी-अपनी ढपली...अपना-अपना राग है..." कहते हुए राजेश स्नानगृह की ओर बढ़े। सरला ने रसोई के काम निपटाने शुरू कर दिए। सरला की चिंता बढ़ती जा रही थी। शाम को बगिया में टहलते हुए उसकी दृष्टि उठी तो वह आश्चर्यचकित रह गई। सिंह

साहब और उनकी पत्नी अपने घर की बालकनी में खड़े थे। वे आपस में बातें कर रहे थे और ऐसा लग रहा था जैसे मोहल्ले का मुआयना कर रहे हों। सरला ने राजेश को आवाज दी। राजेश ने देखकर कहा—"अच्छा है...यहीं पूछ लेते हैं।" सरला ने हिदायत दी—"सीधे नहीं बहाने से पूछिएगा..." शैल सिंह सरला को देखकर मुसकुराईं। सरला ने बात बढ़ाई—"कैसी हैं?" शैल सिंह ने सब ठीक है कहकर उत्तर दिया। पीछे से राजेश ने पूछा—"सुना है कोई बीमार है?" शैल सिंह ने पति से कुछ कहा। सिंह साहब ने तत्काल उत्तर दिया—"नीचे आकर बात करते हैं।"

"आप कुछ कह रहे थे?"

"सुना है कोई बीमार है मुखर्जी साहब के यहाँ?"

"नहीं कोई बीमार नहीं है न उनके यहाँ न मेरे यहाँ...हम सब स्वस्थ हैं।"

"सुना है एम्बुलेंस आई थी? किसी मरीज को लेने?"

"जब कोई बीमार ही नहीं है तो एम्बुलेंस क्यों आएगी? ऊपरी मंजिल में सब लोग स्वस्थ हैं...ऐसी कोई बात नहीं..."

सरला आश्वस्त हुई। कमरे में घुसते ही उसने राजेश से अपने मन की प्रसन्नता व्यक्त की—"मतलब सब झूठी अफवाह है...बेटा बीमार हो तो भला कोई झूठ क्यों बोलेगा...बेटे की शादी में हम सब शामिल थे। सिंह साहब के पिता यहीं मरे...घाट तक सब बिल्डिंग वाले गए। सुख-दुख के साथी हैं हम सब...भला हमसे झूठ क्यों बोलेंगे..."

"कोरोना से भी बड़ा संकट इस समय मूल्यों का है नैतिक, मानवीय सभी मूल्य...पाप-पुण्य, सच-झूठ, धर्म-अधर्म की सीमाएँ गडमड हो रही हैं...अस्तित्व का प्रश्न सबसे बड़ा है... सबसे मुखर..." राजेश ने कहा।

"हमारे आपसी रिश्ते ही तो प्रकाश केन्द्र हैं" सरला ने टोकते हुए कहा। "आज जैसे जीवन शैली बदल रही है...नई-नई परेशानियाँ पैदा हो रही हैं...आदमी से कैसे अपेक्षा की जाए कि उसका व्यवहार पहले जैसा बना रहे..."

आधी रात के बाद अचानक ऊपर से चिल्लाने और औरतों के रोने की आवाजें आनी शुरू हो गईं। सरला का मन किसी अनहोनी के प्रति आशंकित हो उठा। उसने धीरे से राजेश को जगाया।

"चलिए ऊपर चलकर देखा जाय, कहीं सिंह साहब का बेटा..."

"तुम्हारे दिमाग में अभी भी एम्बुलेंस घुसी हुई है...यह आवाजें दूसरी मंजिल से आ रही हैं...पाँच नम्बर वाला पीकर आया होगा... शराब की दुकानें कल खुल गई हैं...लग रहा है ज्यादा चढ़ा ली है... यह तो इस बिल्डिंग में आम बात थी...हाँ दो महीने से लॉक डाउन के कारण सब शांत था...कोई हंगामा नहीं हुआ...हम लोग भूल गए थे...अब उसकी बीबी पर फिर से आफत आ गई है, सरकार को इससे क्या...उसे तो राजस्व चाहिए।"

"मुझे तो कुछ और ही लग रहा है..." सरला बेचैन थी।

तभी जोर-जोर से उल्टी करने की आवाजों से दो ईंटों की पतली दीवार दहलने लगी।

"सुन लिया...मैंने तो पहले ही कहा था...पाँच नम्बर वाला पीकर आया है...अब सो जाओ।"

सुबह सरला की नींद देर से खुली। राजेश ने चाय बनाकर पी ली थी। नाश्ता करने के बाद सरला ने भोजन की तैयारी शुरू की। नमक बहुत कम बचा था। सुबह आठ से दस कुछ दुकानें खुलती थीं। सरला मास्क लगा कर नमक लाने घर के सामने नाटे की दुकान की ओर चल दी। नाटे कद के कारण दुकानदार 'नाटे' नाम से मशहूर था। गोल-मटोल हँसमुख चेहरे वाले नाटे ने अपने नाम को ताबीज की तरह ग्रहण कर लिया था। नाटे की दुकान पर दस नम्बर वाली शैल सिंह शेरनी की तरह दहाड़ रहीं थीं—"यह एम्बुलेंस वाली बात तुम्हीं ने मोहल्ले भर में फैलाई है... बेटा मेरा बीमार है...मोहल्ले वालों से क्या मतलब...मेरी कोई जवाबदेही नहीं बनती...किस बात की सफाई दूँ मैं...कोरोना ही केवल एक बीमारी है...और सब बीमारियाँ क्या बीमारियाँ नहीं है...अस्पताल में डॉक्टर नहीं...डॉक्टर मिल भी जाएँ तो हाथ लगाने को तैयार नहीं...हम अस्पतालों के चक्कर काटते रहे... कहीं कोई टेस्ट करने को तैयार नहीं...डॉक्टर समझ नहीं पा रहे थे...बस कोरोना हो गया...टेस्ट...कोरोना नहीं है...लेकिन डॉक्टरों की लापरवाही से मेरा बेटा लीवर कैंसर की दूसरी स्टेज में पहुँच गया...कैंसर कोई बीमारी नहीं है क्या...कोरोना से बड़ी बीमारी है कैंसर...हाँ, आई थी एम्बुलेंस...मेरे बीमार बेटे को अस्पताल ले जाने आई थी...मेरा बेटा कोई अपराधी है क्या...सबकी आँख में नफरत...ओह...हम क्यों बताएँ सबको...हमारी कोई जवाबदेही नहीं बनती।" शैल सिंह मुड़ी और सड़क की ओर बढ़ गईं।

सरला कुछ ही दूरी पर ठिठकी खड़ी थी। उसके कदम आगे बढ़ने से इन्कार कर रहे थे। उसने आकाश की ओर देखा। धूप तेज हो रही थी। चारों ओर वीरानी थी। वह धीरे-धीरे दुकान की ओर बढ़ने लगी।

❖

बी. 4/1, अन्नपूर्णा नगर कॉलोनी,
विद्यापीठ रोड, वाराणसी
मो. 7310367365, 9839450642

..... *पृष्ठ 30 का शेष* **(बुढ़ापे के अमलतास)**

इतना कह कर जॉन एक पल के लिए शांत हो गया। सबको आश्चर्य हुआ। फिर एक दम से जॉन ने अपने चिर परिचित ठहाके से वातावरण बदल दिया। बच्चों मैं तुम सबको दुखी नहीं सुखी बनाना चाहता था आज के दिन। खुशियाँ मनाओ। देखो फिलफिला ने तुम सबके लिए क्या प्रबंध किया है। अपने सबसे बड़े पोते को संबोधित करते हुए जॉन ने कहा:

"रसेल! किचेन में एक बड़े से बॉक्स में बर्थडे केक रखा है। उसको उठा कर ले आओ।" तुरंत वापस आते ही रसेल ने कहा "ग्रैंड डैड बॉक्स इतना बड़ा है कि मैं अकेले नहीं ला सकता।" "तो जाओ अपने डैड को साथ लेकर जाओ और केक बॉक्स को लाकर मेज पर सबके सामने रख दो।" केक को देखते ही सब की जुबानें खुली की खुली रह गई और आँखें चमकने लगीं। जॉन ने फिर कहना शुरू किया:

"बच्चों फिलफिला ने इस केक को बनवाने में पूरे 3 माह लगाए हैं। पहले तो 'ड्रकर्स' ने कहा था कि वह ऐसा केक बना ही नहीं सकते। तब फिलफिला ने बातचीत करने के लिए उसके मैनेजर को घर पर बुलवाया। मैनेजर मार्टिन को पहले सब समझाया। मार्टिन की मेहनत से ही यह केक बन सका है। इसमें चार पर्तें हैं। पहली बड़ी पर्त 12 सेन्टीमीटर की है जिसमें इसके दायरे पर 70 लाल, पीली और नीले रंग की कैंडल लगी है। 40 लाल कैंडल 8 पोते-पोतियों को दर्शाती हैं, 20 पीली कैंडल हमारे चारों बच्चों के लिए जिनको हमने जन्म दिया तथा 20 नीली कैंडल इन चारों के लिए जिन्होंने इस घर में बाहर से आकर स्वीकार कर इसे स्वर्ग बना दिया और बीचो बीच में 12 सफेद कैंडल हैं जो इस घर की शांति एवं एकता को दर्शाती हैं। पहली पर्त स्पष्ट है मुझको दर्शाती है, दूसरी आठ पोते-पोतियों को, तीसरी मेरे चारो बच्चों को जिनको हमने जन्म दिया एवं सबसे ऊपर की पर्त उन चारों को दर्शाती है जिन्होंने मेरे बच्चों को स्वीकार कर हमारा जीवन सार्थक बनाया। यह तुम्हारी फिलफिला की सोच है जिस पर हमारे परिवार की इतनी बड़ी इमारत खड़ी है। सब ने मिलकर माँ एवं ग्रैंड माँ को बधाई दी। बच्चों और भी तो कई केक हैं उनको भी लेकर आओ।" बीच में ही एक बच्चे ने टोकते हुए कहा- "ग्रैंड डैड इट इज नॉट फेयर। व्हेयर इज ग्रैंड माँ इन दिस केक?" इस पर फिलफिला ने तुरंत जवाब दिया- "मेरे बच्चे मैंने अपने आपको जॉन से कभी अलग न समझा, न देखा। उन सब जगहों पर जहाँ जॉन है मैं भी साथ में खड़ी हूँ।" इस छोटे से परिसंवाद के बाद जॉन ने फिर से कहना शुरू किया:

"बच्चों तुम सब सोचते होगे कि आज क्या हो गया कम बोलने वाले जॉन को कि वह अबाध गति से बोलता ही जा रहा है। न कोई कामा है न फुलस्टाप। बच्चों बोल तो मैं जरूर रहा हूँ किन्तु यह सब तुम्हारी फिलफिला और ईश्वर ही करा रहा है। यह सारा नियोजन केक से ही नहीं समाप्त हो जाता। बाद में खाने के समय उसने सब का ध्यान रखा है। तुम लोग पाओगे कि सबके स्वाद का ध्यान रखा गया है। उसको तो यहाँ तक याद है कि तुम्हारे दूध के दाँत कब और कितने निकले थे। तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लड़खड़ाते, गिरते, उठते चलने की अदा सब फिलफिला के मन-मस्तिष्क के कैमरे में कैद हैं। विभिन्न केटरिंग कंपनियों से अच्छे से अच्छा सामान मँगवाया गया है। हमारे तीनों दामादों को एशियन खाना बहुत पसंद है, यह किसी से छिपा नहीं। चाँदनी चौक केटरर्स के मालिक सुख देव कोमल इस अवसर के लिए अपनी ओर से हमारे प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए अनेकानेक रोचक-स्वादिष्ट डिसेज लेकर आए हैं। बच्चों जिस इंसान में कृतज्ञता नहीं होती या कृतज्ञता के भाव मर जाते हैं वह बड़ा मानव बन अमानव हो जाता है। मुझे गर्व है कि तुम सबमें कृतज्ञता कूट-कूट कर भरी है। सुखदेव के साथ हम दोनों के बीच क्या-क्या हुआ तुम लोगों को मालूम है। इसका बढ़ता हुआ सफल व्यापार वहीं पर है जहाँ हैंड्सवर्थ में मेरी फिश ऐंड चिप्स की दुकान हुआ करती थी। केटरिंग का सारा प्रबंध बाहर लॉन में मॉर्की लगा कर सुखदेव ने कराया है।"

फिलफिदा ने इसके बाद कहा-"अब देरी किस बात की है। केक काटें और डैडी की वर्षगाँठ के गीत गाएँ।"

फिलफिला का हाथ पकड़े हुए जॉन ने केक काट कर एक छोटा सा टुकड़ा अपनी पत्नी के मुँह में रखते हुए अपने स्नेह को व्यक्त किया। ऐसा ही फिलफिला ने भी किया। सबने अपनी-अपनी आवाजों में हैप्पी बर्थडे की ध्वनियाँ निकालीं। फिलफिदा की छोटी बहन फिलफिहा ने सबके लिए केक काट कर दिए जो सब में बँट गए। केक सेरीमनी से पहले लॉन से सुखदेव को भी बुला लिया गया था।

जॉन और फिलफिला के मॉर्की में प्रवेश करते ही सुखदेव एवं उसके स्टाफ ने अनेक सफेद गुब्बारे आकाश में छोड़े और हैप्पी बर्थ डे टु डियर जॉन की ध्वनि से मार्की को गुंजायमान कर दिया। आवाजों के समाप्त हो जाने पर मितभाषी सुखदेव ने कहा:

"जॉन मेरा और मेरे स्टाफ का हृदय आप के उपकारों के कारण कृतज्ञता के भाव से भरा है। आपके विचार ने मुझे इस व्यवसाय में डालने की सूझ दी। 25 साल पहले आपने अपनी दुकान बिना किसी शर्त के दी और बहुत बाद में जब मेरा व्यापार चल निकला तब आपने दुकान की कीमत ली। कौन करता है यह सब? हम लोगों की तरफ से यह एक छोटा सा उपहार है। जॉन आपके बच्चे जब भी चाहें 'चाँदनी चौक' में आ सकते हैं। वे सब हमेशा हमारे मेहमान होंगे। आप इसी प्रकार हम सबको वर्षों आशीर्वाद देते रहें। लोग काले या गोरे त्वचा के रंग से नहीं होते वे अपने दिल की शुद्धता से होते हैं जो लोग देख नहीं पाते। जॉन आप अंदर और बाहर हर प्रकार से शुद्ध हैं।"

यह सब जो सुखदेव ने हमारे लिए किया वह केवल प्यार से ही पाया जा सकता है। प्यार दोगे तो प्यार पा भी सकते हो। दुनिया की कोई भी ताकत किसी से ऐसा प्यार खरीद नहीं सकती। लोगों का और लोगों से प्यार कठिन परिश्रम एवं प्रेम से ही अर्जित किया जाता है। इसमें कोई शार्टकट नहीं होता। ध्यान रहे सुखदेव ने जो प्यार हमको दिया है वह हमको कभी न कभी किसी न किसी रूप में लौटाना भी होगा। यही विधि का विधान है।

92 वर्षीय जॉन के जन्मदिन का यह जश्न अब उतार की ओर था। लोगों के आईफोन, स्मार्टफोन, आईपैड एवं विभिन्न डिजिटल कैमरों में सैकड़ों चित्र समा चुके थे। विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से संतुष्ट हुए लोग अब मार्की से घर के अंदर जाने लगे थे। जॉन काफी थक चुकने के बावजूद भी पूरी तरह से सचेत था। पात्रों में बचे हुए भोजन की ओर संकेत करते हुए जॉन ने सुखदेव से पूछा:

"सुखदेव क्या बच्चों के लिए बचा हुआ भोजन पैक किया जा सकता है? आज जब विश्व के अनेक देशों में लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता, ऐसे समय में पकाए- बने भोजन को फेंकना मानवता के साथ अन्याय एवं महा पाप होगा। बच्चों अगर तुम चाहो तो अपनी-अपनी पसंद की चीजों को पैक करवा सकते हो। आदरणीय जॉन मैं इस स्थिति के लिए पूरी तरह से तैयार होकर आया था।"

प्लास्टिक के कंटेनर निकाल कर वह तैयार था। जॉन के सुझाव एवं सुखदेव के नियोजन से दो बड़े फायदे हुए। पहला तो यह कि स्वादिष्ट भोजन अब लोगों के पेट में जाएगा न कि कूड़ेदानों में और दूसरा यह कि सभी पात्रों की सफाई भी हो गई जिससे समय की बचत होगी। सुखदेव के कर्मचारी कूड़ा-कर्कट को एकत्रित कर काले-काले बड़े प्लास्टिक बैग में भरकर खाली पात्रों को वैन में रख चुके थे।

आज के इस उत्सव में भाग लेने के लिए जॉन के बच्चों के अलावा कई मित्र एवं अन्य संबंधी भी थे। सबने बड़े ध्यान से देखा कि किस प्रकार जॉन-फिलफिला ने अपने परिवार में खुशियों का वातावरण भर रखा है और बच्चे भी अपने माता-पिता एवं दादा-दादी के बुढ़ापे को सुखमय बनाने में पूरे मनोयोग से लगे हैं। बुढ़ापे में लगभग सबको अकेलेपन के अनेकानेक कष्टों को झेलना ही पड़ता है। कहते हैं कि बुढ़ापे का अकेलापन या किसी भी कारण जीवन में आया अकेलापन गरीबी से भी बड़ा अभिशाप होता है। गरीबी केवल तन को मारती है किन्तु अकेलापन तो तन-मन-मस्तिष्क, चिंतन, सोच एवं विवेकादि सब का नाश कर एक स्वस्थ्य व्यक्ति को पूरी तरह मार देती है। जॉन को बधाई दे-देकर एक-एक कर सभी लोग जा चुके थे। अब घर के लोग ही बचे थे।

जॉन ने सब को पास बुलाते हुए कहा:

"मेरे प्यारे बच्चों तुम सबने हमारे जीवन को स्वर्गमय बना दिया है। मुझे एक दिन भी ऐसा नहीं लगा कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ और अकेला हूँ। तुम लोगों की ऐसी सोच के पीछे तुम्हारे वे संस्कार हैं जिनको तुम सबने समय-समय पर अपने दादा-दादी तथा नाना-नानी से लिए हैं। और यही संस्कार तुम अपने बच्चों में भी डाल रहे हो। तुम सबका बुढ़ापा भी सुखमय होगा, ऐसा मैं देख रहा हूँ। बहुधा यह सुनने, अखबारों में पढ़ने और देखने में आया है कि कुछ बूढ़े अकेले जीवन में तरह-तरह की त्रासदियों को भोगते हुए मर भी जाते हैं। और ऐसे लोगों की मौत की

सूचना तब मिलती है जब उठने वाली दुर्गन्ध के कारण दरवाजा खोल अंदर प्रवेश किया जाता है।"

बच्चों अब मैं तुम सबसे एक बहुत ही अहम बात की दरख्वास्त करना चाहता हूँ, ध्यान से सुनो:

"जीवन के अंतिम क्षणों में मैं यह चाहता हूँ कि मैं अपने घर में ही रहूँ। इस समय तुम सबके हाथ मेरे हाथ में हों तथा मेरी निगाहें तुमको देखती रहें। यह मेरी अंतिम इच्छा है। फिलफिला अपने लिए इस बारे में क्या सोचती है मैं कुछ नहीं कह सकता। इस बात का निर्णय करने का केवल और केवल उसी का अधिकार है। समय आने पर फिलफिला स्वयं बताएँगी। मैं तो बस इतना ही कहना चाहूँगा उसकी इच्छा को पूरा करने का हर संभव प्रयास करना। थैंक यू आल मेरे बच्चों। यूँ आल हैव बीन टू गुड टु अस। मे गॉड ब्लेस यू आल।"

थैंक यू डैडी। हम लोग आपकी इच्छानुसार ही सब करेंगे। इसके बाद सबने आकर जॉन और फिलफिला से जाने की विदाई ली। यह सब हो ही रहा था कि 17 वर्षीय पोते नील ने झुककर ग्रैंड डैड के चरणों को स्पर्श किया। जॉन ने उसको उठा गले लगाते हुए पूछा "बेटे नील तुमने यह क्यों किया? जो किया वह अच्छा तो किया ही।" नील ने उत्तर दिया:

"ग्रैंड डैड मेरे एक भारतीय दोस्त ने बताया है कि बड़ों का इस प्रकार सम्मान करने से जो आशीर्वाद मिलता है वह उनके हृदय से निकलता है।"

मेरे बच्चे ईश्वर तुम्हें हमेशा खुश रखे। अपने परिवार के साथ फिलफिदा ने वापस जाते हुए माँ से कहा:

"माँ हम कल आपको आराम करने एवं सोचने के लिए छोड़ देते हैं। परसों से हम लोगों का नियमिति काम फिर से शुरू होगा। सुबह 10 बजे मैं आऊँगी और फिर शाम को फिलफिहा आएगी। यह ठीक तो रहेगा।"

सब बिलकुल ठीक है मेरी बच्ची। जॉन ने बेटे ऐडम को थोड़ी देर रुकने के लिए कहा। सबके चले जाने पर:

"ऐडम मेरी स्टडी के एक बक्से में कुछ छोटे-छोटे, पर्ची लगे पर्स पेक्स के डिब्बे हैं। इन डिब्बों में बर्थडे केक के एक टुकड़े को रख, परिवार का एक न्यूज बुलेटिन बनाकर आज की एक फोटो के साथ सबको डाक द्वारा भेज दो। ये सारे हमारे शुभचिंतक हैं जो आज विश्व के विभिन्न भागों में बिखर गए हैं। पर्स पेक्स के डिब्बों को एक दूसरे लकड़ी के डिब्बे में रखकर ये सारे सामान भेज दो। हमारे एकमात्र पुत्र होने के नाते यह जिम्मेवारी कि सबसे संबंध बनाकर कैसे रखा जाए, तुम्हारी है। अंत समय तक बैंक अकाउंट में तुम्हारा नाम जैसा है वैसे ही रहेगा ताकि तुम इसका भी ठीक ध्यान रखते रहो। बेटे आज जो मैंने किया उसमें कोई बड़ी गलती तो नहीं हुई?"

"नहीं डैडी! आपने सबको आदर देते हुए बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ सही न्याय किया है। ईश्वर आपका साया हम सब पर बहुत समय तक रखे।"

इसके बाद ऐडम के दोनों बेटे एवं उसकी पत्नी मैरी लग गए डिब्बों को तैयार करने में तथा ऐडम स्वयं लग गया न्यूज बुलेटिन बनाने में। बन जाने के बाद जॉन की सहमति लेकर ऐडम अपने परिवार के साथ सारा सामान लेकर अपने घर की ओर चल दिया ताकि वह अगले दिन उन डिब्बों को पोस्ट कर सके। इस प्रकार जॉन के परिवार का यह महापर्व पूरा हुआ। जॉन और फिलफिला ने एक दूसरे का आलिंगन कर अपने-अपने ढंग से ईश्वर को धन्यवाद दे तनिक विश्राम में लग गए। पूरे घर में अब पूर्ण शान्ति थी। गार्डेन के कुछ पत्ते ही हिल रहे थे तथा धूप सरकती जा रही थी।

वनस्पति शास्त्र के ज्ञाता जॉन का ध्यान एक ऐसे वृक्ष की ओर गया जिसका उपयोग कई रूपों में होता है। इस पेड़ में लम्बी-गोल फलियाँ होती हैं तथा मौसम में चित्ताकर्षक पीले-नारंगी रंग के सुन्दर फूलों से पेड़ सज जाता है। इन फूलों का प्रयोग अनेकानेक प्रकार के रोगों के उपचार में भारतीय वैद्य सदियों से करते आए हैं। जॉन को यह अहसास होने लगा कि उसका परिवार भी इसी वृक्ष की तरह है। लेबनाम या अमलतास के ये फूल ही तो उसके सारे बच्चे हैं जिन्होंने जॉन-फिलफिला के बुढ़ापे को इसी धरती पर स्वर्ग बनाया है।

❖

गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय
21 बिडफॅर्ड ड्राइव, सेलीओक,
बर्मिंघम बी29 6क्यू.जी.
E-mail : profdrkrishna@gmail.com

..... *पृष्ठ 32 का शेष* **(आग)**

को थामे रखा। पहले भी दो-चार बार मेरा आना हुआ है यहाँ। सुलझी हुई, संभ्रांत महिला लगीं हर बार मुझे मिसेज अग्रवाल। वसीयत बनाने के समय पर भी उनकी दूरदृष्टि और सोच से मैं प्रभावित हुआ था, वरना इन मामलों में औरतें कहाँ बोलती हैं वकील के सामने। पीछे से चाभी भर कर लाती हैं पतियों की और सामने एकदम चुप! गाय जैसी! या बिल्कुल गायब, मानों कुछ भी पल्ले न पड़ रहा हो पर मिसेज अग्रवाल ने बहुत समझदारी के दो-तीन सुझाव दिए थे, खैर!

मिसेज अग्रवाल ने तीनों को कड़ी नजर से देखते हुए कहा, "बात का बतंगड़ बना दिया इन सब ने भाई साहब! किस घर में लड़ाई नहीं होती। अलग-अलग सोच है तो आवाजें तो ऊँची हो ही जाती हैं पर इसका मतलब यह तो नहीं कि बसी-बसाई गृहस्थी में कोई अपने हाथों आग लगा दे!" हाँफ गई वो इस स्पष्टीकरण को देते हुए!

अग्रवाल साहब ने कहानी को सिरे से बताना शुरू किया। बीच-बीच में दयावती जी, नीमा, रूमा और प्रशांत, निशांत भी कहानी में विस्तार जोड़ने लगे ताकि मैं बात की तह तक पहुँचकर, स्थिति की गंभीरता पर विचार कर सकूँ। सब की बातों का जो सार है, आप सब को वही बताता हूँ अब।

बात दो महीने पहले से शुरू हुई थी। प्रशांत अपनी शादी की दसवीं वर्षगाँठ पर पत्नी रूमा के लिए हीरों के हार का एक सैट ले आया। रूमा ने खुशी-खुशी देवरानी नीमा को दिखाया, नीमा को भी बहुत अच्छा लगा वो हार! किसको आभूषणों से लकदक होना अच्छा नहीं लगेगा सो उसने निशांत से अपने लिए भी ऐसे ही सैट की माँग की। निशांत ने उसे अपनी दसवीं वर्षगाँठ पर देने की बात कही पर तब तक कौन इंतजार करे! बात बढ़ते हुए पैसों पर आयी और दोनों भाई जो एक साथ चार्टड एकाऊंटेंसी की फर्म खोले बैठे हैं, उसमें बराबरी से पैसा लेने की बात शुरू हो गई। निशांत का कहना था कि भाई पाँच साल पहले से यह फर्म चला रहे हैं, बहुत मेहनत की है उन्होंने इसे जमाने में तो उनका हक कहीं अधिक है, वह तो जमे जमाए काम में आया। नीमा का कहना था कि निशांत के आने से जो आय दुगुनी हुई, उसमें से कुछ भाग अगर वह ले लेगा तो कौन सी आफत! पति-पत्नी में कुछ दिनों तक तो दबी-छिपी कहा सुनी हुई पर जब बात नहीं सँभली तो बाहर आ ही गई। लेकिन बात जहाँ से शुरू होती है, वहाँ कहाँ ठहरती है जी, जाने कहाँ-कहाँ की कुंठाओं और शिकायतों के पाटों से बहती, दिशाएँ मोड़ती, बाढ़ का रूप ले लेती है और बाद में तटस्थ रूप से देखा जाता है तो लगता है... कि इतनी बड़ी बात तो नहीं थी! बात बड़ी हो न हो पर खून में बसे सिद्धांत तो जड़ जमाए बैठे रहते हैं दोनों तरफ. ..कि मैं औरत हूँ, मुझ से ऐसा क्यों कहा...या मैं आदमी हूँ तो मुझ से ऐसा कहने की हिम्मत कैसे हुई! वही सब जो रोज देखता हूँ मैं..देखिए मैं तो यह जानता हूँ कि ये जिद का संस्कार और अहंकार जब दोनों मिल जाते हैं तो कनपटी पर वो मार लगाते हैं जनाब कि अच्छे-अच्छे समझदारों के सिर भन्ना जाए!

तो जनाब, आप पूछेंगे कि अग्रवाल साहब के घर में दोनों बहुएँ एक कैसे हो गयीं? किस्सा तो यही है! मैं भी हैरान कि जमाने से एक-दूसरे के विरोध में खड़ी दिखाई देने वाली देवरानी और जिठानी ने एकता संघ कैसे बना लिया? आप ने भी सुना होगा, 'औरत ही औरत की सबसे बड़ी दुश्मन होती है', मैं यह बात आपसे दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह सिद्धान्त किसी औरत का बनाया तो हो ही नहीं सकता! हाँ, औरतों को भिड़ाने वाले, उसके अहं को हवा देकर उसको चंडी बनने को उकसाने वालों का ही यह सिद्धान्त होगा। ये आदमी घर के बाहर भी हर तरह की फूट डालते हैं और...घर में सास और बहू, देवरानी और जिठानी पदों के बीच फूट डालते हैं...और औरतों में पैदा करते हैं असुरक्षा की भावना! बस! फिर देखो! आग लगाने की देर है, फैलने में क्या समय लगता है? तब उस आग पर अपने स्वामित्व को पकाओ! औरतें एक हो जाएँ तो आदमी की सुनेगा कौन सो बस, फूट डालो...कंधा किसी और का, बंदूक अपनी! यही तो खेल है! खुद अच्छे बने रहो और... ..पर यहाँ तो आग कुछ अलग ही चल रही थी।

छोटी बहू ने पति का प्रतिवाद किया कि क्या उन्हें दस-पंद्रह लाख भी उस व्यवसाय से निकालने का हक नहीं? अगर नहीं, तो जेठ जी ने क्यों निकाले? पूछो! निशांत यह सवाल भाई से क्योंकर पूछता! उसका भाई है, व्यवसाय उसने खड़ा किया तो क्या वह अपनी शादी की वर्षगाँठ पर इतना भी नहीं ले सकता! लिया तो लिया...इसमें सिर खपाने की क्या बात? नीमा को लगा

कि बात भाइयों के बीच धन की नहीं, निशांत के हठ की ज्यादा है, क्यों कि प्रशांत को जैसे ही पता चला कि नीमा-निशांत के बीच इस बात की तकरार है कि उसे वह हार क्यों नहीं मिला तो उसने तुरंत निशांत को बताया कि कैसे उसने आधे दाम जमा कर के और आधे के लिए किश्तें देने का तरीका निकाला, निशांत भी ऐसा ही करके नीमा की माँग पूरी कर दे और सुखी रहे, और यह नहीं करना तो फर्म से पैसा निकाल ले और बाद में धीरे-धीरे दे दे पर निशांत को यह बात नागवार गुजरी।

"यह तो तुष्टिकरण की नीति है, आज यह माँगा तो दे दो, कल को घर में आधा हिस्सा माँगेगी तो वो दे दो, न भैया, यह आदत ही गलत है। कुछ समय इंतजार कर लेगी तो कौन सा पहाड़ गिर पड़ेगा। मैंने कितनी बातें मानी हैं इसकी पर, यह बात! कोई 'लॉजिक' हो तो माना भी जाए! वो जिद्दी तो मैं भी इस बार जिद्दी ही बनूँगा" नीमा के लिए भी यह बात अब गले में पहनने के हार की कहाँ रह गयी थी, बल्कि जीत-हार की बन गई थी। "मेरी बातें मानी हैं निशांत ने तो कौन सा अहसान कर दिया, मैं भी तो न जाने कितनी बातें मानती हूँ इनकी। और कौन सा अलग घर माँगने को कहती हूँ, एक चीज, जिसे आप खरीद सकते हो, सिर्फ इसलिए नहीं खरीदना चाहते क्योंकि बीबी ने कहा है...यह 'इल-लॉजिकल' बात नहीं है क्या? मैं क्या कोई लालची लड़की हूँ जो हार के लिए मरी जाती हूँ?" वह स्कूल में पढ़ाती है, अपनी तन्ख्वाह लेती है, घर पर खर्चे का कोई दबाब न होने से उसकी महीने की आय बैंक एकाउंट में अनछुई ही रहती है, उसके खुद के पास ही बहुत पैसे जमा हो गए हैं पर बात पैसे की कहाँ हैं? निशांत का उससे पहले चिल्ला कर झगड़ा करना, फिर उसे 'स्वार्थी' और 'लालची' कहना उसे गहरे तक बींध गया था और फिर पश्चाताप करने की बजाए उसका चुप होकर अलग-थलग रहना! यह भी किसी भले इंसान का व्यवहार होता है? ऐसे में आहत तो होती ही वो! उसने भी गुस्से में खूब बक-झक करी! ....क्या- क्या कहा? वो तो अब उसे याद भी नहीं! गुस्से में इंसान क्या अनाप-शनाप बोलता है, यह उसे तो याद नहीं रहता पर सुनने वाले को याद रहता है। निशांत को याद होगा वह सब! पर इन सब के बीच नीमा को लगा कि अपने जीवन के जो अनमोल छह साल उसने इस संबंध को दिए वो व्यर्थ गए! एक बच्चा दिया, कितनी ही बार अपनी इच्छाओं के साथ समझौता करके निशांत की बात मानी, सास-ससुर सब की बात मानीं... .. ...एक नहीं, दो... नहीं, दर्जनों बातें उसे याद आईं। बातें निशांत को भी याद आईं लेकिन नीमा की यादों से बिल्कुल विपरीत कि किस तरह वो और पूरा घर नीमा की इच्छाओं को पूरा करने के लिए तत्पर रहते हैं, उस पर अधिक जिम्मेदारी न रहे, उसका स्वास्थ्य और स्कूल के अनेक कामों का समय ठीक रहे, इसका ध्यान रखते हैं आदि! आदि! इस से ज्यादा वो और क्या करें? किसी के सामने झुका तो जा सकता है, बिछा तो नहीं जा सकता? नीमा चाहती है कि वो बिछ जाए उसके सामने, जैसे ही उसके मुँह से कोई बात निकले तो तुरंत पूरी हो जाए, ऐसे कैसे? निशांत की अपनी सोच, जिम्मेदारी क्या कुछ नहीं? वो कोई पुरातनपंथी पति नहीं जो नीमा से हमेशा अपनी बात मनवाए पर नीमा को भी उसे बराबरी का स्तर तो देना चाहिए! कुछ तो इज्जत देनी चाहिए पर नीमा ने तो उसे इतना बुरा-भला कहा है कि..!!

इन बातों को लेकर क्या तो बातें हुईं रूमा और नीमा में कि रूमा ने भी देवर निशांत को समझाना शुरू किया कि उसे नीमा को स्वार्थी और लालची जैसे शब्दों के लिए माफी माँगनी चाहिए! निशांत ने अपनी कड़वाहट की पोटली में से शब्द निकाले कि उसे भी 'मेल शॉवनिस्टिक' और 'ईगोस्टिक' और जाने क्या-क्या कहा गया है, उसके लिए नीमा भी माफी माँगे। प्रशांत ने रूमा को समझाया था कि तुम बीच में मत पड़ो, तो रूमा बिफर पड़ी, "यह तो हद है, आपके अपने घर में दो लोग एक दूसरे से तने बैठे हों और आप तटस्थ हो कर बैठ जाएँ! ऐसी ही तटस्थता ने आज समाज को अजनबीपन के कुँए में धकेल दिया है, सड़क पर कोई घायल हो जाता है, लोग 'बीच में पड़े बिना' किनारा कर के निकल जाते हैं, किसी बूढ़े के साथ कोई जवान बद्तमीजी करता है, तो आप बीच में नहीं पड़ते, किसी लड़की को गुंडा छेड़ता है, बलात्कार करता है तो भी आप बीच में नहीं पड़ते, और यह सब सीख आती कहाँ से है? घर से! तटस्थता नपुंसकता बन गई है, प्रशांत!"

प्रशांत हैरान भी हुआ और गुस्सा भी। रूमा को जल्दी गुस्सा नहीं आता, पिछले दस साल में वह शायद ही झगड़े हों पर आज वह गुस्सा हो रही है और वह भी अनुपात के बाहर! "कहाँ सड़कों के किस्से और कहाँ घर के पति-पत्नी की बात! मतलब

कोई तुलना तो हो इन दोनों के बीच की! कल को निशांत और नीमा तो लड़-लड़ा कर एक हो जाएँगे और हम लोग बन जाएँगे बैरी... ! समझती ही नहीं तुम!" और बस यही बात रूमा को तीर की तरह लग गई।

'समझती ही नहीं रूमा!!!' पिछले दस सालों की सारी नजर अंदाज करी हुई बातें एक-एक कर आ चुभीं फिर.... समझती ही नहीं न वो!..वो चुप रह कर, अनेक बातों को अनदेखा कर जाती है तो क्या समझा जाता है कि वह बेवकूफ है? वह भी पढ़ी लिखी है, नौकरी करती ही आई थी इस घर में, दूसरे बच्चे के बाद उसने नौकरी छोड़ दी, बच्चों को पालने-बड़ा करने के लिए, तो इसका मतलब यह तो नहीं कि उसका आई-क्यू लेवल ही गिर गया? वो चुप रही, घर की शांति के लिए और अपनी ऊर्जा बचाए रखने के लिए! घर सँभालना, दो छोटे बच्चों को सँभालना कोई आसान काम नहीं और छोटा तो अभी चार का ही है...कितना समय जाता है बच्चों के साथ! क्या प्रशांत यह बात समझता है? नीमा सही ही अपने स्वाभिमान के लिए लड़ रही है। जाने क्या तो हुआ उन पलों में कि रूमा को लगने लगा कि वह ठगी गयी! यह सीधा-सीधा अपमान था उसका! प्रशांत ने उसकी मुद्रा देख कर शायद धीरे से अपनी गलती को स्वीकार भी किया पर बहुत चलते-फिरते शब्दों में कि उसका वह मतलब नहीं था, ...पर बिना मतलब तो शब्द निकलते नहीं न! रूमा को लगा कि कौन से बँधे-जुड़े संस्कार हैं आदमी के भीतर जो औरत को जाने-अनजाने ही छोटा कर देते हैं। शांत रहने वाली रूमा खौल उठी, वो अनदिखे जुमले, वो अनकहे तेवर अब आँखों के आगे आ-आ कर चिढ़ाने लगे। बहुत हुआ! ये आदमी, होते ही सब ऐसे हैं। अपनी उदारवादी खोल में वही के वही! ये तब तक ही उदार रहते हैं जब तक इनकी सोच पर बड़ी चोट नहीं पड़ती, चोट पड़ने पर ये बराबरी के प्रतिद्वंद्वी नहीं रहते, पुरुष हो जाते हैं, पति का हक दिखाने लगते हैं। पढे-लिखे हैं तो उस तरीके के पुरुष तो नहीं हैं जो चोटी पकड़ कर घसीटता रसोई में ले जाता पर किसी न किसी बात का बहाना कर, औरत की बात और विचार को नीचा दिखाते हैं, बौना कर देते हैं या सिरे से ही खारिज कर देते हैं।

पिछले दो महीने से या तो अबोला रहता है पति-पत्नियों के बीच या फिर जोर-जोर से बहस होने लगती है। दयावती औरत होने के नाते बहुओं का मन समझ कर मुझे यह बताने लगीं, साथ ही सफाई भी दे रहीं थीं कि उनकी बहुएँ दिल की बहुत अच्छी हैं पर न जाने कौन सी गाँठ इनके मन में पड़ गई है कि इन्हें अपने पति जालिम जैसे लगने लगे हैं। नीमा और रूमा ने स्पष्ट, अडिग स्वर में कहा कि 'औरतें हीं सदियों से सताई गईं हैं, इस बार पतियों को अंट-संट बोलने के लिए माफी माँगनी पड़ेगी'। उन्होंने दयावती से भी कहा कि औरत होने के नाते वे उनका दर्द समझें और उन पर झुकने के लिए दबाब न डालें।

प्रशांत के शांत मन में भी पत्थर पड़ गए थे। समझदार लड़का है पर वो भी रूमा का यह रूप देख कर आहत है। बोला, 'कितना भी निबाह ले आदमी पर ये काले सिरवालियाँ आकर घर अलग कर देती हैं' किसी समय में दादी ने यह कहा था जब चाचा-चाची अलग हुए थे। उस जमाने में अपने आदमी को अपने कहे में लेकर अलग हो जाने का रिवाज था, और अब? 'वो बैखलाया हुआ है। बौखलाए हुए सब हैं। दोनों बहुएं अपने-अपने आहतपन में बहनापा खोज कर एक हो गयी हैं और पतियों से माफी की अपेक्षा रखती हैं। दोनों लड़के अड़े हैं कि वे माफी क्यों माँगें जब उन्होंने कुछ ऐसा किया नहीं! उनके दादा-परदादा और उनके भी परदादा की सामंती सोच की सजा ये औरतें हमें क्यों देना चाहती हैं? हमें उनके नाम पर क्यों चिढ़ाया जाता है? हम तो बराबर का बर्ताव करते हैं, हमने कब इन्हें सताया? अब काम के बँटवारे से घर चलाने की जिम्मेदारी रूमा और माँ पर है तो ऑफिस चलाने और धन कमाने की प्रशांत और निशांत पर ... ! इसमें गलत क्या है? और भी दसियों बातें बोलते गए दोनों भाई! सुना है न आपने,' बात निकलेगी तो दूर तलक जाएगी....' बस! वही सब हो रहा था यहाँ!

अग्रवाल जी और मिसेज अग्रवाल बेहद असमंजस में हैं। उन्होंने इस झगड़े को निपटाने की बहुत कोशिश की पर सब व्यर्थ! वे दोनों लड़कों से भी नाराज हैं और बहुओं से भी। लड़के अब उनके कहे में नहीं वरना माफी मँगवा कर किस्सा खत्म करवाते। 'लड़के हैं', कह कर उन्होंने कभी लड़कों को सिर पर नहीं बिठाया पर बहुएँ सास-ससुर को लड़कों की तरफ ही समझे बैठीं है और लड़के उन्हें बहुओं की तरफ, सो कोई कुछ सुनने को तैयार नहीं। वे इन चारों बेवकूफों के लिए दुखी हैं। तीनों छोटे बच्चे तक सहमे से हुए हैं, वे भाँप रहे हैं कि घर में कई

बड़ी समस्या चल रही है। अग्रवाल दंपत्ति का मन इन बच्चों के लिए फट रहा था। छोटे-छोटे हैं पर पिछले दो महीने से बचपन जैसे ठिठक गया हो। मिसेज अग्रवाल ने तीनों के पैदा होने से लेकर अब तक बच्चों के साथ ही समय गुजारा, उन्हें सँभाला, अब इन मासूमों के उतरे चेहरे देख कर उनका कलेजा मुँह को आ रहा था।

मैं बहुत चक्कर में पड़ गया। जनाब! ऐसा केस मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। सामूहिक शादियाँ तो देखी थीं पर सामूहिक तलाक कभी सुना तक न था। अग्रवाल जी ने इस समय मुझे वकील के साथ-साथ एक दोस्त के रूप में भी बुलाया था। वे चाहते थे कि मैं बच्चों को आगा-पीछा बता कर कुछ रास्ते पर लाऊँ।

सारा किस्सा अहं का है पर यह चीज ऐसी है कि कहने, समझाने से खत्म नहीं होती। मैंने ऐसे इतने केस देखे हैं जहाँ तिल का ताड़ बनी बातों के पीछे घर टूट जाते हैं, जिंदगियाँ बिगड़ जाती हैं और बैंक के खाते खाली हो जाते हैं।

यहाँ भी यही किस्सा था। मेरा दिल सचमुच अग्रवाल साहब और उनकी पत्नी के लिए तकलीफ से भर गया। वकील हूँ तो क्या, इंसान भी तो हूँ। मेरी उम्र के आसपास के हैं अग्रवाल साहब...मेरे बच्चे ऐसा करें, मेरे नाती-पोते सहम जाएँ तो क्या मैं परेशान न होऊँगा? कहने को तो सीधा इलाज है कि भई जब साथ नहीं रह सकते तो हो जाओ अलग पर मिस्टर और मिसेज अग्रवाल का क्या? इतनी मेहनत से पाले हुए लड़के, इतनी लाड़ों से भर कर दुलारी गईं बहुएँ और आँखों के तारे जैसे पोते-पोतियाँ! इन सब को जीवन भर दुखी देखना...यह सजा इन प्रौढ़ होते माँ-बाप को क्यों मिले? एक निरी जिद्द और अहंकार! माने कोई बात में बात तो हो, तब तो कुछ सोचा जाए, व्यर्थ ही यह सब ....क्यों? वे क्यों झेलें इसे?

मैं यह भी सोच रहा था कि क्या नीमा और रूमा सचमुच इस एक बात से अपने पतियों से अलग होने को तैयार हैं? या यह केवल एक उबाल है? और बच्चों का क्या होगा? कानूनी भाषा में मैं विस्तार से उन्हें प्रक्रिया समझाने लगा। मैंने चारों से फिर एक बार गंभीरता से हफ्ता भर सोचने के लिए कहा और उन सब से विदा ली।

इस बीच मैं भी सोचता रहा कि इस समस्या का क्या तोड हो सकता है? अग्रवाल जी इस उमर में बच्चों की बेवकूफी से कितने परेशान हैं, यह बच्चे क्यों नहीं देख पा रहे? ध्यान से देखो तो यह न बेवफाई का केस है और न घरेलू हिंसा का, न दहेज का और न पति-पत्नी के बीच किसी अन्याय का! यह सब हो तो चलो भई रहो अलग, जियो अपनी जिंदगी पर यहाँ तो यह सब समस्या है ही नहीं। बस, अहंकार है, गलतफहमी है और एक बिना सिर-पैर की जिद्द है। क्या हम बच्चों को इस दिन के लिए पालते हैं कि वे गलतफहमियों को लेकर झक्की बन जाएँ और घर को तबाह कर दें? यह केस कुछ अलग है पर होता तो यही सब है ऐसे केसों में! और बच्चे, उनकी जिंदगी बिन पैंदे के लोटे जैसी हो जाती है। वे जॉइंट कस्टडी में कभी माँ के पास जाएँगे तो कभी बाप के पास। यहाँ तो बच्चे छोटे हैं यानि सालों चलेगा ऐसे। माँ-बाप को जॉइंट कस्टडी मिलेगी पर उन बाबा-दादी का क्या, जिनके पास ये बच्चे अभी तक दिन-रात रहे हैं? अग्रवाल जी बता रहे थे कि प्रशांत का बड़ा वाला बेटा रात को बाबा से चिपट कर तो निशांत का इकलौता बेटा दादी से चिपट कर सोता है। जिन बाबा-दादी के दिन का एक-एक मिनट इन बच्चों के साथ, उनके आगे-पीछे ही बीतता हो वो इन बच्चों के बिना कैसे रहेंगे, यह न बेटों ने सोचा, न बहुओं ने। घर काटने को दौड़ेगा। अग्रवाल साहब तो खैर अपने शो रूम पर चले जाते हैं, बिजनेस में रात तक लगे रहते हैं पर दयावती तो बच्चों के सोने पर सोतीं और उठने पर दिन भर बच्चों के आगे-पीछे घूमतीं। उनकी पढ़ाई, खान-पान, बाजार सब में बाबा-दादी उनके दोस्त बने रहते। कैसे भरी आँखों से मुझे दयावती जी बता रहीं थीं।

प्रशांत-निशांत, रूमा-नीमा यह बात जानते हैं कि अगर वे लोग अलग हो जाएँगे तो ये बच्चे भी अपने बाबा-दादी से अलग हो जाएँगे। इससे बच्चों पर और मिस्टर और मिसेज अग्रवाल के जीवन और उनकी सेहत पर कितना बुरा असर पड़ेगा, ये भी वे चारों जानते हैं पर इस समय तो उन चारों को अपनी जिद्द के अलावा किसी की परवाह नहीं। इतना बड़ा दुख ये छोटे बच्चे और प्रौढ़ माता-पिता क्यों झेलें? ये लोग ऐसे स्वार्थी कैसे हो सकते हैं, दुखी होकर अग्रवाल जी ने मुझ से कहा था। सच तो यह है कि यह ऐसी आग है जिसमें आए दिन अनेक घर होम हो रहे हैं।

वैसे मैं किसी केस को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता पर इस साधारण और आए दिन होने वाले जैसे केस ने मुझे बेचौन कर दिया। जब माँ-बाप बच्चों की शादी करते हैं तो सारी तैयारियों में दिन-रात एक कर देते हैं, फिर आते हैं बच्चे और बाबा-दादी की जिंदगी की धुरी बन जाते हैं.लेकिन जब अलग होने की बात आए तो यह कह देना कि 'यह हमारी जिंदगी है, जैसा चाहें करेंगे' कितना गलत है पर होता ऐसा ही है, मैं ऐसे में माँ-बाप की लाचारी को देखता ही आया हूँ। मेरे ख्याल में या तो इतनी भाग-दौड़, पैसा खर्च आदि मत करवाओ, अपने बच्चे मत पलवाओ माँ-बाप से और अपनी मर्जी से फैसले लो वरना उस सब में साथ माँगा तो अलग होने की प्रक्रिया में भी बात सुनो। सीधी सी बात है जनाब! मैं तो दो टूक सोचने वाला इंसान हूँ।

मैं बहुत कुछ सोच-विचार कर एक निष्कर्ष पर पहुँचा। मैंने दो दिन और अपने प्रस्ताव पर विचार किया, अपने सहयोगी वकीलों से भी इस बारे में सलाह की। इसके बाद मैं अकेले अग्रवाल दंपति से घर के बाहर मिला। एक 100 रूपए के एफिडेविट पर लिखी इबारत देख कर अग्रवाल दंपति ने प्रश्नवाचक निगाहों से मुझे देखा, सारी बात समझ आने पर उनकी आँखों में राहत के आँसू मुस्कुरा उठे। उन्होंने उस समय कुछ कहा नहीं पर सोचने का समय और कागज लेकर चले गए। मैंने तो भई यही कहा कि अगर वे मेरे बताए रास्ते पर चलना चाहें तो परिवार को बता दें वरना जैसा दुनिया में होता आया है, वह आँसू भरा रास्ता तो है ही।

आप उत्सुक होंगे कि कागज में मैंने क्या लिख कर दिया था? देखिए वैसे तो यह 'क्लाइंट-लॉयर प्राइवेसी' का मामला है पर अब कहानी इतनी साझी कर ली तो चलिए यह भी बता ही देता हूँ और वह भी इसलिए कि मैंने जो उपाय बताया था शायद आपके या आपके किसी परिचित के काम आ जाए। मेरे साथ अगर ऐसा हुआ तो मैं तो बेहिचक यह उपाय ही अपनाऊँगा।

मैंने अग्रवाल दंपति की ओर से कोर्ट में एक अपील लिखवाई कि "मैं दिनेश कुमार अग्रवाल, उम्र 61 और दयावती अग्रवाल, उम्र 58 यह घोषित करते हैं कि हम शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से समर्थ हैं और अपने तीनों पोते-पोतियों—जिया (उम्र 6), मयूर (उम्र 8), स्वप्न (उम्र 4) की 'सोल कस्टडी' या 'एडाप्शन' चाहते हैं। हम सब सोच-समझ कर, पूरे होशो-हवास में यह घोषित करते हैं कि यदि हमारे बेटे और बहुएँ अलग होते हैं तो हम अपने बेटों प्रशांत और निशांत, बहुओं रूमा और नीमा से हर प्रकार के संबंध तोड़ना चाहते हैं जो इन बच्चों के माता-पिता भी हैं। ये चारों अपनी निजी जिद और असंतुलित विचारों के चलते अपने बच्चों को ऐसा परिवेश देने में असमर्थ हैं जो बच्चों के लिए आवश्यक है। ए बच्चे जन्म से ही हमारे साथ संयुक्त रूप से रहते आए हैं अत: हम बच्चों की जरूरतों को अच्छी तरह समझते हैं। बच्चों को एक अच्छा इंसान बनाने के लिए हमें, यानि उनके बाबा-दादी को उन्हें पालने-पोसने और बड़ा करने के अधिकार दिए जाएँ।"

मैं जानता हूँ कि आप सोच सकते हैं कि इस अपील को देखने के बाद अगर नीमा-निशांत और रूमा-प्रशांत साथ रहेंगे तो वे केवल बच्चों के लिए, समझौते के कारण रहेंगे, आपस में प्रेम और समझ तो है नहीं उनमें तो ऐसे में यह क्या समाधान हुआ। हुआ समाधान भाई साहब, हुआ! उन दोनों जोड़ों में प्रेम था, यह जिद और नासमझी न होती तो प्रेम रहता ही। मैं कौन सा मार-पीट वाले केस में सुलह की सलाह दे रहा हूँ पर नासमझियों से टूटने वाले घर में समझ पैदा करने, आपस में साथ मिल कर रहने के लिए फिलहाल मुझे तो यही समझ आया। जब यह अपील उन्हें माँ-बाप की तरफ से सोचने के लिए ठोस तरीके से विवश करेगी, तब वे अपनी नासमझी भी समझेंगे। प्यार तो पहले से था तो उसके न होने की चिंता मुझे नहीं और अगर एक प्रतिशत को मान लो कि वे अड़े ही रहते हैं तो कम से कम अग्रवाल दंपति और छोटे बच्चों को उनकी नासमझी की सजा नहीं झेलनी पड़ेगी।

लगभग 10 दिन बीत गए हैं, मैं अग्रवाल जी के फोन के इंतजार में हूँ। पता नहीं कि उनकी समस्या का ताला खुला या नहीं! क्या कहा? आप जानना चाहते हैं कि क्या होगा? आपकी उत्सुकता सही है.. हम्म.. ठीक है, जैसे ही उनका फोन आएगा, मैं आप को जरूर बताऊँगा।

❖

को-फाउंडर डायरेक्टर
हिंदी राइटर गिल्ड, कनाडा
1-905-847-8663 (घर), 1-905-580-7341 (मोबाइल)

..... *पृष्ठ 34 का शेष* **(ईश्वर भी बस तुम्हें.....)**

'आप उन्हें पहले से जानती हैं क्या?'–चलते चलते मैंने पूछा। बहुत सोचने के बाद वे बोलीं–'नहीं। बहुत बाद में जाकर जाना। बस उनसे यही बताने इतनी दूर चलकर और चढ़कर आई हूँ।'

अवाक मैं उन्हें देखता रहा। जिनसे मिलने के लिए लोग लाईन लगाए खड़े रहते हैं, युवा जिनके दर्शन को पागल हो जाते हैं, जिनका लिखा इतना पॉपुलर है, वे, यहाँ इतनी दूर, बर्फीले पहाड़ पर, एक अनाम से बाबा से इसलिए मिलने को उतावली हैं कि उन्हें बता सकें कि उन्हें जान गई हैं!!

क्या यह कोई पागलपन था या आकर्षण? पर मैं उनसे यह कह नहीं पाया। केदारेश्वर पीछे छूटता जा रहा था। सुमेरु की स्वर्णिम चोटी झलकने लगी थी। कहते हैं कि यही सुमेरु ब्रह्मा जी का असली निवास है। दुनिया का केंद्र।

रास्ता नहीं था कोई बस रास्ते की आहट थी, जिसे सुनकर आगे बढ़ते जाना था। गुफा से आँख हटी नहीं कि भटके। पर उनके चेहरे पर कोई चिंता न दिखी। पसीना चेहरे पर उभर आया था। उसकी बूँदें चमक रही थीं। वे न जाने किस भीतरी हिम्मत से चढ़ती चली जा रही थीं।

अचानक मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा–'न बरसात हुई, न चाँद दिखा, और न ही मरुस्थल नजर आया! मुझे देखकर कहीं यहाँ से गायब तो नहीं हो गए वे सब?'

मैं झेंप गया। बगले झाँकने लगा। वे निश्छल मुस्कान लिए मुझे ताक रही थीं।

और तभी चमत्कार हुआ। काले बादलों का एक हुजूम, अचानक, आसमान में दिखने लगा। सूरज ढक गया। सिहरन देती बर्फीली हवाएँ बहने लगीं। एक मोटी सी बूँद उनके माथे पर टप्प से गिरी और बिखर गईं अपने को समेट वे बैठ गईं। तत्क्षण मैंने छाता खोल उन्हें उसके भीतर ले लिया। वे काँप रही थीं और आश्चर्य से मुझे देखने लगी थीं। मैं सन्न कभी उन्हें तो कभी मायावी बादलों को देख रहा था।

कुछ ही देर में बादल छँटे, बरसा गईं। हमने आगे चलना शुरू कर दिया। साँझ अभी नहीं होनी थी पर अचानक उसकी महक न जाने कैसे आने लगी थी। मैंने आसमान की ओर देखा। सुमेरु के एक ओर सूरज तो दूसरी ओर पूरा चाँद झलक रहा था। अँधेरा हमें छूते निकल रहा था। मुझे देखते उन्होंने भी नजरें उठाईं। दृश्य देख वे भी स्तब्ध रह गईं। देखते देखते वे जैसे कहीं खो गईं।

बहुत देर बाद वे बुदबुदाईं–'भीतर का मरुस्थल भी दिखने लगा है अब। यह शब्दों का जादू नहीं हो सकता। क्या साधनाओं का यह इंद्रजाल है? या तपस्वियों की माया है! या फिर भौतिकी से बाहर की कोई दुनिया है यह!!'

अबोध बच्चे सा मैं उन्हें देख रहा था। पिछली बार जब मैं यहाँ आया था तो शायद ऐसा ही कुछ मुझे भी लगा था और मैं डर गया था। पर उनके चेहरे पर डर के निशान न थे।

वे, शब्द साधना के ऐसे शिखर पर थी शायद, जहाँ डर का वजूद नहीं, अनहोनी पर विश्वास नहीं। कुछ अटपटा होने, दिखने, लगने पर जहाँ सिर्फ उदास हुआ जा सकता है और उस उदासी में भी उत्सुक और मस्त रहा जा सकता है।

वे गुनगुना रही थीं और गुनगुनाते आगे बढती जा रही थीं। लुटा पिटा मैं, उनके पीछे चल रहा था।

वशिष्ठ गुफा बिल्कुल अब सामने दिखने लगी थी। हिम लदी पथरीली चट्टानों के बीच, झाड़ियों के पीछे। वे खड़ी होकर उसे निहार रही थीं। उसे निहारते हुए उन्होंने कहा–'अनगढ़ रास्तों का अपना अलग सुख है, और रास्ता इतना रहस्य भरा भी हो, तो वह सुख और गहरा हो जाता है।'

मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया। हँसते हुए बोला–'दी ग्रेट हेमा वशिष्ठ ऐट वशिष्ठ केव।'

सुनकर वे बड़ी देर तक खिलखिलाती रहीं।

सहसा मेरी आँखों में गहरे झाँकते वे बोलीं–'जिन्हें आप उदासी बाबा समझ रहे हैं न, वे दरअसल परिमल जी हैं। मुझे बहुत दिन तक पता नहीं चला कि वे यहाँ हैं। पर आपने अपने एक संस्मरण में इस गुफा का जो चित्र खींचा था, उसमें ही उनके यहाँ होने के कुछ अस्पष्ट इशारे थे। उसी के सहारे मैं यहाँ तक चली आई हूँ।'

'क्या!!'– मैं लगभग गिरते गिरते बचा। कानों को विश्वास न हुआ। परिमल जी को भला कौन नहीं जानता। भक्ति की इतनी सुंदर व्याख्या परिमल जी के अलावे भला और किसने की। उनकी कहानियों पर ही सबसे ज्यादे फिल्में बनी। कथाओं का उन्होंने विन्यास बदला। इस सदी को अभिनव शिल्प दिया। ऐसी कोई विधा नहीं जिसमें उनका लिखा हुआ उल्लेखनीय न हुआ हो।

मुझे ताज्जुब हुआ। साहित्य का इतना बड़ा लेखक, विचारक भला इस वीरान जगह पर क्योंकर आकर रहने लगा?

हैरान मैं इस बात पर भी हुआ कि पिछली बार मैं उन्हें पहचान क्यों न सका!

'पड़ गए न फेर में'-उन्होंने चुटकी ली।

'जी'-सिर झुकाए मैंने कहा।

'साहित्य और साहित्यकार वही, जो फेर में डाल दे। परिचित को अपरिचित बना दे।'-उन्होंने ठहाका लगाया।

फिर अचानक अज्ञेय को वे गुनगुनाने लगीं- 'मैं कवि हूँ/ ..
.मैं सच लिखता हूँ/ लिख-लिख कर सब/ झूठा करता जाता हूँ/ तू काव्य/ ..तू छलता है/ पर हर छल में/ तू और विशद, अभ्रान्त/ अनूठा होता जाता है।'

झाड़ियाँ अचानक खत्म हो गईं और सामने अनगढ़ पत्थरों की उपर जाती सीढियाँ नजर आईं। उन्होंने पहले पत्थर पर पाँव अभी रखा ही था कि न जाने कहाँ से एक औघड़ बाबा अचानक सामने प्रगट हुए। ऐसा लगा जैसे कोई बाघ सामने आ गया हो। वे स्तब्ध औघड़ को देख रही थीं। उनके पीछे भयभीत खड़ा मैं भी उन्हें घूर रहा था।

औघड़ बाबा जैसे कि उनका मुआयना कर रहे थे। सामने वे ठिठकी खड़ी थी। बाबा अपनी लटें खुजलाते न जाने क्या उनमें देख रहे थे। अचानक वे गरजे-'किससे मिलने आई है रांड?'

हाथ जोड़े वे चुप रहीं।

वे फिर गरजे-'साली....कुतिया...भाग जा।'

इतना सुनना भर था कि उनके तन में हरकत हुई हाथ भर की एक सूखी लकड़ी नीचे पड़ी थी। उन्होंने उसे झटके से उठाया और औघड़ पर तानते चिल्लाईं-'मिलने लायक तूँ कहाँ नीच... रंडा तेरा वेश...साला तेरी सिद्धि....कुत्ता तेरा योग...भाग अभागे. ..जा भाग जा...।'

औघड़ बाबा इस अप्रत्याशित प्रतिक्रिया से सन्न रह गए। तमतमाई वे एक कदम उपर चढ़ी। भयभीत बाबा पीछे हटे। कुछ देर बाद बाबा पलटे और तेजी से उपर भागने लगे। पीछे उनकी बड़बड़ाहट साफ साफ सुनाई दे रही थी-'रे माया!! माया महाठगिनी हम जानी...रे माया..!'

'अद्‌भुत है' मैंने चुटकी ली।

खिलखिलाते वे बोलीं-'सो तो है। मन में रिएक्शन किसी भी ईश्वर और मुक्ति की तरफ नहीं ले जाता। पुरुष अपनी अक्षमता का दोष यूँ ही सदियों से स्त्री के सिर मढ़ता रहा है। क्या तो घर में, क्या तो यहाँ!'

'और स्त्री की अक्षमता का दोष?'- मैंने पूछा।

'उसका कारण भी स्वयं पुरुष रहा है'-एक ठहाके के साथ उन्होंने कहा।

'बूझो तो जानें' भाव में मैं ठिठका खड़ा रहा और वे ठहाके लगाती रहीं। कुछ देर बाद मुझे दुलराते वे गंभीर आवाज में बोलीं- 'जब तक अक्षमताएँ हैं, तब तक एक दूसरे पर आक्षेप हैं। पृथ्वी पर स्त्री-पुरुष ही बेजोड़ युग्म हैं। इनका आपसी द्वंद्व ही विकास है। और यह सोच सांसारिक नहीं, शुद्ध आध्यात्मिक है।'

मुझे लगा कि उनसे सहमत हुआ जा सकता है।

गुफा का मुहाना अब दिखने लगा था। कहीं अचानक से वह गायब न हो जाए, इस डर से चढ़ाई हमने तेज कर दी थी।

सहसा हमने देखा, सामने धूनी के पास खड़े वे नजर आने लगे थे-अखंड काशायमधारी। मध्यम कद, बड़ी बड़ी आँखें, सफाचट चेहरा, बाएँ हाथ में कमंडल, दाहिने हाथ में योगदंड। अपनी मनोहारी सौम्यता लिए, जैसे कि न जाने कब से खड़े वे हमारे स्वागत की प्रतीक्षा कर रहे थे। हालाँकि, उस क्षण वे मुझे संन्यासी से अधिक गृहस्थ से लगे।

सजल आँखों वे सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं। चोरी से मैं उन्हें देख रहा था। पास पहुँच उन्होंने झुक कर बाबा के चरण छुए। पहले तो बाबा ठिठके फिर सिर पर अपना दाहिना हाथ रख दिया। मैंने भी उनका अनुसरण किया। वे मेरा परिचय कराने लगीं तो टोका उन्होंने-'मिल चुका हूँ इनसे। एक बार आए थे।'

वे हमें अंदर ले गए। रहस्यमय सी गुफा लगी। एक अजीब शीतलता। एक भास्वर वीरानियत। न अधिक प्रकाश न अंधकार। न जाने कैसी एक सुगंध जो शायद मक्खन से आती है या फिर नवजात शिशु के मुख से।

मेरी अचंभित स्थिति को शायद बाबा भाँप चुके थे। हँसते हुए बोले-'कलम बंद रखिए। बस स्मरण एवं विस्मरण ही यहाँ संभव है।'

'जी। लेकिन उस जैसा कुछ है ही नहीं मेरे पास'-मैंने कहा।

' है। बस धारणा जमनी होती है।'-धीरे से उन्होंने कहा।

'रात होने को है। तुम्हें वापस भी तो जाना होगा!'-उन्होंने हेमा जी से पूछा।

'आपको लेकर जाएगें। रात आपके पास ही रुकेंगे।'-उन्होंने साधिकार हँसते हुए कहा।

मैं आश्चर्य से उन्हें देखने लगा था। वे इतनी सहज थी जैसे कि न जाने कितनी रातें उन्होंने बाबा के साथ बिताई हों!!

बाबा का कमरा कहने भर को कमरा था। कोई दरवाजा नहीं। बस अटपटे पत्थरों की एक ओट। कुछ लुगदियाँ थीं जो यहाँ वहाँ पड़ी थी। दीवाल से सटा रखा उनका योगदंड था। उसके बगल में कद्दू का कमंडल। एक लालटेन। शिवानंद जी की कुछ किताबें। पर उधर लुगदियों के बगल में रखीं जो किताबें थीं उन्हें देख मैं दंग रह गया।

मैंने ध्यान से देखा–हेमा जी की लिखी हुई लगभग हर किताब वहाँ मौजूद थी। अकादमी सम्मान पाया उपन्यास सबसे उपर रखा था। अचानक मुझे आभास हुआ कि केवल मैं ही नहीं बल्कि हेमा जी भी अपनी उन किताबों को बहुत ध्यान से देख रही थीं। मैंने सहसा उनसे नजरें चुरा लीं।

हँसते हुए बाबा ने मुझसे कहा–'केवल वह मत पढ़ो जो किसी ने लिखा है, वह भी पढ़ो जो उसने पढ़ा है।'

हेमा जी ने हँसते हुए उनका साथ दिया।

मैंने महसूस किया कि वे दोनों न जाने कब बातचीत की एक अदृश्य आत्मीय डोर में बँध गए। उसमें मेरी जगह बन नहीं पा रही थी। एक क्षण तो मुझे यह भी लगा कि जैसे वे भूल गईं कि मैं उनके साथ आया हूँ। मुझे थोड़ा असहज लगने लगा। मुझे लगा कि उन दोनों के बीच मैं जैसे कोई पराया हूँ। सो सहसा मैंने गुफा देखने की इच्छा जाहिर की। स्वीकृति देते हुए उन्होंने कहा–'चश्मों से मत देखना, बल्कि वैसे देखना जैसे एक बच्चा देखता है।'

मैं तेजी से उठा और कमरे से निकल आया। भीतर विहँसता मैं सोच रहा था कि 'सूक्तियाँ सीखनी हों तो वशिष्ठ गुफा आइए'।

गुफा जैसी बाहर से दिखी वैसी ही भीतर न थी। उसको देख कर यकीन नहीं हुआ कि यह प्राकृतिक रूप से बनी हुई है। अनगढ़ आकृति फिर भी एक सलीका छुपाए हुए थी। पनियल पत्थर की दीवारें, जिसमे न जाने कितनी पुरानी आवाजें चिपकी हुई थीं। न जाने कितनी पीड़ाएँ, कितने दु:ख, उनसे निपटने की न जाने कितनी प्रार्थनाएँ। योग मुद्राओं की छायाएँ। मंत्रों के गुंजार। ऋचाओं की सुगंध।

मैं उसके भीतर चल रहा था। न जाने कितने अनगढ़ कोने, उनमें बैठे सरल तपस्वी। इतने साधू! ये आखिर कहाँ से आए होगें? इन्हें यहाँ क्या मिलता होगा? किस ईश्वर के पास ये यहाँ से सीधे मुक्त होकर चले जाएँगे! न खाने का ठिकाना, न पीने का। ये कैसे साधते होंगे अपना पेट, अपनी क्षुधा। बिना टीवी, कंप्यूटर, मोबाइल या अन्य आधुनिक साधनों के ये कैसे रह लेते होंगे?

एक कमरे में पद्मासन लगाए एक तपस्वी को मेरी आहट मिली तो उन्होंने अपनी एक आँख खोल कर मुझे देखा। सुर्ख लाल आँखें, भीतर तक भेद जाने वाली दृष्टि। वे निर्निमेष मुझे देखते रहे। सहसा आँसू की एक बूँद उनकी आँखों से गिरती मैंने देखी। फिर वह आँख भी धीरे धीरे बंद होती गई। फिर ऐसा लगा कि उनके लिए जैसे मैं था ही नहीं, हूँ ही नहीं।

मुझे आश्चर्य हुआ। एक इंसानी चेहरे से इतनी जल्दी इतना निस्पृह भला कोई कैसे हो सकता है! यह कोई अभिनय था या सच! वे कोई जिद कर रहे थे या कोई साधना!

मुझे पता नहीं। पता लगाने का कोई तरीका भी नहीं।

अचानक मेरी मग्न सोच को बीचोंबीच चीरती उनकी आवाज गूँजी–'मन की पवित्रता ही मुक्ति है। वह चाहे जहाँ हो। अच्छा हुआ तुम उन्हें ले आए। निमित्त भर बने रहो।' मैंने देखा, उनकी आँखों में अब जल नहीं था और चेहरे पर करुणा बरसाती एक मुस्कान थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि उनका मेरे साथ आना इन्हें कैसे पता चला? सूचना के इस गुप्त तार का पता कैसे चले?

उधेड़बुन में मैं आगे बढ़ चला। कहीं से पानी और हरियाली की आहटें आ रही थी। सूँघता सूँघता मैं जब वहाँ पहुँचा तो उसे देख स्तब्ध रह गया। मेरे सामने घने वृक्षों, लताओं, पुष्पों, झाड़ियों की शृंखला फैली थी, दूर सुमेरु की तलहटी तक। एक नदी की कल कल सुनाई दे रही थी। जगह जगह बैठे संन्यासी, संन्यासिनियाँ। चमकते चेहरे, शांत मुद्राएँ। जैसे कहीं जाने की हड़बड़ी न हो। मैं उनके बगल में था पर जैसे कि वे मुझसे बेपरवाह हों। क्या मैं उन्हें दिख नहीं रहा था? यहाँ क्या कोई मुझे देख नहीं पा रहा था? मैं जोर से चिल्लाया। वृक्षों पर बैठे पक्षी चहचहाते उड़ चले। पहाड़ हिले और ठहर गए। बादल काँपे और बरस कर खत्म हो गए। नदी ठिठक कर रुकी फिर बह चली।

सब कुछ अविश्वसनीय लगा। मेरा सिर अब भारी हो रहा था। मैं वापस लौट पड़ा। उनका कमरा गुफा में दुबारा खोजने में मुझे शायद सदियाँ लगीं।

उनके कमरे में जब मैं लौटा तो अंदर लालटेन का प्रकाश था और वे दोनों मौन बैठे थे। लालटेन! मुझे किसी कवि की कविता कौंधी–'क्या अभी भी वह बची है इसी धरती पर / जैसे अँधेरे के पास विनम्र बैठी बतिया रही हो वह धीरे–धीरे / किसी अनादि संयम की आग में जैसे कोई युवा भिक्षुणी हो / जैसे ओस की बूँदों में चमक रहा हो नक्षत्रों से झरता आलोक / वह अलंकार नहीं थी कभी भी/ न अहंकार/ न ऐंठ / न अति / कि चुकानी पड़े कीमत और फिर जाए मति / उसे तो शायद रहना ही है /'

कविता के अर्थ की छायाएँ कितनी गहरी और व्यापक हैं, यह पहली बार मुझे यहाँ पता चला। उनके मौन की तरलता देख

मेरे भीतर कौंधा-'युवा भिक्षुणी'! और मैंने साफ साफ मुझसे, कुछ छिपते हुए, वहाँ देखा।

मुझे अचानक आया देख दोनों सजग हो उठे। हँसते हुए बाबा बोले-'देख आए! शब्दों का प्रक्षेपण सा लगा या सच सा कुछ!' बिना कुछ जवाब दिए, सिर झुकाए, मैं उनसे थोड़ा दूर विनत भाव में बैठ गया। चुप्पी बहुत देर तक बनी रही।

रात धूनी के पास बैठकी हुई भोजन मन्त्र से आया या तंत्र से, मुझे पता न चला। खाने में लिट्टियाँ थी। साथ कोई चटनी थी जो शायद आम की लगी। खाने के बाद हम भीतर आ गए।

मुझे नींद आने लगी थी। निर्निमेष मुझे ताकते बाबा ने कहा-'हमारी अपनी छाया हमारी नींद के अलावा कुछ नहीं है। जाइए, कहीं भी जाकर निश्चिंत सो जाइए।'

लुगदी से कुछ ओढ़ने लायक मैंने ढूँढा, बाहर निकला और किसी कोने में जाकर लेट गया। नींद कब आई पता ही नहीं चला। न जाने वह कोई बाहर की आवाज थी या फिर भीतर की, जिसने मुझे जगा दिया। मैंने खड़े हो अंगड़ाई ली। अचानक मुझे लगा कि बाबा के कमरे से कुछ गूँजता हुआ-सा आ रहा था। कौतूहलवश दबे पाँव मैं वहाँ पहुँचा। सूराख से मैं झाँक रहा था। बाबा की गोद में हेमा जी का सिर था। बाकी शरीर नीचे जमीन पर पसरा था। ध्वनियाँ हल्की पर स्पष्ट थीं-

'आप अचानक सब छोड़ यहाँ क्यों चले आए?'

'अचानक जैसा कुछ नहीं था। छोड़ा भी कुछ नहीं! बस, बहुत दिन से भीतर चल रहा था और मस्ती में एक दिन आ गए।'

'मुझे बताया भी नहीं आप ने?'

'लिख तो दिया था एक कहानी में। तुमने पढ़ा नहीं होगा शायद उसे।'

'पढ़ा था। पर कहानी से कैसे यकीन कर ले कोई!'

'यकीन नहीं तो इतनी कहानियाँ खुद कैसे लिखी तुमने! बिना यकीन के लिखती हो क्या!'

मैंने देखा, आँखें बंद कर वे कुछ सोचने लगी थीं। बाबा उनके बालों पर हाथ फेर रहे थे।

स्वर फिर गूँजे-

'क्या मिला यहाँ आपको?'

'यहाँ क्या मिलेगा! नंगे पहाड़, बर्फ लदी चोटियाँ, छटपटाते साधू, विरानियत, खून जमा देने वाली बारहमासा सर्दी....शायद कुछ पाने नहीं, बल्कि याद करने आया था, वह सब कुछ जो सचमुच वहाँ नीचे मिला था।'

'तो क्या याद आया आपको?'

'तुम...बस तुम्हारे साथ मेरा होना। वही एक सच था। बाकी सब निरर्थ थे। यहाँ बस उसी सच के साथ रहने में मन लग गया। शेष बस शरीर को साधना होता है, जो जितना मुश्किल वहाँ है उतना ही यहाँ भी। पर यहाँ ये पहाड़ यकीन दिलाते हैं कि मेरे होने का सच पक्का था। ये धूप दिलासा देती है कि उसमें जीवन की उष्मा थी। हवाएँ कानों में कह जाती हैं कि उस सच में रहो। उसी में जिन्दगी है। तुम बताओ, तुम्हें यकीन हुआ अब तक कि नहीं।'

'मैं यकीन कर भी लेती तो उससे क्या होता? कुछ बदलता क्या उससे?'

'बदलना कुछ नहीं था। बस एक सच का उन्मुक्त स्वीकार और उसमें रहना भर था। यहाँ आकर मुझे यकीन हुआ कि मेरे और तुम्हारे अलावा बाकी सब बस एक छलना है। ज्ञान, विज्ञान, आशियाने, हरीतिमा, ये बड़े बड़े शहर, मोटी मोटी पोथियाँ...ये सब शायद बस इसीलिए हैं या आईं, क्योंकि तुमसे एक दूरी बढ़ती गई या फिर मुझसे तुम्हारी दूरी बढती गईं मुझे अब लगने लगा है कि ये सब कुछ ना भी हों, तो भी, बस एक तुम्हारा ही होना इस ब्रह्माण्ड को सुंदर और सम्पूर्ण बनाता है।

'प्रेम जैसा कुछ कहना चाह रहे हैं क्या आप?'

'यह उसका एक बहुत ही आसान नाम है। पर तुम चाहो तो यही कह लो!'

'और मुक्ति!'

'अपने होने के अधिष्ठान को जान लेने, स्वीकार कर लेने एवं उसकी पवित्रता में रहने से बड़ी और कैसी मुक्ति!!'

'और ईश्वर!'

'तुम्हारी स्मृति के भीतर ईश्वर टहलता रहा। कभी चिंतित और उदास तो कभी मस्त। मैंने अक्सर देखा उसे वहाँ मन का छल साफ करते, भावना की ईंट जोड़ते, फटे की तुरुपाई करते। पर उसने तुम्हारी जगह घेरने की कोशिश कभी नहीं की। मैं अक्सर चुपके चुपके उसे देखता था और हँसता था। कभी कभी यह इच्छा हुई कि उसे भीतर बसा लूँ, पर कर नहीं पाया। न जाने क्यों यह विश्वास अक्सर बना रहा कि ईश्वर भी बस तुम्हें देखने आते थे और तुम्हें छिपाना हर बार असंभव रहा मेरे लिए। अक्सर चुपचाप दरवाजे से लौट जाते ईश्वर का निर्विकार चेहरा ही बस मुझे याद आता है।'

बाबा चुप हो गए। वे उन्हें गहरी निगाह से देख रहे थे।

मैंने देखा, उन्होंने धीरे से बाबा का चेहरा अपने हाथों में ले लिया और बुदबुदाई-'शब्दों ने कितना तो भरमाया है! आह कि

तुम्हें आज भी देखना मेरा पेड़ हो जाना है...तुम्हें सुनना नदी होना...तुम्हारा स्पर्श मुझमें फसल का पकना है...तुम्हारा देखना मेरा आसमान हो जाना है।' कहते कहते वे बाबा के कंधे पर ढह चुकी थीं। वे जैसे गहरी नींद सो गईं थीं।

कुछ देर बाद बाबा की आवाज गूँजी-'प्रेम, मृत्यु नहीं, उसका परम बोध है। उसका होना मृत्यु के बाद भी है। वह निर्वाण है। जैसे सुगंध का बिखरना। दुनिया से पलायन नहीं, बल्कि एक बेहतर दुनिया की तलाश, और उसका निर्माण भी। एक घने प्रकाश की दुनिया। एक पवित्र वन। उर्वर स्वप्नों का देश। मन में अनाशक्ति का धारण। दर्पण सदृश बोध।'

लालटेन की रौशनी में उनका माथ सहलाते बाबा के मुख से मंत्र फूट रहे थे-'ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।...ॐ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै, तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै...'

मुझे याद आया, ये भावांतरण एवं मन संकेंद्रण के गूढ़ मन्त्र थे। तो क्या वे उन्हें लेकर कहीं और जाना चाह रहे थे? वे यहाँ क्या उन्हीं के लिए आए थे और अब तक रुके थे? वे आखिर कहाँ जाना चाह रहे थे? इसके अलावा और कौन सी दुनिया? कहाँ है वह अमृत का देश?

मैंने देखा कि ब्रह्म मुहूर्त लग गया था। नीचे केदारनाथ परिसर में रोशनियाँ अभी भी चमक रही थीं। जड़वत उन्हें देखता मैं खड़ा था। बाबा की जटाओं में मुझे वही बादल फिर नजर आए और कमंडल में वे ही दोमुखी नाग। उन्हें प्यास लगी तो मैंने देखा कि बाबा ने कमंडल उनके सामने कर दिया। मैं सहम उठा, पर वे गट गट उसका पानी पीने लगीं। नाग उनके मुँह में गिरने लगे। कहते हैं कि संन्यासी अपने कमंडल का जल दूसरों को नहीं देते। वह अमृत का प्रतीक है। यह इस तपोभूमि का संभवत: सबसे पावन दृश्य था मेरे लिए। संन्यास, प्रेम, गुफा, योग, साधना, आदि के प्रत्यय मेरे मन में गड़बड़ाने लगे थे। अंतर्मन में बस यही लग रहा था कि यह जो कुछ मैं देख रहा था, वह शायद कहीं किसी कविता या कहानी में पहले से ही लिखा हुआ है, जिसका प्रक्षेपण इस गुफा में हो रहा है।

सहसा हेमा जी चैतन्य हुईं। वे कुछ गुनगुना रही थीं-'यह जो दिया लिए तुम चले/ खोजने सत्य/ बताओ क्या प्रबंध कर चले/ कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा/ वही जलेगी सदा/ अकम्पित, उज्ज्वल एकरूप, निर्धूम?'

'अज्ञेय'-कहकर बाबा ने नजरें झुका ली थी। फिर वे स्तब्ध उन्हें निहारने लगे थे।

हेमा जी की मधुर आवाज फिर सुनाई दी-'नीचे देखिए..... बिजली..रोशनियाँ...चलें क्या नीचे फिर एक बार!'

उन्हें बाँहों में घेरते, हँसते हुए बाबा ने कहा-'रोशनियाँ नहीं, दूरियाँ...असली दो रोशनियाँ मेरे सीने में रोशन हैं....ऐसे में चाहे नीचे चलो या यहाँ से और उपर, फर्क नहीं पड़ता।'

जवाब में अमिट चाहना से भरी हुई हेमा जी की आवाज आई-'नीचे ही चलते हैं। वहाँ रोशनियाँ बढ़ाते हैं। नजदीकियों के छंद लिखते हैं। आत्म-स्मरण ही काफी नहीं। उठिए और अभी चलिए मेरे साथ। ईश्वर चाहें या न चाहें, पर हम, बस यही देखना चाहते हैं।'

उनके होठ बाबा के दाहिने कान से सटे थे। गहरी कातरता से बोली जा रही देववाणी गूँज रही थी-'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च.....सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च...'

मैंने देखा कि बाबा अनमने से बैठे हुए थे। वे बुदबुदा रहे थे- 'शायद सच कह रही हो..वह 'उसके प्रति' परम प्रेम रूपा है. ...अमृत स्वरूपा है..।'

वे सहसा उठ कर सामने खड़ी थीं। वे बाबा को देख मुस्कुरा रही थीं। उन्हें देख बाबा भी खिलखिलाते उठ खड़े हो रहे थे।

वे दोनों शायद अब बाहर निकल रहे थे। बाबा ने अपना योगदंड और कमंडल उठाना चाहा पर हेमा जी ने उन्हें झिड़क दिया। वे उनके नजदीक गईं और एक कलम उनके हाथों में रख दिया। बाबा ने उसे मुट्ठी में दबा लिया।

उन्हें निकलता देख मैं छुप गया था।

सूरज की रोशनी से गुफा का मुहाना रौशन हो रहा था। उन्हें सीढियाँ उतरते और नीचे जाते मैं देख रहा था। मुक्ति की ऐसी चढ़ाई मैंने अब तक न सुनी थी, न देखी थी। सुनते हैं कि इस गुफा में जो आए, वे नीचे फिर लौट कर नहीं गए। लेकिन यह शायद उल्टी गंगा थी। सौभाग्य था कि मेरी आँखें भी इसे देख रही थीं।

पीछे पीछे, बाबा का योगदंड, कमंडल और उनकी किताबें उठाए, मैं भी उतरने लगा था। न जाने क्यों मुझे लगता रहा कि हमारे पीछे पीछे ईश्वर भी सीढियाँ उतरते चले आ रहे थे। पर मुझे आशंका थी कि अगर मैं पलटता तो शायद वे छुप जाते।

❖

अध्यक्ष-हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केंद्रीय विश्वविद्यालय
रायबरेली रोड, लखनऊ-25 मोबाइल : 9415435154
ई-मेल : sarveshsingh75@gmail.com

छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद

— डॉ. आनंद कुमार सिंह

भारत जैसे देश में उस समय एक ओर गहराई से जमी हुई सांस्कृतिक परंपराएँ, रूढ़ियाँ और अवसादमूलक शांति विराजमान है; और दूसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता के द्वारा आने वाली प्रशासन और वैज्ञानिक विकास की प्रगतिशीलता और हलचल है। शताब्दियों से पराधीन भारत की पारंपरिक राह है, आत्माभिव्यक्ति की लालसा है और स्वतंत्रता की चाह है और संपूर्ण स्वराज्य की घोषणा है। इस काल में हड़प्पा-मोहनजोदड़ो के उत्खनन से भारत के अतीत पर वर्तमान की दृष्टि भी पड़ी। उसने भी रचनाकारों को आंदोलित किया। इसका प्रारंभिक प्रभाव द्विवेदी युग के रचनाकारों पर स्थूल रूप में पड़ा, लेकिन छायावाद में यह प्रभाव मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म हो गया। 1918 से महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय कांग्रेस में आगमन से एक विचित्र वातावरण बना। छायावादी कविताओं का यही समय है और इनका मूल विमर्शात्मक दृष्टिकोण प्रारंभिक रूप में जयशंकर प्रसाद के ही काव्य में सबसे पहले प्रकट हुआ है।

छायावाद का नाम तो हास परिहास में ही दे दिया गया था जैसा कि प्रयोगवाद के साथ भी हुआ। यदि नामकरण के केंद्र में जयशंकर प्रसाद की प्रारंभिक कविताएँ ही हैं तो छायावाद प्रमुखत: अभिव्यंजना की एक विशिष्ट प्रवृत्तिप्रधान शैलीगत काव्यांदोलन ही दृष्टिगोचर होता है। लेकिन यदि प्रसाद जी के पूरे साहित्य को मिलाकर देखा जाए तो इस युग की साहित्यिक बनावट में जयशंकर प्रसाद का गंभीर चिंतन और युगानुकूल राष्ट्रवाद चुपके से आकार लेता दिखायी पड़ रहा है। अभिव्यंजना की दृष्टि से देखें तो प्रसाद जी की रचनाएँ मूलत: 'चित्राधार' (1918) 'झरना' (1918), 'कानन कुसुम' (1918) 'आँसू' (1925) लहर (1933) ही छायावादी हैं। इनसे ही तत्कालीन समय में छायावाद का प्रवृत्तिगत प्रभाव उभरा और छायावाद की प्रवृत्तियाँ रूढ़ हुईं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि 'कामायनी' का सन् 1936 में प्रकाशन छायावाद के समापन के साथ ही हुआ । 'महाराणा का महत्व' मुक्त छंद की कविता निराला जी की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' के पूर्व ही 1914 में 'इंदु' में प्रकाशित हो चुकी थी। उसका स्वतंत्र प्रकाशन 1928 में हुआ यद्यपि वह 'चित्राधार' में भी संकलित हुई थी। उस काल तक 'कामायनी' (रचना का प्रारंभ 1927 में हुआ) के कुछ अंश भी प्रकाशित हो चुके थे। इससे एक आधार पुष्ट होने लगता है कि जयशंकर प्रसाद के माध्यम से छायावाद की प्रवृत्तियाँ जो अभी तक बहुत मुखर नहीं थीं, वो धीरे-धीरे सामने आ रही थीं। तब तक पंत जी भी अपनी भिन्न काव्यानुभूति के साथ छायावाद के क्षितिज पर उदित हो चुके थे। उनकी भावगत प्रयोगशीलता छायावादी व्यंजनाओं को आधुनिक और चटकीला रंग देती है। पंत जी ने अपने काव्य 'पल्लव' की भूमिका में जिसे उन्होंने 'प्रवेश' कहा है, खड़ी बोली की कविता की शक्ति को ब्रजभाषा के सापेक्ष बहुत सुचिंतित ढंग से सामने रख दिया था। निराला जी का उदय भी उसी काल में हुआ और उन्होंने तत्समय हिंदी की भूमि से बाहर कोलकाता रहते हुए अपनी काव्यप्रतिभा की नवीनता से सबको चकित कर दिया था। उनकी कृति 'अनामिका' (प्र0 1923) उस अभिव्यंजना शक्ति के नएपन को अपनी बहुरंगी छटा से और उद्दीप्त करती है।

पंत का 'पल्लव' (1926) और 'गुंजन' (1932) और निराला की 'अनामिका' (1923, 1938), 'परिमल' (1930), 'गीतिका' (1936) रचनाएँ ही आगे चलकर छायावादी काव्य-द्रव्य की 'बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक' बनती दिखती हैं। पंत जी के 'पल्लव' में भूमिका स्वरूप प्रकाशित 'प्रवेश' को छायावाद का घोषणापत्र ही कहा गया है। तत्पश्चात् 'नीहार' (1930), 'नीरजा' (1932), 'रश्मि' (1933) और 'सांध्यगीत' (1936) में महादेवी वर्मा ने किंचित् देर से आकर ही छायावादी कुहासे को और सघन कर दिया। लेकिन 1930 तक आकर छायावाद की अभिव्यंजना चिह्नित हो चुकी थी। प्रमुखत: इनकी मूल प्रवृत्तियों को प्रसाद जी की कृतियों ने 1918 में ही प्रवर्तित कर दिया था। दरअसल 1930 के बाद स्वयं छायावाद में विवादी स्वर उभरे जिसकी एक परिणति रहस्यवाद भी है। हालावाद भी उसी की एक प्रवृत्ति है जो बच्चन और भगवतीचरण वर्मा में दिखाई देता है। प्रवृत्ति के ही दृष्टिकोण से देखा जाए तो माखनलाल चतुर्वेदी की कविता का मूल स्वर छायावादी ही ठहरता है। आजकल रामकुमार वर्मा और भगवती चरण वर्मा को भुला दिया गया है यद्यपि छायावाद की उठान में उनकी भी सक्रिय भूमिका थी। छायावाद की वृहत्रयी में प्रसाद-निराला-पन्त ही मान्य थे तथा लघुत्रयी जिसे वर्मात्रयी भी कभी-कभी कहा गया उसमें महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा और भगवती चरण वर्मा को गिना गया था। महादेवी वर्मा छायावाद की चतुष्टयी बनाती हैं लेकिन इसे बाद में ही स्वीकारा गया।

छायावादी काव्य का प्रसार वैश्विक राजनीति के हिसाब से दो विश्व युद्धों के बीच फैला हुआ है, किन्तु इस समग्र उथल-पुथल की स्थूलता इस काल की रचनाओं में उपलब्ध नहीं है। 1918 (झरना का प्रकाशन) से 1937 (कामायनी का प्रकाशन) का काल छायावादी सर्जना का काल है। इन वर्षों में प्रकाशित प्रसाद जी की दूसरी रचनाएँ झरना (1918) और लहर (1933) भी काव्यानुभूति की दृष्टि से छायावादी मानसिकता को तीव्रता से अभिव्यक्त करती हैं। लगभग यही वह समय भी है जब भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का प्रवेश होता है। लेकिन राष्ट्रीयता की लहर बाल गंगाधर तिलक के माध्यम से आगे बढ़ चुकी थी, बल्कि श्री अरविंद के साथ मिलकर वह अधिक उग्र और सबल रूप में अपने को अभिव्यक्त कर चुकी थी। देखा जाए तो इसकी शुरुआत बंग भंग आन्दोलन से हो गई थी।

अत: मोटे तौर पर 1905 से लेकर 1935 तक 20-25 वर्षों में भारतीय जनता के जीवन में राष्ट्रीय घटनाओं के अतिरिक्त और भी अनेक परिवर्तन आए थे जो जीवनशैली, आर्थिक व्यवस्था, खेती की तकनीक, उद्योग धंधों का विस्तार औद्योगीकरण, रेल सेवा का विस्तार, विमानों का उपयोग, तकनीकी उन्नति से लैस प्रौद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक अविष्कार, परमाणु का विखंडन, जैव-प्रौद्योगिकी, चिकित्सकीय आविष्कार, मशीनीकरण आदि के कारण संभव हो रहे थे। एक दृष्टि से देखा जाए तो वैश्विक स्तर पर यह युग विचित्र मानसिक द्वन्द्व के आघातों से पीड़ित दिखाई देता है। भारत जैसे देश में उस समय एक ओर गहराई से जमी हुए सांस्कृतिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ और अवसादमूलक शांति विराजमान है और दूसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता के द्वारा आने वाली प्रशासन और वैज्ञानिक विकास की प्रगतिशीलता और हलचल है। शताब्दियों से पराधीन भारत की पारंपरिक राह है, आत्माभिव्यक्ति की लालसा है, स्वतंत्रता की चाह है और संपूर्ण स्वराज्य की घोषणा है। इस काल में हड़प्पा-मोहनजोदड़ो के उत्खनन से भारत के अतीत पर वर्तमान की दृष्टि भी पड़ी। उसने भी रचनाकारों को आन्दोलित किया। इसका प्रारंभिक प्रभाव द्विवेदी युग के रचनाकारों पर स्थूल रूप में पड़ा, लेकिन छायावाद में यह प्रभाव मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म हो गया। 1918 से महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय कांग्रेस में आगमन से एक विचित्र वातावरण बना। छायावादी कविताओं का यही समय है और इनका मूल विमर्शात्मक दृष्टिकोण प्रारंभिक रूप में जयशंकर प्रसाद के ही काव्य में सबसे पहले प्रकट हुआ है। इन घटनाओं की धमक हमें 'कामायनी' में जगह-जगह सुनाई पड़ती है। उन्होंने शुरुआत तो द्विवेदी युग में ही कर दी थी लेकिन वह उत्कर्ष पर आगे पहुँची।

1915 से 1940 के पच्चीस वर्षों में भारतीय समाज क्रमश: पश्चिमी सभ्यता के ढाँचे में ढल रहा है। इसकी आसन्न धमक महात्मा गाँधी के 'हिन्द स्वराज' में सुनाई पड़ रही है। तत्कालीन पश्चिमी सभ्यता को गहरे संदेह की दृष्टि से देखने वाले गाँधी मशीनीकरण के घोर विरोधी हैं। हिंद स्वराज (1909) के तीन

वर्षों बाद मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' प्रकाशित हुई थी किंतु वह यंत्रों के विकास और मशीनीकरण और औद्योगीकरण के पक्ष में हैं। मैथिलीशरण जी अतीत के गौरवगीत में भारतीयों द्वारा की गई बहुआयामी उन्नति की प्रशंसा के साथ ही उसका श्रेष्ठ पुनरावर्तन भी चाहते हैं। 'हिंद स्वराज' में महात्मा गाँधी रेल का विरोध करते हैं। वह डाक्टर और वकील के भी आलोचक हैं क्योंकि ये मानवता को दुर्बल बनाते हैं, भोग को आश्रय देते हैं न्याय को पण्य बनाकर जनता का शोषण करते हैं। अंग्रेज भारत में सबसे अधिक इन्हीं के कारण बने हुए हैं। किंतु मैथिलीशरण जी सभी विधाओं में, कलाओं में, तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति में इतनी उन्नति चाहते हैं कि सभी वस्तुओं पर 'मेड इन इंडिया' लिखा हो।

प्रसाद जी की रचनाएँ उनके मासिक पत्र 'इन्दु' में प्रकाशित होती रहीं और 'कामायनी' में उत्कर्ष पर पहुँची। इन्हीं का संग्रह 'झरना' और 'लहर' में प्रकाशित (1918) हुआ जो छायावादी काव्यानुभूति को सर्वाधिक अभिव्यक्त करती है। अत: छायावाद के नाम के साथ ही प्रसाद-पन्त-निराला और महादेवी की चतुष्टयी में छायावादी काव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर 'छायावाद' के सर्वाधिक प्रतिनिधि प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद ही ठहरते हैं। यद्यपि दिनकर जी ने 'मिट्टी की ओर' संकलन में बताया है कि मुख्य प्रतिद्वंद्विता पंत जी और निराला जी में होने के कारण लोग इनके ऊपर प्रसाद जी का नाम लिख देते थे। लेकिन दिनकर जी का यह कथन केवल तत्कालीन समय की नयी कविता को अभिव्यक्त करने के दृष्टिकोण से ही सत्य है। स्वच्छंदता की शैली विशेषत: प्रेमानुभूति की स्वच्छंदता जिस तरह प्रसाद जी में अभिव्यक्त हुई है वह पन्त और निराला से अधिक व्यंजक और प्रगल्भ और उनकी पूर्ववर्ती भी है। वियोगानुभूति की व्यंजकता 'आँसू' काव्य में जिस स्वच्छंदता के साथ अभिव्यक्त हुई है वह हिंदी काव्य की वियोग कविताओं से अधिक आधुनिक और भावसंपन्न है। उसमें वैयक्तिक राग का उद्वेलन तो है ही प्रेम का वह उदात्तीकरण भी है जो निजी दु:खानुभूति के 'आँसू कन' से 'विश्वसदन' में बरसने वाला 'प्रभात हिमकन' भी बन जाता है। यह एक प्रकार से अज्ञेय के उस कथन की याद दिलाता है-'अपने से बाहर आने को छोड़ नहीं आवास दूसरा। वैयक्तिक रागों की आँच में उसी तापक्रम पर जलने वाले कवि अज्ञेय भी हैं, और शायद यही कारण है कि छायावादोत्तर काल में उसकी रोमानियत को कुछ दूर तक (और कुछ देर तक भी!) खींचने के कारण उन्हें गैर-रोमांटिक होने में कुछ वक्त भी लगा। वैयक्तिक रागों की जमीन पर जो कवि आधुनिक काल में बीसवीं शती के पहले, दूसरे और तीसरे दशक में खड़ा है वह है जयशंकर प्रसाद।

शायद प्रमुख आलोचक राम चंद्र शुक्ल के दृष्टिकोण से यह भाव लोकमंगल विरोधी रहा हो और इसीलिए इस 'वैयक्तिक राग भावना' या 'मधुचर्या' की खोज खबर भी ली गई है। यह विडंबना ही है कि 'महावीर प्रसाद द्विवेदी युग' में और छायावाद युग में भी वह आलोचकीय दृष्टि विकसित नहीं हो सकी जो प्रसाद जी के इस काव्य में अभिव्यक्त हुई। मानव-मूल्य को पहचान कर आत्मामिव्यक्ति या अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का प्रकाशन काव्य के क्षेत्र में स्वच्छंदतावाद के रूप में पश्चिम और पूर्व दोनों स्थानों पर हुआ है। रीतिमुक्त काव्यधारा के साथ ही हिंदी में स्वच्छंदतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ प्रारंभिक रूप में दिखाई देने लगी थीं। जिसे हम छायावाद की प्रमुख विशेषताओं में गिनते हैं वह प्रकृति-प्रेम बहुत गहराई से इन कवियों में भी दिखाई पड़ता है। आत्मनिवेदन का स्तर तो भक्त कवियों में भी प्रचुर है। किंतु, इस दौर में आत्मकथात्मक भावाभिव्यक्ति की जो विपुलता दिखाई पड़ती है वह भावना प्रधानता के साथ-साथ आत्मविश्लेषणात्मक भी है। विशेषत: अनेक महापुरुषों, राजनेताओं और साहित्यकों ने इस युग में अपनी आत्मकथा लिखी है। एक तरह से कह सकते हैं कि यह युग आत्मछवि की खोज का युग भी रहा। इसका प्रभाव काव्य के क्षेत्र में भी पड़ा। पन्त की 'ग्रंथि', निराला की 'सरोज स्मृति' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। 'हंस' के आत्मकथा अंक के लिए प्रेमचन्द के आग्रह पर प्रसाद जी ने जो कविता रची थी उसमें थके पथिक की पंथा की सीवन को उधेड़कर देखने की स्थूलता का जो प्रत्याख्यान दर्ज है वह प्रसाद जी के गंभीर व्यक्तित्व की पर्याय रही है।

प्रसाद जी की काव्यानुभूति की बनावट में ही वह 'राग' अनुस्यूत है जो कभी निजी प्रेमानुभूति की गहरी घाटियों में गूँजता है और कभी देश प्रेम की चोटियों पर उड़ान भरता है। मानवीय प्रेमानुभव की गहरी संस्पर्शिता उनके पात्रों में सम्वादों और घटनाओं के रूप में प्रकट होती है। उनकी कहानियों में यथा

'पुरस्कार' और 'आकाशदीप' में, नाटकों में 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में यही प्रेमानुभव विराज रहा है। लेकिन लगभग हरेक स्तर पर यह प्रेमानुभव उत्सर्गवादी है, उपभोगवादी नहीं है। रहस्यवादी तो वह बिल्कुल नहीं है जैसा कि आचार्य शुक्ल कहते हैं-"इनकी रहस्यवादी रचनाओं को देखकर चाहे तो यह कहें कि इनकी मधुचर्या के मानस प्रसार के लिए रहस्यवाद का परदा मिल गया अथवा यों कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम से कूदकर असीम पर जा रही।" डॉ. नामवर सिंह की यह टिप्पणी बिल्कुल सटीक है कि-"इस कथन के पीछे और प्रवृत्ति चाहे जो हो, लेकिन इससे इतना तो स्पष्ट है कि उस युग की पुरानी पीढ़ी के लोग भी छायावादी अथवा रहस्यवादी कविताओं को मूलत: कवि की आत्मानुभूति ही मानते थे।" (छायावाद पृ. 21)

वस्तुत: तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य में व्यक्ति की स्वाधीनता की इच्छा और देश की स्वतंत्रता की कामना की टकराहट से छायावाद की काव्यानुभूति का निर्माण हुआ था। इसीलिए व्यक्तिगत स्वाधीनता की चाह और राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग—इन दोनों के तुमल संघर्ष में कहीं व्यक्तिगत की आत्माभिव्यक्ति अकेलेपन और पराजय के अवसर को प्रकट करती है और कहीं सामूहिक संघर्ष के अवचेतन में अपने व्यक्तित्व को विसर्जित कर देती है। यह व्यक्तित्व के अर्जन, उसके व्यामोह, उसकी मननशीलता के एकाकीपन से उठी हुई तरंग है जो मनोवैज्ञानिक रूप से नए समाज की विकसित सभ्यता से, उसके मशीनीकरण से, सार्वजनिक उदय और उसके ऊर्जस्वी कोलाहल से भयग्रस्त भी है। इसीलिए व्यक्तिवाद से उत्पन्न होने वाली अतिशय रागमयता ही विराग की पृष्ठभूमि भी रचती है और 'करुणा की शान्त कछार कहीं कहीं 'तपस्वी के विराग की प्यार' बनकर उभरती है।

विश्वभर के महान साहित्य में यह प्रगल्भ भावना दिखाई पड़ती है। पराधीन अथवा दबे-कुचले जनसमूह को आजादी देने के लिए अथवा स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रों के रचनाकारों में व्यक्तिगत स्वाधीनता की चाहत इसी अन्दाज में उभरती रही है। इसे एक प्रकार की गहरी रोमानियत ही कहेंगे। उदाहरण के लिए पाब्लो नेरूदा की प्रेम कविताओं की रोमांसलता को उसके बरक्स उनकी राजनीतक कविताओं की चेतना से मिलकर देखें। प्रेम कविताओं में अभिव्यक्त होने वाला मांसल प्रेमी या नायक शारीरिक संग की अनेक स्तरीयता में अपनी चेतना को तिरोहित कर देना चाहता है। जबकि दूसरी ओर स्पैनिश सिविल वार (1940) के आस-पास जब उनकी जन प्रतिबद्धता प्रगल्भ हो रही थी उनकी काव्य नैतिकता में रूपान्तरण के तत्व आप से आप छिटक पड़े।

किसी कवि का क्रांतिकारी या राष्ट्रवादी रूप उसके प्रेमी या रोमैंटिक रूप से बहुत गहराई से जुड़ा रहता है। काव्यानुभूति को जीवनानुभूति से अलगाने के कारण ही समस्या उत्पन्न हुई है। जयशंकर प्रसाद की कविताओं का सत्य उनकी और रचनाओं यथा नाटकों के परिपार्श्व में मिलाकर देखना चाहिए। जैसा डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने 'जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता' में रेखांकित किया है कि सांस्कृतिक प्रश्नों को हल करने के लिए जयशंकर प्रसाद निरंतर वर्तमान से जूझ रहे थे। इसी क्रम में वह उस युग की प्रमुख समस्याओं को उठा रहे थे। प्रसाद के पूरे साहित्य में 'नारी' केंद्रीय विमर्श में स्थित है। स्त्री की अस्मिता का प्रश्न निरंतर उनकी चेतना के केंद्र में है। भारतीय नवजागरण युग की इतिहास-कल्पना को साम्राज्यवादी इतिहासकारों के बरक्स जिस भारतीय शैली में प्रसाद जी ने व्याख्यायित किया है वह बहुत सुनियोजित प्रयत्न जान पड़ता है। अपने नाटकों की भूमिकाओं में उन्होंने एक गहन इतिहास-दृष्टि का परिचय दिया है। 'कहीं से हम आए थे नहीं हमारा रहा पालना यहीं' के परिप्रेक्ष्य में आर्य जाति पर रोमिला थापर की नवीन उद्भावनाएँ पढ़ी जा सकती हैं। साथ ही रामविलास शर्मा की नवीन मान्यताओं को भी देखना आवश्यक है। स्वयं 'कामायनी' की भूमिका में प्रसाद जी ने 'जल प्लावन' की घटना को 'इतिहास' मानते हुए कहा कि-"मन्वन्तर के प्रवर्तक मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं।" साम्राज्यवादियों-इतिहासकारों को उत्तर देने का उनका तरीका रचनात्मक था। भारतीयों को तुच्छ और हीन सिद्ध करने के षडयंत्रों को प्रसाद जी ने नाटकों की रचना करके तोड़ने का कार्य किया। उन्होंने 'तितली' उपन्यास में शैला और इंद्रदेव के माध्यम से इंग्लैंड के सभ्य समाज की कलई खोलकर रख दी।

वस्तुत: छायावाद की 'चतुष्टयी' में प्रसाद जी अकेले ऐसे रचनाकार हैं जिन पर बाह्य प्रभाव नहीं है। उनकी उद्भावनाओं के सभी स्रोत भारतीय हैं। जीवनदृष्टि और जीवनमूल्य में

आत्मनिर्भर और आत्मचेतन होने का द्वंद्व अपनी तरह से भारतीयता का अन्वेषण करता है। यहाँ प्रसाद जी एक विशिष्ट क्रांतिधर्मी रचनाकार की तरह प्रकट होते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में अंतरजातीय, अंतरप्रांतीय और अंतरराष्ट्रीय विवाहों के ऐतिहासिक संदर्भों द्वारा स्वच्छंद क्रांतिधर्मिता का परिचय दिया। इन प्रेम विवाहों का संदर्भ उनकी व्यक्तिगत रागात्मकता से ही निकला है। अत: 'कामायनी' जिसे हम 'छायावाद की गीता' कह सकते हैं—में मानवीय रागों का विस्तृत चित्रण उसके रागों के नामकरण चिंता, आशा का श्रद्धा से ही उपलब्ध होता है। स्वयं रामचन्द्र शुक्ल 'चिंतामणि' में इन्हीं रागों की व्याख्या करते हैं-क्रोध, लोभ, उत्साह, श्रद्धाभक्ति आदि। प्रसाद जी प्रेम सम्बधों के चिंतन में स्वच्छंद क्रांतिधर्मी कवि के रूप में सामने आते हैं। एक 'रिवोल्यूशनरी रोमांटिक' के रूप में। साहित्य में ऐसे रागों के प्रति स्वप्नदर्शी व्यवहार कविगण करते ही रहते हैं किंतु इन्हीं समस्याओं में से यथार्थ के उपयोगी स्फुलिंग भी भास्वर होकर फूटते हैं।

पाब्लो नेरूदा के लेखन के संदर्भ में यदि याद करें तो 1920-30 के दरम्यान इसी 'रिवोल्यूशनरी रोमांटिसिज्म' को व्याख्यायित करने का विवादास्पद प्रयत्न किया था। जो आरोप प्रसाद की कविताओं अथवा नाटकों पर लगाए गए थे कुछ-कुछ वैसे ही 'पलायनवादी स्वप्न' (एस्केपिस्ट ड्रीम्स) की चर्चा दिमित्री पिसारोव ने भी की है क्योंकि ऐसी रचनाओं से जनता राजनीतिक रूप से अपने स्वप्नों में बिछलकर यथार्थ संघर्ष से दूर चली जाती है। किंतु वलेरी क्रियोटिन ने इसे साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक बताया है और कहा कि यथार्थ के कई रूपों की पुनर्रचना के लिए कवि को यह विशेष अधिकार प्राप्त है कि वह स्वच्छंदता की अभिव्यक्ति करे। कवि कर्म द्वारा सामाजिक यथार्थ या जीवन की समरसता या उन्मुक्ति की दिशा में जीवन का सत्य विवरण इसी पलायनवादी स्वप्न के रास्ते ही होगा। प्रेमचंद ने प्रसाद पर जो 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' का आरोप लगाया है उसे यदि करना उचित होगा। किन्तु पाब्लो नेरूदा के बचाव में बलेरी क्रियोटिन ने जिस 'एस्केपिस्ट ड्रीम्स' की बात की है वह प्रसाद जी पर फिट बैठती है। प्रसाद जी उन्हीं अर्थो में एक 'रिवोल्यूशनरी रोमांटिक' हैं। जार्ज लुकाच जैसे आलोचक भी स्वप्नों की महत्ता को स्वीकारते हैं, निसंदेह उन्हें यह कौंध लेनिन के स्वप्नों में दिखाई देती है क्योंकि उनके अनुसार कितना भी गौण क्रांतिकारी कदम क्यों न हो उसमें स्वप्न एक नया आयाम जोड़ देता है। लेकिन यह केवल तभी जब वह कदम वस्तुगत यथार्थ की सही समझदारी की ओर हो। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो प्रसाद जी की रागमयता भुलावा देकर चल रही है, किंतु, वह अपनी युगीन सीमाओं के भीतर वस्तुगत यथार्थ की ओर अग्रसर है। यहाँ हमें उनकी समग्र रचनाओं को ध्यान में लेना होगा।

प्रसाद जी की प्रमुख रचनाओं आँसू से कामायनी, विशाखदत्त से स्कन्दगुप्त, कंकाल से तितली का चरणबद्ध विकास इसी दिशा में हुआ है। प्रसाद जी का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन नहीं हैं, बल्कि वह कश्मीरी शैववेदांत की पृष्ठभूमि में विकसित त्रिकदर्शन की प्रत्यभिज्ञा की अवधारणा पर स्थित है। शिव और शक्ति या प्रकाश और विमर्श के बीच में नर या मनुष्य है जो अनेक मलों से दग्ध होने के कारण आत्म स्वरूप का विस्मरण कर चुका है। वह है तो मूलत: शिव किंतु उसे अपना शिवस्वरूप याद नहीं। उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध तब होगा जब कोई ऐसी बात उसके सामने आए जिसे देखकर वह अपने विस्मृत स्वरूप की ओर लौट सके। शक्ति की यही भूमिका है कि वह मनुष्य को उसके 'स्वरूप' का प्रत्यभिज्ञान करा सके। फिर शेष बातें वह जागृत होकर स्वयं तय कर लेगा। प्रसाद जी के निकट भारतवर्ष का वस्तुगत सत्य यही है कि यहाँ शक्ति के विद्युत्कण विकल बिखरे हुए हैं; केवल उनका समन्वय किया जाना है। 'कामायनी' छायावाद की गीता की तरह बोल रही है। जिस प्रकार अर्जुन के विषाद को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण आत्मा की अमरता और कर्मयोग का उपदेश देते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा भी अवसादग्रस्त मनु को सकर्मक ऊर्जा से वलयित करती है। मनु को उसके स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान कराने वाली मूल ऊर्जा यही श्रद्धा है। शैव दर्शन के अनुयायी कविकुलगुरु कालिदास भी थे। उन्होंने अपने नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में इसी प्रत्यभिज्ञान का उल्लेख किया है। वहाँ पर दुष्यन्त भी शकुन्तला को भूल गया है। शकुन्तला उसका व्यक्तिगत राग है। किन्तु शकुन्तला शापग्रस्त है। अँगूठी ही वह वस्तु है जो दुष्यन्त को शकुन्तला का अभिज्ञान कराती है। इसलिए अँगूठी में 'प्रत्यभिज्ञा' की शक्ति है। ज्ञानोदय या

पुनर्जागरण के काल में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद, बाल गंगाधार तिलक आदि ने अपनी ओजस्वी वाणी में शताब्दियों से सो रहे इस अति प्राचीन देश को झँझोड़ा था। यह नवजागरण की वाणी भारतेंदु से लेकर मैथीलीशरण गुप्त में सुनाई देती है। स्वामी विवेकानंद की भावधारा का प्रभाव तो निराला में अधिकांशत: दिखाई देता है। 'जागो फिर एक बार' आदि कविताएँ इसी आत्म-विस्मरण से जगाने के लिये लिखी गई थीं। प्रसाद जी ने 'विस्मरण' से 'सम्यक स्मरण तक' ले जाने के लिए श्रद्धा की वाणी का प्रयोग किया। 'कामायनी' के 'श्रद्धा' सर्ग में पुनर्जागरण की अवचेतन गूँज है।

'कामायनी' में मनु के विषाद और चीत्कार से एक विशिष्ट काव्यभाषा का जन्म हुआ है। वह देव सभ्यता के ध्वंस पर विलाप कर रहा है। इसी विलाप की ध्वनि तो 'हिंद स्वराज' में है। 'भारत भारती' में भी वही है किंतु मनु की चीत्कार आत्म-विस्मरण की चीत्कार है, वह उत्कट और बेलौस है, कुछ धूलभरी और पथरीली भी। कामायनी की दृष्टि बिल्कुल साफ है। परंपराओं का वह पोषण नहीं करती लेकिन उसे वह अंधी लाठी से पीटती भी नहीं। हमारे समय की विरूपताओं को वह केंद्र में लाती हैं मनु, श्रद्धा, इड़ा-ये सभी पात्र ऐतिहासिक, पौराणिक होने के साथ-साथ हमारे समय के पात्र हैं। इसलिए इनकी संवेदनाएँ प्राचीन या मध्यकालीन नहीं है; इनकी दृष्टि आधुनिक है। 'कामायनी' का अर्थ जब खुलने लगता है तब कुछेक बातें ऐसी भी हैं जो आधुनिक मानस को अपील नहीं करतीं। लेकिन हमें कवि की पहुँच और उसकी कल्पना शक्ति को ध्यान में रखकर ही कोई बात करनी होगी।

पहली बात तो यही कि कामायनी कोई इतिहास ग्रंथ नहीं है और न ही दर्शन की कोई पद्धति। उसमें इतिहास के अंश संभव हो सकते हैं लेकिन इसी कारण उसे इतिहास का पूर्वापर क्रम नहीं दिया जा सकता। उसमें दर्शन भी है, खास तौर से शैव दर्शन की एक प्रमुख विचार धारा "कश्मीरी शैवदर्शन" या "प्रत्यभिज्ञा-दर्शन"। लेकिन इतने से वह कोई शास्त्रीयता का प्रपंच नहीं रचती। 'कामायनी' की अपनी दृष्टि है जिसे हम उसका 'दर्शन' कह सकते हैं-अपनी "फिलोसोफी" तक पहुँचने का काम वह कविता के रास्ते तय करती है। काव्य की शक्ति कवि-प्रतिभा में या उसकी कल्पना-शक्ति में निहित है। 'कल्पना' (इमैजिनेशन) केवल या अभाव में प्रत्यक्षीकरण ही नहीं है, वह 'रचना' भी है। रचना एक प्रकार का 'विनिर्माण' (कंस्ट्रक्शन) भी है। जो 'नहीं है' उसे रचना, जो 'है' उसे नया रूप देना, जो 'हो सकता है' उसका खाका खींच देना-ये सभी काम कवि-प्रतिभा के हैं।

जयशंकर प्रसाद भारतीय इतिहास और संस्कृति से परिचित हैं। उनकी मननशीलता से कई कृतियाँ स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि नाटक, उनके निबंध और कविताएँ उपजी हैं। उन्होंने बहुत कुछ नया गढ़ा है, रचा है, सँवारा है। उनकी रचना का सम्पूर्ण आस्वाद 'कामायनी' में प्राप्त होता है जो मूलत: काव्य है। कवि का अपना जीवनानुभव ही दृष्टि देता है। हमारे जीवन के तमाम उथल-पुथल, द्वंद्व, संघर्ष, आदर्श और विकृतियाँ, राजनीतिक हलचलें, सामाजिक मन पर पड़ने वाले सूक्ष्म और गहरे प्रभाव सभी कुछ मिलकर कवि के 'विजन' का निर्माण करते हैं। प्रसाद जी ने अपने युग को (जो 1918 से 1936 के बीच का समय है) जिस दृष्टि से देखा है, उसे परम्परा की दृष्टि से संस्कारित किया है और भारतीय दार्शनिक मूल्यों की जमीन पर यथार्थ को उतारना चाहा है। यह यथार्थ भी एक प्रकार से काव्यगत यथार्थ होता है क्योंकि उसमें भाषा की सौंदर्यव्यंजना होती है। वह यथार्थ का विचार कम और अनुभव अधिक होता है। अनुभव से ही कवि चल पड़ता है और पहला ध्यान जाता है भाषा पर। कविता जो देती है, रचती है, वह भाषा के 'फिल्टर' से होकर गुजरता है। उसका कथ्य 'भाषिक कथ्य' होता है जो भाषा की गूँज में प्रविष्ट होकर पुन: पाठक या श्रोता में अनुभव उत्पन्न करता है, वह अनुभव भाषा की दीवारों से टकराता चलता है जो फिर नई गूँज, नयी व्यंजना उत्पन्न करता है। यह सिलसिला चलता रहता है और केवल एक आदमी तक ही नहीं बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह भाषा और अनुभव का खेल जारी है। आशय यह कि 'सत्य' तो कवि के पास है लेकिन कवि से 'सत्य' पाने के लिए समाज को 'भाषा' समझने का शुल्क अदा करना पड़ता है। और यहीं पर कवि किसी दार्शनिक से अलग है। दार्शनिक के लिए भाषा माध्यम है जबकि कवि के लिए भाषा 'माध्यम' भर नहीं है। अब नए युग के दार्शनिक भी

इस बात को समझ रहे हैं इसलिए अचानक उनके पास भी भाषा केन्द्र में आ गई है।

शुष्क दार्शनिक विचार या कोरा ज्ञान आदमी को बदलने में प्राय: असमर्थ रहता है। जब तक वह 'भाषा' से आबद्ध होकर नहीं आता तब तक वह आम आदमी के काम की चीज नहीं। तुलसीदास अपने सत्य को 'भाषाबद्ध' (करब मैं सोई) या 'भाषा-निबद्धम्' करते हैं। प्रसाद भी अपनी दृष्टि को भाषा में कह रहे हैं और कविता में कह रहे हैं, इसलिए 'कामायनी' में प्रसाद जी की जीवन दृष्टि व्यक्त हुई है।

'कामायनी' एक कवि की काव्ययात्रा है। उसमें एक वितान है, वह एक विशिष्ट वैचारिक बिंदु से प्रारंभ होती है और एक विशिष्ट वैचारिक बिंदु पर समाप्त। एक ऐसी भावात्मक यात्रा जो अपनी गतिमानता में नया रास्ता भी निकालती है। हर महान कृति में यह यात्रा दिखाई देती है। कामायनी भी अपने कथ्य की ओर धीरे-धीरे बढ़ती है। कृति की यात्रा उसके चरित्रों के संघर्ष और घटनाओं के उत्थान-पतन से बनता है। हम देखते हैं कि इस कृति की शुरुआत में 'मनु' नामक पात्र हिमालय की किसी ऊँची चोटी या पहाड़ी पर 'चिन्ता कातर' बैठा है। उसके नयन भीगे हैं। उसके चारों ओर जल ही जल है, जल-प्रलय का समूचा दृश्य याद कर वह क्षुब्ध है। इस प्राकृतिक दुर्घटना ने एक पूरी सभ्यता को ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। वह देव-सभ्यता थी-अत्यधिक भोगवादी होने के कारण मानो प्रकृति ने उसे दंडित किया है। मनु उसी सभ्यता का अवशेष है। प्रसाद जी ने मनु के माध्यम से एक प्रतिनायक पात्र गढ़ा है जिसे कुछ दूर तक पाठक की भी सहानुभूति मिलती है। वह खलनायक नहीं है क्योंकि परिवर्तन उसी में घटित होता है। चिंता से आनंद या विषमता से समरसता की ओर बढ़ने वाला वही केंद्रीय चरित्र है। छायावाद की मूल चेतना व्यक्तित्व के उभार की चेतना है जो निजी रागानुभवों में बंद है। मनोवैज्ञानिक स्तरों पर उसे सबसे पहले प्रसाद जी ने ही पहचाना था। उनका संग्राम केवल भाषा की व्यंजना के स्तर तक ही सीमित नहीं था। उसमें मानवता के आदर्शीकृत रसायन का संस्पर्श भी था जिसे छायावाद ने अभिव्यक्त किया और जिसकी भावधारा को बहिरंग में पकड़ने का उद्यम आगे चलकर प्रगतिवाद ने किया।

इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रसाद जी ने प्रवृत्ति के स्तर पर मनुष्य की मूल स्वच्छंदवृत्ति को ही सर्वप्रथम विकसित किया है जो उनके नाटकों के माध्यम से भी प्रकट होता है। उनकी उद्दाम वैयक्तिकता की मूल रागभावना ही कामायनी में आगे चलकर मानवता की सामरस्यमूलक उन्मुक्ति के द्वारा खोलती दिखाई देती है। 'आँसू' का वैयक्तिक राग भावना ही 'कामायनी' में सामूहिक आनंद की अखंडता को व्यक्त करने लगती है। दोनों में कोई विशेष विरोध भाव नहीं दिखाई देता। प्रेम और विद्रोह-इन्हीं दो मूल धातुओं से प्रसाद जी की कविता का निर्माण हुआ है और ये ही दोनों मिलकर छायावाद की मूल प्रवृत्तियों का प्रकाशन भी करते हैं। छायावाद की प्रमुख कमजोरियाँ भी इन्हीं दोनों की उपस्थिति के कारण रेखांकित होती रही हैं। लेकिन समग्रता में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रसाद जी अपने समकालीनों से वय में तो ज्येष्ठ थे ही अपितु रागवृत्तियों के उभार और परिपाक में पन्त और निराला से अधिक सचेष्ट, दूरदर्शी और प्रगल्भ थे। अत: प्रसाद जी के काव्य संग्रह 'झरना' के प्रकाशन (1918) से एक विशेष अर्थ में हम छायावाद का प्रारंभ होना मान सकते हैं और इस तरह प्रसाद जी ही छायावाद के प्रवर्तक ठहरते हैं।

सहायक संदर्भ

1. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020
2. जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
3. जयशंकर प्रसाद : एक पुनर्मूल्यांकन, विनोद शाही, आधार प्रकाशन पंचकूला
4. जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता, प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2004
5. छायावाद की प्रासंगिकता, रमेश चंद्र शाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, बीकानेर, 1973
6. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998
7. मिट्टी की ओर, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, 1988

❖

प्रोफेसर, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान
भोपाल (मध्य प्रदेश)
मोबाइल : 9826628267

एक भारत श्रेष्ठ भारत

— प्रो. उमेश कुमार सिंह

"भारत दुनिया का सबसे प्राचीन राष्ट्र तो है ही इसकी विविध भाषाई, सांस्कृतिक और पंथीय व्यवस्था एक ऐसे धागे से बँधी हैं जिसे हम 'माता-पुत्र' का संबंध कहते हैं। भारत को हम अपनी माता मानने के कारण इसके सारे पुत्र सहोदर होने से भाई-भाई हैं। हमारे सुदीर्घ इतिहास और उसकी सांस्कृतिक धरोहरों ने विश्व में हमारी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। राष्ट्रीयता की यही पहचान हमारी विशिष्टता का वह सूत्र है जिसमें हम करोड़ों वर्षों से विविधता के साथ एकात्म हैं।"

जब हम पूर्वजों के भारत और 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की पहचान की बात करते हैं तो आप कह सकते हैं कि एक दुविधा पैदा हो रही है कि हमें 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' बनाना है कि उसकी पुरानी पहचान 'सोने की चिड़िया' और 'जगत् गुरु' की लौटानी है?

तो आइए इसे समझे एक प्रसिद्ध स्विस लेखक बजोरन लेण्डस्ट्राम के माध्यम से भारत के सोने की चिड़िया के पक्ष को जिसने पुरातन मिस्त्रियों से लेकर अमेरिका की खोज तक तीन हजार वर्ष की साहसी यात्राओं और महान खोजकर्ताओं की गाथा का अध्ययन कर अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में लिखता है-''मार्ग और साधन कई थे, परंतु उद्देश्य सदा एक ही रहा- प्रसिद्ध भारत भूमि पर पहुँचने का जो देश सोना चाँदी, कीमती मणियों और रत्नों, मोहक खाद्यों, मसालों, कपड़ों से लबालब भरा पड़ा है।''

इसलिए समझें 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के बारे में वर्तमान सरकार का दृष्टिकोण क्या है? वस्तुत: इस अभिनव प्रयास से हमें एक भारत और श्रेष्ठ भारत दोनों पक्षों को प्राप्त करना है। जब आइए स्मरण करते हैं इस अभियान की। 31 अक्टूबर, 2015 अवसर है, सरदार पटेल जी की 140वीं जयंती का। आइए समझें प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का वह वक्तव्य जहाँ से प्रारंभ होती है 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के पहचान की यात्रा। ''सरदार पटेल जी ने हमें एक भारत दिया। अब यह 125 करोड़ भारतीयों का सामूहिक कर्तव्य है कि सामूहिक रूप से इसे 'श्रेष्ठ भारत (पूर्वजों का भारत) बनाना है। हम सब सरदार साहिब के जीवन और योगदान से प्रेरणा ले कर ऐसा कर सकते हैं।' इसमें से पहला एक भारत को विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की सांस्कृतिक धरोहरों, परंपराओं और प्रथाओं, उनकी अपनी ज्ञान परंपराओं के बीच आपसी समझ से एकता बनेगी। जिससे भारत की एकता और अखंडता मजबूत होगी। तो पहले भारत सरकार की एक भारत की रचना को जानते हैं-

इसमें योजना तैयार की गई कि राज्यों और केंद्र शासित राज्यों के बीच जोड़ी बनेगी और यह जोड़ी एक वर्ष या अगली घोषणा तक बनी रहेगी। राज्य स्तर की गतिविधियों के लिए इस जोड़ी का उपयोग किया जाएगा। जिला स्तर की जोड़ी राज्य स्तर की जोड़ी से स्वतंत्र होगी। इसके माध्यम से संस्कृति, पर्यटन, भाषा, शिक्षा, व्यापार आदि के क्षेत्रों में उनकी अपनी मौलिक विशेषताओं के आदान-प्रदान से नागरिकों के बीच सांस्कृतिक विविधता का परिचय होगा और वे एक दूसरे को नजदीक महसूस करेंगे। अपने अनुभवों को साझा कर सकेंगे।

इसके उद्देश्य को समझें-

एक : राष्ट्र की विविधता में एकता के गौरव को अनुभव कराना और देश के लोगों के बीच परंपरागत रूप से वर्तमान

भावनात्मक बंधनों के सम्बन्धों को बनाए रखने में सम्बल प्राप्त कराना।

दो : राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देने के लिए एक वार्षिक योजनाबद्ध भागीदारी के माध्यम से सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेश के बीच एक गहन और ढाँचेगत भागीदारी का निर्माण करना।

तीन : लोगों को अलग-अलग प्रांतों की समृद्ध विरासत और संस्कृति, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं से अवगत कराना, जिससे वे भारत की विविधता के बारे में लोगों को समझाने और उनकी प्रशंसा करने के योग्य बनें। संयुक्त पहचान को बढ़ावा देना।

चार : दीर्घकालिक भागीदारी का निर्माण करना।

पाँच : एक ऐसा वातावरण बनाना जो राज्यों के बीच सर्वोत्तम प्रथाओं और अनुभवों को साझा करके शिक्षण को बढ़ावा देता हो।

भारत दुनिया का सबसे प्राचीन राष्ट्र तो है ही इसकी विविध भाषाई, सांस्कृतिक और पंथीय व्यवस्था एक ऐसे धागे से बँधी हैं जिसे हम 'माता-पुत्र' का सम्बन्ध कहते हैं। भारत को हम अपनी माता मानने के कारण इसके सारे पुत्र सहोदर होने से भाई-भाई हैं। हमारे सुदीर्घ इतिहास और उसकी सांस्कृतिक धरोहरों ने विश्व में हमारी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। राष्ट्रीयता की यही पहचान हमारी विशिष्टता का वह सूत्र है जिसमें हम करोड़ों वर्षों से विविधता के साथ एकात्म हैं।

आज हम देखते हैं कि संचार और भौतिक समृद्धि के कारण सुदूर अंचलों से निरंतर जुड़े हैं किन्तु यह हमारे लिए कोई नई बात नहीं है क्योंकि जब हमारे पास इस तरह के कोई संसाधन नहीं थे तब भी शंकराचार्य जैसे महानुभावों ने पैदल देश की चतुर्दिक यात्रा कर पीठों की स्थापना की। इतना ही नहीं जिन बावन शक्ति पीठियों की अवधारणा हमारे वैदिक ऋषियों ने सती-शिव के सूत्र में बाँधकर हमारे सामने रखी थी वह केवल भावनात्मक कथाओं के आधार नहीं हैं, बल्कि आज वे सब शक्ति स्थल बने हैं और वहाँ नाना प्रकार की धातुएँ, तेल आदि की खानें मिल रही हैं। यह हमारी वैज्ञानिक समझ और भावनात्मक एकात्मता की परिचायक हैं। प्राचीन काल से आज के आधुनिक काल तक भारतीय दृष्टि सदा मानवीय सरोकारों और राष्ट्रनिर्माण के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण लेकर चलता आया है। आपसी समझ चाहे वह पंथीय हो या जातीय ही भारत की असली सामर्थ्य है।

स्वतंत्रता के बाद भारत की एकता को दृढ़ करने के लिए जो सांस्कृतिक व्यवहार होने चाहिए उसमें अवश्य कुछ कमी रही, जिसके कारण सुदूर पूर्वांचल का व्यक्ति आज भी दिल्ली जैसी राजधानी में अपने को अकेला समझता है। इस प्रयास में कमी के कारण शारीरिक रंग, रूप संरचना के आधार पर भी हम आपस में दुर्व्यवहार कर बैठते रहे हैं।

इसी को दूर करने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने सरदार पटेल की जयन्ती पर 2015 में राष्ट्रीय एकता दिवस के दौरान विभिन्न प्रकार के भेदों, उपभेदों और दूरियों को दूर करने के लिए साम्प्रदायिक, पंथीय, जातीय, क्षेत्रीय दूरी को खत्म कर भारत की गहरी एकता कल्पना दी थी।

इसके लिए देश के विभिन्न प्रदेशों के बीच कुछ कार्यक्रम तैयार किए गए-वर्तमान में 2020 तक के लिए कुछ रचना इस प्रकार हैं, (यह ठीक है कि कोरोना ने अभी इसमें व्यवधान डाला है)-पंजाब-आंध्रप्रदेश, हिमाचल-केरल, उत्तराखंड- कर्नाटक, हरियाणा-तेलंगाना, राजस्थान-असम, गुजरात-छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र-उड़ीसा, गोवा-झारखण्ड, दिल्ली-सिक्किम, मध्यप्रदेश-मणिपुर और नागालैंड, उत्तरप्रदेश-अरुणाचल प्रदेश और मेघालय, बिहार-त्रिपुरा और मिजोरम, चंडीगढ़-दादरा और नगर हवेली, पुद्दुचेरी-दमन और दीव, लक्ष्यदीप-अंडमान और निकोबार आदि।

तत्कालीन मानव संसाधन विभाग अब का शिक्षा विभाग भारत सरकार इसका नोडल विभाग है। इसी तरह राज्यों में उच्च शिक्षा या शिक्षा विभाग इसके नोडल हैं। बातचीत के लिए मुख्य विषय बिन्दु-भारत के विचार को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में मनाने के लिए जिसमें विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विभिन्न सांस्कृतिक इकाइयाँ एक दूसरे के साथ मेल खाती हैं और एक दूसरे के साथ बातचीत करती हैं विविध व्यंजनों, संगीत, नृत्य, रंगमंच, फिल्मों, हस्तशिल्प, खेल, साहित्य, त्योहारों, चित्रकला की यह शानदार अभिव्यक्ति है। यह सब बिंदु सभी भारतीयों को आपस में बंधुता भाव के साथ अत्मसात करने को सक्षम बनाएगी। इससे विभिन्न सम्प्रदायों, राज्यों के बीच आपस में छोटे-छोटे मसलों के कारण दूरी पैदा होती है।

इसके लिए पच्चीस-छब्बीस प्रमुख गतिविधियाँ की रूपरेखा तैयार की गई, जिनको हम चार पाँच बिंन्दुओं के माध्यम से उनको स्मरण कर लें या कहिए दुहरा लें-

एक : कम से कम पाँच ऐसी पुस्तकों का जिन्हें विभिन्न स्थापित मान्य पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया हो, और इसी तरह दोनों राज्यों के पाँच-पाँच गीत-गानों को साझेदारी राज्य की भाषा में अनुवाद हो। साथ ही दोनों राज्यों की समान अर्थवाली कहावतों की पहचान और उनका अनुवाद कर उनके उपयोग के लिए व्यवहार में प्रयोग किया जाए।

दो : सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं के माध्याम से गृह राज्य में पहचाने गए मंडलों की सहायता से राज्यों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कार्यक्रम। साहित्योत्सव के रूप में लेखकों और कवियों आदि के लिए विनिमय कार्यक्रम हों। सहभागी राज्यों के आगंतुकों के लिए राज्य अतिथि संस्कृति को बढ़ावा दिया जाए। विद्यापीठ के छात्रों द्वारा शैक्षणिक भ्रमण में सहभागी राज्यों में उस राज्य की विशिष्ट पहचानों को सामने लाया जाए। एक राज्य के छात्रों का वर्णमाला, गीत, कहावत और सहभागी राज्य की भाषाओं में सौ वाक्यों का प्रदर्शन। युग्म राज्यों की दो भाषाओं में शपथ प्रतिज्ञाओं के प्रशासन को प्रोत्साहित करना। भागीदारी वाले राज्य की भाषा में विद्यालयों की पाठ्यक्रम पुस्तकों में कुछ पन्नों को शामिल करना। सहभागी राज्य की भाषा में छात्रों के बीच निबंध प्रतियोगिता का आयोजन। साझीदार राज्यों की भाषाओं में विद्यालय और महाविद्यालयों में वैकल्पिक कक्षाओं का अभ्यास कराना। सहभागी राज्य के शिक्षण संस्थानों में अन्य राज्य के नाटकों के प्रदर्शन का आयोजन कराना।

तीन : भागीदार राज्य की पाक प्रथाओं को सीखने के अवसर के साथ पाक त्योहार मनाना। राज्यों की भागीदारी वाले पर्यटकों के लिए राज्य दर्शन कार्यक्रमों को बढ़ावा देना। एक राज्य के टूर ऑपरेटर्स के लिए परिचितों के पर्यटन का आयोजन भागीदारी राज्य के लिए करना।

चार : राज्यों में किसानों के बीच पारंपरिक कृषि प्रथाओं और पूर्वानुमान के बारे में आदान-प्रदान की व्यवस्था करना। राज्यों की भागीदारी वाले क्षेत्रीय टीवी, रेडियो चैनलों पर साझा राज्यों को आपसी कार्यक्रमों के प्रसारण की व्यवस्था करना।

पाँच : पन्द्रह अगस्त और 26 जनवरी के अवसर पर साझेदारी वाले राज्यों की संयुक्त झाँकी का आयोजन। भागीदारी वाले राज्य के औपचारिक कार्यों में एक राज्य से परेड आदि की भागीदारी। साझेदारी राज्यों की उपशीर्षक वाली फिल्मों का प्रसारण कराना।

छह : फैशन शो को प्रोत्साहित करना और राज्य के विद्यार्थियों और लोगों द्वारा भागीदारी राज्यों की पोषाकों को पहनना।

सात : माय गवर्नमेंट पोर्टल और संचार माध्यमों का सहारा लेकर भागीदारी वाले राज्य की भाषा में राष्ट्रीय प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन तथा एक भारत श्रेष्ठ भारत पर ब्लॉग प्रतियोगिता का आयोजन करना। साथ ही आपसी राज्यों के लिए फोटोग्राफी प्रतियोगिता का आयोजन, स्थान, वस्तुओं और दृश्यों का चयन।

आठ : सहभागी राज्यों में सायकलिंग अभियान का आयोजन। एक राज्य के एन.सी.सी. और एन.एस.एस. के शिविरों का आयोजन जो सहभागी राज्यों के स्थानों पर हों। तो यह है सरकारी कार्यक्रम जिनसे भारत की एकता में युवाओं की सहभागिता कर भारत परिचय कराया जाए और उनके अन्दर एक भावनात्मक एकता पैदा की जाए। अब जरा श्रेष्ठ भारत पर विचार किया जाए। ध्यान में आता है कि स्वतंत्रता के बाद सरदार पटेल को अपनी पूरी ताकत राष्ट्रीय एकता के लिए लगानी पड़ी जिसमें विभाजन की विभीषिका के बाद भारत का एक खण्डित भौगोलिक स्वरूप हमारे सामने आया। इसलिए एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या जिस श्रेष्ठ भारत की संकल्पना हमने 2015 में एकता दिवस के दिन की वह इस एक पक्ष के प्राप्त करने से पूर्व हो जाएगी ?

इसलिए अब हमें श्रेष्ठ भारत के आवश्यक तत्वों पर भी यहाँ विचार करना होगा। कारण कि भारत मात्र भौतिकता के साथ जीने वाला राष्ट्र नहीं है। यह उसके स्वस्थ शरीर का परिचायक हो सकता है किन्तु उस आत्मा की खोज और बोध करना अभी निरन्तरता में है जिसे हम धर्म और अध्यात्म कहते हैं। और एक जो विशिष्ट बात ध्यान में आती है कि जब हम भौतिक रूप से सम्पन्न थे तभी हमारी अध्यात्म भूमि भी उतनी ही उर्जावान थी। स्वत्व आधारित थी। भारत ने सदा से यह विचार किया है कि हम भौतिक समृद्धि, विज्ञान और तकनीकी

विकास के शिखर पर तो पहुँचे ही किन्तु वह विकास हमारी संस्कृति, प्रकृति और आत्मविकास के विपरीत न हो।

इसी के साथ दूसरा पक्ष जो भारत के जगद्गुरु की पहचान को बताता है उसे पाश्चात्य चिंतक मार्क ट्वेन के इस वक्तव्य से समझें–''भारत उपासना पंथों की भूमि, मानव जाति का पालना, भाषा की जन्म भूमि, इतिहास की माता, पुराणों की दादी एवं परंपरा की परदादी है। मनुष्य के इतिहास में जो भी मूल्यवान एवं सृजनशील सामग्री है, उसका भंडार अकेले भारत में है। यह ऐसी भूमि है जिसके दर्शन के लिए सब लालायित रहते हैं और एक बार उसकी हल्की सी झलक मिल जाए तो दुनिया के अन्य सारे दृश्यों के बदले में भी वे उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होंगे।'' अब इसी तरह के 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के बारे में दुनिया के अनेक चिंतकों, शोधकों यथा हीगल, गैलबैनो, मार्कपोलो आदि के हैं। दूसरा कथन अर्नोल्ड टायनवी एडिनवर्ग का समझें–21वीं सदी का नेता भारत होगा, प्रत्येक क्षेत्र में भारत की महान प्रगति होगी। उससे भी अधिक यह विज्ञान एवं धर्म को समन्वित करेगा। मात्र भारत यह कर सकता है और करेगा भी। तो करना क्या है? सर्वप्रथम तो हमारे देश में एक धारणा बनी हुई है कि पश्चिम का व्यक्ति बुद्धिवादी, तर्कशील तथा प्रयोगशील होता है और भारत का व्यक्ति ग्रंथ को ही प्रमाण मानने वाला, अंधश्रद्धालु तथा प्रयोग से दूर भागने वाला होता है।

परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। इसलिए पहले स्व का बोध। अपने पूर्वजों की खोजों पर अभिमान और उसको समाज के सामने तथ्य के साथ रखना। वे दोनों प्रकार की हैं, वैदिक विज्ञान पर आधारित किन्तु वर्ममान के लिए पूर्णत: उपयोगी। दूसरी हमारी आध्यात्मिक परंपरा जो वैश्विक मानव बनने की क्षमता रखती है। आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में जाते हैं जो भारत के पास ये क्षमताएँ उस समय थी जब दुनिया ठीक से चलना भी नहीं जानती थी। पश्चिम के कई देशों का जन्म भी नहीं हुआ था। भारत के प्रथम परमाणु वैज्ञानिक महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में कहा है, 'दृष्टनां दृष्ट प्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय' अर्थात् प्रत्यक्ष देखे हुए और अन्यों को दिखाने के उद्देश्य से अथवा सव्यं और अधिक गहराई से ज्ञान प्राप्त करने हेतु रखकर किए गए प्रयोगों से अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी तरह कण से लेकर ब्रह्मांड और उनका प्रयोजन जानने के लिए महर्षि गौतम न्याय दर्शन में सोलह चरण की प्रक्रिया बताते हैं। और पृथ्वी, जल, जेज, वायु, आकाश, दिक्काल, मन ओर आत्मा को जानना चाहिए ऐसा कहा है। गीता के 7वें अध्याय में श्रीकृष्ण जी बताते हैं कि ब्रह्म के समग्र रूप को जानने के लिए ज्ञान–विज्ञान दोनों को जानना चाहिए, क्योंकि इन्हें जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रहता।

भृगु संहिता में शिल्प की परिभाषा करते हुए कहते हैं–

नानाविधानां वस्तूनां यंत्रणां कल्पसंपदा
धातूनां साध्रानां च वस्तूनां शिल्पसंज्ञितम्।
कृषिर्जलं खनिश्चेति धातुखंड त्रिधाभिधम्॥
नौका–रथाग्रिनानां, कृतिसाधनमुच्यते।
वेश्म, प्राकार नगररचना वास्तु संज्ञितम्॥

इन्होंने दस शास्त्रों का उल्लेख किया किन्तु बात यहीं पूर्ण नहीं होती तो पूरे विज्ञान सम्पदा और उसकी भारतीय खोज को देखें तो–विद्युत शास्त्र, यंत्र विज्ञान, धातुशास्त्र, विमान विद्या, नौका शास्त्र, वास्तुशास्त्र, गणित शास्त्र, काल गणना, खगोल सिद्धांत, स्थापत्य शास्त्र, रसायन शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, कृषि विज्ञान, प्राणि विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, लिपि विज्ञान, यह हमारी वो उपलब्धियाँ है जो श्रेष्ठ भारत की परिचायक हैं। आवश्यकता है इन्हें आधुनिक संदर्भ और काल के साथ ठीक से संगति बैठाकर समाज के सामने लाना और उनका खोया स्वाभिमान जाग्रत करना और डीकोलनाइजेशन की ओर ले जाना। यही श्रेष्ठ भारत की निशानी है। इसे ही हमें स्वयं बोध कर दुनिया को बोध कराना है। जिसे भारत के महान वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस कुछ इस प्रकार कहते हैं–

To my country men
Who will yet claim
The intellectual heritage
of their ancestors

मेरे देश वासियों को जो उनके पूर्वजों की, बौद्धिक विरासत के अभी भी अधिकारी हैं। अपने पुरुषार्थ को जगाना होगा तभी हम अभ्युदय और नि:श्रेयस की प्राप्ति कर एक भारत श्रेष्ठ भारत के सपने को पुन: पूरा कर सकते हैं।

❖

निदेशक, विवेकानंद कैरियर मार्गदर्शन योजना,
मध्य प्रदेश शासन (भोपाल)
निवास : 21–22, शुभालय विलास,
बरखेडा–पठानी, भोपाल (एम.पी.) मोबाइल : 7389814071

आपातकाल में साहित्यकारों-पत्रकारों का संघर्ष

— डॉ. अशोक कुमार ज्योति

सरकार और प्रशासन के दुर्व्यवहार से आहत और घायल होकर रचनाकारों की लहूलुहान लेखनी कोरे कागज को लाल करने लगी। आपातकाल के दौरान सक्रिय रूप से दो प्रकार के साहित्यकारों की लेखनी चली; एक वे साहित्यकार, जो सरकार के इस तानाशाही रवैये के विरुद्ध थे और जिन्हें प्रशासन ने जेल के अंदर डाल दिया था, उन्होंने जेल के अंदर से ही लेखनी सँभाली थी तथा जो जेल के बाहर थे, उन्होंने बाहर रहकर सरकार के विरुद्ध अपनी लेखनी के माध्यम से मोर्चा खोला हुआ था। दूसरे वर्ग के ऐसे साहित्यकार भी थे, जो आपातकाल के समर्थक थे। आपातकाल-विरोधी साहित्यकारों की रचनाओं ने आपातकाल के दौरान सरकार के तानाशाही रवैये के विरुद्ध अपनी लेखनी का उपयोग कर जनजागरण का कार्य किया।

मनुष्य परिवर्तनशीलता और निरंतरता का पर्याय है। समय-समय पर चिंतकों ने मनुष्य की विकास-यात्रा पर शोध करते हुए उसके विभिन्न पहलुओं पर चिंतन किया है। चिंतन के पश्चात् मनुष्य के व्यवहार-संबंधी तथा उसके सुखमय जीवन पर विद्वानों द्वारा अनेक विचार प्रस्तुत किए गए। मनुष्य के समूहों से निर्मित समाज को विभिन्न नियमावलियों से संतुलित किया गया, जिसे वर्तमान समय में 'संविधान' कहा जाता है। कोई भी देश स्वनिर्मित संविधान से चलता है। मनुष्य को संविधान-सम्मत अधिकार प्रदान करने के लिए एक पूरी व्यवस्था कार्य करती है। नागरिक समाज से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वह संविधान-सम्मत आचरण के द्वारा जन-जीवन को सुचारु रूप से संचालित होने दे। कहीं कोई अराजकता व्याप्त न हो। ऐसी ही अपेक्षा नागरिकों द्वारा चयनित जनप्रतिनिधियों द्वारा निर्मित सरकार से भी की जाती है। संसार के लगभग सभी देशों ने मनुष्य को सीमाबद्ध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार दिया है। अभिव्यक्ति मनुष्य का नैसर्गिक स्वभाव है और इस नाते वर्तमान समय में संभवतः सभी लोकतांत्रिक देशों की सबसे अधिक चुनौती मनुष्य की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने की है।

विविधताओं से भरे हुए भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में सरकार के सामने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नामक अधिकार को लेकर सबसे अधिक चुनौती है। कारण, इस अभिव्यक्ति के अधिकार की स्वतंत्रता के हनन को लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति से लेकर अब तक देश में कई बार सरकार के सामने गंभीर चुनौतियाँ आई हैं। परंतु जब सरकार ही मनुष्य की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने पर उतारू हो जाए तो समझा जा सकता है कि देश के नागरिकों के विभिन्न अधिकारों का हनन किस प्रकार होता है? यह घटना अधिक पुरानी नहीं है, अपितु 25 जून, 1975 की है। भारतीय इतिहास में इस तिथि को एक काले दिन के रूप में सदा याद किया जाएगा, क्योंकि भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में इस तिथि को अनैतिक रूप से देश में आपातकाल लगाकर मनुष्य की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया गया। इस सरकारी प्रतिबंध के कारण ही आपातकाल की काल-कोठरी में कानून के नाम पर प्रशासन द्वारा हजारों-हजार कलमकारों, प्राध्यापकों, पत्रकारों, समाजसेवियों, राजनेताओं, छात्रों इत्यादि को रातो-रात कारागार में डाल दिया गया।

सरकार और प्रशासन के दुर्व्यवहार से आहत और घायल होकर रचनाकारों की लहूलुहान लेखनी कोरे कागज को लाल करने लगी। आपातकाल के दौरान सक्रिय रूप से दो प्रकार के साहित्यकारों की लेखनी चली; एक वे साहित्यकार, जो सरकार के इस तानाशाही रवैये के विरुद्ध थे और जिन्हें प्रशासन ने जेल के अंदर डाल दिया था, उन्होंने जेल के अंदर से ही लेखनी सँभाली थी तथा जो जेल के बाहर थे, उन्होंने बाहर रहकर सरकार के विरुद्ध अपनी लेखनी के माध्यम से मोर्चा खोला हुआ था। दूसरे वर्ग के ऐसे साहित्यकार भी थे, जो आपातकाल के समर्थक थे। आपातकाल-विरोधी साहित्यकारों की रचनाओं ने आपातकाल के दौरान सरकार के तानाशाही रवैये के विरुद्ध अपनी लेखनी का उपयोग कर जनजागरण का कार्य किया।

सरकार द्वारा आपातकाल की घोषणा के विरुद्ध संपूर्ण क्रांति के प्रणेता जयप्रकाश नारायण जैसे अनेक अहिंसकवादियों पर हिंसक तरीके से दमन-चक्र चलाकर प्रशासन द्वारा उन्हें जेल में बंद कर दिया गया। हमें स्मरण रखना चाहिए कि जब भारत की धरती पर सत्ता के सर्वोच्च सिंहासन से आपातकाल की घोषणा हुई तो उसके विरोध में देश के हजारों साहित्यकारों ने शंखनाद किया। इतिहास साक्षी है कि संविधान द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे अधिकारों का दमन करने पर जब सरकार हिंसक रवैया अपनाती है तो उसके खिलाफ साहित्यकारों, लेखकों, पत्रकारों समेत बुद्धिजीवी समुदाय में वेदना, करुणा और विषाद की भावभूमि से जनमानस को उद्वेलित कर देने वाली रचना का सर्जन होता है। आपातकाल के दौरान भी ऐसी रचनाएँ लिखी गईं और उसके औचित्य को एक सिरे से नकार दिया गया। आचार्य निशांतकेतु के अनुसार, "आपातकाल में जो सागर-लहरी उठी थी, उसमें प्रलय प्लावन की विध्वंसकता नहीं होकर सुधाभिसिंचन का रुद्राभिषेक अभीप्सित था। सभा के विरुद्ध उत्पन्न और उत्थापित इस क्रांति में 'शल्य-चिकित्सा' तो थी, किंतु हिंसा नहीं थी। ध्यान रहे कि शल्य-चिकित्सा और हिंसा दोनों में रक़्तस्राव होता है, किंतु दोनों का लक्ष्य भिन्न होता है। शल्य-चिकित्सा में मंगल-भावना होती है, परंतु हिंसा में अमंगल की।"[1]

1975 ईस्वी में सरकार के सभी निर्णय दुर्भावना से प्रेरित थे, इसीलिए वे अमंगलकारक थे, वहीं जनता एक 'शल्य-चिकित्सक' की भूमिका में थी। "अभी हाल में ही मिस्र और सीरिया की जनक्रांति ने सत्तातंत्र के अत्याचार के विरुद्ध आंदोलन किया। इनमें शल्य-चिकित्सा नहीं थी। इसलिए इन्होंने हिंसक रूप धारण कर लिया था। कविता, नाटक और साहित्य के माध्यम से रचनाकार शल्य-चिकित्सात्मक उपचार करता है। यही उसकी साहित्यिक और सात्त्विक अभिचार भी है। साहित्यकार कुशासन पर बैठा एक साधक और भविष्यद्रष्टा शंखवादक होता है, जबकि एक राजनेता सिंहासन पर बैठा वर्तमान धमह्न तुरीयवादक। जैसे चाणक्य और चंद्रगुप्त। एक कुशासन पर पद्मासीन होता है तो दूसरे सिंहासन पर वज्रासनासीन। साहित्यकार कुशासन (कुश-आसन) पर और राजनेता सिंहासन पर विराजमान होता है। दोनों में चाणक्य-चंद्रगुप्त-संबंध होना चाहिए। यही नीर-क्षीर- विवेकिता है। जनता और सत्ता के बीच तिलतंडुलित पृथक्ता होने पर विद्रोह और क्रांति की स्थिति उत्पन्न होती है।"[2] आचार्य निशांतकेतु का यह कथन सत्य प्रमाणित हुआ और देश में जनविद्रोह ने क्रांति का रूप ले लिया। इस क्रांति ने वर्तमान सरकार को झकझोर कर रख दिया। संपूर्ण क्रांति के रूप में इसने कुव्यवस्था को खत्म करने के लिए जन-जन को एकसूत्रित कर दिया।

आपातकालीन हिंदी-साहित्य के विशेषज्ञ और विद्वान् प्रो. अरुण कुमार भगत के अनुसार, "लोकतांत्रिक व्यवस्था भारत में स्वतंत्रता-पश्चात् कायम हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री लाल बहादुर शास्त्री के बाद सन् 1966 में श्रीमती इंदिरा गाँधी ने प्रधानमंत्री के रूप में देश की सत्ता सँभाली। इस बीच देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ बदतर होती चली गई थीं। भारत को चीन और पाकिस्तान से युद्ध लड़ना पड़ा। सन् 1974-75 आते-आते नेहरू-परिवार से देशवासियों का मोहभंग हो गया। शैक्षणिक अराजकता, महँगाई, बेरोजगारी, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार और कुव्यवस्था काफी बढ़ गई थी। सत्ता के खिलाफ स्वर तेज होने लगे थे। गुजरात और बिहार में एक सशक्त छात्र-आंदोलन खड़ा हो गया था, जिसका नेतृत्व लोकनायक जयप्रकाश नारायण जैसे कद्दावर नेता कर रहे थे।"[3] सन् 1975-77 के खुले दमन ने न केवल लंबे और दुष्कर संघर्ष से प्राप्त सात स्वतंत्रताओं को खोया, बल्कि मनमानी नजरबंदियों, ज़ब्तियों और अन्य अत्याचारों के विरुद्ध अदालती राहत पाने के सभी रास्ते भी बंद कर दिए गए। आपातस्थिति शुद्ध व्यक्तिगत सत्ता की आकांक्षा की परिणति थी। इसने विरोध के अधिकार के प्रयोग के सामान्य-से प्रयासों को दंडित करने का उपक्रम किया।

सेंसर के दौरान 3801 समाचार-पत्रों के डिक्लेरेशन ज़ब्त कर लिए गए थे। 327 पत्रकारों को मीसा में बंद कर दिया गया। 290 अखबारों के विज्ञापन बंद कर दिए गए। सन् 1975 में श्री विद्याचरण शुक्ल भारत सरकार के संचार मंत्री थे। उनके विभाग ने देशभर में खूब उत्पात मचाया। हर तरह से अखबारों, लेखकों पर प्रतिबंध लगाया गया। अखिल भारतीय संपादक-सम्मेलन, इंडियन एवं ईस्टर्न न्यूजपेपर्स सोसाइटी, इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट तथा इंडियन न्यूजपेपर्स एसोसिएशन : सभी पर दबाव डालकर समाचार-पत्रों और पत्रकारों के लिए कोड ऑफ एथिक्स (आचार-संहिता) तैयार कराई गई। इस कोड में पत्रकारों ने अपनी गुलामी को मानो स्वयं ही अपना गहना मान लिया। यहाँ तक कि ऐसे चुटकुले, व्यंग्य-चित्र और व्यंग्यात्मक लेखों पर भी सेंसरशिप थोप दिया गया था, जिनकी डी.आई. एस.आई.आर. से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं था। श्री मोरारजी देसाई के जन्मदिन के अवसर पर छपे जानेवाले अभिनंदन-पत्रों पर भी सेंसरशिप लगा दिया गया था।[4]

16 दिसंबर, 1975 को मिर्जापुर (उत्तर-प्रदेश) जिले के सुप्रसिद्ध नगर राबर्ट्सगंज में एक अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का आयोजन वहाँ की एक सांस्कृतिक संस्था ने किया था। प्रसिद्धि-प्राप्त अनेक कवि इस सम्मेलन में एकत्र हुए थे। सम्मेलन प्रारंभ हुआ। उसमें अनेक ख्याति-प्राप्त कवियों ने कविता-पाठ किया, किंतु उनके स्वरों की रवानी, भावों की ओजस्विता, विचारों की स्वतंत्रता, सभी कुछ मानो किसी भय से आक्रांत थी। उन कविश्रेष्ठों के मध्य एक ओजस्वी स्वर अवसर मिलते ही गरज उठा। गोपाल चुनाहे जैसे ही मंच से नीचे उतरे, उन्हें 'बाइज्जत' गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें कोतवाली न ले जाकर पहले जेल ले जाया गया। किंतु उन पुलिस-रूपधारी दरिंदों ने उन्हें जेल के फाटक से वापस लाकर कुछ दूरी पर स्थित एक पेड़ से लटका दिया। उनके दोनों पैर धरती के समांतर खींचकर फैला दिया गया। जो-जो अमानवीय, पशुता को भी शर्मसार कर देने वाले अत्याचार उनके साथ हुए, उन्हें सुनकर कोई भी सहृदय समाज आज भी सिसकने लगता है।

आपातकाल के दौरान स्वतंत्र एवं उन्मुक्त पत्रकारिता को पंगु और पराधीन बना दिया गया था। स्वतंत्र राष्ट्र, अपनी सरकार, लोकतंत्र सबकुछ था, पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बिलकुल नहीं थी। आपातकाल की घोषणा कर अनेक उपलब्ध और नवनिर्मित कानूनों के माध्यम से दमन और यातना के चक्र चलाए जा रहे थे। लोग जेलों में बंद किए जा रहे थे। समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें-इनमें जो भी सरकार को नापसंद होतीं, वे या तो जब्त कर ली जातीं या बंद कर दी जातीं। समारोह नहीं कर सकते थे। जुलूस निकालना और नारे लगाना मना था। आकाशवाणी के प्रसारण और दूरवीक्षण पर भी प्रतिबंध थे। सब जगह सेंसरशिप की कैंची चल रही थी। अक्सर धड़-पकड़, लाठीचार्ज, गोलाबारी, जेलबंदी इत्यादि की खबरें मिलतीं। एक दहशत फैली थी। लोग अपने ही घर में असुरक्षित अतिथि बन गए थे। चारों ओर पहरेदारी और चौकसी थी। वारंट रोज निकलते। जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, चंद्रशेखर जैसे नेताओं और इनके साथ हजारों राजनेता, लेखक, पत्रकार, समाजसेवी जेलों में बोरे की छल्लियों की तरह भरे जा रहे थे। यह लोकतंत्र का हनन था।[5]

इसी प्रकार प्रसिद्ध उपन्यासकार स्व. गुरुदत्त को, जो उस समय 81 वर्ष के थे, जिन्हें न ठीक से दिखाई देता था और न सुनाई देता था तथा जिन्होंने सभी सार्वजनिक कार्यों से संन्यास ले लिया था और केवल अपने घर पर बैठकर लेखन-कार्य में संलग्न थे, किसी ने अपनी शत्रुता निकालने के लिए उनको इस आरोप में बंदी बनवा दिया था कि अमुक दिन वे अपनी कोठी के बाहर लोगों को एकत्र कर वे उन्हें इमरजेंसी के विरुद्ध भड़कानेवाला भाषण दे रहे थे। उन्हें रिहा करवाने के लिए तत्कालीन गृहराज्य मंत्री श्री ओम मेहता तक पहुँच निकाली गई और तब कहीं जाकर कुछ मास बाद उनको रिहा किया गया। उस समय संजय गाँधी अथवा भारत सरकार की यही कार्यविधि थी।

सेंसर के नाम पर सारे अखबारों को आपातकाल में संजय गाँधी ऐंड कंपनी ने अपना गुलाम बना लिया था। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के संपादक श्री मनोहर श्याम जोशी और 'नवभारत टाइम्स' के श्री अक्षय कुमार जैन इस कंपनी के अंधभक्त बन गए थे। साथ ही 'इलस्ट्रेड वीकली' के सरदार खुशवंत सिंह तो परम भक्त बन गए थे। विद्याचरण शुक्ल ने तो सेंसर के नाम पर नादिरशाह को भी शर्मिंदा कर दिया। वहीं कवि भवानी प्रसाद मिश्र की बच्चों पर लिखी कविता तब न छप सकी। किसी कहानी में 'लाल टोपी', 'खाकी वर्दी' आ गया तो सेंसर हो गई। प्रचार के द्वारा सत्य को असत्य और असत्य को सत्य में बदला जा सकता है-ऐसा हिटलर तथा स्टालिन दोनों करके दिखा गए थे। इंदिरा जी कम्युनिस्टों की मदद से उसी प्रकार का प्रचारात्मक

आक्रमण कर रही थीं। वहीं "मार्क्सवादी नेता नंबूदरीपाद ने प्रधानमंत्री को लिखा कि दमन-नीति में आपने अँगरेजों को भी मात दिया है। 1920-21, 1930-31 और 1942 के तूफानी काल में भी समाचार-पत्रों को छूट थी कि गिरफ्तार किए गए नेताओं के नाम प्रकाशित करे, संपादकीय कॉलम को छोड़कर अपना विरोध प्रकट कर सके तथा कई अन्य तरीकों से यह व्यक्त कर सके कि वे सेंसर के अधीन कार्य कर रहे हैं। पर आज प्रधानमंत्री क्या कर रही हैं? ठीक है, विरोधी दलों को औपचारिक रूप से अवैध नहीं घोषित किया है, पर आपने उनका गला घोंट रखा है और उनके हाथ-पैर बाँधकर उन्हें जेल में ठूँस दिया है।"[6]

आपातकाल के दौरान नैतिकता और लोकतंत्र की बात करने वाले जे.पी. पालनी, मुहम्मद करीम छागला, कुलदीप नैयर, दुर्गा भागवत, डॉ. शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव, फणीश्वरनाथ 'रेणु', डॉ. रघुवंश, गौर किशोर घोष, डॉ. शंकर दयाल सिंह, डॉ. सुंदरलाल कथूरिया, कमल किशोर गोयनका, डॉ. देवेन्द्र दीपक, डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, डॉ. एम.ए. लारी आजाद आदि अनेक सर्वमान्य नेताओं, पत्रकारों तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों की आवाज कुचल दी गई थी। उन्हें अनेक प्रकार की मानसिक यातनाएँ दी गईं। इन सबके बावजूद वे झुके नहीं।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के जिस उद्देश्य को लेकर साहित्य लिखा जा रहा हो अथवा पत्रकारिता की जा रही हो, जब वही छिन जाए तो इसके लिए साहित्यकारों और पत्रकारों को संघर्ष करना पड़ता है। जिन साहित्यकारों और पत्रकारों ने अपनी अभिव्यक्ति को जारी रखना चाहा, उनकी आवाज को कारागार में बंदी बना दिया गया। परंतु रचनाकार कहाँ रुकने वाले थे, कारागार के अंदर भी उनकी लेखनी चलती रही। उन रचनाओं से आज हमें आपातकाल के संघर्ष को समझने में आसानी हो रही है।

राजनीतिक दृष्टि से भी देखें तो संपूर्ण क्रांति के बाद जो आपातकाल लगा, उसने निरंकुश सत्ता के विरोधियों और जनहितों की वास्तविक चिंता करनेवालों को एक मंच प्रदान किया। गाँधी जी ने हमें अपने मान-सम्मान एवं स्वतंत्रता पर होने वाले हमलों को रोकने और कारावास-काल को अपनी विरोध-क्षमता की दृढ़ता को प्रबल बनाने में उपयोग करने की सीख दी थी। आपातकाल और इसके पहले के कुछ काल के राजनीति के हमारे बहुत-से साथियों को गाँधी जी के पाठ ने इस शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करने योग्य बनाया। देश में सत्याग्रहियों की नई पीढ़ी सामने आई। जेल का उद्देश्य दंडित करना होता है, लेकिन सत्याग्रही इसे अपनी राजनीतिक आस्थाओं को गहराने और व्यक्तिगत क्षमताओं को प्रबल बनाने की चुनौती में बदल डालता है। कारावास के साहचर्य ने साथ-साथ नजरबंद लोगों को देश की आवश्यकता पर विचार करने और अनिवार्य रूप से एक सक्षम, एकीकृत तथा सर्वहितैषी दल बनाने के लिए प्रवृत्त किया। सक्षम वैकल्पिक विरोधी दल बनाने के अब तक के प्रयास विफल रहे थे; लेकिन तत्कालीन सरकार की प्रतिकूलता ने इसे वास्तविक बना डाला। इस तरह हमने देखा कि जीवन की बुराई में से भी एक अच्छाई निकली। देश की नीतियों को नए सिरे से समझने और उनपर अमल करने की प्रवृत्ति बनी। इसका एक व्यापक असर पड़ा। जनमानस में यह बात गहरी पैठ गई कि यदि हमारे द्वारा निर्वाचित कोई सरकार हमारे अनुकूल या जनहित में कार्य नहीं करेगी तो हम उसका विरोध करने के लिए सक्षम हैं और इसका प्रभाव आपातकाल के बाद की परिस्थितियों में अच्छी तरह देखा जा सकता है।

संदर्भ :

1. भगत, अरुण कुमार, आपातकालीन काव्य : एक अनुशीलन (2013), भूमिपीठ (आचार्य निशांतकेतु), श्रुति बुक्स, डी-21, ब्लॉक एक्स. इंद्रपुरी, लोनी, गाजियाबाद-201102, पृष्ठ-15
2. वही, पृष्ठ-15-16
3. भगत, अरुण कुमार, आपातकालीन काव्य : एक अनुशीलन (2013), श्रुति बुक्स, डी-21, ब्लॉक एक्स., इंद्रपुरी, लोनी, गाजियाबाद-201102, पृष्ठ-21
4. भटनागर, हरि, संपा., साक्षात्कार, मासिक, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, जून-अगस्त 2006, अंक : 318-320, पृष्ठ-168
5. गौतम, डॉ. सुरेश (संपादक), अक्षर में आकाश (2004), आचार्य निशांतकेतु से अरुण कुमार भगत का साक्षात्कार, शब्द सेतु, ए-139, गली नं.-3, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-110094, पृष्ठ-21
6. टंडन, श्री बिशन, आपातकाल : एक डायरी (भाग-2) (2002), पृष्ठ-500

❖

वरिष्ठ अध्येता, आई.सी.एस.एस.आर., नई दिल्ली
ए-6ए, धर्म कॉलोनी, पालम विहार एक्स्टेंशन
गुरुग्राम, हरियाणा-122017 मोबाइल : 9911382072
ई-मेल : ashokpjyoti@gmail.com

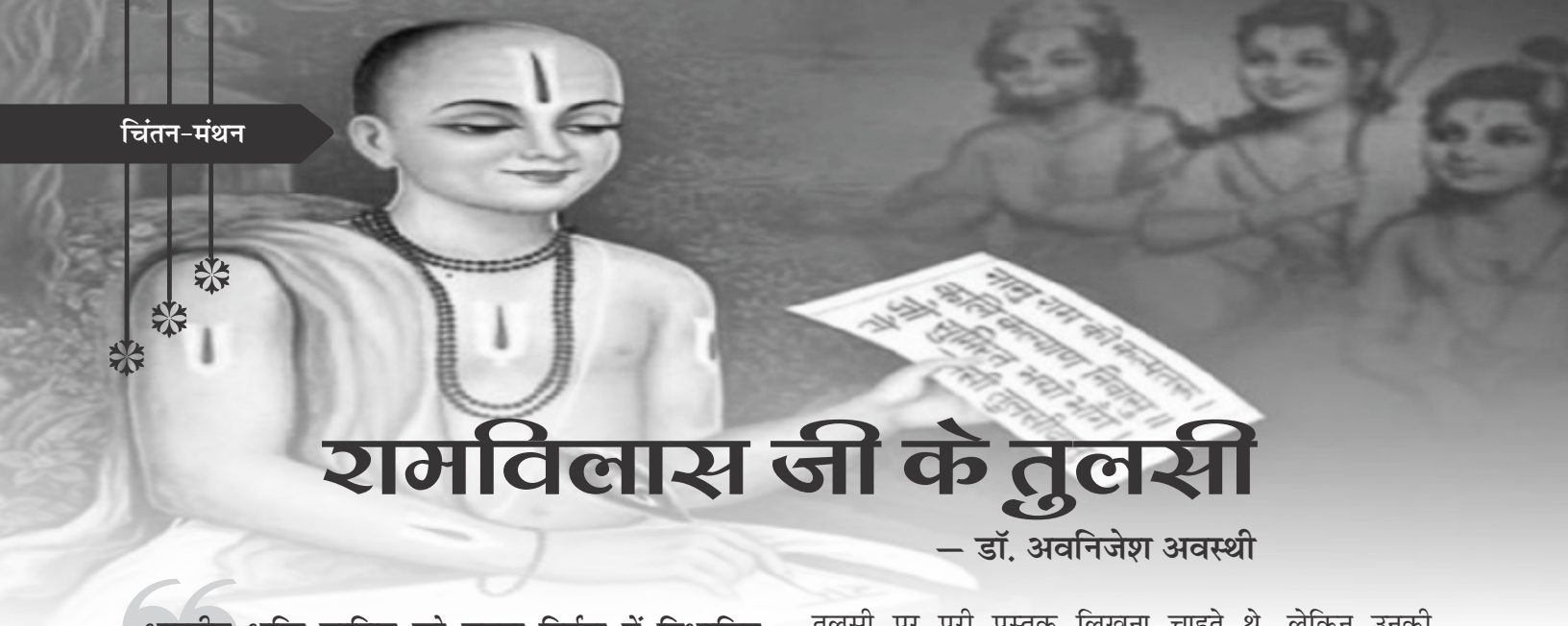

रामविलास जी के तुलसी

— डॉ. अवनिजेश अवस्थी

भारतीय भक्ति-साहित्य को सगुण-निर्गुण में विभाजित करके और हिंदी साहित्य के भक्ति काल को संत साहित्य के रूप में देखने की आदत-सी पड़ गई है। प्रेमाख्यानक, राम भक्ति, कृष्ण भक्ति में बाँट कर पढ़ने-सोचने की हमारी दृष्टि इतनी रूढ़ हो गई है कि भक्ति आंदोलन को समग्रता में समझने और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उसका सांस्कृतिक महत्त्व तिरोहित सा हो जाता है। संतों के जाति-पाति विरोधी होने की बात को इतना अधिक गाढ़े रंग से रंग दिया गया है कि लगता है कि बाकी तमाम 'भक्ति कवि' नितांत जातिवादी थे, और तुलसी-कबीर को आलोचकों द्वारा एक-दूसरे के सामने खड़ा कर दिया गया है मानो दोनों एक दूसरे के धुर विरोधी राजनैतिक दल हों, जबकि सच्चाई यह है ही नहीं, रामविलास जी स्वयं हिंदी आलोचकों के इस संकीर्ण और निहित स्वार्थ भरे दृष्टिकोण से बड़े आहत थे। उनकी उद्विग्नता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वे साफ-साफ यह कहने के लिए एक तरह से विवश हो जाते हैं कि 'यहाँ पर यह आपत्ति की जा सकती है कि मैं भक्ति आंदोलन को बहुत व्यापक अर्थ दे रहा हूँ।

रामविलास जी की अंतिम कृति जो उनके निधन के पश्चात प्रकाशित हुई-गोस्वामी तुलसीदास पर रही थी-भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास। लेकिन जिस रूप में रामविलास जी ने इस पुस्तक की परिकल्पना की थी उस रूप में यह पूरी नहीं हो पाई, दूसरे अपने बिल्कुल अंतिम समय में वे गोस्वामी तुलसीदास पर अलग से एक मुकम्मल पुस्तक लिखना चाहते थे लेकिन वह कार्य हो नहीं पाया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी तुलसी पर पूरी पुस्तक लिखना चाहते थे, लेकिन उनकी मनोयोजना भी साकार नहीं हो पाई-पिछले 60 वर्षों में गोस्वामी जी पर जिस तरह से ब्राह्मणवादी, वर्ण व्यवस्था समर्थक, सामंती मूल्यों का पक्षधर, शूद्र और नारी विरोधी जैसे आक्षेप-आरोप लगाए जाते रहे हैं और उन्हें अभिजात-कुलीन मानसिकता और निरी भावुकता से भरे दैन्य-दास्य भाव का कवि कहने का 'फैशन' चल पड़ा है-ऐसे में हजारी प्रसाद जी और रामविलास जी की तुलसी पर पुस्तकों का लिखे जाने से रह जाना कुछ और भी खटकता है।

रामविलास जी न केवल मार्क्सवादी थे, वह वामपंथी लेखक संगठन के महासचिव भी रहे-इसलिए उनके मार्क्सवादी होने में कोई शक-शुबहा नहीं होना चाहिए लेकिन बाकी मार्क्सवादियों से एकदम उलट उनके भाई के दर्शन और ज्ञान परंपरा में अटूट आस्था थी। इसलिए वेद और भारतीय नवजागरण के विषय में उनका मौलिक चिंतन और स्थापनाएँ थीं। गोस्वामी तुलसीदास भारतेंदु और प्रेमचंद को उन्होंने अजस्त्र भारतीय परंपरा में ही देखा-यह बात दूसरी है कि उन्होंने जड़ मार्क्सवादियों को उनकी स्थापनाओं को इतना विचलित किया कि उनकी मृत्यु के उपरान्त साहित्य की शव साधना जैसे लेख से उन्हें श्रद्धांजलि दी गई। हिंदी आलोचना में मार्क्सवाद के आयात के पश्चात जब गोस्वामी तुलसीदास जी को सामंती-मूल्यों के प्रतिस्थापक के रूप में व्याख्यायित करने की शुरुआत हुई तो रामविलास जी ने सन 1955 में ही तुलसी साहित्य के सामंत विरोधी मूल्य निबंध लिखकर करारा जवाब दिया। उल्लेखनीय बात यह है कि रामविलास जी ने यह निबंध तुलसी के प्रति

किसी भी प्रकार के श्रद्धातिरेक में नहीं लिखा, उन्होंने निबंध के आरंभ में ही श्रद्धा और प्रतिक्रिया दोनों को ही खारिज कर दिया है–'दो तरह के लेखकों ने तुलसी साहित्य का मूल्यांकन बहुत आसान बना दिया है–पहली तरह के आलोचक तुलसीदास को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए उन्हें हिंदू धर्म का उद्धारक मानते हैं। दूसरी तरह के आलोचक उन्हें प्रतिक्रियावादी कहते हैं, उनकी कला का महत्व स्वीकार करते हुए भी उनकी विचारधारा को प्रगति-विरोधी मानते हैं। दोनों तरह के आलोचक श्रद्धा के बावजूद एक ही नतीजे पर पहुंचते हैं और वह यह कि तुलसीदास जर्जर होती हुई सामंती संस्कृति के पोषक थे, इसलिए आज की

जातीय संस्कृति के निर्माण में–ऊँची जाति और नीची जाति के हिंदुओं, मुसलमानों आदि की मिली-जुली संस्कृति के निर्माण में उनकी विचारधारा कोई मदद नहीं कर सकती। दोनों ही तरह के आलोचक भारतीय जनता को खासकर हिंदी भाषी जनता को तुलसीदास की सांस्कृतिक विरासत से वंचित कर देते हैं।' निबंध की प्रस्तावना के रूप में लिखी गई ये पंक्तियाँ वास्तव में गोस्वामी तुलसीदास के प्रति रामविलास जी के न केवल व्यापक दृष्टिकोण का एकदम खुलासा कर देती हैं बल्कि तुलसी को एक भक्त कवि के दायरे से बाहर निकालकर विराट, भारतीय संस्कृति के ऐसे सोपान के रूप में भी देखती हैं जिसको सही रूप में जाने बिना भारत को जानना असंभव होगा। तुलसीदास और उनके विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस की अपार लोकप्रियता के संबंध में यह कहकर कि यदि गीता प्रेस गोरखपुर जैसे संस्था ना होती तो तुलसी पता नहीं कहाँ होते–'सुभाषित कहे जाते रहे हैं, उनका प्रतिवाद भी रामविलास जी ने एकदम खुलकर किया है–'तुलसी का काव्य लोक-संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। उसके नाम के साथ कोई पंथ नहीं जुड़ा है। रामचरितमानस को लोकप्रिय बनाने के लिए कोई संघबद्ध प्रयास नहीं किया गया। अपने आप मिथिला के गाँव से लेकर भालवे की भूमि तक जनता ने इस ग्रंथ को अपनाया। करोड़ों हिंदी भाषियों के लिए धर्म ग्रंथ, नीति ग्रंथ। काव्य ग्रंथ यदि कोई है तो रामचरितमानस है। इसका एक अप्रत्यक्ष सामाजिक फल यह हुआ कि हिंदी भाषी जनता को संगठित रूप में उसमें जातीय एकता का भाव उत्पन्न करने में रामचरितमानस की अपूर्व भूमिका है।' रामविलास जी की यह पंक्तियाँ उद्धृत करने का एक ही मंतव्य है कि तुलसीदास को पढ़ने। जानने और उनका महत्व आँकने का एकमात्र अर्थ उनके प्रति श्रद्धावान हो जाना ही नहीं है, श्रद्धा से कतिपय मुक्त होकर भी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में तुलसी की अर्थवत्ता को समझा जा सकता है।

भारतीय भक्ति-साहित्य को सगुण-निर्गुण में विभाजित करके और हिंदी साहित्य के भक्ति काल को संत साहित्य के रूप में देखने की आदत-सी पड़ गई है। प्रेमाख्यानक राम भक्ति, कृष्ण भक्ति में बाँट कर पढ़ने-सोचने की हमारी दृष्टि इतनी रूढ़ हो गई है कि भक्ति आंदोलन को समग्रता में समझने और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उसका सांस्कृतिक महत्व तिरोहित सा हो जाता है। संतों के जाति-पाति विरोधी होने की बात को इतना अधिक गाढ़े रंग से रंग दिया गया है कि लगता है कि बाकी तमाम 'भक्त कवि' नितांत जातिवादी थे और तुलसी-कबीर को आलोचकों द्वारा एक-दूसरे के सामने खड़ा कर दिया गया है मानो दोनों एक दूसरे के धुर विरोधी राजनैतिक दल हों, जबकि सच्चाई यह है ही नहीं, रामविलास जी स्वयं हिंदी आलोचकों के इस संकीर्ण और निहित स्वार्थ भरे दृष्टिकोण से बड़े आहत थे। उनकी उद्विग्नता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वे साफ-साफ यह कहने के लिए एक तरह से विवश हो जाते हैं कि 'यहाँ पर यह आपत्ति की जा सकती है कि मैं भक्ति आंदोलन को बहुत व्यापक अर्थ दे रहा हूँ। भक्त और संत अलग थे, इन दोनों से भिन्न प्रेममार्गी कवि थे। इन सबको एक आंदोलन में शामिल करना अनुचित है। तो इसका उतर यह है कि स्वयं भक्त और संत कवि भक्तों और संतों में वैसा भेद न करते थे जैसा आलोचक करते थे'। इसके पश्चात रामविलास जी ने गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य से कतिपय उदाहरण भी दिए हैं-'संत सभा चहुँ दिसि, अंबराई' 'संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल', 'बंदऊ संत समान चित, हित अनहित नहीं कोई'। यही नहीं उन्होंने साथ ही कबीर और जायसी की कविता से उदाहरण निकालकर सामने रख दिए। इसलिए वे समूचे भक्ति-आंदोलन को एकात्मकता में ही देखते हैं-मार्क्सवादी होने के बावजूद रामविलास ही हैं जो यह कह सकते हैं कि 'अनेक विद्वान मानते हैं कि राष्ट्रीय एकता का ही नहीं जनतंत्र का पार्ट भी हमें अंग्रेजों ने ही पढ़ाया। अंग्रेज न आते तो यहाँ के लोग संकीर्ण जातिवाद में फंसे रहते। इन विद्वानों को विचार करना चाहिए कि भक्ति आंदोलन में इतने जुलाहे, दर्जी, नाई, चमार, आदि वर्णों के लोग कैसे सिमट आए। संभवत: जातिप्रथा जितनी दृढ़ आज है उतनी नामदेव दर्जी, सेन नाई, चोखा महार, रैदास चमार और कबीर जुलाहे के समय में नहीं थी।'

रामविलास जी के लिए तुलसी, तानसेन और ताजमहल ये तीन कविता, संगीत और स्थापत्य के प्रतिमान हैं। वे समूची भारतीयता को इन्हीं के बरक्स देखने की बात करते थे। तुलसीदास उनके लिए मात्र एक कवि भर नहीं थे, न तानसेन एक संगीतकार और ताजमहल एक स्थापत्य का बेहतरीन नमूना भर-ये तीनों भारतीय सांस्कृतिक विरासत की उदात्तता और संपन्नता कि ऐसी गाथा है जिनको निकालकर भारत का सांस्कृतिक मानचित्र नहीं खींचा जा सकता। वे इस प्रतिमान त्रयी को भारतीय मध्य काल के उत्कर्ष के रूप में रेखांकित करते हुए सारे विश्व के समक्ष भारतीय सौंदर्य-बोध की श्रेष्ठता स्थापित करना चाहते थे-जिसका खुलासा रणजीत साह ने उनकी पुस्तक 'भारतीय सौंदर्य बोध और तुलसीदास' की प्रस्तुति में किया है। तुलसीदास पर नए सिरे से पूरी पुस्तक लिखने की रामविलास जी की अदम्य इच्छा थी, इसका खुलासा भी रणजीत साह ने किया है-'अपनी कुछ अंतिम मुलाकातों में जब वे मृत्यु शैय्या पर पड़े थे तो अपने हाथों में मेरा हाथ लिए काफी रुक-रुक कर और धीमे-धीमे जो कुछ कहते, उनमें तुलसीदास को केंद्र में रखकर एक बड़ी पुस्तक तैयार करने की चाह उन्होंने जताई थी। इन दिनों उनके परिवार के लोग देर-सबेर डॉक्टर साहब के कहने पर मानस से उनके इच्छित प्रसंगों को पढ़कर सुनाते थे। संभवत: इसीलिए उन्होंने मुझसे यह कहा था कि मुझे तुलसीदास पर एक किताब अलग से लिखनी है। उन्होंने बताया था-'मैं उन्हें कभी-कभी राम से भी बड़ा पाता हूँ। तुलसीदास को राम से भी बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी थी।'

रामविलास जी के तुलसी चिंतन को यदि कम से कम शब्दों में समझना हो तो ये पंक्तियाँ पर्याप्त होंगी, 'तुलसी की ऐतिहासिक सीमाओं की बात करके माफी माँगने की जरूरत नहीं है जरुरत है तुलसी पर गर्व करने की, इस बात पर दृढ़ विश्वास करने की कि जिस जाति ने तुलसी को जन्म दिया है वह अजेय है, इस बात पर रोष करने की कि तुलसी की संतान आज संसार की सबसे पिछड़ी हुई, बिखरी हुई, निर्धन और दलित जातियों में से है।'

❖

सामाजिक चिंतक एवं शिक्षाविद
एसोसिएट प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9810364096

स्त्री-समस्याओं पर नवजागरणकालीन स्त्री साहित्यकारों की दृष्टि

— डॉ. उन्मेष कुमार सिन्हा

इस लेखिका ने बहुत प्रबल ढंग से विधवा-विवाह का समर्थन किया है। तर्क वैज्ञानिक हैं। उसका कहना है कि स्त्री को भी पुरुष के सामान्य इंद्रियाँ मिली हैं, इसलिए जब पुरुष उन्हीं इंद्रियों को तुष्ट करने के लिए दूसरा विवाह कर सकता है और वह भी 'साठ वर्ष' की उम्र में, तो विधवा स्त्री से इंद्रिय-नियंत्रण की अपेक्षा क्यों? वह पुनर्विवाह क्यों नहीं कर सकती? तब, जबकि उसके भीतर पुरुष से आठ गुना अधिक काम भावना की बात कही जाती है। वह व्यंग्य करती है-'दूना खाने वाले को घर में कैद कर भूखा बैठा रखें और आप उसी के सामने चौगुना खाके मजे उड़ाएँ। अगर इस हाल में कैदी लाचार हो चोरी करे तो जान से मारने को तैयार हों।' ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह हिंदी में स्त्री की यौनाकांक्षा की स्त्री द्वारा पहली खुली घोषणा है, जो तत्कालीन समाज को सकते में डालने वाली रही होगी। यही नहीं लेखिका एक विधवा के विवाहेतर यौन संबंध को भी अपराध या दोष नहीं, विवशता के रूप में प्रस्तुत करती है।

नवजागरण की एक मुख्य प्रवृत्ति थी स्त्री की समस्याओं पर विमर्श और उसका समाधान। बंगाली और मराठी क्षेत्र के बाद हिंदी क्षेत्र में आए नवजागरण में भी यह प्रवृत्ति मौजूद थी। अग्रिम पंक्ति के बहुत से लेखकों ने अपनी रचनाओं में स्त्री-जीवन की कई चिंताओं-तकलीफों को प्रस्तुत किया और उसके निराकरण की राह प्रस्तावित की लेकिन इनकी इस स्त्री संबंधी आधुनिक दृष्टि की अपनी एक सीमा थी और अंतर्विरोध भी। स्त्री के प्रति सारी सहानुभूति के बावजूद यह दृष्टि समग्रता में पुरुषवादी और यथास्थितिवादी ही थी। इसी दौर में, नवजागरण की लहर के ही फलस्वरूप, भक्ति की चारदीवारी में सिमटी चली आ रही स्त्री रचनाशीलता बाहर आकर समकालीन भौतिक जीवन की ओर उन्मुख हुई। कई स्त्री रचनाकारों ने पुरुष रचनाकारों के समानांतर स्त्री-प्रश्नों पर अपने निजी अनुभवों से हस्तक्षेप किया। जाहिर है कि न केवल नवजागरण कालीन साहित्य की स्त्री-चेतना को समग्रता में समझने के लिए, बल्कि हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की विकास-यात्रा को समझने के लिए भी इस स्त्री रचनाशीलता को समझना आवश्यक है।

इस संदर्भ में नवजागरण काल की जो रचना सर्वप्रथम उल्लेखनीय है वह है 'एक अज्ञात हिंदू लेखिका' की पुस्तक 'सीमन्तनी उपदेश'। हिंदी में नारी-जागरण के लिए; और आज की भाषा में कहें कि स्त्री विमर्श की किसी स्त्री के द्वारा लिखी गई यह पहली पुस्तक है। लेखिका की पहचान अभी तक नहीं हो पाई है। 'औरतों के वास्ते बेहतर समझ के' इस पुस्तक को समाज सुधारक कन्हैयालाल अलखधारी ने एक फरवरी 1882 को लुधियाना के धर्म सहायक प्रेस से छपवाई थी। इसी मूल संस्करण के आधार पर 1988 में डॉ. धर्मवीर ने इसे पुनः प्रकाशित करवाया।

तेईस अध्यायों में विभक्त यह छोटी-सी पुस्तक मूलतः विचार-पुस्तक है, बावजूद इसके; इसमें वर्णन भी है, आख्यान भी है और कविता भी। स्त्री-जीवन के मुद्दों पर पुरुषवादी व्यवस्था के विरोध में बेहद आक्रामक और खुली भाषा में लिखी गई यह पुस्तक अपने समय में कितनी विस्फोटक सिद्ध हुई होगी; इसका संकेत इस बात से ही मिल जाता है कि कई तत्कालीन पुरुष समाज सुधारकों से व्यक्तिगत परिचय होने के

बावजूद लेखिका को अपना नाम छिपाना पड़ा था। अवश्य ही उसे यह आभास रहा होगा कि उसने एक वर्जित विषय पर अक्षम्य तेवर के साथ जो विचाराभिव्यक्ति की है उसके परिणाम स्वरूप सामाजिक उपेक्षा-अपमान के साथ ही शारीरिक आघात भी पहुँचाया जा सकता है। लेखिका बाल विधवा थी, इसलिए इसमें अनुभूति की सच्चाई की आँच भी है और आँसुओं की अंतर्धारा भी।

लेखिका की दृष्टि पुरुषसत्तात्मक समाज-व्यवस्था में स्त्री के शोषण-उत्पीड़न के तमाम रूपों पर गई है और उसका निष्कर्ष यह है कि, 'जैसे गन्ने का रस निकाल लेने से छिलका रह जाता है वैसे ही हमारी हालत है।'[1] रूपक की यह भाषा जीवन में रस के सूख जाने की मर्मान्तक पीड़ा से उपजी है। उसका मानना है कि, 'हिंदुस्तान की औरतें पैदा होने से मरने तक सिवा गम खाने और दिल जलाने के किसी तरह का आराम किसी उम्र में नहीं पातीं।'[2] वह पुस्तक में कई जगह पूरी व्यवस्था को स्त्री के लिए 'जेलखाना' बताती है। वह स्त्री की दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार कारकों को भी तलाशती है। इस प्रक्रिया में वह अनेक धर्मशास्त्रीय स्थापनाओं, सामाजिक परंपराओं और मूल्यों से मुठभेड़ करती है। स्पष्ट कहती है कि इस 'जेलखाने' से मुक्त होने की 'तदवीर' स्त्री को स्वयं करनी होगी। यानी वह स्त्री-मुक्ति के लिए दया और सहानुभूति को खारिज करती है।

'एक अज्ञात हिंदू औरत' की मूल मान्यता यह है कि स्त्री और पुरुष मात्र प्रकृति-विस्तार के उपकरण के रूप में अलग-अलग जैविक विशेषता रखते हैं, अन्यथा दोनों समान हैं। पुरुष को स्त्री पर वर्चस्व स्थापित करने का कोई विशेषाधिकार नहीं है। वह पति को परमेश्वर मानने की अवधारणा को खारिज करती है—'आदमी को ईश्वर ने पैदा किया है फिर आदमी क्योंकर परमेश्वर हो सकता है?'[3] बराबरी की माँग का आधार उसकी दृष्टि में यह है कि 'ब्रह्म' ने अपने ही 'बदन' के एक भाग से स्त्री को बनाया और दूसरे भाग से पुरुष को। यानी, 'जब एक ही बदन से पैदाइश है दोनों के अधिकार बराबर होनी चाहिए।'[4] पत्नी की स्वतंत्रता, सम्मान और अधिकार का अपहरण करने और उसका उत्पीड़न करने वाले पति के लिए वह स्पष्ट कहती है कि, 'बुरे खाविंद से बगैर खाविंद रहना अच्छा है।'[5] उसने बहुत साहस के साथ पुस्तक के एक अध्याय का शीर्षक ही रख दिया, 'पुरुष की हर रोज की मार खाने से रांड रहना अच्छा है।' गौरतलब है कि वह विवाह संस्था की विरोधी नहीं है लेकिन उसके मौजूदा स्वरूप को स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त करने वाला मानती है। वह बिना किसी आदर्शवाद में फँसे यह विज्ञान सम्मत सच्चाई स्वीकार करती है कि स्वतंत्रता का प्राथमिक अर्थ है देह की स्वतंत्रता और विवाह संबंध में स्त्री को यही देह पति के हाथों गिरवी रखनी पड़ती है-'फिर शादी करने से अपने अख्त्यारात दूसरे के अख्तयार में देने पड़ते हैं। जब आपने जिस्मी अख्तयार दूसरे को दे दिए तब दुनिया में क्या चीज बाकी रही।'[6] वह वर-चुनाव की स्वतंत्रता स्त्री को देना चाहती है। कहती है कि, 'क्या बगैर पसंद किए हुए शादी बिच्छू के जहर से कुछ कम दुख देती है?'[7]

'एक अज्ञात हिंदू औरत' की दृष्टि में यदि पति भी पत्नी के प्रति एक निष्ठ प्रेम और समर्पण का भाव नहीं रखता है तो पत्नी के लिए 'पतिव्रत धर्म' का कोई अर्थ नहीं। दरअसल 'यह पतिव्रता धर्म नहीं, खुद मतलबी धर्म है।'[8] यह पत्नी को नियंत्रित रखने और पति को व्यभिचार के लिए आजादी देने का उपकरण है। इसीलिए लेखिका इसके विरोध के लिए स्त्री को प्रेरित करती है। वह सुझाव देती है-'उनको जनाकारी से रोकने की यह अच्छी तजवीज है। जब किसी औरत के पास जावें तुम कहो हम भी दूसरे मर्द के पास जावेंगी।'[9]

इस लेखिका ने बहुत प्रबल ढंग से विधवा-विवाह का समर्थन किया है। तर्क वैज्ञानिक हैं। उसका कहना है कि स्त्री को भी पुरुष के सामान्य इंद्रियाँ मिली हैं, इसलिए जब पुरुष उन्हीं इंद्रियों को तुष्ट करने के लिए दूसरा विवाह कर सकता है और वह भी 'साठ वर्ष' की उम्र में, तो विधवा स्त्री से इंद्रिय-नियंत्रण की अपेक्षा क्यों? वह पुनर्विवाह क्यों नहीं कर सकती? तब, जबकि उसके भीतर पुरुष से आठ गुना अधिक काम भावना की बात कही जाती है। वह व्यंग्य करती है-'दूना खाने वाले को घर में कैद कर भूखा बैठा रखें और आप उसी के सामने चौगुना खाके मजे उड़ाएँ। अगर इस हाल में कैदी लाचार हो चोरी करे तो जान से मारने को तैयार हों।'[10] ध्यान दिया जाना चाहिए कि

यह हिंदी में स्त्री की यौनाकांक्षा की स्त्री द्वारा पहली खुली घोषणा है, जो तत्कालीन समाज को सकते में डालने वाली रही होगी। यही नहीं लेखिका एक विधवा के विवाहेतर यौन संबंध को भी अपराध या दोष नहीं, विवशता के रूप में प्रस्तुत करती है। वह धर्म ग्रंथों के हवाले से विधवा-विवाह का विरोध करने वालों से स्पष्ट कहती है कि 'अगर परमेश्वर की मर्जी होती कि एक खाविंद के मरने से औरत दूसरी शादी न करें तो उसके साथ ही उसकी ख्वाहिश भी मर जाती।'[11] लेकिन ऐसा नहीं होता है। वह कहती है कि पति की मृत्यु के उपरांत भी स्त्री हर महीने निरंतर रजस्वला होती है। यह एक तरह से ईश्वरीय 'हुक्म' का संकेत है कि वह पुनः विवाह करे और संतानोत्पत्ति करे। इसीलिए वह यहाँ तक कह देती है कि, 'एक खाविंद के मरने से नहीं बल्कि जब तक ख्वाहिश बाकी रहे पचास खाविंद मरें बेशक शादी कर लो।'[12] वह इस मुद्दे पर इतनी आक्रामक है कि अपनी विधवा बेटी के दुख को जेवर आदि के माध्यम से कम करने का प्रयास करने और उसकी वास्तविक मनोदैहिक जरूरत को अनदेखा करने वाली माँ तक की खबर लेती है। उससे पूछती है-'जब आप पलंग पर गर्म होती हैं उस वक्त लड़की के मन का क्या बंदोबस्त करती हो?'[13] ऐसी खुली भाषा गहरी पीड़ा से पैदा होती है।

लेखिका एक अध्याय में स्त्री के तमाम आभूषणों पर विस्तार से विचार करते हुए सुहाग के निशानी के तौर पर पहने जाने वाले आभूषणों को प्रश्नांकित करती है। वह स्त्री समाज से पूछती है कि, 'तुम्हारे वास्ते तुम्हारे खाविंद कौन-सी निशानी रखते हैं।'[14] यह समानता का आग्रह है। वह ऐसे आभूषणों को 'जेलखाने' में पड़े कैदियों के हाथों-पैरों में पड़ी 'बेड़ियों' और 'पशुओं' के गले में डाले गए 'रस्से' के समान बताकर गुलामी का प्रतीक मानती है। निश्चय ही यह सौंदर्य उपकरणों का एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण है और अभूतपूर्व है। वस्त्रों के संबंध में भी उसका आग्रह है कि स्त्री वही पहने जिससे उसका तन ढके और सुविधाजनक हो। इसके लिए चाहे परंपरा के विरुद्ध दूसरे देशों-धर्मों के लोगों का अनुकरण क्यों न करना पड़े। वह कहती है कि जब पुरुषों ने अंग्रेजी पोशाक को अपना लिया है तो स्त्रियाँ भी 'अंग्रेज लेडियों' से सीखें।

लेखिका संतानोत्पत्ति को सुखद तो मानती है लेकिन इसे स्त्री के अस्तित्व की सार्थकता की कसौटी मानने से इनकार कर देती है। उद्देश्य यह है कि इसके अभाव में स्त्री हीन भावनाओं से मुक्त रहे और उसका मानसिक व दैहिक शोषण न किया जा सके। वह स्त्री समाज को इस सच्चाई से अवगत कराती है कि इस पुरुष सत्तात्मक समाज में संतान अपनी माँ के नाम से नहीं, पिता के नाम से जाना जाता है।

लेखिका जन्म से मृत्यु तक एक स्त्री की आर्थिक पराश्रितता को भी गहरी चिंता के साथ रेखांकित करती है और विधवा के जीवन-यापन के लिए पति की संपत्ति में उसकी हिस्सेदारी और अन्य आर्थिक बंदोबस्त पर विचार करती है। अन्ततः यह कहना उचित होगा कि 'सीमंतनी उपदेश' अपने समय से बहुत आगे की रचना है। डॉ. धर्मवीर ठीक लिखते हैं कि, 'यह औरत के दर्द और विद्रोह का सुलगता हुआ दस्तावेज है।'[15]

नवजागरण काल में उपन्यास के क्षेत्र में भी स्त्री रचनाकारों ने हस्तक्षेप किया। डॉ. गोपाल राय के अनुसार 'हिंदी की पहली उपन्यास लेखिका कोई साध्वी सती प्राण अबला थीं, जिन्होंने अपना वास्तविक नाम गुप्त रखकर 1890 ई. में सुहासिनी नामक उपन्यास लिखा और प्रकाशित कराया था।'[16] इनके पश्चात दो अन्य महिला उपन्यासकारों हरदेवी और सरस्वती गुप्त के उपन्यास क्रमशः 'हुकुम देवी' (1893) और 'राजकुमार' (1898) प्रकाशित हुए। ये उपन्यास कलात्मक दृष्टि से चाहे महत्त्वपूर्ण न हो परन्तु उस दौर की स्त्री चेतना के आधुनिक बनने की प्रक्रिया के साक्ष्य के रूप में उल्लेखनीय अवश्य हैं। उपन्यास विधा को अपनाकर स्त्री रचनाशीलता ने इस बात का प्रमाण दिया की नई-से-नई विधा में भी उसकी गति संभव है। इन सभी उपन्यासों के केंद्र में स्त्री-जीवन है। निश्चय ही यह अपनी बात कहने के साहस का बीजाअंकुर है। कही गई बात क्या है, यह प्रश्न दूसरा है। सच है कि स्त्री-जीवन के गंभीर सवालों और संकटों को इनमें नहीं उठाया गया है, 'सीमंतनी उपदेश' जैसी वैचारिकी इनमें नहीं है; लेकिन अपने अस्तित्व का अनुभव करने और कराने की स्त्री चेतना अवश्य व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से सरस्वती गुप्त का उपन्यास 'राजकुमार' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

यद्यपि यह आकस्मिकता, संयोग, कौतुहल, रोमांच जैसे

तत्वों से युक्त है और समकालीन स्त्री-जीवन की वास्तविक समस्याओं- चिंताओं के बदले काल्पनिक स्त्री-जीवन की तस्वीर प्रस्तुत करता है फिर भी इसकी कथा मूल रूप से पुरुष सत्ता के समक्ष स्त्री सत्ता के सशक्त होने, एक चुनौती बनने की है। कुल कहानी केंद्रीय स्त्री पात्र 'ज्ञानलता' द्वारा पुरुष पात्र 'राजकुमार' के घमंड के सामने आत्मगौरव की रक्षा करने की है। वह अपने पुत्र के माध्यम से अहंकारी राजकुमार को अपने समक्ष झुकने के लिए विवश कर देती है। कहा जा सकता है कि पुत्र के माध्यम से हासिल उपलब्धि किसी प्रगतिशील चेतना का सूचक नहीं है। बात ठीक भी है; लेकिन यहाँ बस इतना ही देखना उचित होगा कि नवजागरण के फलस्वरूप सदियों से अस्तित्व विहीन-सी हो चुकी स्त्री आत्मगौरव को पूरी शिद्दत से महसूस कर रही है। यही जागरण है।

इस दौर के एक अन्य उपन्यास श्रीमती मल्लिका देवी कृत 'सौंदर्यमयी' (1888) की चर्चा भी यहाँ आवश्यक है। बहुत लंबे समय तक इसे मल्लिका देवी द्वारा किसी बांग्ला उपन्यास का अनुवाद माना जाता रहा है, जैसा कि इसके मुख पृष्ठ पर अंकित है, लेकिन अब यह मान्यता दृढ़ होती जा रही है कि यह वस्तुत: श्रीमती मल्लिका देवी का ही मौलिक उपन्यास है, जिसे उन्होंने पहले बांग्ला में लिखा होगा फिर स्वयं ही हिंदी में अनूदित कर प्रकाशित करवाया होगा। मुख्य तर्क यह है कि यदि यह अनुदित है तो इसके मूल लेखक और मूल कृति का नाम इसमें क्यों नहीं अंकित है? दूसरी बात यह कि इसकी अंतर्वस्तु और भाषा-शैली मल्लिका देवी की अन्य रचनाओं से साम्यता रखती है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में भी इसका प्रकाशन मल्लिका देवी के नाम से ही हुआ है। जाहिर है कि नवजागरण काल की हिंदी लेखिकाओं की आधुनिक चेतना के संदर्भ में इसकी अंतर्वस्तु से गुजरना उचित होगा। इस उपन्यास के केंद्र में बाल विवाह और विधवा विवाह की समस्या है। कथा बाल विधवा 'सौंदर्य' के वेदनापूर्ण जीवन की है। यह वेदना पैदा होती है बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाने से, समाज की भारी उपेक्षा-अपमान से, व्यभिचारिणी होने के आरोप से, घर से निकाल दिए जाने पर जीवन-निर्वाह की कठिनाइयों से और 'हीरादास' के रूप में अपने प्रेम को प्राप्त न कर पाने से। प्रिय से संयोग की अधूरी लालसा लिए हुए ही वह अपनी जीवन-यात्रा पूरी करती है। एक युवा विधवा के भीतर संयोग की नैसर्गिक कामना तूफान ला देती है और वह भीतर भीतर छटपटाती रहती है। 'सौंदर्य' सीधे ईश्वर से सवाल करती है-'हाय विधाता! तेरा कैसा चरित्र है? विधवा किया किंतु उसके साथ ही आकांक्षा को क्यों निवृत्त नहीं किया।....पिपासा है तो पानी क्यों नहीं?'[17] कहना न होगा कि यह हिंदी उपन्यास में एक स्त्री के द्वारा कामेच्छा की पहली खुली आत्मस्वीकृति है। गौरतलब है कि 'सौंदर्य' ईश्वर से शिकायत नहीं कर रही है, बल्कि धरती पर ईश्वर बने हुए पुरुष धर्मविधायकों को बताना चाह रही है कि ईश्वर करना चाहता तो पति का जीवन समाप्त करने के साथ ही स्त्री की कामेच्छा को भी समाप्त कर देता। परंतु नहीं करता, तो इसका अर्थ यह है कि विधवा की कामेच्छा की संतुष्टि का प्रबंध करना उचित है। ठीक यही बात 'सीमंतनी उपदेश' में भी कही गई है-'अगर परमेश्वर की मर्जी होती कि एक खाविंद के मरने से औरत दूसरी शादी न करे तो उसके साथ ही उसकी ख्वाहिश भी मर जाती। नहीं, बराबर देखने में आता है खाविंद के मरे पीछे यह ख्वाहिश आ सताती है।'[18] 'सौंदर्य' की 'ख्वाहिश' के पूरा होने यानी पुनर्विवाह के मार्ग में अवरोध पुरुषसत्तात्मक समाज के प्रतिनिधि के तौर पर उसका पिता ही पैदा करता है। 'सौंदर्य' की सखी 'लावण्य' प्रश्न करती है-'अच्छा हम पूछते हैं पुरुष इतने स्वार्थी क्यों होते हैं? पुरुष स्त्री का मरना कौन कहे, जीते ही कितना ब्याह करते हैं, इसमें दोष नहीं?'[19] कुछ ऐसा ही वक्तव्य 'एक अज्ञात हिंदू औरत' का है-'जो औरतों की जिंदगी में दूसरी से प्रीति रखते हैं बल्कि घर में दस-दस सतत छाती पर बिठाते हैं, उनकी कोई निंदा नहीं करता।'[20] ये साम्यताएँ भावानुवाद की ओर संकेत करती हैं। कहा जा सकता है कि नवजागरण काल के पुरुष साहित्यकार चाहे नहीं, लेकिन मल्लिका देवी 'सीमंतनी उपदेश' से परिचित भी रही होंगीं और प्रभावित भी। यह उपन्यास हिंदी का पहला दुखान्तक उपन्यास भी है।

इस दौर में कविता के क्षेत्र में भी स्त्री आधुनिक चेतना के साथ अपनी मौजूदगी दर्ज कराती है। उसकी काव्य-चेतना भक्ति के अंत: प्रकोष्ठ से बाहर निकलकर देश और समाज के सवालों संकटों से टकराती है। स्त्री-जीवन के दुखों-चिंताओं को समाज

की संवेदना का हिस्सा बनाने के लिए सक्रिय होती है। इस दृष्टि से सबसे पहले राजरानी देवी का कवि-कर्म उल्लेखनीय है। वह व्यावहारिक जीवन में भी स्त्री की दयनीय दशा को लेकर चिंतित रहती थीं और संपर्क में आने वाली ऐसी स्त्रियों को अपनी उन्नति के लिए सुझाव एवं प्रेरणा देती रहती थीं। उनके 'प्रमादा प्रमोद' और 'सती संयुक्ता' शीर्षक से दो कविता-संग्रह प्रकाशित हुए थे। 'वियोगिनी' नाम से भी वह पत्रिकाओं में कविताएँ लिखती थीं।[21] तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में भी सार्थक उनकी एक कविता में स्त्री-समाज की दुर्दशा का अंकन देखिए—

'देवियों! क्या पतन अपना देख कर,
नेत्र से आँसू निकलते हैं नहीं?

क्या तुम्हारी आज अवनति हो गई,
क्या सहायक भी नहीं भगवान है?
हो रहा क्यों भीष्म अत्याचार है,
इस तुम्हारे फूल से मृदु गात पर?
मच रहे क्यों आज हाहाकार हैं,
अब नृशंसों के महा उत्पात पर?'[22]

यह पूरी कविता जागरण गीत या आह्वान गीत के रूप में है। कवयित्री सदियों से पुरुष-समाज की पराधीनता को चुपचाप स्वीकार करती चली आ रही स्त्री को सचेत करती है-

'सोच लो, संसार के कान्तार में,
बद्ध होकर यदि जिए तो क्या जिए?
कर्म के स्वच्छंद सुखमय क्षेत्र में,
किंकिणी के साथ भी तलवार हो।'[23]

राजरानी 'कुमारी संयुक्ता' शीर्षक कविता में जयचंद की पुत्री के जन्मोत्सव का भव्य वर्णन करती हैं—

'हो रहा कन्नौज में आनंद है,
हर्ष की धारा नगर में है बही।
बैर और विरोध बिल्कुल बंद हैं,
सर्व जनता आज हर्षित हो रही॥
भीड़ भारी हो रही प्रासाद में,
खुल गया है द्वार सारे कोष का।
था बड़े आनंद का कारण वही,
एक पुत्री हुई थी जयचंद के,
हर्ष से थी उमंगती सारी मही,
आ गए थे दिन अधिक आनंद के।'[24]

कहना न होगा कि यह कविता कन्या भ्रूण-हत्या करने और स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक समझने वाले पुरुष सत्तात्मक समाज में इतिहास के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व के महत्त्व और गौरव की घोषणा है।

दूसरी कवयित्री हैं सरस्वती गुप्त, जो 'शारदा' उपनाम से पत्रिकाओं में कविताएँ लिखती थीं।[25] अयोध्या सिंह उपाध्याय के एक पत्र से सूचना मिलती है कि वह पुराने आदर्शों को स्वीकार करने वाली महिला थीं। फिर भी स्त्री शिक्षा की बड़ी समर्थक थीं। आत्म-परिचय देने वाली एक कविता में उन्होंने निजी प्रसंग के माध्यम से शिक्षा से वंचित होने की पीड़ा अभिव्यक्त की है—

'जब लग मैं मैके रही लिखत पढ़त रहि नित्त।
अब घर पर परवाह परी रहि नहिं सकति सुचित॥'[27]

यह भारतीय समाज में विवाहोपरांत स्त्री के पराधीन हो जाने का बयान है। वह पति आदि के समक्ष अपना मत निर्भीकता पूर्वक प्रकट करना उचित मानती हैं—

'प्रथम कारयारंभ में सबकी सम्मति लेहु।
निजी विचार पति आदि पर तुरंत प्रकट कर देहु॥'[28]

एक अन्य कवयित्री गोपाल देवी की कुछ कविताएँ जैसे 'भेड़ और भेड़िया'[29], 'धोबी और गधा'[30] आदि पंचतंत्र की शैली में नीति-शिक्षा देती हुई लगती हैं, परंतु इन कविताओं के मूल में शोषण और अत्याचार के तमाम रूपों को समझने वाली चेतना सक्रिय है। यह उन्नीसवीं शताब्दी की एक स्त्री के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। कवयित्री के भीतर वास्तविकता को पहचान लेने की दृष्टि है। इन कविताओं को पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण-उत्पीड़न का रूप भी कहा जा सकता है। 'सीमन्तनी उपदेश' की चर्चा हो चुकी है परंतु प्रसंगवश पुनः आवश्यक है। इस पुस्तक में गद्य के साथ-साथ कुछ कविताएँ भी हैं, जो गद्य की ही तरह स्त्री की वेदना-विवशता को संवेदनात्मक रूप में व्यक्त करती हैं। इतिहास बोध से संपन्न यह पंक्तियाँ देखिए—

'इस कैद में हम जिंदगी काटेंगे कब तलक;
रहबर कोई नही ऐ रब, तू खबर ले।
मक्र-ओ-फरेब मर्दों ने सताया हमें बहुत;

तू बन के दुश्मनों का खूंखार खबर ले।
हालत है दर्दनाक जरा गौर से सुनो;
बरस हो चुके इस हालत में दस हजार खबर ले।'[31]

समकालीन स्त्री समाज में यथार्थ-बोध के द्वारा प्रतिरोध की चेतना जागृत करने के लिए रची गई यह कविता देखिए–

'ऐ हिंद की निसवान उठो खूब सो चुकीं,
दुनिया में इज्जत आबरू थी सब तो खो चुकीं।
अक्ल और तुम्हारी ताकत जाया हुई तमाम ,
दुनिया में जो ना होना था वह सब तो हो चुकीं।

इज्जत तुम्हारी खाक में मिली है यहाँ तलक,
तुम हिंदियों के पाँव की पैजार हो चुकीं!'[32]

ऐसी रचनाओं के आधार पर 'एक अज्ञात हिंदू औरत' को खड़ी बोली हिंदी की पहली कवयित्री कहा जाना चाहिए।

नवजागरण काल में पुरुष संपादकों के साथ ही कुछ महिलाएँ भी पत्रिका-संपादन में संलग्न थीं और स्त्री-चेतना के विकास कार्य कर रही थीं। ऐसी तीन महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ थीं-हेमंत कुमारी चौधरानी द्वारा संपादित 'सुगृहणी' (1888), हरदेवी द्वारा संपादित 'भारत भगिनी' (1889) और भाग्यवती द्वारा संपादित 'वनिता हितैषी' (1895)। 'सुगृहणी' एक स्त्री द्वारा संपादित हिंदी की पहली पत्रिका है। इसका उद्देश्य इसके प्रवेशांक में संपादक द्वारा स्त्री समाज के संबोधन में स्पष्ट हुआ है-'हे प्यारी बहनों! द्वार खोलो देखो तुम्हारे वहाँ कौन आई है? ....इसका नाम सुगृहणी है। तुम्हारे दुखों को देखकर तुम्हें अज्ञानता और पराधीनता में बंद देखकर तुम्हारी बहन तुम्हारे द्वार पर आई है।'[33] अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके प्रकाशन को तत्कालीन समाज में एक आश्चर्यजनक घटना के रूप में देखा गया होगा। 'स्त्री कवि कौमुदी' के संपादक ज्योति प्रसाद 'निर्मल' के अनुसार यह चार-पाँच वर्ष तक प्रकाशित हुई थी। एक अंक में हेमंत कुमारी ने अपने 'यथार्थ लज्जा' नामक एक लेख में पर्दा प्रथा को अनुचित बताया है। वह लिखती हैं-'जो स्त्री अपने की आप रक्षा करती है, वही सुरक्षित है, नहीं तो घूँघट काढ़ कर घर में बंद रहने से भी आरक्षित रहती है।'[34] कहना न होगा कि लेखिका इस मान्यता का खंडन करती है कि एक स्त्री को विवाहपूर्व पिता एवं भाई, विवाहोपरांत पति और वृद्धावस्था में पुत्र के सहारे की आवश्यकता होती है। वह यह भी संकेत कर देती है कि यदि स्त्री सचेत नहीं है तो रक्षक लगने वाले निकट संबंधी ही भक्षक बन सकते हैं। इस पत्रिका में एक नियमित स्तंभ में स्त्री रोगों के लक्षण और उन्हें दूर करने की औषधि बताई जाती थी। निश्चय ही यह स्तंभ बदतर स्त्री-स्वास्थ्य के प्रति गहरी चिंता का परिणाम था। दृष्टि यह रही होगी कि स्वस्थ होकर ही आत्मविश्वास हासिल किया जा सकता है, जो आत्मोन्नति का आधार होता है। इसी तरह से स्त्री-स्वास्थ्य संबंधी लेख महावीर प्रसाद द्विवेदी भी साहित्यिक पत्रिका होने के बावजूद 'सरस्वती' में लिखा करते थे, जैसे, 'रजोदर्शन' (दिसंबर 1903), और 'प्रसूति' (नवंबर 1903) आदि।[35] संभवत: उनका भी यही भाव रहा हो। इस समानता को संयोग कहा जाए या पूर्वर्ती का प्रभाव परंतु इससे इस मुद्दे की गंभीरता तो प्रमाणित होती ही है।

हेमंत कुमारी चौधरानी इस पत्रिका में स्त्री-समाज के लिए प्रेरक प्रसंग के रूप में देश और दुनिया की स्त्री-शिक्षा संबंधी सूचनाएँ-खबरें छपती थीं, जैसे-देश में कहाँ-कहाँ स्त्रियों के लिए स्कूल-कॉलेज खोले गए हैं, कौन स्त्री कहाँ से चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा ग्रहण कर रही है, स्कूल-कॉलेज की परीक्षा में लड़कियाँ कैसा प्रदर्शन कर रही हैं आदि। यहीं याद कर लेना चाहिए भारतेंदु हरिश्चंद्र की स्त्री शिक्षा संबंधी नीति को भी। वह कहते हैं कि 'लड़कियों को भी पढ़ाइए, किंतु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखे, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।'[36] स्पष्ट है कि हेमन्त कुमारी की स्त्री शिक्षा संबंधी दृष्टि नवजागरण की वास्तविक चेतना के अधिक निकट है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रिका 'बालाबोधिनी' हिंदी की स्त्री केंद्रित पहली पत्रिका अवश्य है लेकिन स्त्री-समाज को आधुनिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने और उसे प्रगतिशील चेतना से संपन्न करने की दृष्टि से वह 'सुगृहणी' के समकक्ष नहीं ठहरती है। विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन का अवकाश यहाँ नहीं है।

इसी पत्रिका में हेमंत कुमारी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय

के उस निर्णय का भी विरोध किया था, जिसमें यह कहा गया था कि प्रवेश परीक्षा की भाषा अब हिंदी और उर्दू नहीं होगी। हेमंत कुमारी ने महसूस किया कि इससे सबसे अधिक हानि स्त्रियों को होगी, क्योंकि वर्तमान में उनकी गति केवल मातृभाषा हिंदी में ही है। वह उदाहरण भी देती हैं कि बंगाल और महाराष्ट्र के विश्वविद्यालयों में वहाँ की स्त्रियाँ इसीलिए अध्ययन कर पाने में सफल हैं क्योंकि उन्होंने अपनी मातृभाषा को ही माध्यम बनाया है। ध्यान दिया जाना चाहिए यह भाषा-विमर्श कोरी भावुकता पर आधारित नहीं था, बल्कि इसका एक स्पष्ट समाजशास्त्रीय आधार था।

हरदेवी की पत्रिका 'भारत भगिनी' के मुख पृष्ठ पर ही यह सूचना छपी होती थी कि यह स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु है। लेकिन यह सच है कि इसका दृष्टिकोण 'सुगृहणी' की अपेक्षा कम प्रगतिशील था। फिर भी महत्त्वपूर्ण इस दृष्टि से है कि इसने पत्रकारिता के क्षेत्र में स्त्री की उपस्थिति को मजबूत बनाने की कोशिश की, जिस पर केवल पुरुषों का एकाधिकार था।

स्पष्ट है कि यद्यपि नवजागरण काल में पुरुषों की तुलना में स्त्री रचनाकारों-संपादकों की संख्या बहुत कम थी लेकिन स्त्री समाज के प्रश्नों-मुद्दों पर उनकी दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील और प्रखर थी। पुरुष साहित्यकारों-संपादकों की दृष्टि तो करुणापूर्वक थोड़ी रियायत भर देने वाली थी। इसका भी उद्देश्य शास्त्र एवं परंपरा द्वारा तय की गई स्त्री की सामाजिक भूमिका एवं आचार संहिता में मूलभूत परिवर्तन लाना नहीं था और न ही पुरुषसत्तात्मक सामाजिक संरचना में स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता देना था। शायद इसीलिए हिंदी नवजागरण के प्रथम पंक्ति के पुरुष नेताओं ने अपने लेखन में इन समकालीन स्त्री रचनाकारों-संपादकों को कोई स्वीकृति-समर्थन नहीं दिया। वीर भारत तलवार ठीक लिखते हैं कि, 'हिंदी नवजागरण के लेखकों के सामने स्त्रियों की समस्या नहीं थी। उनके लिए खुद स्त्री ही एक समस्या थी, जिस पर हर हाल में काबू पाना था।'[37] गौरतलब है कि कई आरंभिक ख्यात साहित्येतिहासों में भी इन स्त्री रचनाकारों-संपादकों का उल्लेख नहीं हुआ। क्या इसे केवल संसाधनों के अभाव में सामग्री की अनुपलब्धता का परिणाम माना जाए या पुरुषवादी दृष्टि में उनका गैर जरूरी होना! बावजूद इन सबके नवजागरण में जो स्त्री चेतना जाग्रत हुई थी वह हिंदी में महादेवी वर्मा, उर्दू में रसीद जहाँ और पंजाबी में अमृता प्रीतम से होते हुए आगे बढ़ गई। डॉक्टर रामचंद्र तिवारी की महादेवी वर्मा के निबंध संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' के संबंध कहते हैं कि 'इन निबंधों में महादेवी ने पहली बार भारतीय नारी को सभी अनैतिक और अशोभनीय सामाजिक बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ने का संदेश दिया है।'[38] लेकिन अब स्पष्ट है कि यह भूमिका सबसे पहले एक अज्ञात हिंदू औरत ने 'सीमंतनी उपदेश' के माध्यम से निभाई थी। इस पुस्तक की वैचारिकी और संकोचमुक्त अभिव्यक्ति-शैली को उन्हें भी ध्यान में रखना चाहिए जो हिंदी के समकालीन स्त्री विमर्श को केवल पश्चिमी फेमिनिज्म का नकल मात्र बताते हैं।

संदर्भ :

1. सीमन्तनी उपदेश, एक अज्ञात हिंदू औरत, डॉ. धर्मवीर (संपादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2006, पृ. 41
2. वही, पृ. 93
3. वही, पृ. 106
4. वही, पृ. 76
5. वही, पृ. 74
6. वही, पृ. 84
7. वही, पृ. 107
8. वही, पृ. 107
9. वही, पृ. 113
10. वही, पृ. 72
11. वही, पृ. 78
12. वही, पृ. 72
13. वही, पृ. 94
14. वही, पृ. 50
15. वही, पृ. 26
16. हिंदी उपन्यास का इतिहास, प्रो. गोपाल राय राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2002, पृ. 163
17. www.jankipul.com, 2 जून 2020, सुरेश कुमार का लेख
18. सीमन्तनी उपदेश, एक अज्ञात हिंदू औरत, डॉ. धर्मवीर (संपादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2006, पृ. 78
19. www.jankipul.com, 2 जून 2020, सुरेश कुमार का लेख
20. सीमन्तनी उपदेश, एक अज्ञात हिंदू औरत, डॉ. धर्मवीर (संपादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2006, पृ. 77
21. स्त्री-कवि-कौमुदी, ज्योति प्रसाद 'निर्मल', गाँधी हिंदी पुस्तक भंडार,

प्रयाग, संस्करण : 1931, पृ. 226
22. वही, पृ. 227-28
23. वही, पृ. 228
24. वही, पृ. 234
25. वही, पृ. 238
26. वही, पृ. 239
27. वही, पृ. 239
28. वही, पृ. 243
29. वही, पृ. 264
30. वही, पृ. 265
31. सीमन्तनी उपदेश, एक अज्ञात हिंदू औरत, डॉ. धर्मवीर (संपादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2006, पृ. 40
32. वही, पृ. 46
33. महिला पत्रकारिता, सुधा शुक्ला, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2012, पृ. 149
34. www.jankipul.com, 8 अक्टूबर 2020, सुरेश कुमार का लेख
35. दस्तावेज 121, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर, 2008, उन्मेष कुमार सिन्हा का लेख सरस्वती और नारी चेतना, पृ.57
36. भारतेंदु समग्र, हेमंत शर्मा (संपादक), हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, संस्करण : 1989, पृ. 1012
37. रस्साकशी, वीर भारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली-हैदराबाद, संस्करण : 2012, पृ. 197
38. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण : 2012, पृ. 79

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, मुरादाबाद-244001
मोबाइल नंबर 731 832 1660
ईमेल : sinhagkp80@gmail.com

रचनाकारों से अनुरोध

- ★ कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- ★ कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- ★ कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- ★ रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- ★ रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- ★ रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- ★ रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियों का चित्र भी भेज सकते हैं।
- ★ यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- ★ यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- ★ रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- ★ स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- ★ आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

हिंदी साहित्य में राष्ट्रवाद

— डॉ. मोहन बैरागी

भूषण के काव्य में यह राष्ट्रीयता की भावना मुख्यतया विदेशी शासकों के अत्याचार के प्रति विद्रोही भावना जाग्रत करने व संस्कृति के प्रति गौरव के चित्रण कर अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रोत्साहित करती है व शिवाजी जैसे वीर-नायकों का गौरव गान करती है। रीतिकालीन कविताओं के संबंध में हम कह सकते हैं कि समकालीन कविताओं में शृंगारिक काव्य की रचना हो रही थी तो वहीं दूसरी ओर वीर रस प्रधान काव्य की रचना हो रही थी। वीर रस प्रधान काव्य में ही किसी न किसी रूप में राष्ट्रीयता का दर्शन होता है। इस काल के कवियों की काव्य रचना राष्ट्रीय गौरव से खाली नहीं है। भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और विशेष रूप से लगभग सन 1857 के बाद हिंदी साहित्य का इतिहास अपने आप में प्राचीन इतिहास से भिन्न है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता का सूत्रपात लगभग इसी समय से होता है।

किसी भी देश का साहित्य उसकी भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थिति से जुड़ा हुआ होता है तथा साहित्यकार अपने देश के अतीत से मिली विरासत को पाकर गर्व करता है, भविष्य को आकार देता है एवं राष्ट्रीय आकांक्षाओं से भरा होता है। हिंदी साहित्य के आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार साहित्य मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबंधों के संकुचित मंडलों से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाता है, जहाँ जगत की विभिन्न गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

भारत अनेकता में एकता के सूत्र को अपने में पिरोये हुए है तथा यहाँ मिश्रित संस्कृति व्याप्त है। भारतीय समाज इन्हीं मिश्रित संस्कृतियों से मिलकर बनता है तथा इन संस्कृतियों से बने समाज की अपनी आंतरिक समस्याएँ होती है, जिन्हें साहित्यकार समय-समय पर अपनी लेखनी से प्रदर्शित करते हैं। मोटे तौर पर मौलिक समस्याओं में भूख, गरीबी, बेरोजगारी, असमानता आदि समस्याएँ दिखाई पड़ती है जिन्हें साहित्यकार लिखता है परंतु ये समस्याएँ राजनैतिक परिदृश्य में अधिक व्याख्यायित की जाती है जबकि इनमें राष्ट्रीयता भी कहीं ना कहीं छुपी होती है।

आधुनिक साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास में महती भूमिका निभाई है। भारत अलग-अलग धर्म एवं अलग-अलग जातियाँ व बहुभाषा भाषी देश है किंतु फिर भी राष्ट्रवाद का सुत्र हर एक के दिल में स्थापित है। इसका श्रेय आधुनिक हिंदी साहित्य को जाता है। वर्तमान में रचे जा रहे आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतीय मूल्यों को स्थापित करने का जज्बा साहित्यकारों व कवियों में देखा जा सकता है। साहित्यकार की सक्रियता ही है जो राजनीति को उसका चेहरा दिखाती है और जानबूझकर अथवा अजाने में राजनैतिक स्वार्थ हेतु पैदा की गई अव्यवस्थाओं को कविता अर्थात साहित्य के माध्यम से सामने लाया जा रहा है।

वर्तमान में जहाँ यांत्रिक सभ्यता व भौतिकीकरण मनुष्य पर हावी है तथा वैचारिक दृष्टि घटती जा रही है ऐसे में साहित्यकार नई भूमिका भी अदा कर रहा है व विचारहीनता को चुनौती दे रहा

है। साहित्य ही इस विचारहीनता से निजात दिलाने की क्षमता रखता है। अत: विचारधारा जितनी सरलता व तरलता से साहित्य में इस्तेमाल होगी, साहित्य उतना ही विशिष्ट होगा। साहित्य सृजन करने वाला राष्ट्रीयता को उपजीव्य के रूप में ग्रहण करता है अत: यह कार्य स्तुत्य है। जो राष्ट्रीयता को 'नेशन स्टेट' की अवधारणा से जोड़ते हैं और उसकी तुलना पश्चिम के राष्ट्रवाद से करते हैं, वे केवल पश्चिम के चश्मे से ही चीजों को देखते हैं। वैश्वीकरण की इस अवधारणा में स्थानीयता का तत्व छूट जाता है, जबकि राष्ट्रीयता की अवधारणा में स्थानीयता को महत्व दिया जाता है। राष्ट्रवाद की अवधारणा हेतु साहित्यकार भरपूर आक्रोश के साथ अनैतिक, अराजक मूल्यों का विरोध कर रहा है व सामाजिक राष्ट्रवादी क्रांति के समर्थक के रूप में सामने खड़ा हुआ है।

सृजनशील व सकारात्मक विचारधारा का प्रयोग साहित्य में होने से साहित्य समाज व राष्ट्र की निधि के रूप में भी दिखाई पड़ रहा है। हिंदी साहित्य के विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंधों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को नई पीढ़ी से अवगत कराया है जिसमें राष्ट्रीयता का अलग ही पक्ष दिखाई देता है। जिसमें साहित्यकार अपनी रचनाओं में वर्तमान की स्थिति के प्रति चिंता व्यक्त करता है वहीं देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों पर भी प्रहार करता है तथा भारतीय आमजन से आह्वान करता है कि वे स्वयं भी सुधार की इस प्रक्रिया में सक्रियतापूर्वक भाग लें।

वर्तमान कई साहित्यकारों ने देश के स्वरूप का मनोरम चित्र उपस्थित किया। किसी ने उसकी महिमा का गायन किया। अनेक रचनाओं में भारत के अतीत का गौरव और वर्तमान स्थिति की दुरावस्था का मार्मिक चित्र है। अनेक कविताओं में चुनौती, ललकार और गर्जना के साथ बलिदान की मानसिकता भी उभरी है। इन अनेक प्रकार की रचनाओं को राष्ट्रीय चेतना का मानने में कोई समस्या नहीं है। समस्या आजादी के वास्तविक सरोकारों की खोज करने वाली रचनाओं के साथ है। छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत का यह कहना युक्तियुक्त है-'हमारा विशाल देश राष्ट्र की भावना या कल्पना से वैदिक युग से परिचित रहा है।' राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में आधुनिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्रवाद से सामुदायिक भावना का विकास होता है और लोकतांत्रिक भावना भी राष्ट्रवाद से समृद्ध होती है। देश की रक्षा, हित, संगठन, एक समाज के जातीय स्वरूप के विकास की आकांक्षा, कोशिश राष्ट्रीय चेतना का अविभाज्य अंग है। और यही राष्ट्र चेतना का गौरव-बोध नवीन साहित्य सृजन की प्रेरणा देता है। अपनी संस्कृति के प्रति गौरव-बोध वस्तुत: राष्ट्रीय अस्मिता का हिस्सा है और राष्ट्रीय अस्मिता राष्ट्रबोध का अभिन्न हिस्सा है। अज्ञेय का यह कथन युक्तियुक्त है-'संस्कृतियों का संबंध अपनी देशभूमि से होता है।' प्रगति, विकास, संस्कृति, इतिहास-भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को समृद्ध साहित्य करता है। साहित्य प्रत्येक वर्तमान को कलात्मक एवं यथार्थ रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। मनुष्य चाहे जितनी प्रगति कर ले, विकास की डींगें हाँक ले, सभ्यता का दंभ भरे, पर जब तक वह भीतर से सभ्य नहीं होता, तब तक मनुष्य की सही मायने में प्रगति नहीं हो सकती। बाहरी सभ्यता भौतिक प्रगति को दर्शाती है, तो भीतरी सभ्यता मानवता को, मानवीय मूल्यों के आदर्शों को परिलक्षित करती है। समाज की आंतरिक और बाह्य प्रगति के लिए साहित्य हमेशा कल्पवृक्ष बना हुआ है। साहित्य की परिधि समाज का प्रत्येक हिस्सा रहा है। यहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा है। जो अन्याय व अत्याचार का शिकार हुआ, साहित्य ने खड़े होकर पीड़ित के आंसू भी पोंछे हैं। साहित्य यही करता है। साहित्य मनुष्य को बाहर और भीतर से सभ्य बनने में मदद करता है। वास्तव में वह तन और मन की सभ्यता प्रदान करता है। जो साहित्य तन और मन की सभ्यता प्रदान करता है, वह शाश्वत साहित्य होता है। वर्तमान साहित्य प्रकृति एवं राष्ट्रीयता का मानवीकरण नहीं करता बल्कि प्रकृति, समाज एवं राष्ट्र को उसके ठोस सामाजिक संदर्भ के साथ रेखांकित करता है। भारतीय साहित्य में राष्ट्रवाद के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसके माध्यम से साहित्यकारों व कवियों ने राष्ट्रचेतना व अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम व समर्पण की बात कहीं। कवि भूषण के कार्य में देश की रक्षा एवं जाति उत्थान की भावना का प्राधान्य मिलता है। शिवाजी और छत्रसाल जैसे देशरक्षक एवं लोकहितैषी वीर नायकों का आलम्बन बनाकर भूषण के कण्ठ

से ओजस्विनी कविता प्रवाहित होती है जिसमें संपूर्ण राष्ट्र का स्वर गूँजता है।

भूषण ने लिखा–

'राखी हिंदुवानी हिंदुवान का विरक राख्यो
अस्मति पुरान राखे वेद विधि सुनी मै।
राखी राजपती राजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यों राख्यों गुन गुनी है।[1]

भूषण के काव्य में यह राष्ट्रीयता की भावना मुख्यतया विदेशी शासकों के अत्याचार के प्रति विद्रोही भावना जाग्रत करने व संस्कृति के प्रति गौरव के चित्रण कर अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रोत्साहित करती है व शिवाजी जैसे वीर–नायकों का गौरव गान करती है। रीतिकालीन कविताओं के संबंध में हम कह सकते है कि समकालीन कविताओं में श्रृंगारिक काव्य की रचना हो रही थी तो वही दूसरी और वीर रस प्रधान काव्य की रचना हो रही थी। वीर रस प्रधान काव्य में ही किसी न किसी रूप में राष्ट्रीयता का दर्शन होता है। इस काल के कवियों की काव्य रचना राष्ट्रीय गौरव से खाली नहीं है।[2] भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और विशेष रूप से लगभग सन 1857 के बाद हिंदी साहित्य का इतिहास अपने आप में प्राचीन इतिहास से भिन्न है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता का सूत्रपात लगभग इसी समय से होता है किंतु साथ ही कविता पाश्चात्य शिक्षा और नवीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आधार पर नए–नए विषयों की ओर झुक रही थी। हिंदी साहित्य में इस नवीन विवादपूर्ण और विविध विषय संपन्न स्वरूप का निर्माण का श्रीगणेश दो सभ्यताओं के सांस्कृतिक संपर्क के फलस्वरूप 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। भारतीय सभ्यता अग्रेजों के वास से स्थिर और शिथिल हो चुकी थी।[3] अंग्रेज यांत्रिक व औद्योगिक सभ्यता के अग्रदूत तथा नवीन ऐतिहासिक शक्ति के प्रतिनिधि होने के कारण प्रभावपूर्ण बन गए थे। इस पाश्चात्य संपर्क के परिणामस्वरूप ही भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ।[4] उससे सजीवता उत्पन्न हुई।[5] और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विकास हुआ। साहित्य का मानव जीवन से चिरंतन संबंध है। साहित्य का स्रष्टा मनुष्य है और मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है। मानव जीवन ही साहित्य का उपादान और विषय वस्तु रहा है और रहेगा। मानव जीवन विकासशील वस्तु है इसलीए साहित्य भी विकासशील है।[6]

राष्ट्रीयता आधुनिक जीवन में एक तत्व के रूप में आती है इतना ही नहीं सभी देशों में आधुनिक काव्य की एक बड़ी विशेषता उसकी राष्ट्रीय भावना है। राष्ट्रीय काव्य में समष्टि की भावना निहित होती है। राष्ट्रीय काव्य सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी सम्पत्ति समझता है तथा अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण में यह विश्व की भावनाओं का भी उल्लेख कर सकता है। महापुरुषों के गुण रूप पर बल देने वाली राष्ट्रीय कविता की रचना में लौकिक अभिरूचि का प्रतिबिंब राष्ट्रीय गीतों में अभिव्यक्त होता है। सांस्कृतिक सुधावादी साहित्यकारों ने जनवादी दृष्टिकोण अपनाकर सारे देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जागरण का मंत्र फूँक दिया जिससे जनता ने निराशा की चादर फेंक कर अपने को पहचाना।[7] प्रसाद का 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' गीत भारत की महिमा का वर्णन करता है। चन्द्रगुप्त नाटक में यह गीत सेल्युकस की पुत्री कार्नेलिया गाती है। इस गीत में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा का पूर्ण स्वरूप मुखरित है जो अपनी भावोत्तता, कल्पना की रमणीयता, प्राकृतिक वैभव तथा देश प्रेम के चित्रण की दृष्टि से प्रसाद जी के सर्वश्रेष्ठ गीतों में से है। उनका यह गीत राष्ट्रीयता के संकीर्ण क्यारों में न बंधकर शाश्वत हो गया है, प्रसाद जी लिखते हैं–

'अरूण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज का मिलता एक सहारा।
सरस तामरस नभ विभा पर नाच रही तरूशिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।
उड़त खग जिस ओर मुँह किये समझ नीड़ निज प्यारा
बरसाती आँखों के बादल पाकर जहाँ किनारा
हेमकुम्भ ले उषा सबर भरती ढुलकाती मुख मेरे
मंदिर उघन रह जय जग कर रजनी भर तारा।[8]

प्रसाद जी के समान अनेक हिंदी कवियों ने भारत की प्रशस्ति गान किया है। सियारामशरण गुप्त जी का अपनी मातृभूमि–सुखकारा, पुण्यभूमि, माता के सामान वसुधा में, सर्वोत्कृष्ट व श्रेष्ठ लगती है।[9] मैथिलीशरण गुप्त जी को

भारतमाता सुधामयी, वात्सल्यमयी, क्रांतिकारिणी, क्षमामयी, प्रेममयी, विश्वशालिनी, भयनिवारिणा लगती है।[10] राष्ट्रवाद की भावना भारतीय साहित्यकारों के भीतर तक किस कदर बसी थी यह एक और प्रसिद्ध रचना से परिलक्षित होता है।

'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलसिताँ हमारा
पर्वत वो सबसे उँचा हमसाया आसमाँ का
वो संतरी हमारा वो पासबाँ हमारा
गोदी में खेलती है उसके हजारों नदियाँ।[11]

यदि इस जन्मभूमि के प्रति कोई प्रेम न रखता हो तो वह अघ का अधिकारी है। महावीरप्रसाद जी लिखते है–

'जग में जन्मभूमि सुखदायी।
जिन नर पशु के मन में समाई।
उसके मुख दर्शक नर नारी
होते हैं अघ के अधिकारी।[12]

भारतवासी इस अघ के अधिकारी बनना कभी स्वीकार नहीं करेंगे। कारण सिंधु तरंगित मलयश्वासित गंगाजलभि निरत... किसको प्रिय नहीं है। पंत जी ने अनके कविताओं में भारत की महिमा का वर्णन किया है। स्वर्णधूलि की जन्मभूमि शीर्षक कविता में मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए वे लिखते हैं— जिसका गौरव भाल हिमालय है, जिसमें गंगा यमुना का जल है, वह मातृभूमि जन जन के हृदय में बसी है।

भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन अनुपम रीति से मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया है–

'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर हैं
सूर्य चंद्र युग मुकुट श्रंखला रत्नाकर हैं
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं
करत अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।[13]

कवि बच्चन मातृभूमि के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हैं, वे बहुरंगी संध्या धन पर आसन पाकर भी मातृभूमि की तितलियों के पीछे दौड़ना चाहते हैं। गगन सिंधु विद्युत लहर पर खेलने के बाद भी गंगाजल का एक बिंदु पाने के लिए वे लालायित हैं, वे भारत में ही पुनर्जन्म चाहते हैं–

'जीवन से उबा, इच्छा है जन्म न फिर मैं पाऊँ
पर यदि जन्म पड़े लेना ही भारत में ही आऊँ।[14]

भारत की अनुपम प्राकृतिक सुषमा का वर्णन भी मिलता है, कुछ अपवाद छोड़कर भरत की प्रशस्ति, वंदना तथा भारत का दैवीकरण एवं कारूणिक दृश्य खींचने में हिंदी कवियों में अद्‌भुत रीति से समान कल्पनाएँ और भाव मिलते है। इन भावों को अभिव्यक्त करने में भी समान शब्दावली का प्रयोग भारत की वैचारिक एकता धारा की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

संदर्भ सूची :

01. भूषणभारती, प्रथम संस्करण, पद–4, पृष्ठ 228
02. डॉ. विद्यानाथ गुप्त–हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ–188
03. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिंदी साहित्य, संस्करण, 1948, पृष्ठ–1
04. डॉ. भगीरथ मिश्र, रामबहारी शुक्ल, हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृष्ठ–185
05. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, हिंदी साहित्य में विविधवाद, पृष्ठ–216
06. डॉ. नंददुलारे वाजपेयी, नया साहित्य–नए प्रश्न, पृष्ठ–3
07. डॉ. रामसक्लराय शर्मा, द्विवेदी युग का हिंदी काव्य, पृष्ठ–27
08. जयशंकर प्रसाद, चंद्रगुप्त, दूसरा अंक, पृष्ठ–89
09. सियारामशरण गुप्त, मौन विजय, पृष्ठ–19
10. मैथिलीशरण गुप्त, स्वदंत संगीत, पृष्ठ–13
11. वतन के गीत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृष्ठ संख्या–52
12. सुमन, जन्मभमि, पृष्ठ–76–77
13. मैथिलीशरण गुप्त , मंगल घट, पृष्ठ–9
14. बच्चन, कवि और देशभक्त, प्रारभिंक रचनाएँ, भाग–2, पृष्ठ–8

❖

43, क्षीर सागर, उज्जैन (म.प्र.)
मोबाईल– 9424014366
ईमेल– drmohan128@gmail-com

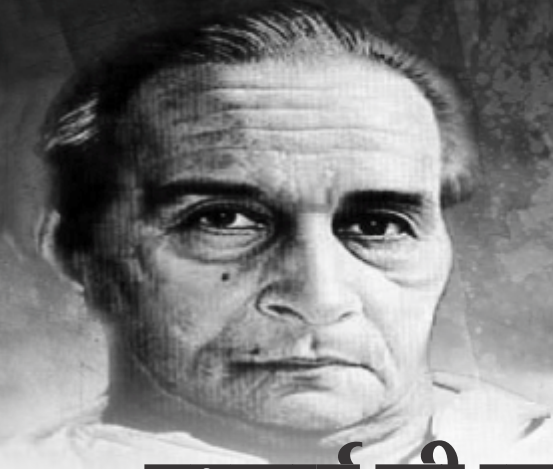

परसाई की व्यंग्य-कथाओं के नाट्य रूपांतरण

— डॉ. राकेश कुमार

हरिशंकर परसाई की दृष्टि हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन के उन विरोधाभासों को देख लेती है जिन्हें हम अनेक व्यवहारवादी, सुविधावादी, 'संस्कारवादी' और परंपरावादी पर्दों के नीचे छिपा कर रखते हैं। स्वाधीन भारत की राजनीतिक संस्कृति के अनेक विद्रूप इन पर्दों के पीछे छिपे ही रह जाते हैं। हमारे लिए समस्या तब तक मौजूद नहीं होती जब तक कि हम स्वयं उससे रू-ब-रू न हो जाएँ। हम अपने सार्वजनिक जीवन के सुविधाजीवी ढोंग को ओढ़े संत बने रहते हैं और हमारे सामने न जाने कितने अनाचार घट रहे होते हैं। परसाई मध्यवर्ग के इस द्वैत को भली भाँति पहचानते हैं। उनकी कहानियों में ये मध्यवर्ग अपने तमाम रूपों में सत्य के उजाले में खड़ा दिखा देता है इसलिए इंस्पैक्टर मातादीन का उपस्थित होना और भोलाराम के जीव का खो जाना एक दूसरे से अलग नहीं हैं। भले ही एक घटना काल्पनिक चाँद पर घटित होती है और दूसरी इसी धरती पर।

"परसाई जी आजीवन 'धन्य' और 'धिक्कार' का विवेक जगाए रचने की कोशिश करते रहे, कुरूपता की रचना का जो अनुष्ठान उन्होंने अपनी आँखों से देखा, उसकी परतों को उघाड़ने की कोशिश करते रहे। जाहिर है कि ऐसी किसी भी कोशिश के लिए एक वैचारिक फ्रेमवर्क की जरूरत होती ही है, जिसमें लेखक यथार्थ के अपने अनुभवों को संवेदना के रूप में ढालता है। जब लेखकीय सरोकारों और लेखक द्वारा अपनाए गये वैचारिक फ्रेमवर्क के बीच अंतर्विरोध उत्पन्न होने लगे तो गहरे तनाव की स्थिति बनती है। किसी लेखक के मूल्यांकन का एक जरूरी प्रतिमान यह भी है कि उसकी रचनाशीलता इस तनाव से किस प्रकार जूझती है।"[1] अपने लेख 'धन्य और धिक्कार की शक्तियों के बारे में' में व्यंग्यकार परसाई के लेखन को नए रूप में परखते हुए आलोचक पुरूषोत्तम अग्रवाल कई नई स्थापनाएँ देते हैं जिसका सीधा संबंध इस लेख से नहीं परंतु उपरोक्त उद्धरण में परसाई की लेखन दक्षता के अंतर्गत जिस 'तनाव' को आलोचक ने रेखांकित किया है उससे इस लेख से सीधा संबंध है। नाटक की दुनिया में 'तनाव' एक महत्वपूर्ण घटक है। देशी-विदेशी नाटकों की आलोचना-व्याख्या में हम इसे अलग-अलग नामों से भी जानते-समझते रहे हैं। कभी हम इसे संघर्ष के नाम से जानते हैं तो कभी द्वंद्व के नाम से। नाटक की चरम स्थितियों में भी यह तनाव गुंफित रहता है। संस्कृत नाटकों से लेकर आधुनिक नाटकों के बीच घटनाओं के केंद्र में यह तनाव अंडरकरंट का काम करता है। यह तनाव ही है जो नाटक के आरंभ से अंत तक स्थितियों की एकरूपता को तोड़ता है और नाटक से इतर अन्य विधाओं में लेखक की रचना-प्रक्रिया के विविध स्तरों को रेखांकित भी करता है।

हिंदी के शीर्षस्थ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की कई कहानियों के नाट्य-रूपांतरण पिछले अनेक दशकों से आज तक लगातार खेले-सराहे जा रहे हैं। बाह्य विषम परिस्थितियों से व्यक्ति की टकराहट से पैदा हुआ तनाव उनकी कहानियों के पाठकों को उद्वेलित करता है। परसाई की रचनाओं में बसा यह तनाव एक प्रकार से उनकी कहानियों के नाट्य-रूपांतरण का

मुख्य घटक माना जा सकता है। कहानी के नाट्यरूपांतरकार को सबसे अधिक मदद मिलती है लेखक द्वारा कहानी के सटीक चरित्रांकन से और उसके संवादों से। लेकिन बात जब किसी कहानी के नाट्य-रूपांतर की होती है तब सबसे महत्वपूर्ण होता है वर्णन की विधा कहानी को रूपांतरकार घटनाओं में किस प्रकार रूपांतरित करता है। नाट्य आलोचक देवेंद्रराज अंकुर ने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है-"नाट्य-रूपांतरण में हम एक कहानी नहीं, एक नाटक को देख रहे होते हैं। दूरदर्शन और फिल्म में भी कहानी का अपना मौलिक स्वरूप कहाँ शेष रहता है?"[2] अत: कहानी अपने कहन से टूटकर, नाटक का भ्रम रचकर मंचन की ओर मुड़ जाती है। इस दृष्टि से हरिशंकर परसाई की कहानियों को देखें तो उनकी अधिकांश कहानियों के नाट्य-रूपांतरकारों को अधिक कठिनाई पेश नहीं आती होगी। उनकी कहानियाँ घटनाओं के इर्द-गिर्द रची जाती हैं और यह घटना-विन्यास बहुत तेजी से घटित होता है।

'भोलाराम का जीव', 'इंस्पैक्टर मातादीन चाँद पर' और 'टार्च बेचनेवाले'-परसाई की इन तीन कहानियों के सर्वाधिक नाट्य रूपांतर हुए हैं जो विद्यालयों और महाविद्यालयों में, शौकिया रंगमंच करने वाली मंडलियों में और नुक्कड़ नाटक मंडलियों द्वारा बहुधा खेले जाते हैं। परसाई की इन कहानियों ने मंचित होकर खासी लोकप्रियता प्राप्त की है। हालांकि हास्य-व्यंग्यप्रधान कहानियों के नाट्यरूपांतरण में एक भारी दिक्कत आ सकने की पूरी आशंका समाहित रहती है। उसके पाठ और सावधान प्रस्तुति के अभाव में सार्थक उद्देश्य की पूर्ति निरर्थक और फूहड़ हास्य में तब्दील हो जाती है। जो पहली बार रचना से साक्षात्कार कर रहे दर्शकों की दृष्टि में रचना की भी हानि करता है और रचना के पुनर्सृजन के रूप में नाटक की भी।

"जनवरी 1986 के अंतिम सप्ताह में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के तृतीय वर्ष के छात्रों के साथ ब.व. कारंत ने फणीश्वरनाथ रेणु के 'पंचलाइट', श्रीकांत वर्मा की 'अरथी' तथा हरिशंकर परसाई की 'भोलाराम का जीव' नामक कहानियों को नाट्य-विद्यालय के स्टूडियो-(ख) में खेला—हरिशंकर परसाई की व्यंग्य-कथा 'भोलाराम का जीव' को मालवी में 'जीव खो गया' के नाम से प्रस्तुत किया गया। अलका श्रीवास्तव और बापी बोस का काम अच्छा था। लेकिन प्रदर्शन को अधिक से अधिक 'दिलचस्प' ही कहा जा सकता है। व्यंग्य का पैना प्रहार या स्थिति का त्रास सिर्फ परिहास बनकर रह गया।"[3] परसाई की कहानी 'भोलाराम का जीव' का रंग विशेषज्ञ जयदेव तनेजा द्वारा किया यह विश्लेषण दरअसल बताता है कि निर्देशक के पाठ की अक्षमता, अभिनेता की प्रस्तुति की कमजोरी से सटीक व्यंग्य अपनी धार खोकर सामान्य हास्य में परिवर्तित हो सकता है। परंतु यह खतरा किसी हास्य-व्यंग्यप्रधान कहानी-उपन्यास के नाट्य-रूपांतरण के साथ ही नहीं किसी भी नाटक के प्रदर्शन के साथ होता ही है। महत्वपूर्ण बात यह है कि हरिशंकर परसाई की व्यंग्य कथाओं के सभी प्रदर्शन इस खतरे के घेरे में नहीं हैं। वह देश भर में मंचित और प्रशंसित हुए हैं।

''नाटक के तीन मौलिक पक्ष हैं : कवि या नाटककार द्वारा तैयार की हुई हुई संवादात्मक कथा, अभिनेताओं द्वारा उसका अभिनय-प्रदर्शन और दर्शक-वर्ग। इस परिभाषा के अनुसार केवल संवाद के रूप में लिखे जाने पर ही कोई रचना नाटक नहीं हो जाती। यह अत्यंत ही आवश्यक है कि उसकी अंतर्निहित कथा का भावन दृश्य वस्तु के रूप में किया गया हो। केवल चमत्कारपूर्ण वाग्वैदग्धयुक्त संवाद लिख सकना पर्याप्त नहीं, आवश्यकता इस बात की है कि संवादों के माध्यम से एक महत्वपूर्ण भावानुभूति दृश्य और अनुकरणीय रूप में प्रगट की गई हो।''[4] 'नाटक का अध्ययन' नामक लेख में नेमिचंद्र जैन की इस ठोस अवधारणा के रूप में परसाई की तीनों व्यंग्य कथाओं के नाट्य-रूपांतरणों की बात करें तो एक ओर 'भोलाराम का जीव' तेजी से घटित घटनाओं के आलोक में लोक और लोक से परे तक व्याप्त भ्रष्टाचार, आम जन की हार-निराशा से उत्पन्न सघन तनावपूर्ण परिस्थितियों को फैंटेसी के चमत्कारी रूप में दर्शकों के सामने लाता है। दूसरी तरफ मंच को भारतीय पुलिस तंत्र के मनुष्यविरोधी ढर्रे को बेहद सूक्ष्म ब्यौरों के साथ परोसता और हास्य से सराबोर करता मंचन है-'इंस्पैक्टर मातादीन चाँद पर'। 'टार्च बेचने वाले' शीर्षक

कहानी बाज़ार द्वारा मनुष्य को ठगने और पूँजी बनाने की घटनात्मक-वर्णनात्मक कथा है। कहानी ठगी को बाज़ार के साथ धर्म के बड़े बाज़ार से भी जोड़ देती है।

इस वर्ष राष्ट्रीय स्तर पर इप्टा के 75वें वर्ष, प्लैटिनम जयंती के अवसर पर मधेपुरा में राष्ट्रीय ग्रामीण नाट्य महोत्सव का आयोजन हुआ। तीन दिवसीय इस आयोजन के दूसरे दिन 13 अप्रैल, 2018 को छत्तीसगढ़ ग्रामीण इप्टा इकाई ने परसाई की कहानी-'टार्च बेचने वाले' का 'टार्च बैचईया' शीर्षक से मंचन किया गया। निसार अली के निर्देशन में इसका लोकशैली नाचा गम्मत में रूपांतरण किया जीवन यदु ने। यह इस कहानी की नवीन प्रस्तुति है।

हालाँकि स्कूली बच्चों के लिए भी यह कहानी पाठ्यक्रमों में लगी है। 'टार्च बेचने वाले' कहानी से अलग इसके नाट्यरूपांतरण में गाँव के दो हमउम्र दोस्तों समारू और दुलारू की कहानी कही गई है जिनके पास जहर खाने को भी पैसा नहीं। मूल कहानी में कभी टार्च बेचने वाला आज दाढ़ी बढ़ाए है और एक परिचित से अतीत में घटी घटना के जिक्र में अपने दोस्त की चर्चा करता है। दोनों दोस्त हताशा में 'पैसा पैदा करने' के उद्देश्य से विपरीत दिशाओं में निकल जाते हैं। नाट्य-रूपांतरण में कुछ अवधि का समय लेकर दोबार मिलने के वादे के अनुरूप, लोगों को मूर्ख बनाकर कंपनी और अपने लाभ के लिए टार्च बेचने वाले समारू को एक दिन दुलारू से दुलारनाथ बन गया अपना साथी मिल जाता है। कहानी में परसाई उस दूसरे मित्र को 'भव्य पुरूष और फिल्मों के संत' की तरह बताते हैं। मित्र के ठाठ-बाट, गाड़ी-बंगला देख समारू सकते में आ जाता है।

मित्र के घर पहुँचकर संवाद पूरी जिज्ञासा में घटित होते हैं। दोनों ही जनता को प्रकाश बेचने का काम करते हैं पर दोनों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में बहुत बड़ा अंतर है। एक अंधेरे का भय दिखाकर टार्च का मामूली विक्रेता है और दूसरा महान संत-ज्ञानी बाबा। कारण खोजकर पहला मित्र खीजते हुए कहता है-जनता को अंधेरे का डर दिखाकर तुम भी टार्च बेचते हो और मैं भी। इस पर दूसरा मित्र सहज रूप में जवाब देता है-"तेरी बात ठीक ही है। मेरी कंपनी नई नहीं है, सनातन है। उस टार्च की कोई दुकान बाज़ार में नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर कीमत उसकी बहुत मिल जाती है।"[5] इस तरह नाट्य रूपांतरण ने धर्म और बाज़ार के समीकरण को पूरे व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया गया है। धर्म और साधु-संतों के पाखंड, झूठे आध्यात्म, सनातन धर्म और लूट, धर्म के धंधे मे भयग्रस्त मनुष्यों के फँसने को परसाई लगातार अपने अनेक व्यंग्यों और कहानियों के माध्यम से पेश करते रहे हैं। 'मैं नर्क से बोल रहा हूँ' में वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं-"हे पत्थर पूजने वालों! तुम्हें जिंदा आदमी की बात सुनने का अभ्यास नहीं (इसलिए मरकर बोल रहा हूँ। जीवित अवस्था में तुम जिसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते उसकी सड़ी लाश के पीछे जुलूस बनाकर चलते हो। जिंदगी भर तुम जिससे नफरत करते रहे उसकी कब्र चिराग जलाने जाते हो। तुम जीवन का तिरस्कार और मरण का सत्कार करते हो। इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ।

मैं नर्क से बोल रहा हूँ।"[6] परसाई की 'टार्च बेचने वाले' कहानी के मंच और रेडियो नाट्यरूपांतरण निर्देशक के लिए अनेक सुविधाएँ प्रस्तुत करता है। दरअसल कहानी की पूरी बुनावट ही इतनी नाटकीय और संवादों में इतनी चुस्त है कि यदि अभिनेता उसे ईमानदारी और कौशल से निभा जाए तो भी वह सफल नाट्य प्रस्तुति कहलाई जा सकती है। निर्देशक-अभिनेता निसार अली ने अभिनय के साथ मंच परिकल्पना, गीत-संगीत-नृत्य की युक्तियों का प्रयोग, वेशभूषा आदि से कहानी को दर्शकों के आगे एक पूर्ण नाटक की तरह प्रस्तुत किया।

परसाई फैंटेसी शिल्प के बेहतर कलाकार थे। एक रचनात्मक शिल्प को कथा में ढालकर अप्रस्तुत को प्रस्तुत कर देना, अयथार्थ को यथार्थ की तरह घटित कर देने का क्राफ्ट वे बखूबी जानते थे। 'इंस्पैक्टर मातादीन चाँद पर' कहानी भारतीय पुलिस महकमे के एक अफसर की चाँद पर भेजे जाने की कथा है। यह अफसर है मातादीन, जिसका काम चाँद की पुलिस को प्रशिक्षित करना है। वह चाँद पर जाकर झूठे केस, हनुमान पूजा, वेतन वृद्धि के भ्रष्ट तरीके, नियमों को ताक पर रखने के गुर, रिश्वतखोरी, लूटपाट जैसे अनेक

गुर चाँद की पुलिस को सिखाता है। जिसके चलते वहाँ की व्यवस्था में भारी गड़बड़ी हो जाती है। अविश्वास, भय, आदर्शों के त्याग, लोगों में घटती सहयोग भावना और अंतत: समाज में तेजी से क्षरित होती मानवीयता के चलते मातादीन की शिकायत की जाती है और उसे धरती पर बुला लिया जाता है। यह कहानी भारतीय पुलिस के चरित्र का बढ़िया अंकन है। निर्दोष को अपराधी बनाने वाला क्रूर और पाशविक दमनतंत्र कैसे लोकतंत्र का सहायक बनकर काम करता है-उसे पूरी नग्नता के साथ उद्घाटित करके दिखाना ही परसाई का मंतव्य रहा।

इस सबको रचने के बीच परसाई आम लोगों के लिए उस करूणा को बचाने-बढ़ाने के प्रति सचेत रहते हैं। धनंजय वर्मा अपने लेख 'परसाई की कहानियां : समकालीन हिंदुस्तान का कैलिडोस्कोप' में लिखते हैं-"इन कहानियों के भावबोध में भावुकता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। इनका यथार्थबोध ब्रेख्त की याद दिलाता है जो अपने चरित्रों, स्थितियों और प्रसंगों के प्रति दर्शकों की भावुकता को बड़ी बेरहमी से भंग करते हैं और उसके बौद्धिक और नैतिक विवेक को उत्तेजित करते हैं।"[7] धनंजय वर्मा के इस कथन को यदि 'इंस्पैक्टर मातादीन चाँद पर' के नाट्यरूपांतरण पर लागू किया जाए तो ब्रेख्त की याद आना स्वाभाविक है। ब्रेख्त यथार्थ को उसकी पूरी विद्रूपता के साथ ही दर्शकों के सामने रख देना जानते थे। यह उनकी विशेषज्ञता भी थी और उनका लक्ष्य भी।

उनका उद्देश्य स्थितियों-परिस्थितियों के घर्षण से भावुक करके दर्शक की चेतना को सुप्त करना नहीं था। वे दर्शक को संवाद की स्थिति तक लाना चाहते थे और यही काम परसाई भी अपनी कहानियों के माध्यम से करते हैं। मातादीन के कारनामों पर दर्शक हँस जरूर सकता है पर सहमत नहीं हो सकता। इस तरह कॉमेडी के खोल में नीच ट्रैजिडी को परसाई की कथा का यह रूपांतरण पेश करता है। हाल ही में जयपुर में रंगशिल्प नाट्य समिति एवं रवींद्र मंच सोसायटी के संयुक्त तत्वावधान में इस नाटक का मंचन हुआ। सुनील शर्मा के निर्देशन में इस प्रस्तुति को दर्शकों की सराहना मिली।

परसाई की कहानी 'भोलाराम का जीव' देश के विभिन्न पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जाने के साथ-साथ बहुमंचित होने का गौरव पा चुकी है। 'बेचारा जीव', 'एक और भोलाराम', 'जीव की कथा', 'जीव की कथा', 'जीव खो गया है'-जैसे शीर्षकों से भी इसके मंचन हुए हैं।

इस वर्ष अनाम अभिनय मंच ने इसकी सफल प्रस्तुति रोहित पुनेड़ा के निर्देशन में पिथौरागढ़ में की है। कथा निम्नवर्गीय सरकारी कर्मचारी की है जो भारतीय प्रशासन और नौकरशाह का आसान शिकार है। मरकर भी उसका जीव जब यमलोक नहीं पहुँचता तो समस्या उठ खड़ी होती है। उसे ढूँढने नारद को पृथ्वी पर भेजा जाता है। जहाँ अंतत: पता चलता है कि पत्नी और बेटी की प्रतिकूल परिस्थिति को सुधारने के लिए जीव अपनी पेंशन की फाईल में अटका पड़ा है। विसंगति यहाँ तक पहुँचती है कि अफसर, नारद से भोलाराम की फाईल पास कराने के रिश्वतस्वरूप उसकी वीणा की माँग करता है। यमराज-चित्रगुप्त संवाद, भोलाराम की पत्नी-नारद संवाद, नारद-अफसर संवाद के साथ घटित घटना-विन्यास इस रूपांतरण को गति देता है। भ्रष्ट व्यवस्था में एक इंसान कैसे नौकरशाही का आसान शिकार है इसे एक फैंटेसी कथा के रूप में परसाई ने रचा है और स्वाधीन भारत की विडम्बना न जाने कितने भोलारामों को दर्शक-पाठक के समक्ष खड़ा कर देती है। सभी की एक ही नियति है।

अपने संचित धन को पाने के लिए भी रिश्वतखोरी के तंत्र से गुजरने की पीड़ा 'भोलाराम के जीव' के जरिए रखी गयी है। इस कथा के मंचन में हास्य के साथ दर्शक उस तनाव को भी सतत रूप से वहन करता है जो स्थितियों के उतार-चढ़ाव, निर्मिति-विध्वंस से सघन होता जाता है। जो एक ओर नारद द्वारा भोलाराम के जीव की खोज से जुड़ा है और दूसरी ओर एक असहाय परिवार की सुरक्षा की निश्चित गारंटी से। मनुष्यता के ह्रास को पूँजीवादी जनतंत्र की आधारभूमि पर दिखाने का काम परसाई ने भली-भाँति किया है। इस तरह उनकी तीनों ही कहानियों के नाट्यरूपांतरण लंबे समय बाद आज भी अपना

महत्व नहीं खोते। चाहे धर्म का बाज़ारीकरण हो, सत्ता की कठपुतली पुलिस-महकमे की ज्यादतती हो या फिर नौकरशाही का भ्रष्ट आचरण हो-अनैतिकता, मनुष्यविरोधी षडयंत्र, अपराध का ताना-बाना, सभी विसंगतियों को परसाई का लेखन बिना किसी पर्दादारी के सामने लाते हुए समाज के लिए जरूरी करूणा की पक्षधरता करता है। यही कारण है आज भी ये कहानियाँ मंचित होकर न सिर्फ दर्शकों की प्रशंसा पा रही हैं बल्कि आज के दौर में दर्शक इन्हें एक जरूरी हस्तक्षेप की तरह भी स्वीकार कर रहा है।

कहानी अपने पूरे विधान में नाटक के कई पक्षों को लेकर चलती है। यही कारण है कि रूपांतरकार और निर्देशक दोनों को ही उसे मंच तक लाने में सुविधा मिल जाती है। कहानी और नाटक के परस्पर सहसंबंध के बिंदु को उद्घाटित करते हुए अपने लेख 'कथा साहित्य और रंगमंच का आपसी लेन-देन' में देवेंद्रराज अंकुर लिखते हैं-"साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कथा साहित्य में ऐसे कौन से निजी गुण अंतर्निहित हैं जिनकी वजह से नाटक उसकी ओर ज्यादा आकर्षित होता रहा है।

मेरे विचार में साहित्य की किसी भी विधा के लिए एक कहानी के होने की अनिवार्यता ही वह मूल तत्व है जो नाटक की आधारभूमि बनती है। नाटक के संदर्भ में कथा साहित्य के प्रयोग के कुछ अन्य कारण भी हैं। उदाहरण के लिए कथा साहित्य में छिपी उसकी अपनी नाटकीयता, जो नाटक के बहुत नज़दीक की चीज़ है। इसी के साथ जीवन के विविध पक्षों, रंगों और चरित्रों से जुड़े वे मार्मिक प्रसंग हैं जो किसी भी नाटक के लिए एक सशक्त एवं जीवंत कथानक और वातावरण का निर्माण करते हैं।"

हरिरशंकर परसाई की दृष्टि हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन के उन विरोधाभासों को देख लेती है जिन्हें हम अनेक व्यवहारवादी, सुविधावादी, 'संस्कारवादी' और परंपरावादी पर्दों के नीचे छिपा कर रखते हैं। स्वाधीन भारत की राजनीतिक संस्कृति के अनेक विद्रूप इन पर्दों के पीछे छिपे ही रह जाते हैं। हमारे लिए समस्या तब तक मौजूद नहीं होती जब तक कि हम स्वयं उससे रू-ब-रू न हो जाएँ। हम अपने सार्वजनिक जीवन के सुविधाजीवी ढोंग को ओढ़े संत बने रहते हैं और हमारे सामने न जाने कितने अनाचार घट रहे होते हैं। परसाई मध्यवर्ग के इस द्वैत को भली भाँति पहचानते हैं। उनकी कहानियों में ये मध्यवर्ग अपने तमाम रूपों में सत्य के उजाले में खड़ा दिखा देता है इसलिए इंस्पैक्टर मातादीन का उपस्थित होना और भोलाराम के जीव का खो जाना एक दूसरे से अलग नहीं हैं। भले ही एक घटना काल्पनिक चाँद पर घटित होती है और दूसरी इसी धरती पर। जो सूत्र इन्हें एक दूसरे से जोड़ता है वह है हमारा भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और अनाचार को घटित होते देखते समय का आपराधिक मौन। दरअसल हम परसाई के साहित्य में अपने डरावने अक्स को देख एक और छद्म रच लेते हैं। यह छद्म हमसे कहता है कि देखो यह व्यवस्था कितनी भ्रष्ट है, इसमें सच हार रहा है और झूठ जीत रहा है। व्यवस्था को इतना सारा कोस लेने के बाद हमारा गुस्सा एक 'सात्विक विरेचन' की प्रक्रिया से गुज़र कर व्यवस्था के लिए शांत, सुस्वादु और सहायक बन जाता है। हरिशंकर परसाई यही नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि यथास्थिति को स्वीकारने की बजाय हम उसे बदलने के पीड़ादायक दौर को स्वीकार करें। परसाई की सार्थकता उनके करारे व्यंग्यों से उपजे हास्य में नहीं बल्कि उस करुणा में है जो हमें भीतर तक बेचैन उदासी से भर देती है।

संदर्भ

1. https://Samalochan.blogspot.com पुरूषोत्तम अग्रवाल
2. रंग कोलॉज : देवेंद्रराज अंकुर, पृ. 112
3. हिंदी रंगकर्म दशा और दिशा : जयदेव तनेजा, पृ. 109-110
4. रंगदर्शन : नेमिचंद्र जैन, पृ. 16
5. परसाई रचनावली : पृ. 412, पहला खंड
6. परसाई रचनावली : पृ. 238, भाग 2
7. परसाई रचनावली : पृ. 13, भाग 1
8. पहला रंग : देवेंद्रराज अंकुर, पृ. 54

❖

एसोसिएट प्रोफेसर
रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विवि
मोबाइल : 98996986959

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में लोक रंग

— डॉ. वंदना झा

रेणु अपनी कहानियों में किसी पात्र, स्थिति, परिस्थिति की व्याख्या नहीं करते बल्कि उनके द्वारा चित्रित परिवेश ही कथा की व्यंजकता को तीव्र-बोध से भर जाता है। परिवेश को व्यंजित करते रेणु शब्दों की देशजता को, उसके देशज-बोध को यथावत रखते हैं। भले ही, उन्हें अनेकानेक व्याकरणिक चिह्नों का सहारा लेना पड़े। इसलिए उनके पात्र, ग्राम आदि सभी जीवंत दिखाई देते हैं। आंचलिकता का बोध यथार्थ का बोध बन जाता है। मैथिली में जीवकांत की कविता और ओड़िया भाषा में सीताकांत महापात्र की कविता का भाषिक बोध रेणु की कहानियों का पद्यात्मक संस्करण लगता है। यथार्थ का साक्षात अनुभव रेणु की कहानियाँ करवाती हैं। भूमंडलीकरण, औद्योगिकीकरण, अजनबीपन, बिलगाव या अलगाव की परिभाषित व्याख्या से परे रेणु की कहानियाँ पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग जमकर करती हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु का यह शताब्दी वर्ष है। उनका जन्म 4 मार्च 1921 में फारबिसगंज जिले के औराही हिंगना नामक ग्राम में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल दोनों जगह हुई। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में हुई तो नेपाल के विराटनगर में कोईराला परिवार में रहकर उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। तत्पश्चात इंटरमीडिएट की शिक्षा 1942 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से प्राप्त की। इसके बाद स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने अपनी भूमिका निभायी। जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति में रेणु की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

'आजादी के बाद का प्रेमचंद' के नाम से अभिहित फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' की प्रसिद्धि के कारण पद्मश्री की उपाधि प्राप्त की। मैला आंचल, परती परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड जैसे उपन्यास के साथ रेणुजी ने रिपोर्ताज, ऋणजल-धनजल, नेपाली क्रांति कथा लेखन के साथ लगभग 62 कहानियों की रचना की। उनकी प्रसिद्ध कहानियों में 'मारे गए गुलफ़ाम', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'लाल पान की बेगम', 'पंचलाइट', 'तबे एकला चलो रे', 'ठेस', 'संवदिया' जैसी कहानियाँ हैं। मारे गए गुलफ़ाम उर्फ तीसरी कसम पर फिल्म बनी जिसे बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित किया था और निर्माता थे प्रसिद्ध गीतकार शैलेंद्र। राज कपूर और वहीदा रहमान ने इसमें मुख्य भूमिका निभाई थी।

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने 58 वर्ष के जीवनकाल में 63 कहानियों का सृजन किया। 1936 में अपने युवाकाल में कुछ कहानियाँ लिखीं जो थोड़ी अपरिपक्व थीं। आंदोलन में भाग लेते गिरफ्तार होते बाहर आकर रेणु ने 1944 में 'बटबाबा' नामक कहानी लिखी पुनः 'पहलवान की ढोलक' और अंतिम कहानी 1972 ई. में 'भित्तिचित्र की मयूरी' की रचना की। लंबी बीमारी के पश्चात उनका निधन 11 अप्रैल, 1977 को पटना में हो जाता है। शताब्दी वर्ष में रेणु की कहानियों के चिंतन के माध्यम से भारत के ग्रामीण परिवेश का चिंतन, ग्राम-समाज की संरचना के बदलाव का चिंतन है। यह चिंतन यथार्थ के कई स्तर को उद्घाटित करता है। ग्राम-समाज की संरचना वस्तुतः लोक की संरचना है। लोक में तीज-त्योहार, मेले, लोक-संगीत, लोकनाट्य के साथ मुहावरे, बिंब, रूपक, शब्दों का ठेठ अंदाज़ है। अपनेपन का भाव लिए मर्यादा की रक्षा है।

फणीश्वरनाथ रेणु के पात्र संघर्षशील हैं। उम्मीद से भरे हैं। परिस्थितियों से शिकायत करने की बजाय उसे बदलने की चाहत रखते हैं। रेणु की कहानियाँ फिल्म की तरह गत्यात्मक हैं, उसमें चाक्षुष बिंब, ध्वन्यात्मक बिंब, फसल की महक, नवान्न का गंध

है। जो है वह बेहद गतिशील, गझिन और गंभीर। रेणु की कहानियों में मनुष्य, प्रकृति और पशु का साहचर्य है जो भारतमाता के आंचल को पूरी पारिस्थितिकी के साथ प्रकट करता है। उल्लास का निनाद है तो पीड़ा की गहराई भी। इन सबों के मध्य रेणु के पात्र संतरण करते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु नृतत्त्वशास्त्री/मानवशास्त्री के रूप में दिखाई देते हैं। उनकी कहानियों के संगुफन में रूप, शब्द, चित्र, लोक-कला, लोक-संगीत उभरता चला जाता है। अतएव कहा जा सकता है कि रेणु की कहानियों की बुनावट देशज-भाव से जुड़कर उभरती है न कि किसी बने बनाए विमर्श का सहारा लेती है। विभिन्न वादों से इतर रहकर रेणु अपनी बनी बनायी संरचना से निरंतर बाहर निकल कुछ नया करते हैं।

'एक आदिम रात्रि की महक' कहानी का पात्र 'करमा' एक ऐसा पात्र है जो अपने नाम की व्याख्या करता कहता है कि, "निताय बाबू कोरमा कहकर बुलाते थे, घोष बाबू करीमा कहकर बुलाते थे, सिंहजी ने सब दिन 'कामा' कहा और असगर बाबू तो निरंतर करम-करम कहते थे।" लेकिन रेणु एक कदम आगे जाकर बाबू के माध्यम से कहवाते हैं, "तुम्हारा घर संथालपरगना में है या राँची-हजारीबाग की ओर होगा, किसी गाँव में? करमा-पर्व के दिन जन्म हुआ होगा, इसीलिए नाम करमा पड़ा। माथा, कपाल, होंठ और देह की गठन देखकर भी प्रस्तुत पंक्ति में देश के अनुसार भाषा और देह की गठन के अनुसार पात्र के देश को पकड़ने की दृष्टि के साथ उसके भाषिक और मानसिक व्यवहार का बेहतरीन अंकन रेणु की सूक्ष्म और मानवीय दृष्टि का परिचायक है। रेणु के यहाँ यत्र-तत्र ध्वनियों का प्रयोग मिल जाएगा। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविता में प्राकृतिक ध्वनियों को अंकन करने का प्रयास किया है लेकिन रेणु ने कहानियों में ध्वन्यांकन कर गद्य और पद्य की भाषा को एकमेव कर वातावरण की परिपक्वता को जीवंत कर दिया है।

कुत्ता 'बुफ-बुफ' करता है। तार की घंटी! स्टेशन का घंटा! गार्ड साहब की सीटी! इंजिन का बिगुल! जहाज का भोंपा! सैकड़ों सीटियाँ....भों, ओं, ओं! संथाली-बाँसी जैसी पतली सीटी—सी.ई.ई.!!, घटही गाड़ी! सी.ई.ई.ई.!! जहाज का भोंपा—भों, ओं, ओं! (आदिम रात्रि की महक) की ध्वनि है। रेणु की कहानियों में ध्वन्यात्मक बिंब मुखरता से प्रकट हुए हैं। ध्वनियाँ अपने समाज की परिभाषा गढ़ती हैं। उसके माध्यम से समाज की कार्यशाला में बेजुबानों की उपस्थिति और स्थिति को देखा जा सकता है। फणीश्वरनाथ रेणु अपने पात्रों के माध्यम से एक वाक्य में अनेक स्मृतियों को साझा करते हैं—'कदमपुरा' जगह का नाम है लेकिन कर्मा जब कहता है, 'टिसन से गाँव तक हजारों कदम के पेड़ हैं' तो उसे 'कदम की चटनी खाए एक युग हो गया' की याद हो आती है। रेणु के पात्र रुकते नहीं, उनके पास एक शब्द में अनेक अर्थों की स्मृतियाँ हैं। वारिसगंज टीसन की याद करते करमा को गधहावाले मगहिया डोमों की याद हो आती है। घाघरीवाली औरतें, हाथ में बड़े-बड़े कड़े, कान में झुमके, नंगे बच्चे, कान में गोल-गोल कुंडलवाले मर्द, उनके मुर्गे, उनके कुत्ते—अर्थात संपूर्णता में देखने की दृष्टि ही रेणु की दृष्टि है। रेणु के लिए स्थान की विशिष्टता ही मायने रखती है—सोनबरसा के आम, कालूचक की मछलियाँ, भटोतर की दही, कुसियार गाँव का ऊख!.... मनिहारी घाट टिसन की याद, वहाँ के खेत, मैदान, साहिबगंज, कटरोटिया का पहाड़ हर जगह की खुशबू-बदबू को महसूसने की शक्ति रेणू के पात्रों में है।

रिट्जर का सिद्धांत है 'मैकडोनाल्डाइजेशन' जिसमें भूमंडलीकरण के कारण स्वाद का वैविध्य समाप्त हो एक जैसा हो गया है। स्थानीय विशेषताएँ समाप्त हो आरोपित विशिष्ट विशिष्टताओं की पक्षधर हो लेती हैं क्योंकि उनके खोने का डर है। लेकिन रेणु की कहानियों में स्थानीय आस्वाद अंत तक बना रहता है। तभी तो मस्तानबाबा खंजड़ी बजाते हुए निर्गुण गाते हैं और कह उठते हैं—"घाट-घाट का पानी पीकर देखा—सब फीका। एक गंगाजल मीठा।" यह 'गंगाजल' ही स्वत्व है। अपनी भाषा, भोजन और भक्ति का मोह है जिसे किसी कीमत पर रेणु के पात्र खोना नहीं चाहते।

'जक्स्टापोजिशन' अर्थात स्मृतियों का मुखामुखम् रेणु के यहाँ खूब है। स्मृतियाँ यथार्थ को धारदार बनाती हैं। तभी तो करमा कदम के पेड़ को देखकर कदम की चटनी को याद करता है। धान की बालियों को फूटकर निकलते देख हेडक्वार्टर के चौधरी बाबू की गर्भवती घरवाली की याद हो आती है। 'आत्मसाक्षी' कहानी में कुसुमी जब गणपत को 'भतखौकामरद' कहती है तो 'भतारखौकी' कहना गनपत नहीं भूलता। वही गणपत भूर्ता बनाते समय 'आज के अखबार' में पढ़ी हुई बात याद करता है—"हमारे जवानों ने दुश्मनों का भुर्त्ता बना डाला।" गणपत को जब बलराम जी की बात बुरी लगती है तो रेणु उसे 'खास किस्म की 'साँझ'—आलू के भुर्त्त में खराब तेल की गंध' से तुलना करते हैं। गणपत 'अछूतोद्धारवाला' गीत को याद करता है तो उसे परबतिया की याद आ जाती है। रेणु के यहाँ दृश्य के समानांतर अनेक दृश्य उभरते हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाशीलता में पूरा अंचल बिंबित हो उठता है। रेणु संवेदना के कवि हैं। स्थान के प्रति, मनुष्य के प्रति, मनुष्यता का बोध करवाने वाले हर उस सूक्ष्म चीजों के प्रति गहन प्रेम का भाव रखते हैं जो उनके समकालीन और बाद के कथाकारों में दिखाई नहीं देता। तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफ़ाम कहानी में "हिरामन को स्वयं जेल जाने का डर नहीं है। लेकिन उसके बैल? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे—भूखे-प्यासे। फिर नीलाम हो जाएँगे।" यह चिंता वही गाड़ीवान कर सकता है जो अपने बैल को स्नेह करता हो, मात्र जानवर नहीं समझता हो। यहाँ प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' सहसा याद हो जाती है। तीसरी कसम का पात्र 'हीरामन' बेहद जहीन है। वह हृदय के अंतस्तल से समय की नज़ाकत को समझता है। रेणु कई नए मुहावरों का आविष्कार कर देते हैं। बच्चों की बोली जैसी महीन फेनुगिलासी बोली, फेनुगिलासी बोली की खोज उनकी ध्वन्यात्मकता रेणु की कहानी की खोज है। नदी के किनारे धान-खेतों से फूले हुए धान के पौधों की 'पवनिया गंध' को महसूसने की शक्ति रेणु की है। रेनू पाठक को समझाने के लिए पवनिया गंध की व्याख्या करते हैं। पर्व-पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है। पवनिया अर्थात पावनि अर्थात पर्व। स्थानीय भाषा से प्राणतत्व ले हिंदी और नए ढंग से पुनः उसकी व्याख्या रेणु की विशेषता है। रेणु के यहाँ मौन संवाद बहुत हैं। व्याकरणिक चिह्नों का जितना प्रयोग उनकी कहानियों में दिखता है उतना प्रयोग मुक्तिबोध की कविता के बाद कहीं उजागर नहीं होता। विस्मयादिबोधक चिह्न, प्रश्नवाचकता, विराम के अनेक प्रकार, पूर्ण विराम, अल्पविराम, इकहरे उद्धरण के चिह्न, निर्देशक या रेखा चिह्न, योजक, अर्धविराम, कोष्ठक, विवरण के चिह्न या पुनरुक्ति सूचक चिह्न, दीर्घ उच्चारण के चिह्न का प्रयोग रेणु के यहाँ विस्तार से दिखाई देता है।

रेणु अपनी कहानियों में किसी पात्र, स्थिति, परिस्थिति की व्याख्या नहीं करते बल्कि उनके द्वारा चित्रित परिवेश ही कथा की व्यंजकता को तीव्र-बोध से भर जाता है। परिवेश को व्यंजित करते रेणु शब्दों की देशजता को, उसके देशज-बोध को यथावत रखते हैं भले ही, उन्हें अनेकानेक व्याकरणिक चिह्नों का सहारा लेना पड़े। इसलिए उनके पात्र, ग्राम आदि सभी जीवंत दिखाई देते हैं। आंचलिकता का बोध यथार्थ का बोध बन जाता है। मैथिली में जीवकांत की कविता और ओड़िया भाषा में सीताकांत महापात्र की कविता का भाषिक बोध रेणु की कहानियों का पद्यात्मक संस्करण लगता है। यथार्थ का साक्षात अनुभव रेणु की कहानियाँ करवाती हैं। भूमंडलीकरण, औद्योगिकीकरण, अजनबीपन, बिलगाव या अलगाव की परिभाषित व्याख्या से परे रेणु की कहानियां पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग जमकर करती हैं। रेणु की शैली पत्रकारिता की मनोहारी शैली का प्रयोग कर सूक्ष्म अंकन कर भावस्थिति को प्रकट कर देती हैं। जादुई यथार्थवाद के जिस रूप को हम ग्रैब्रियल गासिया मर्खिज के यहाँ पढ़ते हैं रेणु उससे कहीं आगे जाकर भुतहा कहानियों को जोड़ रूप, गंध, भाषा का नया संसार रचते हैं। आभासीय सत्य के डेमियन ब्रॉडरिक की परिभाषा से बहुत पहले रेणु की कहानियाँ मनोरंजन का संसार रचती हैं। बॉब डिलन सरीखे नोबेल पुरस्कार विजेता या जे.के. रोलिंग जैसी सुविख्यात लेखिका से आगे भारत की लोक-कथाओं में नव-विमर्श की मौजूदगी देखी जा सकती है। हिंदी कविता में यह कार्य गजानन माधव मुक्तिबोध कर रहे थे तो हिंदी कहानी में फणीश्वरनाथ रेणु ने यह कार्य बहुत पहले कर दिया। 'आर्टिफिशियल रियलिटी' तथा 'इमोशनल रियलिटी' का तादात्म्य है रेणु की कहानी।

'ठेस' कहानी का सिरचन कला की मर्यादा के साथ व्यक्तित्व की मर्यादा की रक्षा करना जानता है लेकिन वह इसे बचा सकने में नाकाम होता है। यह हम वर्तमान परिदृश्य में मशीनीकरण और कला की रक्षा के संदर्भ में देख सकते हैं। सिरचन कला की श्रेष्ठता के कारण ही ब्राह्मणटोली के पंचानंद चौधरी के छोटे लड़के को बेपानी कर देता है। लेकिन कलाकार के दिल में लगी 'ठेस' कला के उपादानों और उसकी नीर्मिति से भी उसे अलग कर देती है। 'संवदिया' कहानी का पात्र 'हरगोबिन' को कौन भूल सकता है। 'हरगोबिन' आधुनिकता के प्रवेश के कारण सामाजिक संदर्भ में कमज़ोर होती जा रही रिश्तों की कहानी का पात्र है। संचार के विकसित होते साधनों के कारण 'संवदिया' की आवश्यकता जहाँ समाप्त होती जा रही है, वहीं ड्योढ़ी के खंडहर बनने और उसके बरक्स हवेली की बहुओं के दुःख-दर्द को अपना दुःख-दर्द समझने वाले और हवेली की बहू को गाँव की बहू समझ उसे मायके न जाने देने का प्रयास 'हरगोबिन' जैसा संवदिया ही कर सकता है। यह कहानी अनेक परिप्रेक्ष्य लिए खुलती है। गाँव और शहर की दूरी, गाँव के सम्मान की रक्षा, गाँव को लूट का साधन बनाने वाले शहरी निकम्मों के साथ रिश्तों की त्रासदी का वर्णन करती है। हरगोबिन कटिहार पहुँचकर अनुभव करता है कि 'सुराज' हुआ है लेकिन बड़ी बहुरिया के घर पहुँच हरगोबिन की

थाली भात, दाल, तीन किस्म की भाजी, घी, पापड़, अचार से सजी है लेकिन बड़ी बहुरिया का बथुआ साग उबाल कर खाता हुआ चेहरा याद आ जाता है। रिश्तों की गर्माहट का अंदाज 'हरगोबिन' के शब्दों में देखा जा सकता है। जब वह स्वयं को सेवक या संवदिया नहीं मानता और बड़ी बहू भी उसे संवदिया नहीं हरगोबिन का छोटा भाई मानती है—मैं तुम्हारा बेटा बड़ी बहुरिया, तुम मेरी माँ, सारे गाँव की माँ ये, मैं अब निठल्ला नहीं रहूँगा। तुम्हारा सब काम करूँगा, बोलो बड़ी माँ, तुम गाँव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी? बोलो।" रेणु रचनाकार तो हैं ही साथ ही वे पत्रकार, संगीतकार, संवदिया के साथ खेतिहर की भी भूमिका में दिखाई देते हैं। नागार्जुन के यहाँ मिथिला के जनजीवन का नाम-रूप और वस्तु-रूप दोनों की लगातार व्याख्या होती रहती है लेकिन रेणु के यहाँ दृश्य बिंब है और उस बिंब के भीतर इतिहास, स्मृति, गंध, लोक-कथा है। कभी-कभी जब भाषा भाव को बताने में चूकने लगती है तो वहाँ नाच है, गीत है, निर्गुण है और वाद्य-यंत्रों की ध्वनियाँ हैं जो रेणु के चिंतन को धार देते हैं। किसानी संवेदना के कथाकार का सायुज्य हम धान के खेत में रोपनी करते रेणु के साथ नागार्जुन के चित्र को देखकर समझ सकते हैं। विभिन्न आंदोलन, पार्टी, राजनीतिक नारे के मध्य साधारण व्यक्ति का नायक बन जाने की परिकल्पना रेणु के जनतांत्रिक विचारों के प्रति आस्था हैं। 'पंचलाइट' कहानी भारत के ग्रामीण अंचल का रूपक है जहाँ समाज उच्च और निम्न वर्ग में बँधा है। गोधन की कुशलता उसे जाति बाहर होते हुए भी समाज में वापस लाने में गुरेज नहीं करती क्योंकि वह महतो टोली की नाक बचाता है। पेट्रोमैक्स का आगमन सामूहिक एका का प्रतीक है। वह ठीक से जले उसके लिए नेम-टेम का प्रयोग अंधविश्वास का नहीं बल्कि हर उस ताकत का प्रयोग है जिसे महतो टोली संभावना को यथार्थ में बदलने के लिए करता है। सिरचन, हरगोबिन, गोधन, हिरामन, करमा, गनपत जैसे अति साधारण पात्र रेणु की रचना के नायक हैं। नायक की बनी-बनाई अवधारणा को रेणु तोड़ते हैं और ठेठ ग्रामीण अंचल में परिस्थितियों से संघर्ष कर रास्ता तलाशने वाले व्यक्ति को नायक के रूप में स्थापित करते हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु की रचना में 'नायक' की खोज भारत के अंचल के 'नायकत्व' को या ग्रामीण अंचल के मध्य उभर रहे 'नायक' को खोजना है। प्रश्न उठता है भारत के अंचल का नायक कैसा होगा? या फिर ग्रामीण अंचल का नायक राष्ट्रीय परिदृश्य के नायक की परिकल्पना में फिट बैठ पाता है क्या? अंचल राष्ट्रीय चेतना की भावभूमि है क्या? अथवा हमारा आंचलिक नायक राष्ट्र की सीमा से परे जाकर अंतर्राष्ट्रीय हो सका है क्या? क्या कोई व्यक्ति यकायक नायक हो सकता है या फिर उसके नायकत्व के निर्माण में उसके सामाजिक परिवेश का, उसके यथार्थ का कितना योगदान है?

विभिन्न परिस्थितियों से उपजा नायक जिसकी भुजाएँ पुष्ट नहीं, शिराएँ स्फीत नहीं, कृशकाय काया में संघर्ष करता नायक रेणु की कथा में उभरता है। 'पंचलाइट' कहानी की भूमि भी लगभग ऐसी है। रेणु के उपन्यास हो या कहानी, 'नायक' का आगमन समस्याजनित या आकस्मिक नहीं होता। रसप्रिया कहानी का पात्र 'मिरदंगिया' हो या तीसरी कसम का 'हिरामन' गाड़ीवान वह परिस्थितियों के मध्य घुलता है। वह नायक न तो वायदे करता है न ही किसी स्वप्नलोक की सैर करवाता है। उसका सौंदर्य और सौष्ठव ऐसा नहीं होता कि वह आकर्षण का केंद्र बने।

रेणु की कहानियों में नायक के आगमन की भी सूचना नहीं होती। कहानी के शुरुआत से वह उसमें समाया रहता है। 'पंचलाइट' कहानी का पात्र 'गोधन' इसलिए नायकत्व की परिकल्पना पर 'फिट' बैठ जाता है क्योंकि उसके माध्यम से महतो टोली में चल रहे विमर्श को विराम मिल जाता है। 'पंचलाइट' की खरीद महतो टोली के लिए नाक की बात है। खरीदने से लेकर उसे सभाचट्टी तक आने में गौरव की अनुभूति का बोध, किसी की नजर न लग जाए उसका सरंजाम, कोई नीचा न दिखाए, कोई टोक न लगाए, कुल मिलाकर स्व के भाव का तिरोहित रूप हम 'महतो टोली' के सदस्यों में देखते हैं। उनके गौरव का बोध 'पंचलाइट' के होने के बोध में समाहित हो जाता है। 'पंचलाइट' का होना महतो टोली के अंतस में नायकत्व का भाव जगाता है।

सवाल यह है कि 'पंचलाइट' के माध्यम से नायकत्व के भाव के पीछे रेणु की सामाजिक चेतना कौन-सी थी। यह कहानी 1953-54 के आस-पास लिखी गई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दस वर्ष भी नहीं बीते हैं। लेकिन जिस अंग्रेजों के खिलाफ हमारी लड़ाई थी वह लड़ाई हम अपने समाज से नहीं जीत सके थे। जब किसी चीज के मिलने की आशा न हो और यदि वह मिल जाए तो उस वस्तु का 'मिथकीकरण' शुरू हो जाता है। छड़ीदार औरतों की मंडली को सुनाता है—"रास्ते में सन्न, सन्न बोलता था पंचलैट"।

'पंचलाइट' के प्रकाश में जातिगत संरचना भी प्रदर्शित होती है जब महतो कहता है—"देखते नहीं हैं, पंचलैट है। बामनटोली

के लोग ऐसे ही करते हैं। अपने घर की ढिबरी को भी बिजली-बत्ती कहेंगे और दूसरों के पंचलैट को लालटैन!"

पंचलाइट के बरक्स हम गाँव का यथार्थ देखते हैं।

रेणु 'पंचलाइट' के बहाने सामाजिक परिप्रेक्ष्य को विस्तार से व्याख्यायित करते हैं। स्वतंत्र हुए राष्ट्र की चिंता गाँव में दिखाई नहीं देती। गाँव बेखबर है। हाँ, पंचायत का होना 'न्याय' की परिभाषा को स्पर्श जरूर करता है। 'गोधन' के नायकत्व का आविर्भाव 'पंचलाइट' को जलाने को लेकर होता है। 'पंचलाइट' जल नहीं पा रहा है 'पंचलाइट' जलाना गोधन जानता है। यह बात सिर्फ मुनरी जानती है। समय पर 'पंचलाइट' का नहीं जलना महतो टोली के हँसी का पात्र बनने का जहाँ भय है वही गाँव के अन्य टोली के लोगों के समक्ष महतो टोली के इज्जत का सवाल भी। यह कहानी बताती है कि तकनीक या आधुनिकता से यह गाँव बिल्कुल अपरिचित है। विशेषकर महतो टोली जहाँ ढिबरी से ही अब तक काम चलाया जाता रहा। हाँ, कुछ शेष बचा दिखाई देता है तो वह गीत-संगीत। कीर्तनियाँ है जो इंतजार कर रहा है 'पंचलाइट' के जलने का और मुनरी काकी गीत का।

'गोधन' का पुनः आगमन एक नायक की भाँति होता है। क्योंकि उसके पास वह कला है जो उसकी जाति की, टोली की इज्जत बचा सकता है। प्रतीक्षारत लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता ला सकता है। पराजय के बोध से टोले को उबार सकने की ताकत है उसमें। वह प्रेम भी करता है और प्रेम के भाव में सिनेमा का गाना गाने के कारण उसका हुक्का-पानी भी बंद है बावजूद इसके वह नायक है। वह पंचायत के लोगों के बुलावे पर नहीं आता-अविश्वास प्रकट करता है। गोधन अपनी टेर में है। उसके होने का बोध पूरी सभाचट्टी को समझ में आने लगता है। वह आता है पंप मारता है और पंचलाइट की रोशनी में सारी टोली जगमगा जाती है। उसकी कला, हुनर सबकी खुशी लेकर आती है। गुलरी काकी उसे भोजन का आग्रह भी करती है और पंच उसे 'सलीमा का गाना' गाने की इजाजत भी दे देते हैं। मुनरी से उसकी आँखें भी चार होती है।

कुल मिलाकर, 'गोधन' सरलता में भी विशिष्टता का प्रतीक बन उभरता है। वह नवयुवक है, प्रेम करता है लेकिन झुकना नहीं जानता। वह पूरी जाति को संकट से उबार लेता है और सबके हृदय पर भी राज करता है।

पूरी कहानी के अंत में वह आता है। संवाद बेहद कम हैं। वह एक बार पंचायत से प्रश्न करता है दूसरी बार मुनरी से अपनी बात कहता है। लेकिन, जब वह आता है तो अटके हुए साँस में जान आ जाती है। 'पंचलाइट' कहानी का रचनात्मक गठन यह बताता है कि नायक परिस्थिति के माध्यम से विकसित होता है उसके लिए आवश्यक नहीं कि उसके आगमन का विकास किया जाए। जाति बाहर होने से, मुनरी से प्रेम होने के बावजूद वह नायक होता या नहीं कहा नहीं जा सकता लेकिन जाति-बिरादरी की नाक 'पंचलाइट' आने से उसका नायकत्व संभव हो पाता है। 'कामन' जब 'ग्रैंड' बन जाता है तो नायक का आविर्भाव होता है। 'ग्रेटर कॉज' के कारण गोधन नायक बन जाता है।

फणीश्वर रेणु किसी भ्रम-जाल में नहीं फँसते और इसलिए सीधे-सीधे देशज यथार्थ को वैश्विक बना देते हैं। यथार्थ को समझने के लिए स्थान विशेष के भाषाई-संसार जिसमें सुख-दुःख की अभिव्यक्ति हो, भौगोलिक चेतना के वास में निबद्ध लोक-भाषा के विभिन्न रूपों को समझने की ताकत हो तब आप यथार्थ के विभिन्न आयामों के माध्यम से किसी अंचल के जातीय स्वरूप को समझ सकते हैं। सांस्कृतिक विघटन को दिखाना रेणु का उद्देश्य नहीं बल्कि उसके बरक्स मानवीयता के सरोकारों को छीजने से बचाना, मूल्यहीनता की स्थिति से अलग मूल्यवान को बचाने की जद्दोजहद रेणु अपनी कहानियों में करते हैं। इसीलिए उनके कथा-संसार में सत्ता-विमर्श, आर्थिक विमर्श के साथ ही सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य उभरकर आता है। इसीलिए फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी का अध्ययन करते हुए समग्रता के साथ बिंब, रूप, कथा, मिथक को ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोण के साथ पुनरावलोकन की आवश्यकता है। रेणु जी की सूक्ष्म दृष्टि में अपने समय, समाज, भाषा, राजनीति, संस्कृति, मूल्य-बोध पर पैनी नज़र है और उसके प्रति एक नेह का, प्रेम का भाव है। इसीलिए वे एक साथ कविता, कहानी, उपन्यास रिपोर्ताज, संस्मरण अनेक विधाओं में सृजन करते हैं। कुछ आलोचक उन्हें देशज अस्मिता का, आंचलिकता का कथाकार कहते हैं लेकिन मानवता के क्षरण को रोकने की मानवीय मूल्यों को बचाने में अपनी ताकत को झोंक देने वाले रचनाकार रेणु का परिप्रेक्ष्य व्यापक है।

❖

एसोसिएट प्रोफेसर
वसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट, वाराणसी
मो. 9935288271

शतवार्षिकी पर छायावाद का पुनःस्मरण

— डॉ. कृष्णा शर्मा

प्रसाद जी वे रचनाकार हैं जो स्पष्टतः घोषणा करते हैं कि हम भारतवासी कहीं बाहर से नहीं आए बल्कि यहीं के हैं। प्रसाद जी ही नहीं सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की लंबी कविता 'राम की शक्ति पूजा' भारत की परतंत्रता के विरुद्ध अलख जगाने की कविता है, माँ जानकी की खोज और प्राप्ति वस्तुतः भारत की स्वतंत्रता है जिसे भारत की करोड़ों जनता के परम आराध्य एवं प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम राम पुनःप्राप्ति के लिए शक्ति की आराधना करते हैं, यहाँ तक कि अपनी एक आँख तक शक्ति को समर्पित करने को उद्यत हो जाते हैं। प्रसाद एवं निराला ही नहीं सुमित्रानंदन पंत भी अतीत के गौरव का स्मरण करते हैं। प्रोफेसर चौथी राम यादव के शब्दों में 'प्रसाद, निराला और महादेवी में आरंभ से ही अपने गौरवमय अतीत के प्रति सहज आकर्षण पाया जाता है, किंतु पंत सदैव से भविष्य के स्वप्न द्रष्टा कवि रहे हैं। 'स्वर्ण किरण' में पहली बार कवि की दृष्टि अपने अतीत की ओर गई है और उसमें संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रस्फुटन हुआ है।

यह वर्ष यानी सन् 2020 'छायावाद' की शतवार्षिकी का वर्ष है। सन् 1920 में हिंदी कविता की तत्कालीन नव्य काव्य-धारा के लिए 'छायावाद' शब्द का प्रयोग किया गया था। इसका सर्वप्रथम प्रयोग श्री मुकुटधर पाण्डेय ने किया था। जबलपुर से प्रकाशित 'श्री शारदा' पत्रिका के जुलाई सितम्बर नवंबर एवं दिसम्बर 1920 के अंक में हिंदी में छायावाद शीर्षक से चार निबंधों की लेखमाला प्रकाशित हुई थी। इसके पूर्व मुकुटधर जी 'कविता' निबंध में लगभग उन्हीं बातों की चर्चा कर चुके थे जिनका विस्तार उनके बाद के चार लेखों में मिलता है। यह नहीं है कि 1920 से पूर्व छायावाद शब्द का प्रयोग नहीं हुआ लेकिन कविता में कल्पनाशीलता, भाव स्वातंत्रय एवं प्रकृति की रहस्यात्मकता का उल्लेख मुकुटधर जी कर चुके थे। बाद में कविता की इन्हीं प्रवृत्तियों को उन्होंने 'छायावाद' नाम दे दिया। यह भी ठीक है कि 'छायावाद' से कविता की किसी साक्षात् विशिष्ट प्रवृत्ति का खुलासा नहीं होता, और यह नाम लगभग अस्पष्टता के रूप में ही किया गया था, किन्तु उसके पश्चात् इस नाम को न केवल स्वीकार कर लिया गया वरन् इसे रहस्यवाद एवं स्वच्छन्दतावाद से जोड़ कर इसकी दार्शनिक व्याख्या भी खूब हुई। शुरुआती दौर में आचार्य शुक्ल ने भी अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में इस नयी काव्य-धारा की 'छायावाद' के नाम से ही चर्चा की और इसे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यात्मक कविताओं से जोड़ कर देखा—"यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और 'प्रतीकवाद' या चित्रभाषावाद को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। 'चित्रभाषा' या अभिव्यंजना पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।"[1] यह भी सच है कि आचार्य शुक्ल ने इन कविताओं का मूल्यांकन कहीं न कहीं एक शैली विशेष के अर्थ में किया—"कलावाद और अभिव्यंजनावाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मुर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूप और व्यापार इसी

अप्रस्तुत योजना के काम में लाए गए। सीधे उनके मर्म की ओर हृदय प्रवृत्त न दिखाई पड़ा। ० ० ० ० दूसरा प्रभाव यह देखने में आया कि अभिव्यंजना प्रणाली या शैली की विचित्रता ही सब कुछ समझी गई। नाना अर्थ भूमियों पर काव्य का प्रसार रूक सा गया।"[2] बाद में डॉ. नगेन्द्र प्रभृति आलोचकों ने छायावाद को एक विशिष्ट काव्य शैली के रूप में ही निरुपित किया। दृष्टव्य है कि आरंभ में जिस 'छायावाद' को उपहास के रूप में कहा गया, केवल एक विशिष्ट शैली भर माना गया, विरह-वेदना और वायवीयता का काव्य माना गया, अतिशय भावुकता और कल्पना का काव्य कह कर उसे कहीं कमतर रूप में देखने की कोशिशें हुई वही 'छायावाद' बाद में आधुनिक काल के स्वर्ण युग के रूप में पहचाना गया, 'कामायनी' जैसा महाकाव्य उसका प्रतीक ग्रंथ बना और जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा—छायावाद चतुष्ट्य के नाम से हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रतिष्ठित हो गए। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' 'तुलसीदास' और 'सरोज स्मृति' जैसी रचनाएँ युगों-युगों तक अपना प्रभाव रखने वाली हो गई। पंत की पल्लव, गुंजन, उच्छवास और वीणा जैसी कृतियों के बिना कविता में प्रकृति की चर्चा हो ही नहीं सकती और महदेवी के नीहार, रश्मि, यामा, नीरजा, सांध्यगीत जैसे प्रगीत संग्रहों में व्यक्त वेदना का भाव उन्हें आधुनिक मीरा की पहचान दे गया। छायावाद के इन चारों कवियों में सबसे छोटा रचना-समय प्रसाद जी का रहा और सबसे लम्बा मादेवी वर्मा का। निराला की कुछ कविताएँ 'छायावाद' की नहीं मानी जा सकती और पंत जी तो बाकायदा ग्राम्या और लोकायतन और फिर बाद में ऋषि अरविंद के प्रभाव में कविता में अपनी वस्तु और शैली बदल ही चुके थे। इसके बावजूद प्रसाद, पंत, निराला और महदेवी ये छायावाद के प्रतीक रचनाकार हैं—यह मानने में किसी को भी लेशमात्र भी संकोच नहीं होना चाहिए। आरंभिक उपहास एवं कतिपय कटु आलोचना के पश्चात श्री शांतिप्रिय द्विवेदी और आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के रूप में छायावाद को ऐसे आलोचक मिले जिन्होंने इस नवीन काव्यधारा का बड़े ही सिलसिलेवार ढंग से मूल्यांकन किया, केवल शैली भर नहीं उसकी अंतर्वस्तु को भी उन्होंने समुचित संदर्भों में देखा और छायावाद को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में परखने का आग्रह किया। शांतिप्रिय द्विवेदी जी और आचार्य नंददुलारे जी के इस विवेचन-विश्लेषण एवं गंभीर आलोचना का परिणाम यह रहा कि 'छायावाद' न केवल प्रतिष्ठित हो गया वरन् आधुनिक काल का स्वर्ण युग भी कहा गया-"इसमें कोई संदेह नहीं कि छायावाद भक्ति काल के बाद हिंदी साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण साहित्य-आंदोलन है। कविता में भी और गद्य में भी। भक्तिकाल को स्वर्णकाल कहा गया है। छायावाद को आधुनिककाल का 'स्वर्णयुग' कहा जा सकता है।"[3] साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के इस वक्तव्य के पश्चात् छायावादी काव्य की उत्कृष्टता के संदर्भ में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। आचार्य नंददुलारे वाजपेई की बहुत ही सुचिन्तित समीक्षा में छायावाद को लेकर उठाए गए सभी प्रश्नों का उत्तर भी मिल जाता है। नंददुलारे वाजपेई जी लिखते हैं—"छायावाद सांसारिक वस्तुसत्ता के भीतर एक दिव्य सौंदर्य का प्रत्यय है। उसमें अद्वैत तत्व का भास मिल जाता है। काव्य की दृष्टि से छायावाद प्रकृति मानव-जीवन प्रेम और सौंदर्य को अधिक गहन रूप में प्रकट करता है। रहस्यवाद में दिव्य प्रेम की स्थापना होती है। रहस्यवाद में प्रकृति की स्वतंत्रता आध्यात्मिक सौंदर्य में मिल जाती है। छायावादी काव्य में प्रेम और प्रकृति के वर्णन अधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं। रहस्यवाद में ईश्वर और जीव के संबंधों का दर्शन करते हुए दोनों की एकात्मता व्यंजित होती है। रहस्यवादी काव्य दृष्टि से अधिक निगूढ़ होता है। छायावादी काव्य दृष्टि अधिक मानवीय है। प्रकृति को मात्र प्रकृति न मानकर दोनों उस पर अध्यात्म का आरोप करते हैं। अंतर यह है कि रहस्यवादी काव्य प्रतीक पद्धति को ले चलता है जबकि छायावाद में प्रकृति अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती है।"[4] स्पष्ट है कि छायावादी कविता को मात्र एक काव्य-शैली मानने वाले को वाजपेई जी ने उत्तर दे दिया है। दरअसल छायावाद को मात्र एक काव्य शैली मानने के मूल में उसके सांस्कृतिक प्रदेय को नेपथ्य में ढकेलने का ही प्रयास था। छायावाद को पलायन और वायवीयता के काव्य तक में सीमित कर के देखने के पीछे वस्तुत: यही मंतव्य था। कल्पनाशीलता, अतिशय भावुकता और इस लोक से परे रहस्यवाद को इतने गहरे रंगों में रंग कर दिखाया गया कि उसकी राष्ट्रीय-चेतना का भाव तिरोहित सा हो गया। 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावादी काव्य' में प्रोफेसर चौथीराम यादव भूमिका में ही एकदम स्पष्टत: कहते हैं-"अतीत से मोहग्रस्त होना एक बात है और अपने वर्तमान के लिए अतीत से प्रेरणा ग्रहण करना बिल्कुल दूसरी बात है। राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित जयशंकर प्रसाद का राष्ट्रप्रेम यदि उन्हें ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से अतीत के गौरव-गान के लिए भारतीय इतिहास के स्वर्ण-युग की ओर उन्मुख करता है तो उसके दोहरे निहितार्थ हैं; एक तो मुक्ति संघर्ष के लिए शक्ति अर्जित करना है दूसरे उन

साम्राज्यवादी इतिहासकारों का मुँहतोड़ जवाब देना जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को हीनतर साबित करने के लिए हमारे इतिहास को तोड़-मरोड़ कर विकृत रूप में पेश कर रहे थे। आकस्मिक नहीं है कि उस समय भारत के राष्ट्रवादी इतिहासकार संस्कृति एवं सभ्यता के मोर्चे पर साम्राज्यवादी इतिहासकारों से लोहा ले रहे थे।"[5] उक्त उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि छायावादी किसी और लोक की और निरी भावुकता की कविता के ही रचनाकार नहीं थे बल्कि अपने समय की राष्ट्रीय चेतना के यथार्थ को सही अर्थों में समझ भी रहे थे और अपनी रचनाओं में उसे अभिव्यक्त भी कर रहे थे।

जयशंकर प्रसाद का नाट्य गीत

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो-बढ़े चलो।'

राष्ट्रीय-चेतना का अद्वितीय गीत है, जिसका वाचन आज भी रोमांचित कर देता है। प्रसाद जी की यह रचना विश्व के तमाम सैन्य गीतों में निसंदेह शीर्ष पर है, और केवल यह गीत नहीं प्रसाद जी की रचना—

'अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा'

चंद्रगुप्त नाटक में कार्नेलिया द्वारा गाया गया है, कार्नेलिया सेल्यूकस की कन्या है। एक विदेशी द्वारा भारतवर्ष के लिए गाए गए इस गीत का निश्चित रूप से कुछ विशेष निहित संदर्भ हैं। भारतवर्ष के स्वाधीनता संग्राम में जो राजनैतिक आंदोलन खड़ा हुआ था उसका आधार वास्तव में वह सांस्कृतिक चेतना थी जिसे गाँधी जी ने पहचाना था और प्रसाद जी जिसे अपनी रचनाओं में बारंबार अभिव्यक्त कर रहे थे। 'कल्याणी परिणय' में चंद्रगुप्त की सेना समवेत स्वर में गाती है—

जय जय जय आदि भूमि, जय जय जय भारत भूमि।
जय जय जय जन्मभूमि, अपने सम प्यारी॥
हम सब हैं महाप्राण, भारत के शिरस्त्राण।
असि शर धनु धारी॥
हिमगिरी सम धीर रहें, सिंधु सम गंभीर रहें
जननी व्रत धारी॥'

प्रसाद जी वे रचनाकार हैं जो स्पष्टत: घोषणा करते हैं कि हम भारतवासी कहीं बाहर से नहीं आए बल्कि यहीं के हैं। प्रसाद जी ही नहीं सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की लंबी कविता 'राम की शक्ति पूजा' भारत की परतंत्रता के विरुद्ध अलख जगाने की कविता है, माँ जानकी की खोज और प्राप्ति वस्तुत: भारत की स्वतंत्रता है जिसे भारत की करोड़ों जनता के परम आराध्य एवं प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम राम पुन:प्राप्ति के लिए शक्ति की आराधना करते हैं, यहाँ तक कि अपनी एक आँख तक शक्ति को समर्पित करने को उद्यत हो जाते हैं। प्रसाद एवं निराला ही नहीं सुमित्रानंदन पंत भी अतीत के गौरव का स्मरण करते हैं। प्रोफेसर चौथी राम यादव के शब्दों में 'प्रसाद, निराला और महादेवी में आरंभ से ही अपने गौरवमय अतीत के प्रति सहज आकर्षण पाया जाता है, किंतु पंत सदैव से भविष्य के स्वप्न दृष्टा कवि रहे हैं। 'स्वर्ण किरण' में पहली बार कवि की दृष्टि अपने अतीत की ओर गई है और उसमें संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रस्फुटन हुआ है। 'स्वर्ण किरण' की अशोक वन नामक कविता में पौराणिक रूपक द्वारा वैदेही की मनोगाथा का दार्शनिक चिंतन प्रस्तुत किया गया है।...सीता राम की चित् शांति हैं और राम सत् शक्ति के प्रतिरूप। चित् शक्ति की उर्ध्वमुखी चेतना अखिल सृष्टि के आनन्द का कारण है।[6] छायावादी काव्य धारा के आज सौ वर्ष पूर्ण होने पर उसका स्मरण हो आना सहज ही है, यह स्मरण विस्मृति के पश्चात् का स्मरण नहीं है, बल्कि जो काव्य हमारे मन मस्तिष्क में इन सौ वर्षों में निरंतर गूँजता रहा है, आज उसकी अनुगूंज को फिर से एक बार नए अर्थों, नए संदर्भों के साथ सुनने की आवश्यकता है।

संदर्भ संकेत

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल-समग्र ग्रंथावली खंड-5, पृष्ठ संख्या-528
2. वही पृष्ठ संख्या-518
3. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी-साहित्य का स्वधर्म-सामायिक बुक्स पृष्ठ संख्या-147
4. नंददुलारे वाजपेयी रचनावली-खंड 3 पृष्ठ संख्या-26-27
5. चौथी राम यादव, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावाद काव्य-अमनिका पब्लिशर
6. चौथी राम यादव, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावाद काव्य-अमनिका पब्लिशर

❖

उप-प्राचार्य, पीजीडीएवी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
सनशाइन हिलियो सोसाइटी, एफ-ब्लॉक
2201, सेक्टर-78, नोएडा (उ.प्र.) मोबाइल : 9871726471

ब्रिटेन और अमेरिका में हिंदी शिक्षण

— डॉ. कमलेश कुमारी

ब्रिटेन में बहुत सी संस्थाएँ वहाँ बसे हुए बच्चों को हिंदी सीखने हेतु प्रेरित भी करती हैं। यह इन समितियों के प्रमुख लक्ष्यों में शामिल है। 'यू.के हिंदी समिति' वहाँ रहने वाली दूसरी-तीसरी पीढ़ी के युवाओं में हिंदी प्रेम जगाने और हिंदी शिक्षण कार्य को बहुत जिम्मेदारी से निभा रही है। 'हिंदी परामर्श मंडल' इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, वेल्स और आयरलैंड के तमाम छोटे-बड़े शिक्षण केंद्रों की नेटवर्किंग करके ब्रिटेन में 'यूरोपियन हिंदी शिक्षक सम्मेलन' आयोजित किया गया। अर्थात समिति वहाँ फैली तमाम शिक्षण संस्थाओं को जोड़कर युवा पीढ़ी को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित-उत्साहित करती है। जिसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर 'हिंदी ज्ञान प्रतियोगिताएँ' आयोजित की जाती हैं जिसमें पूरे ब्रिटेन के हिंदी प्रेमी छात्र बढ़-चढ़कर भागीदारी करते हैं। हिंदी शिक्षण से भी पहले आवश्यक है कि वहाँ रह रहे प्रवासी भारतीयों के बच्चों में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

आज हिंदी भारतीय संस्कृति और परंपरा की सशक्त संवाहिका बनकर सरहदों को पार करती हुई अपनी भाषिक यात्रा में निरंतर आगे बढ़ रही है। सन् साठ के दशक से भारतीयों का जैसे-जैसे प्रवास गमन होने लगा हिंदी के पंख भी पसरने लगे। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीय अपनी भाषा-सभ्यता, संस्कृति से जुड़े रहकर अपनी भावी पीढ़ी को भी इस विरासत को सौंपने का प्रयास करने लगे जिसके लिए हिंदी ही एकमात्र माध्यम थी इसी उद्देश्य हेतु विदेशों में हिंदी शिक्षण की आवश्यकता महसूस हुई। यद्यपि आज हिंदी शिक्षण का उद्देश्य केवल भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण ही नहीं वरन बाजार और अंतरराष्ट्रीय कंपनियों की लाभ लिप्सा भी एक प्रमुख कारण है। विश्व का कोई ऐसा देश नहीं जहाँ हिंदी का प्रयोग किसी न किसी रूप में न होता हो। वैश्विक मानचित्र पर हिंदी के बढ़ते चरण एक सुखद अनुभूति कराते हैं। 'लगभग 32 मिलियन भारतीय मूल के लोग दुनिया के सैंकड़ों देशों में बसे हुए हैं। विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी के पठन-पाठन के अंतर्गत 165 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है।' हिंदी प्रेमियों द्वारा हिंदी प्रचार-प्रसार के साथ-साथ हिंदी का बाजार बहुत तेजी से विकसित हो रहा है। कारण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हिंदी की क्षमता को पहचान लिया है तभी तो चीन और दक्षिण कोरिया, अमेरिका, ब्रिटेन और दुनिया के अधिकांश देशों की व्यापारिक संस्थाएँ हिंदी को अपने व्यवसाय से जोड़ना चाह रही हैं। न्यूजर्सी, अमेरिका के कार विक्रेताओं द्वारा 'होंडा, टोयोटा, निसान जैसे मध्यवर्ग के लोकप्रिय वाहनों के विक्रेताओं ने भारतीय मूल के वासियों को आकर्षित करने के लिए अपना प्रचार हिंदी में किया।' और फिर भारतीय मूल के संपन्न लोगों हेतु बी.एम.डब्ल्यू. ने भी हिंदी में प्रचार किया। चीन, जापान, कोरिया आदि सभी देशों में भी हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की जा रही है। कारण कुछ भी हो लेकिन सुखद स्थिति है कि हिंदी शिक्षण की मांग जोर पकड़ने लगी है। यहाँ विवेचन का केंद्र ब्रिटेन और अमेरिका में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था ही रहेगी।

ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण का कार्य 60-70 के दशक से ही शुरू हो चुका था। यद्यपि स्कूलों में विधिवत या औपचारिक रूप

से ऐसी कोई खास व्यवस्था नहीं थी लेकिन लंदन में स्वास, कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण का कार्य हो रहा था। यह विचारणीय है कि लंदन के मुख्यधारा के स्कूलों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन नहीं होता था। केवल कुछ संस्थानों में ही 10-12वीं की बोर्ड परीक्षाओं में हिंदी एक वैकल्पिक विषय के तौर पर रही है। ब्रिटेन के प्राथमिक और सेकेंड्री स्कूलों में हिंदी पठन-पाठन की कोई व्यवस्था नहीं रही, वहाँ उन्हें हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान विश्वविद्यालयों में ही देना शुरू किया जाता है। उन्हें हिंदी वर्णमाला भी विश्वविद्यालयों में ही सिखाई जाती है। 15-20 छात्र हिंदी साहित्य में बी.ए. ऑनर्स एवं शोध कार्य अवश्य करते हैं। इस संख्या में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता। लंदन में हिंदी शिक्षण हेतु 'हिंदी महासभा' ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वहाँ हिंदी शिक्षण को प्रभावी बनाने में डॉ. स्नेल का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने विदेशी छात्रों के लिए हिंदी शिक्षण पर कई पुस्तकें, ऑडियो टेप के साथ लिखी हैं। उनकी लिखी 'टीच योरसेल्फ हिंदी' और 'बिगनर्स हिंदी स्क्रिप्ट' विदेशी छात्रों के बीच हिंदी सीखने में काफी लोकप्रिय हैं।' ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण में औपचारिक-अनौपचारिक हिंदी संस्थाओं की भूमिका अहम रही है। 'यू.के हिंदी समिति' इसी प्रकार की बहुमुखी एवं गतिशील वृहद संस्था है। जिसने मुख्यधारा के स्कूलों के साथ सप्ताहांत पर स्वतंत्र रूप से हिंदी साहित्यिक एवं अन्य शिक्षण-संस्थाओं के साथ जुड़कर हिंदी शिक्षण को गति प्रदान की। ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण को बढ़ावा देने में भारतीय-उच्चायोग का सहयोग भी बहुत सराहनीय रहा है क्योंकि हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं वरन् भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की वाहिनी भी है। अत: हिंदी-सांस्कृतिक अधिकारियों ने इस दिशा में अभूतपूर्व योगदान दिया और ब्रिटेन में हिंदी पठन-पाठन के कार्यक्रमों को सुचारु रूप से संचालित किया। इन्होंने वहाँ रह रहे प्रवासियों एवं हिंदी शिक्षण संस्थाओं के बीच एक सेतु का कार्य करते हुए हिंदी शिक्षण को शक्ति प्रदान की। ब्रिटेन में प्राइमरी या सेकेंड्री स्कूलों के स्थान पर वहाँ की संस्थाओं में 'भारतीय विद्याभवन' सबसे प्राचीन संस्था है जो वहाँ भारतीय संस्कृति एवं हिंदी भाषा हेतु प्रतिबद्ध होकर कार्य कर रही है। यह संस्था भारत सरकार से संबद्ध होते हुए अपने निजी स्तर पर भी हिंदी शिक्षण को सुनियोजित रूप से चला रही है। अनेक भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी शिक्षण कार्य को लगभग 40 वर्षों से करती आ रही है। पूरे ब्रिटेन में इसकी शाखाएँ फैली हैं जिससे हिंदी शिक्षण को बहुत गति मिली है।

ब्रिटेन में प्रवासियों की पहली पीढ़ी नि:संदेह भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं हिंदी भाषा के प्रति मोह रखती है लेकिन उनके बाद की पीढ़ी लगभग हिंदी भाषा से कटती जा रही है। ऐसे में वहाँ बस रहे परिवार के लोगों को अपने बच्चों द्वारा दादी-नानी से बात करने के लिए हिंदी बोलना-समझना सिखाने की आवश्यकता महसूस हुई। यद्यपि आज की युवा पीढ़ी हिंदी सीखने के लिए उत्साहित नहीं है।

इसीलिए ब्रिटेन में बहुत सी संस्थाएँ वहाँ बसे हुए बच्चों को हिंदी सीखने हेतु प्रेरित भी करती हैं। यह इन समितियों के प्रमुख लक्ष्यों में शामिल है। 'यू.के हिंदी समिति' वहाँ रहने वाली दूसरी-तीसरी पीढ़ी के युवाओं में हिंदी प्रेम जगाने और हिंदी शिक्षण कार्य को बहुत जिम्मेदारी से निभा रही है। 'हिंदी परामर्श मंडल' इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, वेल्स और आयरलैंड के तमाम छोटे-बड़े शिक्षण केंद्रों की नेटवर्किंग करके ब्रिटेन में 'योरोपियन हिंदी शिक्षक सम्मेलन' आयोजित किया गया। अर्थात समिति वहाँ फैली तमाम शिक्षण संस्थाओं को जोड़कर युवा पीढ़ी को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित-उत्साहित करती है। जिसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर 'हिंदी ज्ञान प्रतियोगिताएँ' आयोजित की जाती हैं जिसमें पूरे ब्रिटेन के हिंदी प्रेमी छात्र बढ़-चढ़कर भागीदारी करते हैं। हिंदी शिक्षण से भी पहले आवश्यक है कि वहाँ रह रहे प्रवासी भारतीयों के बच्चों में हिंदी के प्रति रूचि उत्पन्न करना और यह कार्य 'यू.के. हिंदी समिति' विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करके प्रतियोगिताओं तथा पुरस्कारों द्वारा छात्रों में हिंदी पठन-पाठन की ललक पैदा कर रही है।

ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण की गतिशीलता का श्रेय हिंदी प्रेमी स्वयंसेवी अध्यापकों को दिया जा सकता है। इन अध्यापकों ने नि:स्वार्थ भाव से हिंदी शिक्षा की मशाल को ब्रिटेन में रह रहे लोगों के घरों, मंदिरों, सप्ताहांत स्कूलों, सोसाइटी हॉल तथा 'इंडियन एसोसिएशन' आदि सभी ने मिलकर विषम से विषम परिस्थितियों में भी इसकी ज्योति को बुझने नहीं दिया। इन हिंदी प्रेमी शिक्षकों ने घर-घर जाकर बच्चों को इकट्ठा कर उनमें हिंदी

सीखने की रुचि पैदा की। इन्हें हिंदी शिक्षण की इस मशाल को जलाने में कम चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ा, क्योंकि व्यवस्थित रूप से इनके पास स्कूल, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें नहीं थी और न ही किसी अन्य प्रकार की सुविधाएँ एवं संसाधन, विशेषत: प्रारंभिक दौर में थी। जब इन प्रतिबद्ध अध्यापकों के समक्ष हिंदी शिक्षण की कोई विधिवत व्यवस्था नहीं थी तब भी इन्होंने हिंदी पठन-पाठन हेतु हस्तलिखित सामग्री तैयार करके (बिना स्वयं प्रशिक्षित हुए) हिंदी शिक्षण की चुनौती को स्वीकार किया। ब्रिटेन में अनेक छोटी-बड़ी ऐसी संस्थाएँ हैं जो हिंदी शिक्षण के प्रति समर्पित हैं। 'भारतीय विद्या भवन' के अतिरिक्त 'महालक्ष्मी मंदिर', 'ईलिंग आर्य समाज', 'हिंदू कल्चरल सोसाइटी फिन्चले', 'हिंदू कल्चरल सोसाइटी स्लाओ', 'हिंदी बालभवन', 'हिंदू सोसाइटी टूटिंग-लंदन', 'कला निकेतन- नॉटिंघम', 'भारतीय विद्याभवन- मैनचेस्टर', 'गीताभवन-लेस्टर', 'दुर्गा भवन-रंडेल', 'श्रीलैंड लैंगुएज कॉलेज', 'पार्क हॉल स्कूल', 'श्रीकृष्ण मंदिर-वुल्वर हैम्पटन', 'हिंदू समाज मंदिर-रेडिंग' आदि।

कहने का तात्पर्य है कि हिंदी की जो अलख कुछ हिंदी सेवियों ने जगाई थी उसकी ज्योति अब दूर-दूर तक फैलने लगी जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न छोटी-बड़ी संस्थाओं में हिंदी शिक्षण को बल मिला। बाद के दशकों में जैसे-जैसे ब्रिटेन में भारतीयों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गयी वैसे अंग्रेज सरकार एवं शिक्षाविदों को बहुसांस्कृतिकता एवं बहुभाषिकता का आभास भी होने लगा और उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति में सुधार करते हुए हिंदी की ओर ध्यान दिया। यद्यपि स्कूलों में हिंदी पठन-पाठन की कोई व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं हो पाई लेकिन अब हिंदी ब्रिटेन के समाज के अस्तित्व में आने लगी जिसके कारण वहाँ के अंग्रेज शिक्षकों को भी मल्टीकल्चरल एजूकेशन की ट्रेनिंग दी जाने लगी। अब हिंदी सीखने की आवश्यकता केवल भारतीय सांस्कृतिक कारणों तक या प्रवासियों की युवा पीढ़ी के दादी-नानी से संवाद तक ही सीमित नहीं रही वरन ब्रिटेन के डॉक्टर, वकील, अंग्रेज शिक्षकों को भी हिंदी सीखने की आवश्यकता महसूस हुई। जिसका प्रमुख कारण था हिंदी भाषी भारतीयों का बड़ी संख्या में ब्रिटेन प्रवास। साथ ही सामाजिक-व्यापारिक कारणों से युवा वर्ग हिंदी पढ़ने-लिखने की ओर प्रेरित हुए। ब्रिटेन के विभिन्न शहरों में अन्य भाषाओं के साथ-साथ हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था भी होने लगी।

समय के साथ हिंदी की स्थिति में बदलाव आया अब वहाँ हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था हेतु आर्थिक अनुदान दिया जाने लगा ताकि इसे और अधिक सुनियोजित ढंग से विकसित किया जा सके। इसीलिए ब्रिटेन के मुख्यधारा के अनेक स्कूलों में विदेशी भाषाओं के अंतर्गत हिंदी को भी समाहित किया गया। लंदन तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में भी हाई स्कूल तथा इंटरमीडिएट की हिंदी परीक्षाओं को शुरू किया गया किन्तु छात्रों की कमी के कारण यह परीक्षा बंद हो गई। जबकि लंदन बोर्ड से जी.सी.एस.सी. में हिंदी की परीक्षा होती रही। यह दुखद ही है कि वहाँ छात्रों की संख्या निरंतर गिरती जा रही है। ऐसी स्थिति में स्वयं सेवी हिंदी अध्यापकों ने सप्ताहांत के स्कूलों में हिंदी शिक्षण का कार्य अनवरत जारी रखा है। स्कूलों के अतिरिक्त लंदन के स्वास, ऑक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर हिंदी शिक्षण निरंतर चल रहा है।

इनके अतिरिक्त हिंदी शिक्षण को सुनियोजित ढंग से चलाने हेतु ब्रिटेन की यार्क यूनिवर्सिटी का नाम सर्वोपरि है जिसमें विशेष रूप से हिंदी पठन-पाठन की दृष्टि से हिंदी विभाग की स्थापना हुई। इसी के अंतर्गत 'हिंदी परिषद' के प्रयासों से अनेक अंग्रेज एवं भारतीय युवा हिंदी सीखने के लिए प्रेरित हुए। यार्क विश्वविद्यालय प्रतिवर्ष हिंदी शिक्षक सम्मेलन के साथ-साथ हिंदी पठन-पाठन की स्थिति एवं चुनौतियों पर भी विस्तार से विचार विमर्श करता है।

ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी रही हैं जिनके समाधान के बिना हिंदी शिक्षण को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता। सर्वप्रथम तो वहाँ हिंदी के लिए सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम का अभाव है क्योंकि विदेशों में हिंदी शिक्षण की गतिशीलता के लिए हिंदी के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की जरूरत है अर्थात् विदेशी छात्रों को हिंदी के प्रति उनके मानसिक स्तर एवं परिवेश को समझते हुए हिंदी को द्वितीय भाषा के तौर पर पढ़ाने हेतु पाठ्यक्रम विकसित करना एक बड़ी चुनौती है। इस पाठ्यक्रम को अन्य आधुनिक भाषाओं की तर्ज पर बनाया जाए एवं इसे आवश्यकतानुसार प्रतिवर्ष अपडेट किया जाना भी जरूरी है।

इसके साथ ही हिंदी शिक्षण के समक्ष विभिन्न फॉन्ट भी भ्रामक स्थिति उत्पन्न करते हैं इसके लिए एक मानक फॉन्ट तैयार हो, ताकि हिंदी को पूर्णत: कंप्यूटराइज किया जा सके। आज समय की मांग है कि हिंदी शिक्षण को कंप्यूटर पर सहज रूप से शुरू किया जाए। वहीं हिंदी शिक्षण और उसके पाठ्यक्रम में आधुनिक दृष्टि का भी अभाव है। आज भी पारंपरिक रूप से हिंदी शिक्षण हो रहा है जिससे हिंदी के प्रति छात्रों की रुचि नहीं जग पा रही है। साथ ही प्रभावी हिंदी शिक्षण तभी संभव है जब हिंदी प्राध्यापक अपनी विद्वता को ध्यान में न रखकर छात्रों के साथ सहज-सरल संवाद करें यानि हिंदी पठन-पाठन हेतु छात्रों का जो स्तर हो उसी के अनुरूप अध्यापक हों, न कि प्राइमरी के लिए प्रोफेसर नियुक्त हों। प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति न होना भी एक विषम समस्या है।

इस प्रकार ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण की गतिशीलता के लिए मानक पाठ्यक्रम, प्रशिक्षित अध्यापक, संवादात्मक पाठ्य पुस्तकें तथा शिक्षण में कंप्यूटर और दूर संचार-सामग्री का समुचित प्रयोग आदि हिंदी शिक्षण को और अधिक प्रभावपूर्ण बना सकते हैं।

लंदन में 'यूरोपीय हिंदी शिक्षण सम्मेलनों' के द्वारा हिंदी शिक्षण में आने वाली व्यावहारिक समस्याओं पर भी विस्तार से विचार किया जा रहा है एवं उनके समाधन भी खोजे जा रहे हैं। साथ ही हिंदी अध्ययन-अध्यापन के इतिहास के अतिरिक्त हिंदी की वर्तमान स्थिति, विकास, समस्याएँ, भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा धर्म एवं समाज और हिंदी के परिवेश पर विस्तार से विमर्श करने की आवश्यकता भी समझी जा रही है।

वस्तुत: ब्रिटेन में हिंदी-शिक्षण की जो यात्रा साठ के दशक में शुरू हुई थी वह आज अपने लक्ष्य की ओर निरंतर अग्रसर है। आज ब्रिटेन में हिंदी भाषा और संस्कृति को पुन: बचाने के प्रयास हो रहे हैं जिसके लिए 'यू.के. हिंदी समिति', 'गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय', 'कथा यू.के.', 'कृति यू.के.', 'आर्य समाज', 'विश्व हिंदू मंदिर', 'इंडियन कम्यूनिटी सेंटर', 'सनातन धर्म स्कूल' आदि अनेक स्वैच्छिक संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण में अपने-अपने ढंग से लगी हुई है.. 'स्वामी नारायण स्कूल' ब्रिटिश एजूकेशन सिस्टम से एफलिएटेड स्वतंत्र रूप से ब्रिटिश स्टैंडर्ड पाठ्यक्रम के साथ छात्रों को भारतीय भाषाओं, धर्म और संस्कृति की बहुमुखी शिक्षा देता है।' अत: हिंदी शिक्षण की जो परंपरा भारतीयों की प्रथम पीढ़ी से शुरू हुई थी वह अब पूरी तरह से फलीभूत होती दिखाई दे रही है। अब ब्रिटेन की सभी हिंदी-शिक्षण संस्थाएँ एकजुट होकर दूसरी-तीसरी पीढ़ी हेतु, हिंदी के पठन-पाठन की सुनियोजित व्यवस्था में लगी हुई हैं। आयरलैंड, स्कॉटलैंड वेल्स आदि में स्थापित हिंदी शिक्षा केन्द्रों की सूची तैयार करके हिंदी-शिक्षण को विस्तृत आयाम दिया जा रहा है। साथ ही तीसरी पीढ़ी के बच्चों को हिंदी सीखने के लिए तरह-तरह से उनका उत्साहवर्धन किया जा रहा है। कविता-कहानी प्रतियोगिताओं के माध्यम से हिंदी पठन-पाठन को छात्रों के लिए आकर्षक एवं सुगम बनाया जा रहा है ताकि ब्रिटेन में अभिभावकों और बच्चों को हिंदी सीखने हेतु प्रेरित किया जा सके। नि: संदेह ब्रिटेन में आज हिंदी शिक्षण बाजार की भी जरूरत बन चुका है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अधिकारियों-कर्मचारियों एवं वहाँ के पेशेवरों को भी आज वहाँ रह रही एक बड़ी हिंदी भाषी आबादी की भाषा (हिंदी) सीखने की आवश्यकता महसूस हो रही है। अत: आज ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण अपनी अभूतपूर्व उपलब्धियों के साथ निरंतर गतिशील है। पिछले चालीस-पचास वर्षों में ब्रिटेन में हिंदी मुखरता से आगे बढ़ी है। पहले हिंदी घरों में पढ़ी-लिखी गई फिर मंदिरों और भवनों में धार्मिक ग्रंथों (गीता, रामायण) के रूप में पढ़ी-पढ़ाई गई तत्पश्चात सप्ताहांत स्कूलों में शिक्षकों द्वारा पढ़ाई गई। इसके बाद शिक्षण संस्थानों में वयस्कों को व्यावसायिकता हेतु पढ़ाई गई और फिर टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेजों में भारतीय छात्रों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समझने के लिए पाठ्यक्रमों में शामिल की गई। यद्यपि वहाँ के विश्वविद्यालयों में बहुत पहले से हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था थी।

भूमंडलीकरण ने बाजार को अत्यंत शक्तिशाली बना दिया है और बाजार मुनाफे को देखता है उसे किसी संस्कृति भाषा, धर्म से तभी तक कोई सरोकार है जब तक वे उसके लाभ का कारण नहीं बनते। इसी अर्थ में अमेरिका में हिंदी शिक्षण को समझने की आवश्यकता है। ब्रिटेन की भाँति अमेरिका में भी भारतवंशी बहुत पहले से ही अपनी भाषा-संस्कृति को सहजते हुए वहाँ प्रवास करने लगे थे। अमेरिका को मूलत: अंग्रेजी भाषी देश समझा जाता रहा है लेकिन अब वस्तुस्थिति बदल गयी है। वहाँ

के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की भी व्यवस्था है। 'अमेरिका के लगभग एक दर्जन विश्वविद्यालयों में हिंदी नियमित रूप से पढ़ाई जाती है। यूँ इसे पढ़ाने की शुरुआत छठे दशक में जोर-शोर से हुई थी जबकि अमेरिका की भारत में सामरिक रूचि बहुत बढ़ गई थी।' इन दर्जनों विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण हेतु पाठ्यपुस्तकें तैयार की गयीं तथा भाषा विशेषज्ञों को आमंत्रित भी किया गया एवं कुछ प्राध्यापकों को अमेरिका में ही ट्रेनिंग देकर अध्यापन हेतु तैयार किया गया। इन प्रोफेसर को इंडोलॉजिस्ट कहा गया। ये भाषा, समाज एवं संस्कृति, इतिहास भी पढ़ाते थे। इनमें अधिकतर यूरोपीय या अमेरीकी विद्वान ही थे जिनका वहाँ विशेष सम्मान था। किसी भी देश में भाषा शिक्षण वहाँ के भाषा सीखने वालों पर निर्भर करता है इसीलिए अमेरिका में भी नवें दशक तक आते-आते भारतीय प्रवासियों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय मूल के बच्चों ने वहाँ अपनी भाषा-संस्कृति और साहित्य पढ़ने की मांग की। जिससे अमेरिका में हिंदी शिक्षण में आशातीत वृद्धि हुई। हिंदी छात्रों की संख्या वहाँ तेजी से बढ़ी। यहाँ यह विचारणीय है कि चाहे ब्रिटेन हो अथवा अमेरिका या विश्व का कोई अन्य देश वहाँ हिंदी शिक्षण का उद्देश्य लगभग समान ही है वहाँ की दूसरी-तीसरी पीढ़ी के बच्चे हिंदी या हिंदी साहित्य के प्रति उतने गंभीर नहीं होते यद्यपि कुछ छात्र होते भी हैं जो हिंदी साहित्य का गंभीर अध्ययन करते हैं, लेकिन अधिकांशत: केवल फिल्में, गाने या मनोरंजन के अन्य माध्यमों-क्रिकेट आदि को समझने हेतु केवल काम चलाऊ हिंदी ही सीखते हैं। हिंदी में संवाद कर सकें, दादी-नानी के साथ, बस इतना ही कार्य साधक ज्ञान हेतु हिंदी पठन-पाठन की आवश्यकता रहती थी। लेकिन अब अमेरिकी बाजार हिंदी की ताकत को समझ चुका है तभी तो वहाँ व्यापार के क्षेत्र में भी हिंदी का प्रवेश हो चुका है।

यदि अमेरिका में हिंदी शिक्षण की यात्रा पर ध्यान दें तो '1947 में ही वहाँ यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया में दक्षिण एशियाई विभाग खोला गया जिसमें हिंदी भाषा भी शामिल थी।' इसके पश्चात सन् 1960 तक आते-आते वहाँ लगभग नौ विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण शुरू हो गया था यद्यपि छात्रों की संख्या अधिक नहीं रही लेकिन हिंदी के कदम बढ़ रहे थे और आठवें दशक तक यह संख्या दस हो गयी। वैश्वीकरण के चलते सन् 1990 के बाद हिंदी शिक्षण अमेरिका में तेजी से बढ़ने लगा। इस समय अनेक विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में हिंदी शिक्षण का कार्य बहुत तीव्र गति से होने लगा। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में सुषम बेदी के प्रयासों से हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था शुरू की गई और आज लगभग 100 से कहीं अधिक कॉलेजों, विश्वविद्यालयों एवं अनेक भाषा संस्थानों में हिंदी शिक्षण सुचारू रूप से हो रहा है। जिसका कारण अमेरिका में भारतीय पेशेवरों, विद्यार्थियों और हिंदी भाषियों का बड़ी संख्या में बसना है। लेकिन यह दुखद स्थिति है कि अमेरिका में स्कूली स्तर पर हिंदी शिक्षण की कोई खास व्यवस्था नहीं है जिसके कारण हिंदी का गंभीर-ज्ञान छात्र नहीं ले पाते। अमेरिका में हिंदी शिक्षण हेतु अनेक कारणों में सामरिक एवं व्यापारिक कारण सर्वप्रमुख है। वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमले के बाद अमेरिका एशियाई देशों की भाषा-संस्कृति को समझने हेतु उन भाषाओं के शिक्षण को प्राथमिकता देने लगा जिसमें उर्दू, पश्तो, अरबी, हिंदी आदि तमाम भाषाएँ शामिल थी जिससे गैर अमेरिकी संस्कृतियों को समझने में सहायता मिले।

आज अमेरिकी सरकार हिंदी शिक्षण की ओर पूरा ध्यान दे रही है। इसी श्रृंखला में 'अमेरीकी सरकार द्वारा स्टारटॉक कार्यक्रम की शुरुआत हुई जिसके तहत गरमी की छुट्टियों में स्कूलों के लिए हिंदी शिक्षण के कार्यक्रम किये जाते हैं और ये देश के अलग-अलग हिस्सों में किये जाते हैं ताकि उन क्षेत्रों के स्कूलों के छात्र इनमें हिस्सा लेकर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति से वाकिफ हो सकें।.....स्टारटॉक के तहत हिंदी पढ़ाने के लिए अध्यापकों को भी प्रशिक्षण दिया जाता है।' इसके अतिरिक्त वहाँ हिंदी अध्ययन अब अनेक कॉलेजों में भी शुरु हो चुका है और इच्छुक छात्रों हेतु रविवार स्कूल भी खोले गए हैं जहाँ अधिकांशत: हिंदी भाषी भारतीय अध्यापिकाएँ ही यह कार्य कर रही हैं। हिंदी शिक्षण में बड़ी समस्या है-निर्धारित पाठ्यक्रम का अभाव एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी। साथ ही परीक्षण-मूल्यांकन की विधिवत पद्धति विकसित न होना भी हिंदी शिक्षण को प्रभावित करता है। एक बड़ी समस्या हिंदी शिक्षण के स्तर में एकरूपता के अभाव की भी है वर्तमान में वहाँ 'अमेरिकन कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फारेन लैग्वेजेज' इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठा रही है जिससे भाषा-शिक्षण का स्तर एकरूप हो सके।

अमेरिका में हिंदी शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका 'युवा हिंदी संस्थान' की भी है, जो एक गैर लाभ कमाने वाला संगठन है। इसके अथक प्रयासों से 'न्यूजर्सी के हिंदी और गैर हिंदी भाषियों के बीच हिंदी शिक्षण का प्रचार कार्य आगे बढ़ रहा है।' इसके अतिरिक्त भी युवा हिंदी संस्थान पेन्सिलवेनिया प्रदेश के भारतीय बहुल क्षेत्र जिसमें काउंटी प्रमुख क्षेत्र है वहाँ औपचारिक हिंदी शिक्षण की शुरुआत हुई है। इस संस्थान ने हिंदी शिक्षण के द्वारा यह सिद्ध किया है कि हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं वरन् भारतीय संस्कृति की संवाहिका भी है। हिंदी शिक्षण को सुनियोजित ढंग से गतिशील बनाने में हिंदी भाषा के साहित्यकारों का बहुत योगदान है। जिनके प्रयासों से कॉलेज-विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण को स्कूली हिंदी शिक्षा के साथ जोड़ा गया, जिसके परिणाम स्वरूप हिंदी संगम फाउंडेशन न्यू जर्सी एवं भारत दोनों देशों में हिंदी शिक्षण का कार्यक्रम सफल रूप से चल रहा है। 'न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय की जानी-मानी हिंदी प्राध्यापिका प्रोफेसर गाब्रिएला इलिएवा के सक्रिय प्रयासों से अमेरिका सहित पूरे विश्व में अनौपचारिक हिंदी शिक्षण को विधिवत और नियमबद्ध ढाँचे में ढालने की मुहिम शुरु हुई है। जिसके तहत उन्होंने अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षक के प्रशिक्षण हेतु कार्यशालाओं का आयोजन किया। अमेरिका में हिंदी पठन-पाठन के बढ़ते कदमों का आभास इसी तथ्य से हो सकता है कि अमेरीकी 50 प्रदेशों में से 46 प्रदेशों में स्टारटॉक के माध्यम से हिंदी शिक्षण तेजी से गति पकड़ रहा है। हिंदी शिक्षण का श्रेय भारतीय संस्थाओं के अतिरिक्त अमेरीकी सरकार को भी दिया जाना चाहिए क्योंकि दोनों के संयुक्त प्रयासों से ही युवाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों में हिंदी स्कूल चलाए जा रहे हैं। अब अमेरीकी सरकार की भाषा नीति के अंतर्गत हिंदी को वहाँ के सरकारी स्कूलों में एक वैकल्पिक विषय के रूप में रखा गया है साथ ही 'गैर सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का ज्ञान भी बच्चों को देती हैं।' स्टारटॉक कार्यक्रम अमेरिकन सरकार की भाषा नीति का ही एक हिस्सा है जिसके लिए सरकार भाषा शिक्षण के लिए आर्थिक मदद देती है। एक ओर अमेरिका में सरकारी अनुदान से औपचारिक भाषा शिक्षण के कार्यक्रम हो रहे हैं वहीं सामाजिक स्तर पर भी अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ प्रवासी युवाओं के लिए हिंदी भाषा एवं सांस्कृतिक ज्ञान हेतु अध्यापन कार्य कर रही हैं। जिनमें मुख्य रूप से 'हिंदी यू.एस.ए', 'बाल-विहार', 'यू.एस.हिंदी एसोसिएशन', 'चिन्मय मिशन', 'बाल गोकुलम', 'अन्तरराष्ट्रीय हिंदी समिति', 'विश्व हिंदी न्यास' आदि। अर्थात् अब अमेरिका में हिंदी शिक्षण कई स्तरों पर हो रहा है एक ओर गैर सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ हैं जो पूरे मनोयोग से हिंदी शिक्षण के लिए प्रतिबद्ध है। वहीं आज अनेक विद्यालयों में हिंदी में औपचारिक शिक्षण की व्यवस्था भी प्रारंभ हो चुकी है। यह प्रसन्नता का विषय है कि अमेरीकी सरकार अपने महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों में हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप कार्यक्रम के तहत विशेष आर्थिक अनुदान दे रही है। इसके अतिरिक्त 'अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज जो लगभग 60 विश्वविद्यालयों की छात्र संस्था है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के लिए पिछले लगभग 50 वर्षों से अमेरिकी विद्यार्थियों के लिए विशेष भाषा कार्यक्रम भारत में चला रही है....वहाँ पूरे वर्ष भाषा-शिक्षण विधियों के साथ आधुनिकतम तरीकों से उच्च स्तरीय और प्रशिक्षित शिक्षकों की देख-रेख में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है।'

अमेरीकी सरकार द्वारा हिंदी शिक्षण हेतु अनेक अमेरीकी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर भारत हिंदी सीखने के लिए भी भेजा जाता है। तो वहीं कुछ स्वयं के खर्चे से भी भारत हिंदी सीखने के लिए आते हैं। यह विचारणीय है कि अमेरीकी सरकार आखिर हिंदी शिक्षण के प्रति इतनी उत्साहित क्यों है? इसका सीधा सा कारण, भारत की बढ़ती ग्राहक संख्या, एक बड़ा उपभोगक्ता वर्ग, जहाँ अपने प्रोडक्ट को बेचने हेतु उसे उसी देश की भाषा में बेचना पड़ेगा। इसीलिए 'यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया में बिजनेस की पढ़ाई के लिए जगत विख्यात वार्टन स्कूल ने अपने एम.बी.ए के उन विद्यार्थियों के लिए व्यवसायिक हिंदी का एक विशेष पाठ्यक्रम शुरू किया है जो भारत के बारे में विशेषज्ञता प्राप्त करना चाहते हैं। वार्टन स्कूल को देखकर अन्य बिजनेस स्कूलों ने भी इस दिशा में सोचना आरंभ कर दिया है।

हिंदी पठन-पाठन के सरकारी-गैर सरकारी, औपचारिक-अनौपचारिक स्तरों के अतिरिक्त आज वैश्वीकरण एवं टेक्नोलॉजी ने विश्व के समस्त देशों की भाषा-संस्कृतियों को एक दूसरे की जरूरत बना दिया है। ऐसे में कम्प्यूटर पर हिंदी शिक्षण बहुत गतिशील एवं उपयोगी होता जा रहा है। आज

कंप्यूटर / मोबाइल हिंदी सीखने का प्रमुख माध्यम बन चुके हैं क्योंकि ये अपनी मुट्ठी में है जब चाहो, जिस समय चाहो, अपनी सुविधानुसार हिंदी सीख सकते हो और इंटरनेट पर हिंदी शिक्षण सामग्री आसानी से उपलब्ध भी है। अब टेप्स का प्रयोग पुराना पड़ गया है। अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण हेतु इंटरनेट की सामग्री का उपयोग किया जा रहा है। 'टेक्सास, आस्टिन में आजकल रयूमर्ट स्नेल, विष्णु शंकर आदि के द्वारा इस दिशा में बहुत काम हो रहा है। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर गेबरियेला स्टारटॉक के प्राध्यापकों के लिए खास तौर से प्रामाणिक सामग्री फेसबुक पर लगाती रहती हैं तथा उनके पढ़ाने में इस्तेमाल के तरीके भी बताती हैं। उनका सारा जोर प्रोजेक्टबेस्ड लर्निंग पर है।' इसीलिए हिंदी शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए आज इंटरनेट सबसे उपयोगी सिद्ध हुआ है। भाषा एवं भारतीय संस्कृति के ज्ञान हेतु इंटरनेट के लिए उपयोगी एवं प्रामाणिक सामग्री तैयार की जा रही है इसी दिशा में एक सराहनीय कार्य जिसे बेकर ने किया है, उन्होंने हिंदी शिक्षण संबंधी समस्त वेबसाइटों को एक साथ एकत्रित करके उसे 'सुपर हिंदी वेबसाइट' नाम दिया है जो बहुत उपयोगी रही है। कहने का तात्पर्य है कि आज हिंदी पठन-पाठन पूरे अमेरिका में घरों, मंदिरों, संस्थाओं (सरकारी-गैरसरकारी) स्कूलों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों सर्वत्र बहुत तेजी से गति पकड़ रहा है। यद्यपि इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी हैं लेकिन यह भी विचारणीय है कि अमेरिका और ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण की सफलता से पूर्व हमें अपने घर (भारत) में भी हिंदी की स्थिति को सुधारने की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक हम अपनी भाषा को घर में सम्मान नहीं देंगे तब तक हम ब्रिटेन या अमेरिका से कैसे उम्मीद कर सकते हैं।

विदेशों में हिंदी शिक्षण के उत्थान हेतु भारतीय सरकार का उदासीन रवैया भी कम चिंताजनक नहीं है। यदि तुलनात्मक रूप से चीनी भाषा के संदर्भ में देखें तो इस तथ्य का पता चलेगा। हिंदी शिक्षण के संदर्भ में भारतीय विश्वविद्यालयों में हिंदी-भाषा सर्वेक्षण के परिणाम बहुत निराशाजनक हैं। आधे विश्वविद्यालयों में भी हिंदी नहीं पढ़ाई जाती। भारत में 'हिंदी के प्रति उपेक्षा का भाव हिंदी भाषी राज्यों में ही कहीं ज्यादा है। उत्तर प्रदेश में 42 विश्वविद्यालय हैं जिसमें से 22 में हिंदी विभाग नहीं है। उत्तराखण्ड में 12 विश्वविद्यालयों में से आठ में हिंदी नहीं पढ़ाई जाती, मध्यप्रदेश में 26 में से 9, हरियाणा में 19 में से 10, हिमाचल प्रदेश में 19 में 9, राजस्थान में 48 में से 24 में हिंदी विभाग नहीं है' इसके अतिरिक्त 10 केंद्रीय विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग नहीं है जिसमें जे.एन.यू. नागालैंड, सिक्किम, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय आदि में हिंदी विभाग नहीं है।' तात्पर्य है कि जब तक हम हिंदी को उसके घर में ही सम्मान जनक स्थान नहीं देंगे तो फिर अमेरिका और ब्रिटेन से हिंदी उत्थान की क्या उम्मीद कर सकते हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है।

संदर्भ

ब्रिटेन में हिंदी, उषाराजे सक्सेना, पृष्ठ 47

विश्व हिंदी पत्रिका, 2018, पृष्ठ 58

ब्रिटेन में हिंदी, उषाराजे सक्सेना, पृष्ठ 25

वही, पृष्ठ 40

वही, पृष्ठ 65-66

वही, पृष्ठ 64

बहुवचन, 58 जुलाई-सितम्बर, 2018, पृष्ठ 88

गगनांचल वर्ष 42, अंक: 1-2, जनवरी-अप्रैल 2019, (संयुक्तांक), पृष्ठ 8

वही, पृष्ठ 8

विश्व हिंदी पत्रिका, 2018, मॉरीशस, पृष्ठ 59

abhivyakti&hindi.org

वही

वही

वही

गगनांचल वर्ष 42, अंक: 1-2, जनवरी-अप्रैल 2019, (संयुक्तांक), पृष्ठ 11

हिन्दुस्तान, 5 दिसम्बर, 2012, पृष्ठ 15

❖

वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
Email : kamleshsbsc.kumari@gmail.com

प्रवासी साहित्य की विचारधारा और उत्तरायण

— सोनपाल सिंह

नैरेटर का इस अंधविश्वास पर गहन मंथन और भी निराशाजनक है। वह सोचता है-"हर व्यक्ति के अंदर कहीं एक दैत्य छिपा रहता है, वह व्यक्ति की मानवीयता पर हावी होने के लिए हर समय उछलता कूदता रहता है। अपने चरित्र, अपनी अपेक्षाओं के समक्ष व्यक्ति कभी उसे हरा देता है तो कभी वह उस पर हावी हो जाता है। बाकी समय वह अंदर ही अंदर पंख फड़फड़ा कर सिर धुनता रहता है। ठीक अवसर की प्रतीक्षा करता है...आज इस साधु की दूरंदेशी और वर्षों पहले हुए हादसों की पोल खोल कर जैसे विश्वास दिला दिया कि यंत्र-तंत्र, टोना-टोटका कोई गैर या हवाई चीजें नहीं है, इनकी सिद्धि कर सकना या उस स्थिति को पहुँच पाना कोई सरल नहीं पर जो पहुँच जाते हैं वह कुछ भी कर सकते हैं। बुरा या भला। शायद ताई ने इन बातों में कोई सिद्धि हासिल कर रखी थी, तभी शायद बापू बार-बार ताई की हरकतों की ओर निर्देश करते थे पर मेरा कभी इतनी शिद्दत से इस ओर ध्यान नहीं गया।" नैरेटर के इस मंथन में भी यह तथ्य प्रासंगिक और ध्यातव्य है कि अंधविश्वास को हमेशा भूतकाल की घटनाओं से जोड़कर ही सत्य बनाया जाता है।

रामशरण जोशी तथा उनके साथियों द्वारा संपादित पुस्तक 'भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम' में प्रवासी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि-"डायस्पोरा शब्द का मुख्य अर्थ है अपने देश की धरती से दूर विदेश में बसना अर्थात 'प्रवासन'। इसका लक्षण है विदेश में रहते हुए भी अपने देश की सांस्कृतिक परंपराओं को निभाते रहना। आज दुनिया में अनेक तरह के डायस्पोरा समुदाय हैं। भारत को दुनिया के दूसरे सबसे बड़े डायस्पोरा समुदायों में गिना जाता है।" आज का डायस्पोरा 19वीं सदी की अभिशप्त, प्रताड़ित और शोषित मानवता नहीं है। आधुनिक डायस्पोरा उत्तर औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी काल में राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट) के निर्माण और संचालन में निर्णायक भूमिका निभा रहा है। यही कारण है कि आज इस शब्द का प्रयोग विभिन्न देशों के मानव समूहों के विस्थापन, प्रवासन और पुनर्वसन के संसार को रेखांकित करने के लिए किया जाता है।

वर्तमान में हिंदी साहित्य विमर्शों के दौर से गुजर रहा है। इन्हीं विमर्शों के बीच पिछले आठ-दस सालों में प्रवासी विमर्श ने भी अपनी मजबूत जगह बनाई है, परंतु उसके अध्ययन की अवधारणा को लेकर आज भी विभिन्न अनुशासनों में असमंजस की स्थिति बनी हुई है। सामान्यतः अंतर अनुशासनिक अध्ययनों के अध्येता देश के अंदर रहने वाले और देशांतर दोनों ही तरह के रचनाकारों द्वारा लिखे गए समस्त गुणवत्तापूर्ण साहित्य (जिसका संबंध प्रवासी जीवन की समस्याओं, चिंताओं और सरोकारों से होता है) को प्रवासी साहित्य के अंतर्गत शामिल करते हैं। लेकिन हिंदी साहित्य के अंतर्गत इससे उलट स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। यहाँ केवल प्रवासियों द्वारा लिखी रचनाओं को ही प्रवासी साहित्य के अंतर्गत स्थान दिया जाता है। हिंदी साहित्य में 1990 के बाद स्वीकृति पाने वाले स्त्री एवं दलित विमर्श के संबंध में भी सहानुभूति और स्वानुभूति का द्वंद्व सुनने को मिलता है। कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में

विमर्शों की नींव ही सहानुभूति बनाम स्वानुभूति पर टिकी हुई है।

कदाचित् यही कारण है कि यदि कोई रचनाकार अपने व्यापक अनुभव एवं विशद् अध्ययनों के आधार पर प्रवासियों की समस्याओं को अपने लेखन में स्थान देता है तो वह प्रवासी साहित्य नहीं माना जाता। यही कारण है कि फिजी में रहने वाले भारतीयों की समस्याओं पर बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित विलक्षण पुस्तक 'प्रवासी भारतवासी', गिरिराज किशोर का प्रसिद्ध उपन्यास 'पहला गिरमिटिया', संजीव की कहानी 'डेढ़ सौ वर्षों की तन्हाई' तथा पुरुषोत्तम अग्रवाल के यात्रा आख्यान 'हिंदी सराय' आदि पुस्तकों को हम प्रवासी साहित्य की परिसीमा में नहीं रख पाते। साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हिंदी साहित्य के समृद्ध कथा साहित्य की परंपरा में नई कहानी आंदोलन मील का पत्थर है। यह आंदोलन जितना राजेंद्र यादव का ऋणी है उतना ही निर्मल वर्मा का भी। निर्मल वर्मा की 'परिंदे', 'जलती झाड़ी', 'लंदन की एक रात', 'पिछली गर्मियों में' और 'वे दिन' आदि कहानियाँ 10 वर्ष के प्राग प्रवास में लिखी गई हैं, परंतु इन्हें प्रवासी साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जाता। फलस्वरूप हम प्रवासी साहित्य से संबंधित एक बड़े और महत्वपूर्ण स्रोत को सायास नजरअंदाज कर देते हैं।

आज जो भी कथा साहित्य प्रवासी साहित्य के रूप में स्वीकृत है वह निर्मल वर्मा की उपरोक्त कहानियों का मुकाबला नहीं करता। अभिमन्यु अनत, तेजेंद्र शर्मा, कृष्ण बिहारी, सुषम बेदी एवं डॉ. सुधा ओम ढींगरा आदि को अपवाद मान लिया जाए तो बचा-खुचा अधिकतर साहित्य अभी शैशव काल का ही साहित्य नजर आता है। स्वयं प्रवासी लेखिका सुषम बेदी अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं-"मुझे ऐसा महसूस होता है कि प्रवासी साहित्य अभी अपने बचपन के दौर से गुजर रहा है, यह एक शुरुआत का समय है। इसने अभी आमतौर पर वैसा साहित्य नहीं दिया जैसा और जहाँ हिंदी साहित्य खुद पहुँचा हुआ है। प्रवासी साहित्य में छिटपुट अच्छा लिखा देखने को मिलता है, पर मुझे लगता है कि उसमें अपनी दिशा खोजी जा रही है। उस दिशा में अभी परिपक्वता नहीं आ पाई है। यह उसका अभी शैशव काल है।" सुदर्शन प्रियदर्शिनी विरचित आलोच्य कहानी संग्रह 'उत्तरायण' की अधिकतर कहानियाँ इसी शैशव काल के अंतर्गत आएँगी। हिंदी कथा साहित्य की समीक्षा के स्थापित प्रतिमाओं की कसौटी पर अगर संग्रह की 'अब के बिछड़े', 'संदर्भ हीन', 'मारीचिका' और 'नागपाश' आदि कहानियों को कसा जाए तो निराशा ही हाथ लगेगी और अनायास ही राजेंद्र यादव का कथन-"अभी जो प्रवासी साहित्य के नाम पर परोसा जा रहा है उसका स्तर कुछ खास नहीं है।

भारत में रचे जा रहे साहित्य के सामने प्रवासी साहित्य का कोई कद उभरकर नहीं आता"-याद आ जाता है। यदि संग्रह की कहानियों की संपूर्णता के पटल पर सामूहिक पड़ताल करें तो प्रवासी जीवन की सभी प्रमुख समस्याओं, सांस्कृतिक तनाव, पीढ़ीगत अंतर, नस्ल भेद, नैतिक मूल्यों की टकराहट आदि के छिपे हुए दिग्दर्शन होते हैं। साथ ही स्त्री जीवन के सभी प्रमुख पहलुओं की कहानियों में उपस्थिति प्रशंसनीय है।

प्रियदर्शनी जी की अधिकतर कहानियाँ कभी वर्तमान और कभी विगत के बीच इतनी जल्दी शिफ्ट करती हैं कि वह कई बार कहानी से ज्यादा कहानीकार की अंतर्कथा बताती चलती हैं। टेक्स्ट के अंदर एक और टेक्स्ट की बुनावट नजर आती है। आलोच्य कहानी संग्रह 'उत्तरायण' की प्रथम कहानी 'अखबार वाला' प्रवासी जीवन की अजनबियत, सांस्कृतिक टकराहट और नैतिक मूल्यों की उहापोह को अपने अंदर समेटे हुए है-"अपना देश होता तो यह अजनबियत ना होती।

झिझक का तो प्रश्न ही नहीं था। सीधे अंदर घुसकर उस स्थिति में पूरी तरह आत्मसात हो जाती। पर इस पराए देश में क्या करे ?" जया के इस स्वागत कथन के अंतिम पद 'पर इस पराए देश में क्या करे' में उसकी ऐसी मनः स्थिति से हमारा साक्षात्कार होता है जिसमें एक विकल्पहीनता प्रश्नाकुल हो उठी है। इस उहापोह में अपने देश से दूर रहने की टीस लिपटी प्रतीत होती है।

कहानी में मृतक के पड़ोसी से वार्तालाप के बाद "जया की सारी संकाय सकते में आ गई। बीमार होना, दुखी होना व्यक्तिगत मामला है। किसी का दुख बांटना व्यक्तिगत मामले में हस्तक्षेप हो जाता है। आज तक वह सोचती थी शायद परदेसी होने के कारण यह लोग हमसे जुड़ नहीं पाते, हमारा रंग, धर्म, संस्कृति बहुत अलग हैं इनसे, लेकिन इनका तो आपस में भी जुड़ाव नहीं।" अनायास ही यह घटना जया को अपने पिता के कहे-"किसी आत्मा को अंतिम संस्कार देने के लिए जानना जरूरी नहीं है बेटा"-की याद दिला देता है। यह याद सिर्फ कही हुई किसी बात की नहीं, बल्कि दो संस्कृतियों और उनके नैतिक मूल्यों के द्वंद्व के झंझावात में फँसती जया की है। जया सोचने पर मजबूर है कि 'कैसी है यहाँ की जिंदगी?' उसके सामने यह सिर्फ एक प्रश्न भर नहीं, बल्कि पीछे छूट चुकी अपनी भारतीय सरजमीं, संस्कृति और नैतिक मूल्यों पर आघात की अंदरूनी कशक है।

संग्रह की टाइटल कहानी 'उत्तरायण' की तरह स्त्री जीवन की विडंबनाओं को झेलती अनेक निमा हमें अपने आसपास मिल जाएँगी, परंतु इस निमा की कहानी उन सब से भिन्न है। यह (निमा के) पीछे मुड़ कर देखने की प्रक्रिया में मुब्तिला है। यह अपने अभी तक जिए हुए की रिव्यू करती प्रतीत होती है। साथ ही निमा अपने जीवन का यह रिव्यू भारत से दूर हो जाने की छटपटाहट के साथ करती नजर आती है-"अपने देश में होती तो शायद...किसी की आँखों का तिरस्कार नहीं झेलना पड़ता...आपसी तनाव की कहीं जगह ही नहीं थी... यहाँ ऊँची दुकान फीका पकवान। यहाँ विदेश में लोग संपन्नता और वैभव बटोरने आते हैं, लेकिन हिस्से आती है रिक्तता, अकेलापन और एक रिश्ता जो धीरे-धीरे दीमक की तरह सब कुछ चाट जाता है। रिश्ते, नाते, प्यार, संबंध सब का सब।"

कहानी के पूर्वार्द्ध में निमा के जीवन का यह रिव्यू, दो संस्कृतियों, जीवन शैलियों एवं जीवन मूल्यों का अंतर्द्वंद्व प्रवासी जीवन में नॉस्टेल्जिया के भाव बिंब के रूप में सामने आता है। कहानी का उत्तरार्द्ध दिखलाता है कि स्वदेश के परिवेश से बाहर सुदूर विदेश में तमाम तरह की अजनबियत को झेलते हुए प्रवासी महिलाओं के जीवन का तापमान देश या विदेश सभी जगह एक जैसा ही रहता है-"वह (निमा) सुबह उठती है तो लगता है कि हर दिन उसे एक महाभारत अपने कमजोर कंधों पर ढोना है और भीष्म बनकर शर-शैया की चुभन को चुपचाप झेलना है। उनकी इच्छानुसार सूर्य तो आया ही 6 महीने के बाद उत्तरायण में, लेकिन इन स्थितियों का सूर्य उत्तरायण में शायद कभी नहीं आएगा...उसे इस शर-शैया से कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।" उद्धृत पंक्तियाँ अनायास ही तुलसी विरचित-"कतिविधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।" की याद दिला देती है। निमा के जीवन संघर्ष की स्थितियों की तुलना महाभारत के भीष्म की शर-शैया से कर कहानीकार ने परोक्ष रूप में यह स्पष्ट किया है कि नारी जीवन में अधिकतर कष्टोंको सहने के लिए अपनों द्वारा ही अभिशप्त की जाती है। भीष्म की ऐसी दारुण हालत अपनों के कारण ही हुई थी। कहानीकार ने आलोच्य कहानी में महाभारत कथा से एक और महत्वपूर्ण ऋण लिया है। वह है कहानी का नाम 'उत्तरायण'। यह वही उत्तरायण है जिसकी प्रतीक्षा महाभारत में शर-शैया पर पड़े भीष्म ने 6 महीने की थी और निमा जीवन के वृहद् हिस्से में करती रहती है। अपने कैंसर की अंतिम स्टेज जानकर उसकी गहरी साँस में कहीं एक सुकून घुल गया था। उसका सूर्य भी उत्तरायण में आ गया था।

साथ ही निमा का स्वगत कथन-"ईश्वर नारी को जन्म देते हुए उसे लोहे जैसी शक्ति और सुंदरता का वरदान भी दिया कर। नहीं तो वह समिधा बनकर इस महा कुंड में धुआँ-धुआँ होती रहेगी।"-नारी जीवन के कटु यथार्थ को उजागर करता है और लगता है कि सारी सृष्टि की जन्म-दात्री होकर भी नारी इससे अधिक कुछ नहीं है—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

'धूप' कहानी की रेखा के चरित्र को प्रियदर्शिनी जी ने भारतीय स्त्री लेखन से प्रवासी स्त्री लेखन की भिन्नता को

प्रदर्शित करते हुए गढ़ा है। जहाँ तक बात भारतीय स्त्री लेखन से प्रवासी स्त्री लेखन की भिन्नता की है तो प्रमुख अंतर यह दिखलाई पड़ता है कि प्रवासी स्त्रियाँ स्वाबलंबी एवं कैरियर के प्रति अधिक जागरूक होती हैं।

उसके लिए वह अकेले जीवन जीने की चुनौती का भी सामना करती हैं, जबकि भारतीय स्त्रियाँ स्वाबलंबी होते हुए भी एक जीवनसाथी के साथ रहने के लिए हर स्थिति में विवश हैं चाहे वह 'पीली आँधी' की नायिका हो या 'छिन्नमस्ता' की। यह शुरुआत में तो परिवार और समाज के प्रति विद्रोह करती हैं, लेकिन कहीं ना कहीं आगे जाकर समझौता भी कर लेती हैं। यही समझौतावादी प्रवृत्ति अधिकतर प्रवासी स्त्री पात्रों में कहीं दूर-दूर तक देखने को नहीं मिलती। यही कारण है कि 'धूप' की रेखा पति विशाल से कह उठती है-"अब हम साथ नहीं रह सकते!" कहानी का यह दांपत्य विच्छेद एक और कारण से भी भिन्न है।

यह डॉ. सुधा ओम ढींगरा की 'बेघर सच' की रंजना के सामान होम बनाम हाउस के द्वंद या बराबरी के अधिकारों के लिए नहीं, बल्कि यह दो संस्कृतियों और नैतिक मूल्यों की टकराहट के कारण है जो इस कहानी को प्रवासी साहित्य के दूसरे पड़ाव 'गृह आशक्ति या नॉस्टेल्जिया का साहित्य' के भाव बिंब के इर्द-गिर्द धकेलता और कंटेंट को कमजोर करता नजर आता है।

विशाल अमेरिकी संस्कृति में इतना ज्यादा रच बस गया है कि वह अपने घर में ही एडजस्ट नहीं हो पाता। "वह तो इतना स्वार्थी और स्वयंसेवी हो गया है कि घर में बने चिकन की बोटियाँ भी पहले अपनी प्लेट में बटोर लेता है और बच्चे देखते रह जाते हैं। पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता वह सड़ाप-सड़ाप बेशर्मी से खाता रहता है।" स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच कम होती इस दूरी के बीच रेखा यह नहीं सह पाती—

"तुम जानते हो कितने अमेरिकन हो गए हो?

अमेरिका में रहना है तो अमेरिकन होने में क्या बुराई है?

अमेरिका में सब कुछ अच्छा नहीं है।

...दोनों में अक्सर इस बात पर बहस होती रहती...वह अपने आप को कोसती। वही बोड़म है, अभी तक अपने संस्कारों की जकड़ में जकड़ी है। जमाने के साथ बढ़ नहीं पा रही है। उसके अपने अंदर यह नोच खसोट चलती रहती...उसकी इकलौती मैगजीन जो उसने यहाँ आकर अपनी संस्कृति को कायम रखने के लिए चला रखी है।" वह नितांत लंगड़ी हो गई थी। अंततः विशाल के असहयोग के कारण रेखा यह मैगजीन बंद करने का निर्णय लेती है। इस निर्णय ने सिर्फ उस मैगजीन को बंद नहीं किया, बल्कि रेखा की संस्कृति, संस्कार, नैतिक मूल्यों सभी को धुप्प अंधेरी कोठरी में लाकर खड़ा कर दिया और उसे मजबूर कर दिया कि वह निर्णय ले कि-'अब हम साथ नहीं रह सकते।'

प्रस्तुत आलेख में आलोच्य संग्रह 'उत्तरायण' की अंतिम कहानी 'हिजड़ा' पर भी बात करना मुझे आवश्यक लगता है। इसका टेंपरामेंट एक खास किस्म का है। यह प्रवासी जीवन के अनोखे पहलू अंधविश्वास को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। प्रवासी साहित्य के प्रथम पड़ाव 'प्रवासीपन से मुक्त साहित्य' के अंतर्गत लिखी इस 'हिजड़ा' कहानी का देशकाल और वातावरण भारतीय है। यूँ तो भारत के कोने-कोने में ऐसे अंधविश्वास की कहानियाँ मिल जाएँगे, परंतु इस कहानी का महत्व पहली दुनिया में रहने वाले व्यक्ति द्वारा लिखने पर उनसे इतर हो जाता है।

साधु द्वारा नैरेटर की पत्नी को यह विश्वास दिला दिया जाता है कि ताई ने ही उसके बेटे को जादू टोने से अपाहिज किया है। इस झांसे में एक शिक्षित आधुनिक परिवार का आ जाना सचमुच चिंतनीय है। नैरेटर का इस अंधविश्वास पर गहन मंथन और भी निराशाजनक है। वह सोचता है-"हर व्यक्ति के अंदर कहीं एक दैत्य छिपा रहता है, वह व्यक्ति की मानवीयता पर हावी होने के लिए हर समय उछलता कूदता रहता है। अपने चरित्र अपनी अपेक्षाओं के समक्ष व्यक्ति कभी उसे हरा देता है तो कभी वह उस पर हावी हो जाता है। बाकी समय वह अंदर ही अंदर पंख फड़फड़ा कर सिर धुनता रहता है। ठीक अवसर की प्रतीक्षा करता है...आज इस साधु की दूरंदेशी और वर्षों पहले हुए हादसों की पोल खोल कर जैसे

विश्वास दिला दिया कि यंत्र-तंत्र, टोना-टोटका कोई गैर या हवाई चीजें नहीं है, इनकी सिद्धि कर सकना या उस स्थिति को पहुँच पाना कोई सरल नहीं पर जो पहुँच जाते हैं वह कुछ भी कर सकते हैं। बुरा या भला। शायद ताई ने इन बातों में कोई सिद्धि हासिल कर रखी थी, तभी शायद बापू बार-बार ताई की हरकतों की ओर निर्देश करते थे पर मेरा कभी इतनी शिद्दत से इस ओर ध्यान नहीं गया।" नैरेटर के इस मंथन में भी यह तथ्य प्रासंगिक और ध्यातव्य है कि अंधविश्वास को हमेशा भूतकाल की घटनाओं से जोड़कर ही सत्य बनाया जाता है।

कहानी का अंत तो अंधविश्वास की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। नैरेटर के स्वगत कथन-"मेरे अंदर का राक्षस चुप हो गया है। ताई की इकलौती दोहती हिजड़ा है। मैंने हिजड़े के कान में फूँक दिया है। मैं देख रहा हूँ। सावन का महीना है। मेरा अतुल जमीन खोदकर उसमें अपना पाँव लटका कर बैठा है। अब उसने पाँव निकाल लिया है और वह वैसाखियों के बगैर बचपन की तरह अपने पैरों से मेरी तरफ दौड़कर आ रहा है।"-से स्पष्ट है कि ताई को दोहती से अलग कराकर नैरेटर को अपने बेटे के अपाहिजपन दूर होने के समतुल्य सुख मिलता है। उसे महसूस होता है। मानो साधू की बताई दवा से उसका बेटा ठीक हो गया।

आज 21वीं सदी में जब विज्ञान उत्तरोत्तर प्रगति करता चल रहा है। पोलियो की वैक्सीन बने लंबा अरसा गुजर चुका है, परंतु वह भी केवल पोलियो होने से बचा सकती है। पोलियो की बीमारी को ठीक नहीं कर सकती। तब ऐसे में लड़के का सही होना मृग मरीचिका और दिवास्वप्न के ही समान कहा जाएगा। ऐसे दिवास्वप्न न केवल चिकित्सा विज्ञान को धता बताते हैं, बल्कि उस अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन के संतों की मेहनत पर भी पानी फेरते हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व नाथ-सिद्धों के जादू टोनों से जनता को बाहर निकालने में स्वाहा कर दिया।

संग्रह की 'निशंक', 'मृगतृष्णा', और 'सौ-सौ दंश' कुछ एक ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें दोहरे-तिहरे मोर्चों पर प्रवासी जीवन का संघर्ष देखा जा सकता है। पिछले बंधनों से मुक्त होकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने का संघर्ष। अपनी सत्ता स्थापित करने का संघर्ष। पूर्व स्थापित और नवीन मूल्यों के बीच तारतम्य का संघर्ष। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच मिटती दूरी को बचाने का संघर्ष। साथ ही एक खास किस्म के अनिर्णय की स्थिति बनी दिखलाई पड़ती है। सब आपस में गड्डु-मड्डु।

संदर्भ सूची

1. जोशी, रामशरण एवं अन्य (सं.), भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, फ्लैप से
2. हिंदी चेतना, जनवरी-मार्च, 2014, पृष्ठ-56
3. आर्य, सुषमा एवं अजय नावरिया (सं.), प्रवासी हिंदी कहानी एक अन्तर्यात्रा, दिल्ली, शिल्पायन प्रकाशन, पृष्ठ-120
4. प्रियदर्शिनी, सुदर्शन, उत्तरायण, नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, पृष्ठ-08
5. वही, पृष्ठ-09
6. वही, पृष्ठ-10
7. वही, पृष्ठ-22
8. वही, पृष्ठ-27
9. रामचरितमानस
10. प्रियदर्शिनी, सुदर्शन, उत्तरायण, नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, पृष्ठ-28
11. गुप्त, मैथिलीशरण, यशोधरा, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
12. प्रियदर्शिनी, सुदर्शन, उत्तरायण, नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, पृष्ठ-29
13. वही, पृष्ठ-31
14. वही, पृष्ठ-31
15. वही, पृष्ठ-101
16. वही, पृष्ठ-106

❖

शोधकर्त्ता (पी-एच.डी.)
हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़
मो. 8859422599

लौटती बरात

— नरेन्द्र कोहली

"वह प्रसन्न था कि मैं उसे होटल में ही मिल गया और वह मेरा आशीर्वाद पा कर धन्य हुआ।"

"दुखी था, किंतु सज्जन था।" भास्कर ने कहा, "तो निरंकुश एंड कंपनी नहीं ही आई आपको विदा करने?"

"नहीं। हां अशोकजी को विमानपत्तन से लौटते हुए फोन अवश्य आया था।" मैंने बताया, "अशोक जी भी उस निरंकुश को अंकुश नहीं लगा सके।"

वैसे विदा करने के लिए न आना मेरे लिए नया नहीं था। एक बार जोधपुर में भी मेरे साथ यही हुआ था और जबलपुर में भी। महत्वपूर्ण यह है कि उन लोगों ने कभी अपने न आने का कारण भी नहीं बताया, और न कभी उसके लिए खेद व्यक्त किया।

पर मेरा समाज तो वही था न।

शायद अक्तूबर 2017 में मुझे रांची से एक निमंत्रण मिला था। मैं असमंजस में था कि उनका निमंत्रण स्वीकार करूँ या न करूँ। मैं "निरंकुश" से दो-एक बार मिला अवश्य था; किंतु उनके विषय में विशेष कुछ जानता नहीं था। बुला लें और उनके पास रुपए-पैसे का प्रबंध न हो तो? ऐसा मेरे साथ नॉर्वे में हो चुका था।

मैंने भास्कर को फोन किया। उसका उत्तर बहुत स्पष्ट नहीं था। उसने कहा कि वह निरंकुश को जानता तो है; किंतु...उसने मुझे परामर्श दिया कि मैं अशोक प्रियदर्शी से बात करूँ। वे ठीक-ठाक बता सकेंगे।

मैंने अशोक जी को फोन मिलाया। उन्होंने बताया कि निरंकुश जी का अच्छा खासा संगठन है। वे प्रतिवर्ष एक आयोजन तो करते ही हैं। इस वर्ष उनका विशेष आयोजन है। इसलिए वे दिल्ली तक पहुँचना चाहते हैं। वे दो लोगों को बुला रहे हैं। दोनों ही दिल्ली से हैं।

"वैसे मैं उनसे बात करूँगा।" उन्होंने कहा, "होटल इत्यादि का पता कर लूँगा। विमान की टिकट तो वे भेज ही देंगे, नहीं तो मत आइएगा।"

"ठीक है, आप बात कर लीजिए और बताइए।"

उनकी ओर से हरी झंडी हो गई तो मैंने अपनी स्वीकृति दे दी और भास्कर को भी सूचित कर दिया। तब उसने बताया कि वह निरंकुश जी के उस संगठन से एक बार सम्मानित हो चुका है। पर...पर के आगे वह कुछ नहीं बोला। मैं समझ गया कि वह उनसे प्रसन्न नहीं था। "तुम आओगे?" मैंने पूछा।

"अवश्य। तुम आओगे तो अवश्य आऊँगा।"

★★★

राँची विमानपत्तन पर उतरा तो शरीर कुछ ढीला लग रहा था। दिल्ली से चलते हुए भी मन कुछ ठीक-सा नहीं लग रहा था। अब राँची.... बाहर तो निकलना ही था। बैल्ट पर से अपनी अटैची उठाई और उसे ठेलता हुआ या उसके सहारे लुढ़कता हुआ बाहर आ गया। सामने ही निरंकुश और अशोक जी खड़े थे। उन्होंने मेरी अटैची थाम ली और मुझे लगा कि मेरा तो चलने का सहारा ही छिन गया। औपचारिक बातें हुईं। यात्रा कैसी थी? दिल्ली का मौसम कैसा है? राँची में गर्मी है।...

हम गाड़ी में बैठ गए। स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि मैं चहक सकता, जबकि मुझसे अपेक्षा वही थी। वे बातें करते रहे और मैं हूँ-हाँ करता रहा। होटल के कमरे में आकर मैं निढाल-सा अधलेटा हो गया।

"भोजन करने नीचे चलेंगे?" निरंकुश ने पूछा।

और तब मेरे ध्यान में आया कि मधुरिमा ने मेरे लिए आलू का एक पराठा बनाया था। मैंने उड़ान की अवधि में तो खाया नहीं। अभी बैग में होगा।

"मेरा भोजन मेरे साथ है।" मैंने बैग में से वह पैकेट निकाल लिया, "मैं इसे ही खाऊँगा।"

"पर हम तो खाएँगे न।" निरंकुश ने कहा।

"आप खाइए।" और मैंने गोलाई में लिपटा वह पराठा खाना आरंभ कर दिया, "पाँच तो बज ही रहे हैं, लगता है कि रात को भी कोई आवश्यकता नहीं होगी।"

अगली सुबह मन और शरीर दोनों ही अस्वस्थ लग रहे थे। कहाँ मैंने सोचा था कि स्वास्थ्य सुधरेगा और कहाँ वह और बिगड़ गया। ज्वर भी लग रहा था। थर्मामीटर था नहीं कि ज्वर नाप लेता। ऐसे कोई विशेष पता नहीं चलता। 99 डिग्री भी हो तो लगता है बंदा किसी काम का नहीं रहा।

फोन की घंटी बजी।

"कौन आ गया।" मैंने अपने-आप से पूछा।

मन ऐसा नहीं था कि किसी का स्वागत कर सकता। इस समय तो कोई न ही आए तो अच्छा है। आए तो कॉफी का एक प्याला बनाकर पिला जाए।

मैंने लेटे-लेटे ही, हाथ बढ़ाकर चोंगा उठाया।

"हाँ जी।"

"सर, डॉ. भास्कर राव आए हैं।" रिसेप्शन से कहा गया।

"भेज दीजिए।" मैंने कहा।

भास्कर आया है अर्थात् भास्कर और सूर्या आए हैं। समझ नहीं आया कि उनका आना अच्छा लगा या नहीं। पर आए हैं तो बैठाना तो पड़ेगा ही। आखिर वे मेरे लिए जमशेदपुर से आए हैं।

लेटा तो मैं था ही। अब चादर भी ओढ़ ली।

दरवाजा खटका।

"आ जाओ। दरवाजा खुला है।" मैंने लेटे-लेटे ही कहा। मुझे स्वयं ही लगा कि मेरा स्वर बहुत क्षीण था।

कपाट खुले और भास्कर का चकित-सा चेहरा दिखाई दिया।

सूर्या उसे पीछे छोड़ कर पहले कमरे में आ गई, "हम तो मान रहे थे कि तुम स्वयं ही हमारा स्वागत करने के लिए दरवाजा खोलोगे।"

उसकी यह असामयिक अपेक्षा। वह नहीं जानती थी कि कब क्या बोलना है।

मैंने मुस्कराने का प्रयत्न किया, "नहीं खोल पाया। रुष्ट मत होना।"

वे आगे बढ़ आए। पलंग के पास आकर गले मिलने के लिए झुके।

"अरे मुझे उठने का समय तो दो।"

"लेटे रहो। लेट रहो।" सूर्या ने कहा।

मुझे उठने का समय नहीं दिया। लेटे-लेटे से ही गले मिले। मैंने पीठ थपथपा दी।

मेरे लिए यह अनुभव नया भी था और विचित्र भी। आज तक मुझसे कोई इस प्रकार गले नहीं मिला था। मुझे लगा जीवित व्यक्ति से तो कोई इस प्रकार नहीं मिलता। हाँ शव से लिपटने की बात और है।

"नरेन्द्र तुम्हें तो बुखार है।" सूर्या ने जैसे मुझे सूचना दी।

"जानता हूँ।" मैंने कहा।

मैंने देखा कि वे लोग कुछ हताश हो गए थे। निरुत्साहित और उदास भी।

"कितने वर्षों से तुम्हें देख रही हूँ। इस प्रकार दुर्बल और अस्वस्थ तो कभी नहीं लगे।" सूर्या ने कहा।

"नहीं लगा, क्योंकि कभी अस्वस्थ था नहीं।" मैंने कहा, "और यह साधारण ज्वर ही तो है। कैंसर तो नहीं। उतर जाएगा। ज्वर किसको नहीं होता।"

"मैं तो मानता था कि तुममें कोई ईश्वरीय ज्योति है। उसी से सदा जगमगाते रहते हो। तुम विशिष्ट हो। ऑल पावरफुल।" भास्कर बोला।

"बैठो यार। खड़े क्यों हो? और मुझे महामानव मत बनाओ।" मैंने अपनी ऊर्जा बटोरी।

वे लोग कुर्सियाँ खींच कर पलंग से सट कर बैठ गए।

"तबीयत कब से खराब है?"

"दो-तीन दिनों से ऐसा ही हूँ। डायरिया। पेट में कोई इनफेक्शन है। उसी से ज्वर भी है और कमजोरी भी।" मैंने मंद स्वर में कहा।

"बोलने में कष्ट है?" सूर्या ने पूछा।

"तुम से बोलने में नहीं।" मैंने शरारत करने का प्रयत्न किया।

"मुझ से बोलने में है।" भास्कर हँसा।

"भास्कर सच बोल रहा है।" मैंने कहा।

"बकवास मत करो।" सूर्या बोली, "ऐसी हालत में तुम आए ही क्यों?"

"नहीं आना चाहिए था?"

"नहीं।"

"तो तुम्हारी डाँट कैसे सुनता।" मैंने गंभीर चेहरा बनाया, "आने लायक हालत तो नहीं थी, किंतु निरंकुश जी से कमिटमेंट

था। वचन दिया था उन्हें। मैं नहीं चाहता था कि न आकर उनका कार्यक्रम बिगाड़ूँ।"

"टिकट भी ये लोग महीनों पहले भेज देते हैं।" भास्कर ने मेरा बचाव किया, "बाट जोहते हैं कि कब नरेन्द्र आएंगे। नहीं आने पर आयोजकों को काफी सेटबैक होता है कि नरेन्द्र के नाम पर वक्ताओं और श्रोताओं को बुला तो लिया... ।"

"प्रयत्न यही होता है कि आना स्वीकार किया है तो किसी भी प्रकार पहुँचूँ ही।"

"ठीक है," सूर्या बोली, "लेकिन भाषण स्वास्थ्य से बढ़कर तो नहीं है; न निरंकुश की सफलता, तुम्हारे स्वास्थ्य से अधिक महत्वपूर्ण है। अस्वस्थ होना और वह भी अपने घर और नगर से दूर।"

"सोचा था शायद ज्वर उतर जाएगा; पर किस का सोचा हुआ होता है।" मैंने कहा, "एयरपोर्ट पर उतरने के बाद से ही कष्ट बढ़ता जा रहा है। देखो, तुम्हारे आने से भी कम नहीं हुआ।"

"चुप।" वह बोली, "मैं तुम्हारी सखी हूँ, दवा की गोली नहीं।"

"कष्ट तो दिल्ली से ही था। यह सोच कर चल पड़ा कि जो होगा देखा जाएगा।"

"अब देखा जाएगा वाला वय नहीं है।" वह बोली।

पता नहीं कि वह केवल मेरे वय के विषय में कह रही थी अथवा उसे अपने वय का भी ध्यान था। पिछले चालीस वर्षों में उसके वय में भी कोई वृद्धि हुई थी क्या?

"अपने नगर में कुछ भी हो, घबराहट नहीं होती। परिवार के लोग, चिकित्सा-व्यवस्था, आस-पास के डॉक्टर .... सब कुछ होता है वहाँ।"

मैं देख रहा था कि "अपने नगर" पर उसका बहुत बल था, जैसे अपना नगर न हो कोई विराट अस्पताल हो।

"मुझे आश्चर्य है कि मधु ने तुम्हें आने कैसे दिया?" सूर्या का प्रवचन चालू था।

"पूछा था मधु से।" मैंने कहा।

"तो क्या बोली, चले जाओ?" सूर्या अभी भिड़ी ही हुई थी।

"भास्कर।" मैंने त्राहिमाम का नारा लगाया।

"इस सखा-सखी संवाद में मैं क्या बोलूँ।"

वह मेरे पक्ष में बोलता तो सूर्या सचमुच रुष्ट हो जाती; और उसके पक्ष में बोलने का अवकाश ही नहीं था।

"अस्वस्थ हूँ। मुझे सांत्वना और सहानुभूति की आवश्यकता है।" मैंने कहा, "न बहस की न डाँट की।"

"अब कुछ कहूँ भी नहीं?" वह झल्ला कर बोली।

"बोलो, जरा प्यार से। डाँटो मत।"

"अच्छा प्यार से पूछ रही हूँ, मधु ने क्या कहा।"

"उसने कहा, अपनी हिम्मत देखो। जा सको तो जाओ। नहीं तो मत जाओ।"

"एकदम ठीक कहा। उसकी जगह मैं होती तो मैं भी यही कहती।"

"ठीक है। मैंने अपनी हिम्मत देखी। तुम उसे देख नहीं पा रही हो।"

"ऐसी-तैसी हिम्मत की। अस्वस्थ थे तो आए क्यों?"

"नहीं आता तो निरंकुश जी के लिए बड़ा संकट खड़ा हो जाता।"

"अपना स्वास्थ्य अधिक महत्वपूर्ण है या निरंकुश जी?" सूर्या कमर पर हाथ रख कर वीरांगना की मुद्रा में थी।

"न स्वास्थ्य, न निरंकुश जी। महत्वहपूर्ण है अपना वचन। कमिटमेंट एक नैतिक बंधन है।"

"ऐसा कभी नहीं हुआ कि नरेन्द्र कमिट करके न आए हों। दूसरे विशिष्ट अतिथि तो नहीं आ रहे। नरेन्द्र भी नहीं आते तो निरंकुश जी को भी अंकुश लग जाता।" भास्कर बोला।

"दिल्ली से ही तबीयत खराब थी, तो चलना ही नहीं चाहिए था।" सूर्या कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थी, "तबीयत विमान में ही बिगड़ जाती या यहीं तुम अधिक बीमार पड़ जाओ तो क्या होगा, सोचो।"

"विमान में तो एयर होस्टेस थी। कोई दवा दे ही देती। यहाँ तुम हो पर तुम तो डाँटे ही जा रही हो। डाँट से कभी किसी का ज्वर उतरा है क्या?"

"मैं तुम्हारी सखी हूँ, इसलिए अधिकार से डाँट रही हूँ।"

पता नहीं सूर्या को मेरे स्वास्थ्य की अधिक चिंता थी या इस बात की कि कहीं मेरी देख-भाल का दायित्व उस पर न आ पड़े। वह मेरी अस्वस्थता से चिंतित थी या संभावित दायित्व से डर गई थी। वह इस प्रकार का कोई दायित्व स्वीकार नहीं करती थी।

"इनका काम निबटा लूँ फिर अपनी तबीयत को देखूँगा।" मैंने कहा, "दूसरे मुख्य अतिथि आ नहीं रहे हैं। दोनों का काम मुझे ही संभालना है।"

"तुम भूल रही हो कि ये नरेन्द्र हैं, रामकथा के लेखक। 'प्रान जाहु बर बचन न जाई'।" भास्कर ने बातों की धारा बदलने का प्रयत्न किया।

और वह मेरी ओर मुड़ा, "अब आराम करो। कल बहुत स्ट्रेन पड़ने वाला है।"

"कुछ खा कर, सो जाऊँ, तो कल तक ....।"

"क्या खाओगे अभी ?" सूर्या ने पूछा।

"खाना क्या है, सूखा फुल्का और सादी सब्जी।" मैं रुका, "और तुम्हारी डाँट।"

"डाँट तो कमरे में ही है। सूखा फुल्का भी यहीं मंगवा लो।" भास्कर ने कहा।

"हाँ। रेस्ट्राँ में कौन जाएगा।" मैं उठ कर बिस्तर पर बैठ गया।

"चलो, नरेन्द्र को आराम करने दो।" भास्कर ने आदेश जारी कर दिया।

"दवा ले रहे हो न ?" सूर्या ने पूछा।

"हाँ। दिल्ली एयरपोर्ट से ही स्वयं को ठेल रहा हूँ।"

"फिर भी तुम आ गए।" सूर्या जैसे मुझे धिक्कार रही थी, "नहीं आना चाहिए था।"

"अब चलो भी।" भास्कर मुझे बचाने का प्रयत्न कर रहा था।

वे दोनों खड़े हो गए। मैं बिस्तर पर ही बैठा रहा।

वे चले गए और मैं सोचता रहा कि इतनी सारी चर्चा, इतनी आत्मीयता, इतनी संबद्धता दिखाने पर भी, सूर्या ने एक बार भी यह नहीं कहा कि चिंता मत करो, हम लोग यहाँ हैं और तुम्हारी आवश्यक देख-भाल कर सकते हैं। वह सिद्धांत बखानती रही, डाँटती रही, अपना रोष प्रकट करती रही।...और भास्कर तो उसकी इच्छा के बिना कोई प्रस्ताव रख ही नहीं सकता था।

यह हमारा कैसा संबंध था ?

★★★

प्रात: अशोक जी का फोन आया, "कैसे हैं ?"

"कल से अच्छा हूँ। रात बहुत बुरी नहीं थी। फिर भी ..."

"मैं आपका नाश्ता ले कर आ रहा हूँ। होटल का कुछ न ही खाएँ तो अच्छा है।"

"अच्छी बात है। मैं नहा-धो लेता हूँ। मुझे आधा घंटा दें।"

"हाँ। इतना समय तो लग ही जाएगा।"

मैं उठ कर स्नानागार में चला गया। पाचन-तंत्र भी कुछ संभल गया था और ज्वर भी कुछ कम ही लग रहा था। हाँ, शरीर में जान नहीं थी।

सोचा : नाश्ता कर सो जाऊँगा।

कमरे में मोबाइल बजता रहा। मैंने उसकी चिंता नहीं की। हो सकता है कि भास्कर का फोन हो। हो सकता है अशोक जी का हो। हो सकता है निरंकुश का हो। ... मैं चैन से नहा तो लूँ। फोन का क्या है, उसका तो काम ही बजना है, फिर बज लेगा। नहीं तो मैं ही कर लूँगा।

नहा कर आया और बिस्तर पर बैठ गया। जब तक अशोक जी आते हैं, ध्यान का प्रयत्न करूँ।

दस एक मिनट में अशोक जी आ गए। वे साबूदाना और पोहा लाए थे।

"आप नाश्ता कर लें और सोने का प्रयत्न करें।" वे बोले, "मैं यहीं बैठा हूँ। कोई आवश्यकता हो तो ... आपको संध्या तक ठीक होना ही है।"

मैंने वैसा ही किया।

मुझे हल्का सा आभास हुआ कि किसी ने बिना खटखटाए, कपाट खोले हैं। मैंने आँखें नहीं खोलीं। अशोक जी बैठे थे। वे देख लेंगे।

"भास्कर जी।" अशोक जी का मंद स्वर सुनाई दिया।

वे उठ कर खड़े हो गए।

"कैसे हैं नरेन्द्र ?" सूर्या ने पूछा। उसके स्वर में चिंता थी।

"पहले से काफी ठीक हैं।" अशोक जी ने बताया।

"अच्छा हुआ भैया कि आप यहाँ हैं।" भास्कर ने कहा, "चिंता हो रही थी कि जाने अब उनकी तबीयत कैसी है और कहीं शहर-बाहर के लोगों ने उन्हें घेर न रखा हो।"

"नहीं ईश्वर की कृपा से अब तक कोई नहीं पहुँचा है। मैं उनके लिए सुबह का नाश्ता घर से बनवा कर लाया था। मुझे लगा कि इस हालत में होटल का खाना ठीक नहीं रहेगा।"

"बहुत ही अच्छा किया आपने अशोकजी।" सूर्या ने कृतज्ञता व्यक्त की।

"अरे भाई जब हमारा यहाँ घर है, दो बेटियाँ हैं, तो क्यों वे बाहर का खाएँ, यही सोचकर मैंने बनवा लिया था। अच्छा अब आप लोग आ ही गए हैं तो मैं निकलता हूँ। मुझे लग रहा था कि आप लोग आएँगे। बल्कि सच कहिए तो मैं इंतजार ही कर रहा था।"

"ठीक है भैया, आप घर जाइए। हम रहेंगे नरेन्द्र के पास।"

"घर जाना इसलिए जरूरी है कि दोपहर का भोजन बनवा कर दे जाऊँ। मुश्किल से घंटा भर लगेगा।"

"हम भी उन्हें डिस्टर्ब नहीं करेंगे। रहा नहीं गया, इसीलिए चले आए। अब इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि आपके आने से उन्हें घर का बना नाश्ता मिला और भोजन भी मिलेगा। उन्हें निश्चय ही कुछ आराम लग रहा होगा, इसलिए नींद आ गई।"

"मैं निकलता हूँ।" अशोक जी बोले।

"निश्चिंत रहें, हम आपके आने तक यहीं हैं।" भास्कर ने कहा।

"नीचे रिसेप्शन पर कह जाता हूँ कि आयोजक के अलावे अन्य कोई भी मिलने आए तो मत भेजिए।"

"बहुत अच्छा।" भास्कर ने कहा, "फिर भी कोई आ ही गया तो निपट लूँगा।"

"निपटना क्या, सीधे बोल दूँगी कि उनकी तबीयत खराब है।" सूर्या ने कहा, "जिसे बुरा लगना है, लगे।"

मैंने आँखें खोल कर अशोक जी को देखा : वे जाते-जाते हाथ लहरा गए, "आता हूँ।"

अशोक जी निकल गए। भास्कर ने भीतर से कुंडी लगा ली। वे बिना कोई शब्द किए, मेरे निकट आए। मैंने भी अपना हाथ उठा कर उनका अभिवादन किया।

"कैसे हो?" सूर्या ने पूछा।

"ठीक हूँ।" मैंने आँखें खोल कर उन दोनों को देखा।

"शाम तक स्वस्थ होना आवश्यक है।" सूर्या ने कहा, "नहीं तो रघुकुल रीति टूट जाएगी।"

"नरेन्द्र ठीक हों न हों, जब वे बोलने के लिए खड़े होंगे, तो अपनी बीमारी भूलकर धारा प्रवाह बोलेंगे। बाद में जो हो सो हो।" भास्कर ने कहा।

"तबीयत कैसी है?" सूर्या ने निकट आकर, मेरे माथे पर हाथ रखा।

"ठीक हूँ।" मैंने कहा और बिस्तर में अधलेटा सा हो गया।

"उठो मत।" सूर्या बोली।

"उठ नहीं रहा; किंतु लेटना भी अच्छा नहीं लग रहा।" मैंने कहा, "तुम लोग बैठो।"

मेरा स्वर पहले जैसा मंद नहीं था।

"कुछ खाएँगे? क्या मंगवा दूँ?" भास्कर ने औपचारिकता निभाई।

"कुछ नहीं। खाना अशोक जी घर से लाएँगे।"

"वही ठीक रहेगा।" सूर्या ने कहा।

"हम कुछ लाते तो होटल का ही होता।" सूर्या ने अपना बचाव करते हुए कहा।

वह मेरे और निकट आ गई, "शाम को कैसे बोलोगे नरेन्द्र?"

उसकी चिंता बनी हुई थी।

"इसका उत्तर तो मंच पर पहुँच कर ही मिलेगा।"

"आप जो भी बोलेंगे, जैसा भी बोलेंगे, वह श्रोताओं के लिए उपहार होगा।" भास्कर ने कहा।

"कई बार ऐसा होता है," मैं कुछ और आराम से बैठ गया, "सोचकर कुछ और जाता हूँ, बोलता कुछ और हूँ।"

"यह कैसे?" भास्कर ने पूछा।

"आरंभिक वक्ता मुझे उत्तेजित कर देते हैं। उनके तर्कों का खंडन-मंडन आवश्यक हो जाता है। उसी में सारा समय निकल जाता है।"

"उससे चर्चा सजीव हो उठती है।"

"संभवतः।" मैंने कहा।

घंटी फिर बजी।

अशोक जी दोपहर का भोजन ले आए थे।

"अच्छा आपलोग यहीं हैं।" वे बोले, "मुझे देर होने लगी तो लगा कि कहीं आप भी भोजन के लिए न निकल गए हों।"

"कैसे निकल जाते।" सूर्या का स्वर दृढ़ था।

"अब निकल सकते हैं।" मैंने उठते हुए कहा।

"प्रबंधकों में से कोई आया?" अशोक जी ने पूछा।

"नहीं। अच्छा ही हुआ। आते तो भीड़ ले कर आते। नरेन्द्र को विश्राम दरकार था।" भास्कर ने कहा।

"कल जब यहाँ से लौट रहा था तो रास्ते में अपने होमियोपैथ का क्लीनिक खुला हुआ देखा। कुछ दवा ले ली थी और प्रातः खिला दी थी।" अशोक जी बोले, "शायद कोई लाभ हुआ हो।"

"जो डाक्टर, तुम्हारे साथ आया था, वह भी कुछ दे गया था। बारी-बारी से सब खाए जा रहा हूँ ताकि सूर्या की चिंता दूर हो।"

"अपनी चिंता नहीं, मेरी चिंता ...।" सूर्या भड़की।

"मैं चिंतित नहीं, अस्वस्थ हूँ।" मैंने कहा, "तुम चिंतित हो। पता नहीं चिंतित व्यक्ति को स्वस्थ मानेंगे या नहीं।"

"क्या परिहास है।" अशोक जी बोले।

★★★

हॉल प्रायः भरा हुआ था। लोग भी थे और लोगों का कोलाहल भी। लोग अपने परिचितों से मिल कर अपनी प्रसन्नता कम जता रहे थे, शोर अधिक मचा रहे थे। शायद अधिक शोर ही उनके लिए अधिक प्रसन्नता का प्रमाण था। दर्शक दुखी थे कि कार्यक्रम आरंभ क्यों नहीं हो रहा और प्रसन्न थे कि उन्हें अपने मित्रों से मिलने-जुलने का समय मिल रहा था। मंच पर भी कार्यकर्ताओं का बवंडर था। संस्था के "संरक्षक" महोदय भी पहुँच गए थे। "संरक्षक" का जो अर्थ मेरे अनुभव के शब्दकोश में है, वह है वह व्यक्ति जो संस्था के लिए कोई काम न करता हो और संस्था उसके लिए पलक-पांवड़े बिछाए रखती हो। उसे बोझ न कह कर "संरक्षक" कहा जाता है।

"मुझे नरेन्द्र जी की चिंता अधिक है।" अशोक जी भास्कर से कह रहे थे, "वे किसी भी प्रकार बोल लें, तो उन्हें आराम करने होटल पहुँचा दिया जाए।"

"मैं जरा मंच की व्यवस्था देख लूँ।" ये निरंकुश थे।

कुछ ही देर में उद्घोषणा होने लगी कि अतिथियों को सादर मंच पर लाया जाए।

एक-एक कर सभी प्रमुख वृद्ध जनों को मंच पर सजा दिया गया।

मुख्य अतिथि और प्रमुख वक्ता के रूप में मुझे आवाज दी गई। सभागृह में तालियाँ बजने लगीं। लगा लोग मेरे नाम से परिचित हैं; या कदाचित वे कार्यक्रम के आरंभ होने की प्रसन्नता में तालियां बजा रहे थे।

उद्घोषिका ने रेखांकित कर कहा, नरेन्द्र जी को इसी वर्ष पद्मश्री सम्मान से भारत सरकार ने "नवाजा" है। इस घोषणा पर हॉल में फिर तालियों का ज्वार उठा। लोग मुझ से अधिक पद्मश्री को पहचानते थे। मेरा स्वास्थ्य अभी सुधार की प्रक्रिया में था। सुधरा नहीं था। इसलिए जो आज तक नहीं हुआ था, मुझे वह भी सहन करना पड़ा। मुझे सहारा देने के लिए तीन-चार लोग लगे, और मंच की ऊँचाई तक पहुँचाया गया।

मुझे अटपटा लग रहा था। मैं जो प्राय: इतनी ऊँचाई तक टाप कर पहुँच जाता था और सीढ़ियाँ होते हुए भी मंच से सीधे नीचे कूद जाता था आज एक बीमार बूढ़े के समान मंच पर बैठाया गया था।

अपने स्थान पर नरेन्द्र कोहली नाम से एक वृद्ध बीमार को बैठा देख मैं प्रसन्न नहीं हुआ; किंतु कोई विकल्प नहीं था। भय तो यह था कि कहीं यह अस्वस्थ बूढ़ा सदा के लिए मेरा नाम और मेरा स्थान न ले ले। ऐसे में मन कुछ उद्वेलित भी था। बोलने के लिए जो स्वर मेरे कंठ से निकल रहा था, वह मेरा नहीं था। जाने मेरे कंठ में कौन आ कर बैठ गया था। उसपर यह रूपगर्विता उद्घोषिका फिर से कह रही थी, "उन्हें इस वर्ष पद्मश्री से नवाजा गया है।" प्रेक्षागृह में पुन: तालियाँ बजीं। और मेरे भीतर का वह स्वाभिमानी नरेन्द्र कोहली तड़प उठा।

"आप कौन होते हैं, मुझे नवाजने वाले।" मेरे स्वर में रोष था। मैं समझ रहा था कि मैं बहुत संतुलित नहीं हूँ। पर मैं क्या करता। वह मुझे "नवाजने" की चर्चा कर रही थी और बार-बार कर रही थी। उन्हें इस शब्द का अर्थ मालूम नहीं था। पर शायद यह शब्द उन्हें अधिक लुभावना लगता था, क्योंकि वे उसका अर्थ नहीं जानते थे। बिना अर्थ और संदर्भ जाने भी वे फारसी, अरबी और तुर्की के शब्दों का गलत प्रयोग करते हैं, गलत उच्चारण करते हैं; और स्वयं को महान समझते हैं।

मेरे स्थान पर जो अस्वस्थ बूढ़ा वहाँ बैठा था, वह बहुत विचलित था। वह बोला, "नवाजने वाला केवल ईश्वर है। वही "गरीबनवाज" है। आप ईश्वर नहीं हैं, न भारत सरकार ईश्वर है। आप दोनों ही मुझे या किसी को भी नवाज नहीं सकते। भारत सरकार ने मुझे अलंकृत किया है, विभूषित किया है। हमारे पास फारसी, अरबी और तुर्की शब्दों के लिए हिंदी के सुन्दर और मधुर शब्द हैं, अपनी पूरी अर्थवत्ता के साथ। तो क्यों हम उनका व्यवहार नहीं करते। मानसिक दासता के कारण? यही बात अंग्रेजी के शब्दों के साथ भी है।"

मुझे लगा कि मेरे नाम से वहाँ बैठा वह वृद्ध अपने आवेश से ही हाँफ गया था। राँची की वह लोकप्रिय सुंदरी उद्घोषिका अपने-आप को कोस रही होगी। उसने शायद किसी को स्वयं से इस प्रकार रुष्ट होते भी नहीं देखा होगा। आखिर एक शब्द ही तो था। उस पर इतना शोर मचाने की क्या आवश्यकता थी। मैं तो जानता ही हूँ, मेरे नाम से मंच पर बैठा वह वृद्ध भी जानता था कि लोग शब्दों को इतनी सूक्ष्मता से न जाँचते थे, न छानते थे। उनकी समझ में ही नहीं आता था कि वे क्या भूल कर बैठे। वे 'प्रयोग', 'उपयोग' और 'व्यवहार' तीनों शब्दों को पर्याय मानते थे। वे विरोध को 'खिलाफत' कहते थे और नहीं जानते थे कि खिलाफत, वस्तुत: मुसलमानों के धार्मिक राजा और धर्म गुरु 'खलीफा' के शासन को कहा जाता है।

अब मुझे आगे बढ़ना था। मैंने सुना, वह वृद्ध कह रहा था, "अपनी भाषा से इस प्रकार अनभिज्ञ रहने का अर्थ है कि आप अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपने देश से प्रेम नहीं करते। उससे प्रेम किए बिना तो आप अपने देश और राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकते। आपने रामकथा पढ़ी और सुनी होगी। उसे गुनने का भी प्रयत्न करें। उसका मर्म पहचानें। हम एक साहित्यक उत्सव में बैठे हैं। सब साहित्यकार हैं। बुद्धिजीवी हैं। मनीषी हैं। अब लौट जाइए वाल्मीकि के पास। वे भी कवि थे, ऋषि अथवा बुद्धिजीवी थे, राम की राष्ट्रभक्ति को पहचानने वाले मनीषी थे। यह ऋषियों ने राम को बताया था कि भारत को कहाँ-कहाँ से खंडित करने का प्रयत्न चल रहा है। सम्राटों को पता नहीं था और ताड़का के माध्यम से रावण इस देश को अवध और मिथिला के बीच से तोड़ रहा था। वह शरभंग के आश्रम में इस देश की संस्कृति को खा कर उसकी अस्थियाँ जमा कर रहा था। वह गोदावरी को आधार बना कर, शूर्पणखा के माध्यम से भारत को उत्तर और दक्षिण में बाँट रहा था। लंका को आर्यावर्त से पृथक कर ही दिया गया था। उधर अगस्त्य के सामने विंध्याचल भारत दो भागों में बाँट रहा था। ऋषियों ने बताया कि इस देश से प्रेम करने वालों को अपने शत्रुओं को पहचानना है। उनसे लोहा

लेना है। अहिंसा हमारा धर्म अवश्य है किंतु देश की रक्षा भी हमारा धर्म है। धर्म हमें दुर्बल नहीं करता। वह हमारी शक्ति है। अधर्म से लड़ना भी हमारा धर्म है। शत्रु को पहचान कर उसके घर में घुस कर उसे मारना भी हमारा धर्म है।...."

मेरे नाम से मंच पर बैठा वह वृद्ध रामकथा से महाभारत में चला गया। वहाँ से भगवद्गीता में। वहाँ से कर्म सिद्धांत में, जन्मांतरवाद में। और जाने कहाँ-कहाँ से भटका कर श्रोताओं को वापस प्रेक्षाग्रह में ले आया।

मैं थक गया था। अशोक जी को संकेत किया, "यहाँ लंबा कार्यक्रम है। मुझे होटल में ले चलिए।"

वे दो-एक लोगों की सहायता से मुझे बाहर ले आए। भीड़ लगी हुई थी। मेरे मित्रों-परिचितों को यह आशा नहीं थी कि मैं संक्षिप्त सा भाषण कर इस प्रकार उठ कर चल दूँगा। इसलिए सब भागते हुए आए। आज उस भीड़ में से ऋता शुक्ल का चेहरा ही स्मरण है, "क्या हुआ भैया। बहुत अस्वस्थ हैं। ज्वर है क्या?"

"नहीं। बुढ़ापा है।" मैंने मुस्कराने का प्रयत्न किया, पर वह हुआ नहीं।

"आप गाड़ी में बैठिए।" ऋता ने कहा, "आपका स्वास्थ्य एकदम्मे ठीक नहीं लग रहा।"

पीछे भास्कर और सूर्या भी दिखाई दिए; किंतु कोई बात करने का अवसर नहीं था।

"भास्कर और सूर्या के जाने की व्यवस्था भी कर दें।" मैंने कहा।

लोग आश्वस्त कर रहे थे, "आप चिंता न करें। उन्हें पहुँचाने की जिम्मेदारी हमारी है।"

"आप बैठिए।"

अशोक जी एक प्रकार से मेरा अपहरण कर ले आए।

★★★

होटल में लाकर अशोक जी ने डाक्टर की पुड़िया खिला दी।

"आप विश्राम करें, मैं आपके लिए भोजन लेकर अभी आता हूँ।" अशोक जी ने कहा, "आशा है तब तक भास्कर जी भी आ जाएँगे।"

वे चले गए और मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं।

थोड़ी ही देर में कपाट खुले और भास्कर तथा सूर्या के आने की आहट मिली।

मैंने आँखें खोल दीं किंतु उठा नहीं।

"अशोक जी चले गए?" सूर्या ने पूछा।

"भोजन लेने गए हैं।"

"अच्छा किया, आप आ गए।" भास्कर ने मुझ से कहा, "आपके जाते ही हॉल लगभग आधा खाली हो गया था। पीछे वे ही लोग रह गए थे, जिन्हें पुरस्कृत या सम्मानित होना था।"

"मैंने पहली बार तुम्हें अपने व्याख्यान को अपनी नाराजगी से आरंभ करते हुए सुना।" सूर्या ने कहा।

"वह बेचारी उद्घोषिका पानी-पानी हो रही थी। उसने कल्पना भी नहीं की होगी कि कोई इस तरह उसके शब्दों के दुरुपयोग पर उसे सरेआम फटकार लगाएगा।" भास्कर ने कहा।

"कौन लाया तुम्हें?"

"ये डॉक्टर साहब।"

मैंने पहली बार देखा, उनके साथ एक तीसरा व्यक्ति भी था। यही डॉक्टर कल से उनकी सेवा कर रहा था।

"हमने इनसे कहा तो इन्होंने कहा कि जैसे ही इनको इनका प्रशस्तिपत्र मिल जाएगा, ये हमें लेकर चल पड़ेंगे।"

भास्कर ने उसे यहाँ रोक लिया था ताकि वह उन्हें गेस्ट हाउस तक भी पहुँचा दे।

"कल फ्लाइट कितने बजे की है?" सूर्या ने पूछा।

"संदेश आया है कि मेरी कल की दिल्ली की उड़ान स्थगित कर दी गई है।"

"तब?" वे चौंके।

"तब क्या, दूसरी कोई उड़ान।" मैंने कहा, "उसकी व्यवस्था करनी होगी। एयर लाईन वाले अपने-आप तो यह कार्य करने से रहे।"

"तो?"

"सभी घरेलू उड़ानों की यही स्थिति है।" मैंने अपनी चिंता व्यक्त की।

"व्यवस्था हो ही जाएगी।" डॉक्टर ने कहा।

"ठीक है। लेकिन दूसरी उड़ान कब की है, उसमें जगह होगी या नहीं।" मेरी चिंता बढ़ती जा रही थी।

डॉक्टर व्यवस्था करने में लग गए। कितने ही लोगों को फोन किया। पर बात बनी नहीं।

"संस्था अपनी पचासवीं वर्षगाँठ मना रही है और इधर नरेन्द्र की उन्हें चिंता ही नहीं है।" भास्कर ने कहा, "अब यह टिकट।"

"तुमको नहीं आना चाहिए था नरेन्द्र।" सूर्या के प्रवचन का पुनरारंभ हो गया, "वे तुम्हारी जगह किसी को भी बैठाते। आदमी को पहले अपनी चिंता करनी चाहिए। अब फ्लाईट कैंसल हो गई है और उन्हें पता ही नहीं है।"

उसका प्रवचन रोष में परिणत हो गया।

संस्था के प्रतिनिधि के रूप में डॉक्टर प्रयत्न करता रहा; पर मैं जानता था कि यह काम सुनील बादल ही कर पाएँगे। टिकट उन्होंने ही बुक की थी।

"एक फ्लाईट दिल्ली के लिए शाम को भी है।" डॉक्टर बताया।

"एक व्यक्ति तुम्हारे साथ लगाए रखना चाहिए था।" सूर्या अब भी अपना मोर्चा सँभाले हुए थी।

"वे लोग अशोक जी के भरोसे हैं।" भास्कर शायद सूर्या को समझाने का प्रयत्न कर रहा था।

और तभी अशोक जी कमरे में प्रकट हो गए।

"अच्छा हुआ, आप लोग आ गए। मैं जरा चिंतित था।"

"ठीक है। पर नरेन्द्र की फ्लाईट कैंसल हो गई है। उसका क्या होगा?" सूर्या ने तोप का मुँह अशोक जी की ओर फेर दिया।

"ऐसा! यह कब हुआ?"

"आपके जाने के बाद ही मेरे मोबाईल पर संदेश आ गया था।" मैंने बताया।

"उसकी आप अधिक चिंता न करें। व्यवस्था हो ही जाएगी।" अशोक जी बोले, "पहले आप गरम खाना खा लें।" फिर वे डाक्टर की ओर मुड़े, "टिकट किसने कराया था?"

"शायद आकाशवाणी वाले सुनील जी ने।"

"उनकी पहुँच सभी जगह है। मैं फोन करता हूँ।"

"मैं कर रहा हूँ, पर कनैक्ट नहीं हो रहा।" डॉक्टर ने बताया।

"वे मंच पर फँसे होंगे।" अशोक जी ने कहा।

"सुनील को सूचना नहीं है। प्रातः दस बजे की फ्लाईट है। होटल से साढ़े आठ बजे तक निकल जाना होगा। समय ही कहाँ है, अन्य फ्लाईट देखने का।" मैं अपनी घबराहट में कह गया।

"नरेन्द्र तुम खाना खाओ। हममें से कोई इस समस्या का समाधान नहीं कर सकता।" सूर्या ने फतवा जारी कर दिया।

उसने अशोक जी का टिफिन-बॉक्स खोलकर मेज पर लगा दिया और मुझे हाथ से संकेत किया।

मैं खाने बैठ गया; किंतु खाना भी कठिन हो रहा था।

"अशोकजी आपने बहुत ही अच्छा काम किया कि नरेन्द्र को घर का खाना खिला रहे हैं, नहीं तो तबीयत और बिगड़ जाती।" इस बार सूर्या का स्वर मृदु और मधुर था।

"दो बेटियाँ हैं यहाँ और सपरिवार हैं, इतना भर तो किया ही जा सकता है।" अशोक जी ने कहा।

"आप तो कल से ही नरेन्द्र की सेवा में लगे हुए हैं। मैं नतमस्तक हूँ।" भास्कर ने जैसे मेरी ओर से कृतज्ञता व्यक्त की, "आज भी मुख्य कार्यक्रम छोड़कर चले आए।"

"कार्यक्रम तो होते रहेंगे। नरेन्द्र जी कब-कब आते हैं। देखो ऐसी तबीयत में भी चले आए।" वे बोले।

"अब ठीक हो जाएँगे। कल जो दवा मैंने दी है, वह इन सबको कंट्रोल में रखेगी।" डॉक्टर ने कहा।

मैं चुपचाप खाता रहा। सूर्या वहीं मेरे पास ही बैठ गई।

"आप लोग चलिए ताकि डॉक्टर साहब भी फ्री हो जाएँ और आपलोगों को भी मेस में खाना मिल जाए।" अशोक जी बोले।

"चलो फिर।" भास्कर ने सूर्या से कहा, "डॉक्टर साहब को भी तो घर जाना है।"

"ठीक है नरेन्द्र, हम निकलें।" सूर्या खड़ी हो गई।

"हाँ, तुमलोग चलो। बाद में परेशानी न हो।" मैंने कहा।

★★★

मैंने भोजन कर, बरतन समेट दिए। मैं चाहता था कि बरतन धो दूँ, किंतु अशोक जी ने करने नहीं दिया।

तभी उनका फोन बजा।

"हाँ भास्करजी। पहुँच गए?" उन्होंने पूछा।

वे कमरे से बाहर चले गए। फोन निबटा कर आए।

"भास्कर जी थे।" अशोक जी ने बताया, "कह रहे थे कि आप तो घर चले जाएँगे, मैं रात को नरेन्द्र जी के साथ रुक जाऊँ क्या। मैंने पूछा, 'फिर क्यों आइएगा वहाँ से।' बोले, अकेला ही आऊँगा। पहले सूझ जाता तो वहीं रुक जाता। सूर्या को डॉक्टर यहाँ छोड़ ही जाता।"

"तो आप ने क्या कहा?" मैंने पूछा।

"मना कर दिया। वे नहीं जानते कि गेस्ट हाउस में कैसे-कैसे लोग आते हैं। सूर्या को वहाँ अकेली छोड़ना समझदारी नहीं है। यहाँ आवश्यकता नहीं है। होगी तो मैं रात को यहीं रुक जाऊँगा।"

"मैं अब सो जाऊँगा।" मैंने कहा, "रात को किसी की आवश्यकता नहीं होगी।"

"वे बता रहे थे कि सूर्या कह रही हैं कि नरेन्द्र जी का स्वास्थ्य बिगड़ा तो हम लोग उन्हें टैक्सी से अपने घर जमशेदपुर ले जाएँगे। होटल में पड़े रहना ठीक नहीं है।"

मैं चकित था कि यह प्रस्ताव सूर्या की ओर से आया था। विश्वास नहीं हो रहा था। यह तो उसके स्वभाव में नहीं था। क्या वह मन से कह रही थी ऐसा?

"तो आपने क्या कहा?"

"मैंने कहा कि घर तो मेरा भी है और राँची में ही है। यहाँ अस्पताल भी हैं। जमशेदपुर जा कर क्या करेंगे। और फिर रांची से दिल्ली जाना सुविधाजनक है। जमशेदपुर से न कोई ढंग की गाड़ी है, न फ्लाइट ही।"

★★★

प्रातः उठा तो अच्छा लग रहा था। अशोक जी के आने से पहले नहा-धो लूँ।

पीछे कमरे में फोन पागलों के समान रोता रहा। भास्कर ही होगा, इस समय। ... कोई भी हो, नहाने के बीच ....

कमरे में लौटा तो फोन रो-रो कर चुप हो गया था। छूटी कॉल के रूप में भास्कर का ही नंबर था। मैंने फोन मिलाया।

"अरे कहाँ थे?" वह बोला, "मैं फोन कर कर के हैरान हो गया।"

"नहा रहा था। तुम्हारा फोन मुझे कमरे में न पा कर लौट गया। शर्मीला है, नहीं तो स्नानागार में भी झाँक लेता। मैंने नहा कर देखा कि तुम्हारी छूटी कॉल है।"

"अब तबीयत कैसी है?"

"कल से काफी सुधार है।" मैंने कहा।

"अभी अकेले हैं, या कोई साथ है?"

"अकेला ही हूँ।" मैंने कहा, "भास्कर इतना संदेह तो मेरी पत्नी भी नहीं करती।"

वह हँसा, "मैं किसी लड़की के विषय में नहीं पूछ रहा हूँ। अशोक जी ..."

"शायद थोड़ी देर में अशोक जी आएँ।"

वह शुरु हो गया "मैंने फोन किया था। घंटी देर बजती रही। मैं चिंतित हो गया। मन आकाश पाताल एक करने में लग गया। कहीं तबीयत बिगड़ न गई हो। ... अशोक जी अपने घर न ले गए हों। .... कहीं अस्पताल में तो भरती नहीं कराना पड़ गया।..."

यह भास्करीय शैली थी।

"यह तो नहीं सोचा न कि रात में नींद में ही हार्टफेल हो गया।" मैंने कुछ खीझ कर कहा, "अरे भाई, मैं कहीं भी होता, मेरा फोन तो मेरे पास ही होता न।"

वह मेरी चिंता न कर अपनी राह पर चलता ही गया, "..सूर्या से कहूँ तो यही कहेगी कि इतनी दूर-दूर तक सोचने और आशंकित होने की आवश्यकता नहीं है। वह समझती है कि चिंता का अधिकार केवल उसी को है।...और तुम तो उसके स्वत्व के घेरे में हो।"

"ईर्ष्या हो रही है?"

"अरे नहीं। उसे बहुत पीछे छोड़ आया हूँ। ईर्ष्या के साथ इतने वर्ष जी नहीं सकता था। एक सूर्या ही काफी है।" वह बोला, "सूर्या ने पूछा, 'फोन नहीं लग रहा?' 'हाँ। नरेन्द्र को कर रहा था।' 'जानती हूँ, अपनी अम्मा को तो नहीं कर रहे। थोड़ी प्रतीक्षा कर लो और फिर अशोक जी को करो।'"

मुझे इस सारे ब्योरे की आवश्यकता नहीं थी, किंतु बताए बिना उसे चैन कहाँ से आता। वह बताता रहा, "मैंने सूर्या को बताया कि मन में चिंता बनी हुई है। सोच रहा हूँ कि जल्दी से जाकर नरेन्द्र को देख आऊँ। फ्लाइट वाला मामला क्या हुआ, यह भी जान लूँ।"

"अब जो भी बताना है, सूर्या को बता दो।"

"कल आयोजकों में से कोई मिलने आया था क्या?"

"कोई नहीं। यही होता है।" मैंने कहा, "कार्यक्रम से पहले वे आपके पीछे और कार्यक्रम के बाद आप उनके पीछे।"

"सोचता हूँ कि राँची में अशोक जी न होते तो क्या होता?" भास्कर ने चिंता व्यक्त की।

"अशोक जी न होते तो राम जी होते। वैसे भी वे राम जी ही हैं, अशोक जी के रूप में।"

"अरे हाँ फ्लाइट का क्या हुआ?"

"ठीक हो गया। सुनील बादल ने नई टिकट भिजवा दी है।"

"चलिए, अच्छा हुआ। दूसरी टिकट कब की है?"

"आज दोपहर दो बजे की उड़ान है।"

"हमें भी घंटे भर में यहाँ से निकलना है।" उसने कहा, "सुबह जमशेदपुर के लिए, अच्छी बस है।"

"ठीक है निकलो।" मैंने कहा।

"जाने से पहले आपके पास आएँ?" उसने पूछा।

"अरे नहीं भाई, कोई आवश्यकता नहीं है।" मैंने कहा, "सीधे बस-अड्डे पहुँचो।"

"कोई तो आएगा ही आपको एयरपोर्ट पहुँचाने?" उसने कहा।

"देखो। कोई आया तो ठीक, नहीं तो टैक्सी। लौटती हुई बरात वैसे भी चवन्नी की होती है।"

"अशोक जी तो आएँगे ही।"

"हाँ, वे आ रहे होंगे।"

"ठीक है, शाम को बात होगी। हमारे जमशेदपुर और आपके दिल्ली पहुँचने पर।"

★★★

बात शाम को नहीं हुई। अगले दिन हुई।

"तबीयत कैसी है?"

"बिस्तर पर हूँ।" मैंने बताया।

"अरे, क्या और बिगड़ गई?"

मन हुआ कि कहूँ कि वह कोई पत्नी है कि और बिगड़ जाए, किंतु कहा, "थोड़ी बहुत तो बिगड़नी ही थी। पिछली बीमारी का शेषांश, जोड़ यात्रा की थकान। योगफल क्या हुआ?"

"मालूम नहीं। गणित में सदा ही कमजोर रहा हूँ।" वह बोला, "डाक्टर को दिखाया?"

"वही वायरल। उससे जुड़ा और कुछ-कुछ।" मैंने बताया।

"दवा चल रही है?"

"बस दवा ही चल रही है बाकी सब कुछ ठहरा हुआ है।" मैंने कहा।

"फिर भी नरेन्द्र, आप अपने घर में हैं।"

पति-पत्नी दोनों के लिए यह पहला प्वाइंट था। घर और परदेस।

"हाँ। पर जानते हो, कलकत्ता में रहते हुए भी विवेकानन्द ने गाया था : घर चलो मन, घर चलो। तुम दोनों भी राँची में यही गा रहे थे किंतु दोनों के घर अलग-अलग हैं।"

"चलिए किसी एक घर तो पहुँचे। भास्कर ने कहा, "परसों निरंकुशजी तो आए ही होंगे आपसे मिलने और आपको विदा करने?"

"नहीं, कोई नहीं फटका, सिवाय एक अशोक प्रियदर्शी के। उन्हें तो आना ही था, नाश्ता लेकर।"

"फिर?"

"वे मेरे पास ही रुक गए। मेरे भोजन की व्यवस्था की और मेरे साथ विमानपत्तन तक आए।"

"आश्चर्य है, संस्था का कोई प्रतिनिधि नहीं आया। एयरपोर्ट कैसे गए? टैक्सी?"

"नहीं। उसका भी एक किस्सा है।"

"कैसा किस्सा?" भास्कर ने पूछा। कथाकार कोई किस्सा कैसे छोड़ देता।

"परसों प्रात: एक साहित्य-प्रेमी मुझे प्रणाम करने आया। वह धनबाद का था। उसे संस्थावालों ने सम्मानित करने के लिए आमंत्रित किया था। वह बड़े उत्साह से आ गया, किंतु बेचारे का नाम ही नहीं पुकारा गया। वह बैठा का बैठा रह गया, साक्षात् प्रतीक्षा बन कर।"

"यह तो अपमान करना हुआ।"

"हाँ दुखी था। अपनी गाड़ी से आया था। एक दिन पहले से अपना काम-धंधा छोड़कर, राँची के किसी होटल में टिका हुआ था।"

"बुरी बात।"

"हाँ बात तो बुरी है।" मैंने बताया, "उसे निरंकुश से पूछना अच्छा नहीं लगा। बता रहा था कि कार्यक्रम में सबसे पहले पहुँचा था और सबसे अंत में उठा था।"

"फिर?"

"एयरपोर्ट जाने का समय हो चला था। अशोक जी ने उसी दुखी आत्माा से कहा कि नरेन्द्र जी को विमानपत्तन पहुँच कर ही प्रणाम करना। दोनों काम हो जाएँगे।"

"तो उसी ने पहुँचाया?" भास्कर ने पूछा।

"हाँ। पहुँचाया। चरण स्पर्श कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और धन्य हुआ।"

"फिर धनबाद लौट गया?"

"कह तो यही रहा था। मेरा विचार है कि अशोक जी को नगर में कहीं पहुँचा कर वह निरंकुश को गालियाँ देता हुआ, धनबाद लौट गया होगा।"

"हे ईश्वर, कैसे अपमानित हुआ बेचारा।" भास्कर ने कहा।

"वह प्रसन्न था कि मैं उसे होटल में ही मिल गया और वह मेरा आशीर्वाद पा कर धन्य हुआ।"

"दुखी था, किंतु सज्जन था।" भास्कर ने कहा, "तो निरंकुश एंड कंपनी नहीं ही आई आपको विदा करने?"

"नहीं। हाँ अशोकजी को विमानपत्तन से लौटते हुए फोन अवश्य आया था।" मैंने बताया, "अशोक जी भी उस निरंकुश को अंकुश नहीं लगा सके।"

वैसे विदा करने के लिए न आना मेरे लिए नया नहीं था। एक बार जोधपुर में भी मेरे साथ यही हुआ था और जबलपुर में भी। महत्वपूर्ण यह है कि उन लोगों ने कभी अपने न आने का कारण भी नहीं बताया, और न कभी उसके लिए खेद व्यक्त किया।

पर मेरा समाज तो वही था न।

❖

विख्यात लेखक
175, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110034
मो. 9871681382

द ज़ू स्टोरी

— डॉ. ममता धवन

व्यक्ति से व्यक्ति की दूरी इतनी बढ़ गयी कि अकेला व्यक्ति जानवरों की शरण में चला गया। बात करने के लिए उसे घर में कुत्ते बिल्ली पालने पड़े उसे तोता पालना पड़ा। क्योंकि वह अकेला रहेगा तो अकेलेपन की चुप्पी ही उसे मार देगी, किन्तु क्या कुत्ते को अपना साथी बनाना आसान है? क्या कुत्ते को समझना और उससे दोस्ती कर पाना आसान है? बिलकुल वैसे ही मुश्किल है जितना एक मनुष्य से दोस्ती करना। किन्तु यदि दोस्ती करनी है तो सामने वाला कैसा भी व्यवहार करे अपनी तरफ से बार बार दोस्ती के लिए प्रयास किया जाना चाहिए बिलकुल वैसे ही जैसा की जेरी ने कुत्ते की दोस्ती के लिए किया। किन्तु विडंबना यह है कि जैसा भावनात्मक संबंध व्यक्ति व्यक्ति से पाना चाहता है वैसा इन मूक जानवरों से नहीं पाया जा सकता। जेरी बार बार कुत्ते के साथ अपने सम्बन्ध सही करने की कोशिश करता है। वह उसे जहर तक दे देता है और फिर भी चाहता है कि कुत्ता न मरे क्योंकि वह संबंधों की परिणति देखना चाहता था।

एडवर्ड एल्बी का लिखा हुआ एक अंकीय नाटक है 'द ज़ू स्टोरी'। यह उनका पहला नाटक है जो कि 1958 में लिखा गया। यह नाटक मनुष्य के मनुष्य के साथ सम्बन्धों, मनुष्य के जानवर के साथ संबंधों तथा जानवरों के मनुष्य के साथ संबंधों को परिभाषित करता है। एक दूसरे से संवाद स्थापित किए जाने के बीच की जटिलताओं की परतों को खोलता है। यह नाटक दिखाता है कि अपूर्ण संबंध और उनसे जनित अकेलापन किस तरह से व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। यह नाटक यह भी बताता है कि सोसाइटी का बदलता प्रारूप व्यक्ति को कितना अकेला कर रहा है जहाँ हर व्यक्ति अजनबीपन और अकेलेपन का शिकार होता जा रहा है। क्या स्वीकार्य है और क्या नहीं, क्या नार्मल है और क्या विक्षिप्त है इन सबकी व्याख्या करता हुआ यह नाटक बीच बीच में मोनोलोग की तरह भी लगता है। पीटर और जेरी का संवाद वास्तव में जेरी की मनोव्यथा का ही प्रस्तुतीकरण है पीटर तो मात्र एक माध्यम है और कथानक को आगे बढ़ाने तथा कथानक को बाँधे रखने वाला एक जरिया लगता है। जेरी जब स्वयं बोल रहा है तब हम जेरी को समझ रहे होते हैं जेरी जब पीटर से बात कर रहा है तब भी हम जेरी की ही मानसिकता को समझ रहे होते हैं। नाटक में दो ही पात्र हैं जेरी और पीटर।

हर एक सोसाइटी के कुछ नॉर्म्स हैं। क्या बात करनी है? किस से बात करनी है? कैसी बात करनी है? हर व्यक्ति जो इन सबको फॉलो करता है वो सभ्य कहलाता है, सभ्य दिखता है बिलकुल पीटर की तरह। पीटर इस व्यवस्था को आसानी से ग्रहण कर चुका है। वह सूट बूट में आराम से अपनी किताब पढ़ रहा है उसकी नियमित सैलरी आती है उसका अपना घर और परिवार है। वह किसी अजनबी से बात करने का इच्छुक नहीं दिखता क्योंकि हमारी सोसाइटी किसी स्ट्रेंजर से बात करने की इजाजत नहीं देती। इस पॉलिस्ड सोसाइटी ने सीखचों में विभाजित कर दिया है सबको। जानवर को जानवर से अलग कर दिया है, लोगों को जानवर से, और लोगों को लोगों से भी। सब इतने अलग हो चुके हैं और उतने ही सभ्य कि अब वो किसी से बात करना भी असभ्यता समझते हैं। मेट्रो सिटीज में यही स्थिति

है। इसलिए ज्यादातर लोग एलाइनेशन को महसूस कर रहे हैं। यह एक ऐसा इमोशनल डिसऑर्डर है जो अन्य के संपर्क में न आने से होता है और जिससे व्यक्ति के भीतर वास्तविकता के प्रति असत्य की भावना जन्म लेती है और हर तरफ वह स्वयं को अजनबीयत का विक्टिम महसूस करता है।

जो प्रश्न यह नाटक उठाता है वह यह है कि जब हम दोस्ती के लिए सम्पर्क बनाते हैं तो क्या हम दो व्यक्तियों के बीच सम्पर्क बना लेने वाली स्थितियों को समझने की कोशिश भी करते हैं? क्या हम उस संपर्क की जरूरतों पर ध्यान देते हैं? क्या हम दोस्ती से पहले सामने वाले की हरकतों को गौर से देखते समझते हैं? जाहिर है इस तरह की दोस्ती समय लेती है। तेज स्पीड में भागती इन जिंदगियों के पास इतना समय है ही कहाँ? बिलकुल वैसे जैसे पीटर के पास समय नहीं है। वह जेरी को बिलकुल सुनना नहीं चाहता। किन्तु जेरी अपनी हर बात कह देना चाहता है।

व्यक्ति से व्यक्ति की दूरी इतनी बढ़ गयी कि अकेला व्यक्ति जानवरों की शरण में चला गया। बात करने के लिए उसे घर में कुत्ते बिल्ली पालने पड़े उसे तोता पालना पड़ा। क्योंकि वह अकेला रहेगा तो अकेलेपन की चुप्पी ही उसे मार देगी, किन्तु क्या कुत्ते को अपना साथी बनाना आसान है? क्या कुत्ते को समझना और उससे दोस्ती कर पाना आसान है? बिलकुल वैसे ही मुश्किल है जितना एक मनुष्य से दोस्ती करना। किन्तु यदि दोस्ती करनी है तो सामने वाला कैसा भी व्यवहार करे अपनी तरफ से बार बार दोस्ती के लिए प्रयास किया जाना चाहिए बिलकुल वैसे ही जैसा की जेरी ने कुत्ते की दोस्ती के लिए किया। किन्तु विडंबना यह है कि जैसा भावनात्मक संबंध व्यक्ति व्यक्ति से पाना चाहता है वैसा इन मूक जानवरों से नहीं पाया जा सकता। जेरी बार बार कुत्ते के साथ अपने संबंध सही करने की कोशिश करता है। वह उसे जहर तक दे देता है और फिर भी चाहता है कि कुत्ता न मरे क्योंकि वह संबंधों की परिणति देखना चाहता था।

8 सितंबर 1959 को वेस्ट बर्लिन, जर्मनी के स्किलर थिएटर में यह नाटक पहली बार मंचित किया गया। इस नाटक ने दर्शकों एवं विश्लेषकों की प्रशंसा को प्राप्त किया। शनिवार के रिव्यु में हेनरी हेवेस ने दावा किया कि एडवर्ड एल्बी ने अद्‌भुत पहले नाटक की रचना की है। "Edward Albee has written an extraordinary first play."[1] टॉम ड्रिवेर ने लिखा, "It is more than a little melodramatic, and the only sense I could draw from it is the conviction that one shouldn't talk to strangers in Central Park" (Tom Driver from Christian Century)[2] George Wellwarth, in The Theater of Protest and Paradox, claimed that The Zoo Story "is about the maddening effect that the enforced loneliness of the human condition has on the person who is cursed (for in our society it undoubtedly is a curse) with the infinite capacity for love."[3]

'द ज़ू स्टोरी' नाटक की लगभग 590 रंगमंचीय प्रस्तुति हो चुकी हैं जो अपने आप में अद्‌भुत है। इसे बेस्ट प्ले के लिए Obie Award 1960 में दिया गया।

जेरी बार बार पीटर को बात करने के लिए उकसाता है। जैसे ही वह देखता है कि पीटर उसकी बात में कोई दिलचस्पी नहीं ले रहा, जैसे ही जेरी देखता है कि पीटर अपनी सिगार सुलगा लेता है या किताब पढ़ने लगता है जेरी तुरंत उसका ध्यान अपनी तरफ खींचने के लिए पीटर से कोई सवाल करने लगता है। जेरी चाहता है कि पीटर उसमें दिलचस्पी ले क्यूँकि इस पूरे शहर में उस में रूचि लेने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं है। जब जेरी थक जाता है और पीटर का ध्यान अपनी तरफ नहीं खींच पाता तो वह उसी बेंच पर बैठ जाता है जहाँ पीटर रोज बैठता है। पीटर को इसपर कोई आपत्ति नहीं है। जेरी उसे सरकने को कहता है पीटर को तब भी कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु जेरी को अजीब लगता है कि पीटर अपने स्थान को बचाए रखने के लिए लड़ता क्यों नहीं। यही कारण है कि वह तब तक पीटर को आगे खिसकने को कहता रहता है जब तक कि पीटर बेंच के अंतिम कोने तक नहीं पहुँच जाता। जेरी पीटर को फाइट करने के लिए उकसाता है और कहता है...। "You fight, you miserable bastard; fight for that bench; fight for your parakeets; fight for your cats, fight for your two daughters; fight for your life; fight for your manhood, you pathetic little vegetable. You couldn't even get your wife with a male child."[4]

Carolyn E. Johnson ने एडवर्ड एल्बी के लेखन की विशेषता को बताते हुए कहा, "He does not write of human emotions and relationships in statements of fact that we like to hear. He uses abstract symbols and ideas to portray unidentifiable fears, subtle truths, intangible illusions, and the unattainable standards imposed upon society"[5] शैक्षणिक प्रशिक्षक जॉनसन ने एडवर्ड के इस नाटक की बहुत प्रशंसा की और कहा, "यदि नाटक देखने के बाद दर्शक अपनी गाड़ी को ढूँढने में लग जाए तो यह नाटक की असफलता है। किन्तु एल्बी अपने दर्शकों एवं पत्रों की आत्मा में उतर जाते हैं"।[6]

न्यूयॉर्क के एक पार्क में जेरी का जो वार्तालाप पीटर के साथ होता है उसे बातचीत नहीं कहा जा सकता। जेरी अभी

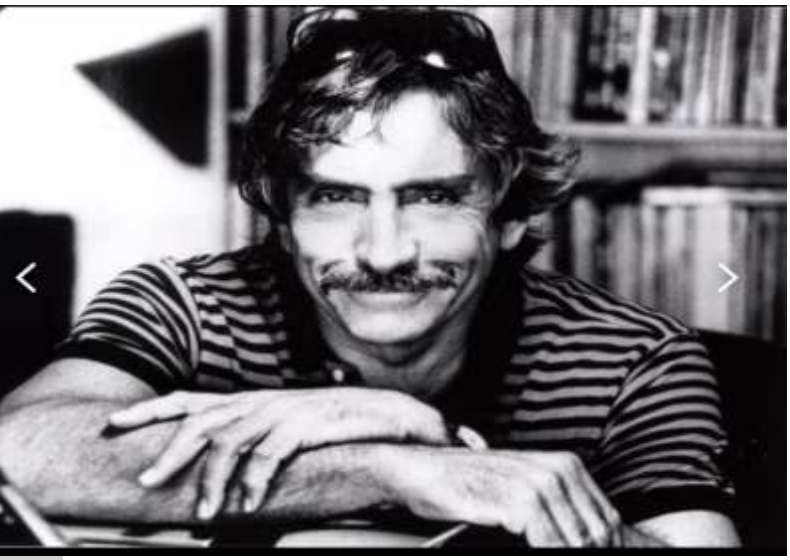

अभी जू देखकर आया है। और ऐसा कहते हुए ही उसका मंच पर प्रवेश होता है। अब उसे कोई व्यक्ति चाहिए जिस से वह बात कर सके और वह कोई व्यक्ति कोई अपरिचित भी हो सकता है जिस से वह बात करेगा और उस अपरिचित व्यक्ति से उसके बारे में सब जान लेना चाहेगा। वह कहाँ रहता है? क्या करता है? उसके घर में कौन कौन है? उसके बच्चे कितने है? उसने लड़का पैदा किया है या लड़की? उसने कुत्ता पाला है या बिल्ली? जेरी को पक्का यकीन है कि पीटर ने बिल्ली पाली होगी और उसे यह भी यकीन है कि पीटर के घर में एक तोता भी होगा। पीटर की दो बेटियाँ हैं यह जानकर जेरी कहता है कि वह पीटर की टांगों को देख कर ही समझ गया था कि वह लड़का पैदा नहीं कर सकता।[7]

जेरी अपनी मकान मालकिन को याद करता है। जो उसे बिलकुल बेहूदी लगती है, जो उसे घूरा करती है और जब वह लौटकर आता है तो दरवाजे पर खड़े हुए उसे देखती है और ऐसे चलती है कि उसकी टांगें जेरी की टांगों को छूते हुए निकले। यह बहुत घिनोना है जेरी के लिए। वह हर वक्त अपने नाखून चबाती है अपने 'आई ब्रोज' को प्लकर से 'प्लक' करती रहती है। जेरी खूबसूरत औरतों के साथ दो घंटे से ज्यादा देर तक नहीं रह सकता।[8] वह कई संबंधों में रहा पर उसका कोई भी संबंध ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाया। उसका समलैंगिक संबंध केवल एक हफ्ता चला। जेरी की लैंडलार्ड लेडी एवं उसके कुत्ते के विषय में की गयी बातचीत से जेरी के मनुष्य के साथ संबंध की झलक मिलती है। वह अपनी लैंडलॉर्ड लेडी के कुत्ते को अपना ही समझता रहा। जब पीटर पूछता है कि फिर लैंडलॉर्ड लेडी के कुत्ते का क्या हुआ? सुनकर जेरी उसका धन्यवाद करता है उसे असलियत से परिचित करने के लिए और भीतर ही भीतर अफसोस करता है कि उस कुत्ते को उसने अपना कैसे समझ लिया था। जब वह यह कहता है कि पहले कुत्ते को विनम्रता से मारो और यदि इसका कोई असर न हो तो उसे मार ही दो। जेरी कुत्ते को बर्गर में जहर मिला कर खिला देता है और चाहता है कि उस जहर को खाने के बाद भी वह कुत्ता जिंदा रहता तो कितना अच्छा होता "I wanted the dog to live so that i could see what our new relationship might come to" (albee p no 29)[9] जेरी बताता है कि उसे लोगों से बात करते हुए बड़ी हिचक महसूस होती है इसलिए वह पहले कुत्ते से बात करता है। और वह जो कुत्ता था जिसने उसे जहर खिला दिया था वह जिंदा रहा तथा उसके बाद जेरी उससे पहला कांटेक्ट बनाने में सफल हो जाता है। जेरी निष्कर्ष निकलता है कि न तो विनम्रता और न ही हिंसा, किसी सम्बन्ध को बनाने में सहायक होती है यह केवल भावनाएँ हैं जो दो व्यक्तियों को या दो जीवों को आपस में जोड़कर रखती हैं। (page 31)[10] जेरी के पास छोटा संदूक है जिस पर ताला नहीं लगा और एक ताश का पैकेट है जिसपर नग्न औरतों की अश्लील तस्वीरें हैं। जेरी पीटर को बताता है कि वह जू इसलिए गया था क्योंकि वह

देखना चाहता था कि मनुष्य जानवर के साथ कैसे रहता है तथा जानवर जानवर के साथ कैसे रहता है। (पेज 34)[11]

अब्सर्ड ड्रामा पर अपनी किताब 'The Theatre of Absurd' में मार्टिन एस्लिन ने 'द ज़ू स्टोरी' को अब्सर्ड ड्रामा माने जाने का विरोध किया है।[12] सीकर बेली ने कहा कि इस नाटक का अंत बिलकुल अब्सर्ड नहीं है तथा दर्शकों के पास एक सार्थक तथा उद्देश्यपूर्ण कहानी पहुँचती है। (quoted in Lisa siefker bailey 31, 32)[13] तथा कुछ नाट्य समीक्षकों ने कहा की यह पूर्णत: अब्सर्ड नाटक है और इसकी गणना अब्सर्ड नाटकों की सूची में की जानी चाहिए। इनमें फिलिप. सी. कॉलिन का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा, "अल्बी ने बैकेट beckett, genet और lonesco की तरह ही अब्सर्डिटी के सभी आईडिया और तकनीकों का प्रयोग अपने इस नाटक में किया है। (कॉलिन 17)[14]

निष्कर्षत: 'द ज़ू स्टोरी' जेरी के अंतर्मन की उन परतों, उलझनों, त्रासद अनुभवों, वस्तुओं, घटनाओं को शब्द देता नाटक है। जिनका कोई क्रम नहीं, कोई संदर्भ नहीं, जिनसे जुड़ा कोई व्यक्ति सामने नहीं, और सामने वाले व्यक्ति से जिनका कोई सरोकार नहीं।

संदर्भ

1. हेनरी हवस, सैटरडे रिविव्यू
2. टॉम ड्विवेर, क्रिश्चन सेनच्युअरी
3. जॉर्ज वेलवर्थ, द थिएटर ऑफ प्रोटेस्ट एंड पैराडॉक्स
4. एल्बी
5. कैरोलिन ई. जॉनसन
6. कैरोलिन ई. जॉनसन
7. एल्बी
8. एल्बी
9. एल्बी
10. एल्बी
11. एल्बी
12. मार्टिन एस्लिन, द हीटर ऑफ अब्सर्ड
13. लिसा सीएफकार बेली 31, 32
14. फिलिप्प सी. कोलिन

Book References

1. Albee, Edward. The Zoo Story, in The Collected Plays of Edward Albee 1958-1965. New York: Overlook Duckworth, 2007, 11-40. Print.
2. Amacher, Richard E. Edward Albee. Boston: Twayne, 1982. Print. Bigsby, C.W.E. Albee. Edinburgh: Oliver & Boyd, 1969. Print.
3. Debusscher, Gilbert. "The Playwright in the Making." Critical Essays on Edward Albee. Ed. Philip C. Kolin and J. Madison Davis. Boston, MA: G.K. Hall, 1986. 74-80. Print.
4. Gabbard, Lucina P. "Unity in the Albee Vision." Edward Albee, Planned Wilderness: Interview, Essays, and Bibliography. Ed. Patricia De La Fuente, Donald E. Fritz, Jan Seale, and Dorey Schmidt. Edinburg, TX: School of Humanities, Pan American U, 1980. 18-31. Print.
5. Gussow, Mel. Edward Albee: A Singular Journey: A Biography. New York: Simon & Schuster, 1999. Print.
6. Kolin, Philip C. "Albee's Early One Act Plays: A New American Playwright from Whom Much Is to Be Expected." The Cambridge Companion to Edward Albee. Ed. Stephen J. Bottoms. Cambridge, UK: Cambridge UP, 2005. 16-37. Print.
7. Kolin, Philip C., and J. Madison Davis. "Introduction." Critical Essays on Edward Albee. Boston, MA: G.K. Hall, 1986. 8-11. Print.
8. Siefker Bailey, Lisa M. "Absurdly American: Rediscovering the Representation of Violence in The Zoo Story." Edward Albee: A Casebook. Ed. Bruce J. Mann. New York: Routledge, 2003. 31-43. Print.
9. Tallmer, Jerry. "The Voice Reviews Edward Albee's The Zoo Story and Samuel Beckett's Krapp's Last Tape." Village Voice The Archives. 8 July 2009. Web. 6 May 2016.
10. Way, Brian. "Albee and the Absurd: The American Dream and The Zoo Story." Critical Essays on Edward Albee. Ed. Philip C. Kolin. and J. Madison Davis. Boston, MA: G.K. Hall, 1986. 65-73. Print.

❖

820, सी-3 एक्सटेंसन, शालीमार गार्डन
साहिबाबाद, गाजियाबाद, उ.प्र. 201005
मो. 8287638870

एक मुलाकात कछार से

— अपूर्वा

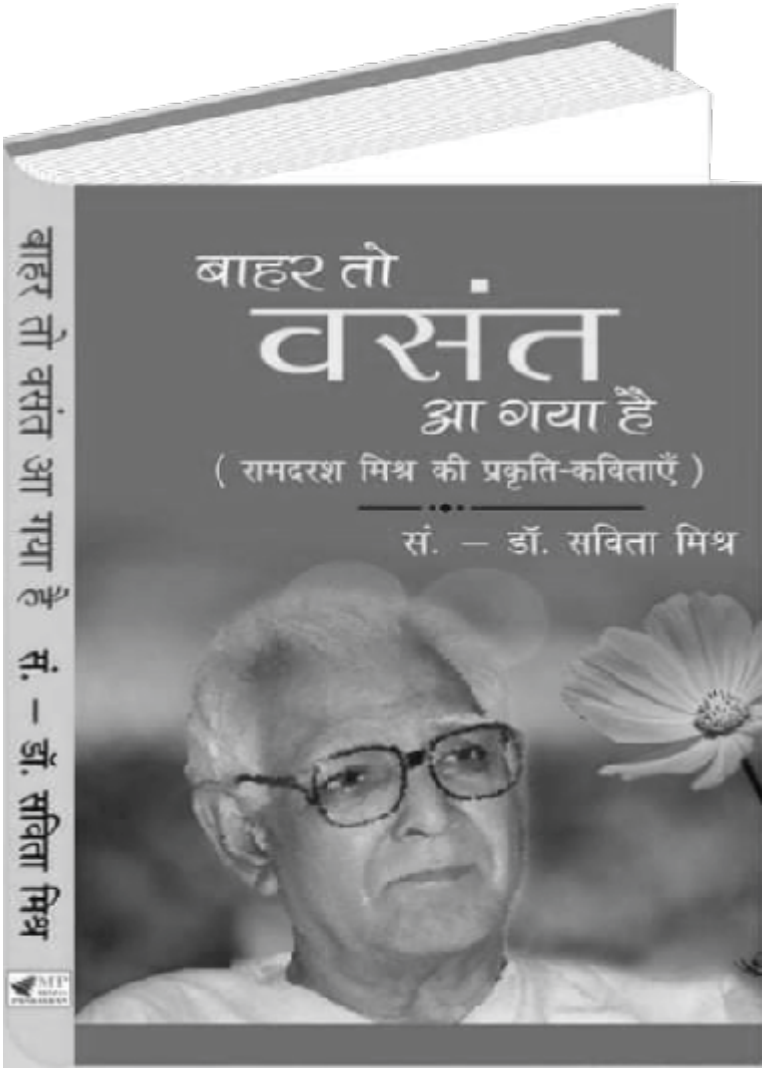

"बाहर तो वसंत आ गया है"—कविता संग्रह रामदरश मिश्र की प्रकृति पर केंद्रित कविताओं का संग्रह है जिसका संपादन सविता मिश्र ने किया है। इस संग्रह में 1950 से लेकर अब तक की प्रकृति केंद्रित कविताएँ हैं। संग्रह के प्रारंभ में "पथ के गीत" की कविताएँ हैं जिसमें लोक जीवन की लय सुनाई देती है। इन गीतों में लोक जीवन का अटूट संघर्ष है, जिजीविषा है। 'पंछी' कविता में नन्हा सा पंछी लहरों के तूफानों से खेलता हुआ दिखाया जाता है। एक ओर इन गीतों में संघर्ष है तो दूसरी ओर इन गीतों में व्याप्त प्रकृति मन को उल्लसित कर देती है। 'फागुन आया' कविता में मन स्मृति रस में लहरा उठता है, यौवन हुलसने लगता है। ध्वनि बिंबों का प्रयोग करते हुए कवि ने लोक जीवन में व्याप्त सुख दुख का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। उन्होंने एक जगह कहा भी है कि एक पगडंडी मुझे स्कूल पहुँचाती थी तो दूसरी खेतों की ओर। उन्होंने भोगा है वो समय जब फागुन आने पर अभावों से घिरे लोग फाग और कबीर गाते थे। संघर्ष और उल्लास की जुगलबंदी उनकी संपूर्ण काव्य यात्रा में मौजूद है। 'वसंत : आठ' कविताओं में वसंत के विविध आयाम हैं जो जीवन के विविध आयामों से जुड़े हैं।

जब प्रकृति स्वयं किसी को पाल पोस कर बड़ा करती है तो वह व्यक्ति रामदरश मिश्र बनता है। यह कविता संग्रह पढ़ कर पाठक के मन में प्रकृति संवेदना जाग उठती है। कछार जिसे छब्बीस वर्ष की जिन्दगी में मैंने कभी नहीं देखा, मन में खाट बिछा कर मीठी नींद में विश्राम करने लगता है। उसके सारे मौसम मेरे भीतर अनगिनत पुल बना बैठते हैं और मैं हर मौसम को अन्दर कहीं टहलते हुए पाती हूँ।

सालों से बन्द पड़ी मन की खिड़कियाँ, कछार की हवा खोल देती है और फिर साफ दिखता है कवि का मन। धरा का ऐसा भाग जिसका नाम अभी कुछ समय पहले तक अपरिचित रहा हो, आकाश का वो हिस्सा जिससे नजरें अभी टकराई हों, कविता दर कविता बेहद अपना लगने लगता है। संग्रह के अंत तक आते आते ऋतुओं से मैत्री हो जाती है और मन उनकी आहटें पहचान उनके आगमन की सूचना देने लगता है।

कुछ कविताओं के पीछे की ओट में इंतजार छुपा है, कहीं उजास और ऊर्जा सांसें ले रहे हैं तो कुछ कविताएँ आँखों में प्रश्न लिए बैठीं हैं। 'बादल' कविता में हम आराम से पसरे हुए इंतज़ार से टकराते हैं। पढ़ते हुए लगता है अंदर भी कहीं उमस है जो इस भाग दौड़ की जिंदगी में महसूस नहीं होती थी या शायद हम होने नहीं देते थे। यह कविता हमें बैठ कर सोचने पर विवश करती है, आसपास की बारीकियों को टटोलने को कहती है और इसी

पुस्तक	–	बाहर तो वसंत आ गया है
संपादक	–	डॉ. सविता मिश्र
प्रथम संस्करण	–	2020
पृष्ठ संख्या	–	120
मूल्य	–	400 रुपये
प्रकाशक	–	मंजुली प्रकाशन, दिल्ली

प्रतीक्षा में हम कवि के साथ हो लेते हैं। 'पावस गीत' में जहाँ प्रकृति दुल्हन बन जयमाल लिए मिलती है वहीं 'मन डूबा सन्नाटे में' कविता में हम नितांत अकेलापन चखते है मगर शांत पड़ी प्रकृति भी अपनी उदासी गा उठती है और चुप्पी में भीगा अमलतास हौले से अपनी आपबीती कह जाता हैं। उदासी, उमस, शिथिलता सब बूँद-बूँद पिघलने लगती है। जब 'ओ नये शरद' की धूप खिलती है और अकेलेपन की गंध उड़ जाती है तब हवाओं से खुशबू बरसती है। एक बहुत सुन्दर दुनिया जो आज के समय के लिए शायद थोड़ी अकल्पनीय हो पर बिल्कुल वैसी जैसी एक त्रस्त और अपाहिज मन पाने की लालसा रखता है, हमारे बीच उपस्थित हो जाती है। जहाँ आशाओं के कमल खिलते हैं, जड़ता टूटती है और हम संवेदनाओं और संभावनाओं के बीज बन कछार की धरती में खो जाते हैं। मिश्र जी कहते हैं—

उड़ी हवाएँ खुशबू भीगी
लगा कि मैं ही जड़ता में
स्पंदन बन बन कर लहर रहा हूँ

संग्रह की कविताएँ प्रकृति के हर रूप से हमारा परिचय कराती हैं। 'सागर और मैं' का सागर हमें चुनौतियाँ स्वीकार करने को कहता है, फटकार लगाता है और सपनों को पाने की प्रेरणा भी देता है पढ़ते-पढ़ते न जाने कब वह सागर, जीवन जी चुके दार्शनिक वृद्ध में बदल जाता है जो डपट कर भी असीसता ही है, पता ही नहीं चलता—

रुको ओ मनुष्य
सागर चिल्लाया
लेते जाओ अपने सपने
मेरे दामन पर जो छोड़ गये
साहस हो तो इनको पालो, जूझो, तड़पो
मुझ सा ही

सबसे खास बात यह है की प्रकृति रस में विलीन होते हुए भी कविताएँ अपना कर्तव्य नहीं भूलतीं। सही दिशा में सोचने पर मजबूर करने वाले सवाल उठाती हैं और किताब दूर रखने के बाद भी वो सवाल हमारे सिरहाने बैठे रहते हैं। ऐसी ही एक कविता है 'चिड़िया' जो हमें यह बोध कराती है कि किसी का घर तोड़ना कब से सभ्यता और संपन्नता का प्रतीक बन गया। ये हमें कब और कौन सिखा गया? कब हमारे भीतर इतनी रिक्तता आ गयी और क्यों हम यह भूल गये कि घर बसाने और जोड़ने का जो सुख है। वो तोड़ने में कभी था ही नही। कविता में जली हुई डाली जैसे मनुष्य का जला हुआ दिल हो जो धड़कने के काबिल न बचा हो। कविता पढ़ कर हम बैठे रह जाते हैं और सोचते रह जाते हैं कि बेज़ुबान पक्षियों का बसेरा जला कर कहीं हमने मनुष्यता का भी तो दाह संस्कार नहीं कर दिया!

कविताएँ अपना धर्म बखूबी निभाती चली जाती हैं और हर शब्द कभी शूल कभी मरहम बन हमसे संवाद करता है। 'ग्रीष्म दोपहरी' की छह कविताएँ बड़े बड़े सवाल पूछती हैं। मन आहत हो उठता है गुलमोहर के अकेलेपन को महसूस कर, अपना ही घर चिमनियों के काले सलेटी धुएँ के पीछे छुप जाता है और बंद खिड़की दरवाज़े राह देखते हैं परिचित कदमों की। कविताएँ पढ़ते पढ़ते मन में यही इंतज़ार कस्तूरी की तरह महकने लगता है और यह महक अन्दर चक्कर लगाने लगती है...कई चक्कर बिना रुके!

हम मिलते हैं हवा, पानी, धूप, मखमली ठंड से और इन्हीं सब के बीच पुकार रहा होता एक नन्हा फूल। उस फूल की पुकार को सुन लेता है कवि और कहता है कि भई फूल तो वास्तव में एक बीज है जो धरती की परतों में तह किया हुआ रखा है कहीं। हमें जरूरत है कि हम ऊपरी सतह को हटा कर गहराइयों में झाँकें और समझें की फूल बस साज सज्जा की वस्तु नहीं है बल्कि उसकी एक अपनी विशिष्ट पहचान है। मिट्टी के नीचे दबा हुआ उस बीज का संघर्ष हमारी दृष्टि नहीं पा पाता किन्तु वही संघर्ष तो फूट कर रंग बनता है, रस बनता है। बात सारी नजर की है और नीयत की भी। अन्दर झाँकना सुखद होता है। हम क्यों क्षण भर रुक कर उसकी अदृश्य लड़ाई के साक्षी नहीं बनना चाहते? क्यों जो असल में उस फूल के अस्तित्व को शक्ल देता है हम देखना नहीं चाहते? इन्हीं सब भावों के भँवर से होकर हम बढ़ते जाते हैं और जा ठिठकते हैं 'दिन' कविता पर। इस कविता में एक ऊँचे नुकीले पहाड़ पर चट्टान चढ़ाता 'सिसिफस' नजर आता है। सब घट रहा है पर फिर भी कुछ नहीं घट रहा है। सारे काम हो रहें हैं मगर फिर भी दिन नहीं गुजर रहा है। समय का यूँ अटक जाना विस्मय को जन्म देता है। इस सब के बीच एक फूल का मुस्कुराना सारे ठोसपन को तोड़ देता है। बहुत खोखला होता है वो अन्दर से जो ठोस होता है। बंद बंद सा दिन एक फूल के किसी डाल पर खिल जाने से खुलता चला जाता है और अटका हुआ समय फिर बहने लगता है। यह बहाव अच्छा है, जरूरी है।

संग्रह की सभी कविताएँ मन को छू लेने वाली हैं किंतु 'बाग' कविता से मुझे अलग खिंचाव महसूस हुआ। आईडन्टिटी क्राइसिस का पुट लिए यह कविता हमारे सामने खड़ी हो जाती है। दूसरी ही पंक्ति में हम विशाल, असीम आकाश को मशीनी आवाजों से बहरा और ढका हुआ देखते हैं। आसमान को जो छिपा ले वो कैसा होगा, यह ख्याल ही डरा देता है। पथिक को न आम का बाग मिलता है, न तालाब। उसके जहन में जो पुरानी निशानियाँ थी वो समय की बाढ़ में बह चुकी हैं। वह बाग जिसने मासूम बच्चों को रोते, हँसते देखा था, किस्से कहानियों को पीढ़ियों की सीढ़ियाँ उतरते देखा था, सुबह और शामों को आते जाते देखा था, वही बाग अब लापता है। जो कभी घर का पता होता था आज उसी का कोई पता नहीं! कहाँ खो गया वो बाग और उसके साथ वो सब भी खो गया जो उससे जुड़ा हुआ था। बरसों की जान पहचान अजनबियत के तालाब में डूब गई ।

जिस बाग ने बस दिया हो, कभी छाँव, कभी फल, कभी मुस्कुराहटें और कभी रोटी पकाने के लिए अपनी भुजाएँ ...। देने वाला देता गया, लेने वाले लेते गए और इसी लेन देन में बाग हमारा ओझल हो गया। इतना दिया कि अस्तित्व ही दे दिया! बाग काट कर लोगों ने बाज़ार, मकान तो बना लिए पर जिंदगी की धूप से उन्हें बाजार नहीं बचा पाएँगे।

परिचय जब अपरिचय में बदलता है तो अन्दर कोफ्त होती है और स्तब्ध मन समझ नहीं पाता कि यह क्या, क्यों और कैसे हुआ। 'बाग' कविता यहीं 'क्यों' हमारे साथ छोड़ जाती है, बहुत लंबे समय के लिए या शायद हमेशा के लिए।

संग्रह की कविताएँ हर ऋतु , हर रंग, हर खुशबू को हमसे मिलवाती है, हमें अपना बंधु बनाती है और सिखाती है कि जितनी निराशा, जितना अवसाद हमारी आत्मा को जकड़ लेता है, बाहर अभी उतना भी सूखा नहीं पड़ा है। प्रकृति का हर तत्व, धूप, हवा, पानी, मिट्टी, पंछी, फसल सब बारी बारी से पाठक से बतियाते हैं और कोई न कोई सीख, कोई उम्मीद हम में फूँक जाते हैं। 'कुछ देर तो' कविता में कवि कूकती कोयल के राग में जिंदगी की थिरकन तलाशते हैं और कहते हैं, 'कुछ देर तो जी लूँ, तुम्हारे साथ मनुष्य बन कर'। यह पंक्ति गुहार लगाती है कि अगर इंसान बने रहना है तो प्रकृति को महफूज रखना होगा।

कविताओं से आत्मीय मुलाकात के बाद महसूस हुआ कि कितनी जरूरत थी मुझे और पाठकों को इस समय में इन कविताओं की। ये कविताएँ और भी ज्यादा प्रासंगिक हो उठी हैं इस मुश्किल वक्त में। लॉकडाउन के समय में पाठकों को बहुत सम्बल मिलेगा कविताओं में निहित सकारात्मकता से। घबराया हुआ मन यह समझ पाया कि उम्मीद कभी मरती नहीं। कविताओं ने कभी बच्चा बन कर गुदगुदाया, कभी बड़ा बन कर समझाया पर कविताओं में न शिकायत की बू आती है न ही टोन कभी प्रीची यानी कि उपदेशात्मक होती है। जैसे परिवार के सदस्य आपस में हर विषय पर बात करते हैं ठीक वैसे ही ये कविताएँ बहुत अधिकार और अपनत्व से कान में कुछ गहरे और जरूरी सच फुसफुसा कर मन के कोने में बैठ कर मुस्कराती रहती हैं। प्रकृति कवि की कमजोरी भी है और ताकत भी। आदर, प्यार, लाड़ प्रतीक्षा, आस, मानवता और भी न जाने कौन से रंगों से प्रकृति को रंगा गया है। रंग बहुत गहरे हैं, लंबे समय तक साथ रहेंगे।

इन कविताओं में अपने समय के तनाव हैं, स्वतंत्रता के बाद का मोह भंग है। जीवन के सुख दुख, हर्ष और उल्लास के जीवन जगत की विविध छवियाँ हैं। इन सबको कवि ने प्रकृति के माध्यम से बखूबी रेखांकित किया है।

प्रकृति के माध्यम से मिश्र जी ने व्यक्ति की जड़ता और विडंबनाओं के चित्र उकेरे हैं। यही प्रकृति तमाम जड़ताओं को तोड़ती भी है। धूप और उजास के अनेक बिंब हैं। इनमें झर झर झरते हरसिंगार का उल्लास है जो मनुष्य को समझाता है 'क्यों हमारी चिंता करते हो मानुष भाई? हम एक पल आते हैं दूसरे पल चले जाते हैं/और इसी थोड़े समय में हम जी लेते हैं अपना पूरा जीवन'।

इतनी सादगी से मिश्र जी के अलावा कौन दे सकता है इतना सकारात्मक बोध। संग्रह की प्रतिनिधि कविता बाहर तो वसंत आ गया है यही चेताती है कि बंद कमरों में बैठकर वसंत से मुलाकात नहीं की जा सकती। उसके लिए बाहर आना ही पड़ेगा और पत्तियों की उदास लय में से उगते, कसमसाते, लाल-लाल आभाओं के नए आकाश से मुलाकात करनी होगी।

इस कठिन दौर में ये कविताएँ मानों माचिस में दुबकी तीली बनकर कह रही हैं—

नहीं निराश न हों मेरे भाई
सूर्य नहीं तो क्या हुआ, मैं तो हूँ न।

❖

292/10 साहित्य विहार, बिजनौर, उत्तर प्रदेश
मोबाइल 8979586458
ई-मेल : apoorvajagta.16dec@gmail.com

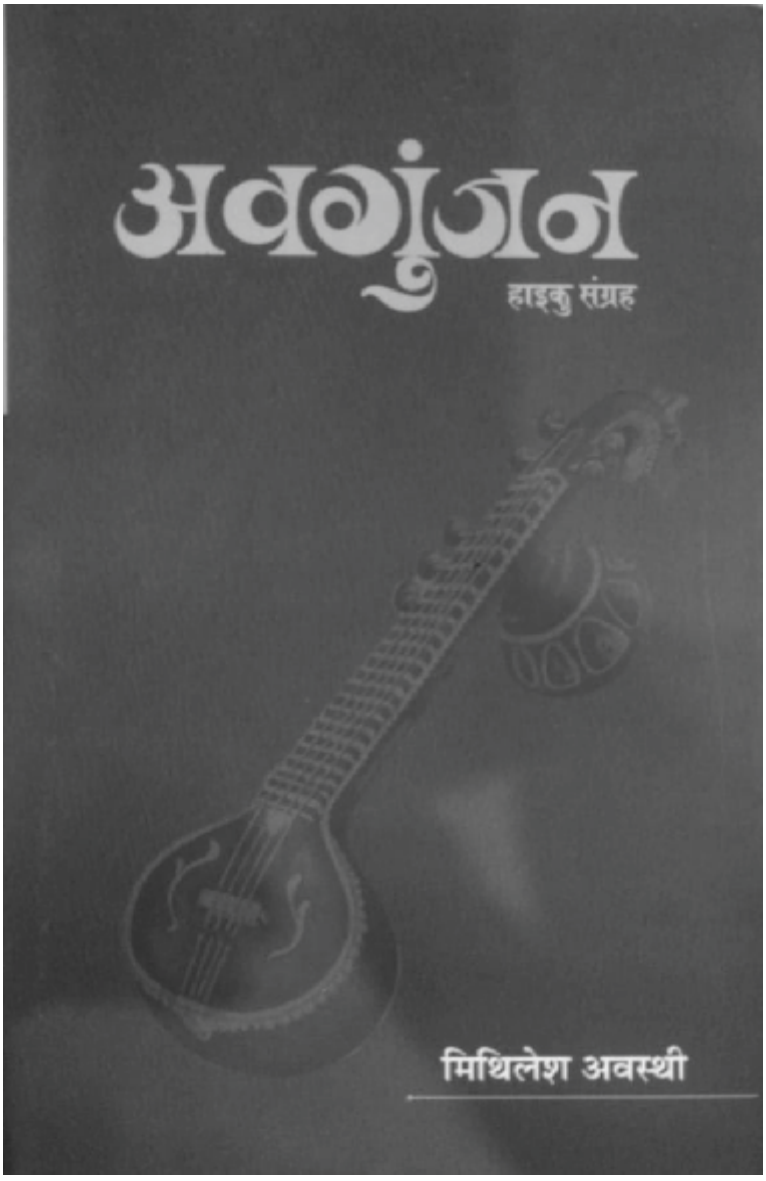

हाइकु की सामर्थ्य का साक्ष्य-'अवगुंजन'

— मनोज पाण्डेय

दुनिया में कविता की सबसे छोटी विधा है हाइकु, पर इसका संवेदनात्मक घनत्व बहुत अधिक होता है। कहा जाता है कि यह अनुभूति के चरम क्षण की कविता है। जब कवि, बोध और चिंतन की चरमावस्था में होता है तभी इसका प्रस्फुटन होता है। बहुत ही कम शब्दों में किन्तु अपने-आपमें एक पूरा चिंतन लिए हुए यह आकार लेता है। वास्तव में कवि के शब्द-चयन और प्रयोग की असली पहचान हाइकु लेखन में ही होती है। सैद्धांतिक रूप से विधागत अनुशासन का पालन करते हुए महज कुछ वर्णों में जीवन और कवित्व के निचोड़ को अभिव्यक्त कर देना हाइकु की कसौटी है। शब्द- ब्रह्म की शक्ति का वास्तविक एहसास भी मुझे लगता है कविता की इसी विधा में संभव है। विशेष उल्लेख्य यह है कि 5-7-5 के इस वर्णानुबंध में एक ऐसी संगति होती है कि तीनों पंक्तियाँ अपने में पूर्ण स्वतंत्र होने के बावजूद समग्र प्रभाव की सृष्टि करती हैं। अर्थात प्रभावान्विति में तीनों की योगकारी भूमिका होती है। इसमें शर्त होती है कि प्रथम वर्ण से लेकर आखिरी वर्ण तक की संगति ऐसी होनी चाहिए कि उनमें अन्तर्निहित संबंध स्पष्ट हो। यहाँ भाव और भाषा का ऐक्य शब्द ही नहीं, वर्ण के स्तर पर भी अत्यावश्यक होता है। पूरे सत्रह वर्णों को मिलाकर ही पूर्ण रस-परिपाक की स्थिति बने अर्थात कवि के भाव का पूर्ण बिम्ब बने, यह बेहद जरूरी होता है। यदि इसमें कहीं असंगति हुई तो हाइकु अपनी प्राणवत्ता खो देगा।

सिद्धांतत: हाइकु के सत्रह वर्णों में दिशाबोध, मार्गक्रमण और निष्कर्ष पिरोया होता है। 5-7-5 के क्रम में प्रथम पंक्ति अर्थात 5 वर्णों में विषय का दिशाबोध, द्वितीय पंक्ति अर्थात 7 वर्णों में मार्गक्रमण यानि विषय का विस्तार और अंतिम पंक्ति अर्थात 5 वर्णों में निष्कर्ष का संकेत निहित होता है। तीनों पंक्तियाँ समन्वित रूप से काव्य-बिम्ब उपस्थित करती हैं, जो कि किसी भी कविता की पहली और अनिवार्य शर्त होती है। इस तरह हाइकु अपने अंतिम शब्द पर जाकर ही चरम पर पहुँचता है। साथ ही, यदि हाइकु का समापन पूर्ण विराम की जगह विस्मयादिबोधक चिह्न से कर दिया जाए तो इसका प्रभाव और भी घनीभूत हो उठता है। यह भी कि, यद्यपि कम शब्दों में कहने के और भी कई फार्म (रूप) कविता में प्रचलित रहे हैं जैसे कैप्सुल कविता, क्षणिका आदि, किन्तु हाइकु का शिल्पगत पैरामीटर इनसे भिन्न है। यहाँ

पुस्तक	-	अवगुंजन
लेखक	-	मिथिलेश अवस्थी
प्रथम संस्करण	-	2019
पृष्ठ संख्या	-	120
मूल्य	-	300 रुपये
प्रकाशक	-	विश्व हिंदी साहित्य परिषद दिल्ली-110088

वर्णानुशासन का अतिक्रमण किसी भी रूप में मान्य नहीं है। 5-7-5 वर्ण की तीन पंक्तियाँ, फिर तीनों पंक्तियों का पूर्ण स्वतंत्र होना और प्रत्येक पंक्ति का एक अर्थवान वाक्य होना, हाइकु की अनिवार्य शर्त है। यही कविता के अन्य रूपों से इसे अलग बनाता है। कुल जमा 17 वर्णों और अधिकतम 10 शब्दों में अभिव्यक्ति का यह पैटर्न अपनी संरचनात्मकता ही नहीं, अर्थवत्ता में भी विशिष्ट होता है। डॉ. मिथिलेश अवस्थी ठीक कहते हैं 'उदात्त प्रयोजन और तीव्र सम्प्रेषणीयता का चरित्र इस विधा की मौलिकता है। अनुभूति की व्यापकता और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के बीच शब्द-शिल्प का कौशल इसकी आवश्यक शर्त है।'

जहाँ तक विषय की बात है, यों तो हाइकु को प्रकृतिपरक विधा कहा गया है। प्रकृति से इसका गहरा नाता रहा है, किन्तु ऐसा नहीं है कि इसमें केवल प्रकृति की सुषमा ही अभिव्यक्त होती है। हाइकु साहित्य की अन्यान्य विधाओं की तरह जीवन के सभी पक्षों को रेखांकित करते हैं। जीवन वैविध्य से जुड़े ऐसे क्षणिक अनुभव जिन्हें प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है, उन्हें हाइकुकार तरतीब से सँजोता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह क्षणजीवी विधा है, प्रत्युत पल-प्रतिपल को जीवंत और संप्रेष्य बनाने की बेचैनी इसको प्राणवंत बनाती है। इस तरह कह सकते हैं कि रचनाधर्मिता की 'माइक्रो' परख और पकड़ इस कविता की खूबी है। यह भी कहने की गरज नहीं कि खंड-खंड होते जा रहे जीवन के पलों को सहेजने का वक्त इंसान के पास जिस कदर निरंतर कम होता जा रहा है, उसी अनुपात में उसकी संवेदना का आयतन भी सिकुड़ता जा रहा है, यहाँ तक कि उसके संवाद की परिधि भी। ऐसे में हाइकु जैसी विधा बहुत प्रासंगिक है।

हिंदी में इसकी शुरुआत कविकुल शिरोमणि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर से मानी जाती है। जिन्होंने पहली बार 1916 में बाशो की दो कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया और इसे दुनिया की सबसे छोटी कविता कहाँ आगे चलकर यह हिंदी कविता की लोकप्रिय पहचान बनती गयी। डॉ. सत्यभूषण वर्मा, डॉ. भगवत शरण अग्रवाल, कमलेश भट्ट कमल, डॉ. जगदीश व्योम, डॉ. रामनारायण पटेल, डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव, डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, डॉ. मिथिलेश अवस्थी, डॉ. सुरेन्द्र वर्मा, डॉ. शैल रस्तोगी, डॉ. सुधा गुप्ता, पारस दासोत, रामनिवास पंथी, डॉ. विद्या बिंदु सिंह, महेश सोनी, अंशु सिंह, ओमप्रकाश यती, नवलकिशोर बहुगुणा, शम्भूशरण द्विवेदी, रामनिवास मानव आदि हिंदी की हाइकु यात्रा को समृद्ध करने वाले सशक्त हस्ताक्षर हैं।

इस विधा का एक नवीनतम पुष्प है डॉ. मिथिलेश अवस्थी रचित संग्रह 'अवगुंजन' जिसका प्रकाशन विश्व हिंदी साहित्य परिषद्, दिल्ली से हुआ है। इसमें हाइकु लेखन के बहुविध पक्षों के आलोक में हाइकु की सामर्थ्य और संभावना को उकेरा गया है। यहाँ जन-जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष अछूता नहीं है जहाँ हाइकुकार की दृष्टि न गई हो और उसने उन्हें पूरी तन्मयता से पकड़ने की कोशिश न की हो। इस संग्रह के हाइकु न केवल हाइकु के विषय वैविध्य को दर्शाते हैं अपितु कवि की 'रेंज' का भी अता-पता बताते हैं। अध्यात्म से लेकर श्रृंगार तक और कुछ छिटपुट, इस तरह कुल जमा दस शीर्षकों में वर्गीकृत यह हाइकु संग्रह अपने समय और समाज को बड़ी गहराई से विवेचित करता है। अवस्थी जी एक संवेदनशील और जागरूक रचनाकार हैं 'अवगुंजन' इसका परिचायक है। यह मानी हुई बात है कि बड़े कलेवर में लिखना जितना आसान होता है छोटे में उतना ही मुश्किल और चुनौतीपूर्ण। यहाँ शुरुआत ही इस अभ्यर्थना से होती है 'माँ भगवती/दो ऐसा वरदान/बनें इंसान।' कहना न होगा, आज मानव-समाज के समक्ष यही सबसे बड़ी चुनौती है। इसीलिए कवि की पहली विनती जगत् जननी से यही है कि ऐसा वरदान दो कि हम इंसान बन सकें। ऐसे दौर में जबकि इंसानियत खतरे में है, मनुष्य के पास सब-कुछ है किन्तु उसकी मनुष्यता नहीं बची है याकि छीजती जा रही है, ऐसे में एक संवेदनशील कवि का माँ भगवती से इंसान बनने का वरदान माँगना वक्त का तकाजा कहा जाएगा। ऐसे ही 'पहले पूजो/गोविन्द भी कहते/ज्ञान-निधि को' हाइकु के अर्थ- गाम्भीर्य को देखा जा सकता है, जहाँ कवि कपोल आध्यात्मिकता में नहीं उलझा है बल्कि वह ज्ञान-निधि को पूजने की बात करता है और भगवान से भी इसकी गवाही दिलवाता है। स्पष्ट है कि कवि आध्यात्मिक चेतना से नहीं, लौकिक दायित्वबोध से परिचालित है। वह ज्ञान-पूजक संस्कृति का पक्षधर है क्योंकि वही कर्म-मार्ग है।

इस लौकिक जगत में माँ एक ऐसी शाश्वत सत्ता है जो सिर्फ जन्मदात्री नहीं है बल्कि जगत-कल्याण की मनोकामना रखती है। यह सच है कि माँ संतान को सिर्फ नौ महीने गर्भ में नहीं पालती और न ही सिर्फ गर्भाधान के लिए माँ की आवश्यकता है, बल्कि जीवन-कल्याण उसके आशीष के बगैर संभव ही नहीं। कवि तो यहाँ तक कहता है और ठीक ही कहता है कि इंसान ही नहीं भगवान को भी माँ के आशीष की आवश्यकता होती है, बिना माँ के आशीष के भगवान भी कहाँ पूर्ण-परात्पर हो सके हैं! 'बिना आशीष/होता नहीं कल्याण/ईश्वर का भी।'

प्रकृति कविता की सबसे मनोहारी भूमि है। प्रकृति के प्रांगण में ही जीवन का स्पंदन होता है। प्रकृति की हर छटा कवियों को विशेष आकर्षित करती रही है। यह हाइकु काव्य का भी प्रिय विषय रही है। हाइकु प्रकृति को माध्यम बनाकर मनुष्य की भावनाओं को बड़ी संजीदगी के साथ प्रकट करता है। मिथिलेश अवस्थी प्रकृति के जरिए मानवीय अनुभूतियों को वाणी देते हैं। दो हाइकु देखें- 'आई बरखा/हुई तृप्त धरती/नया जीवन' तथा 'मेघा बरसे/धरा मन पुलके/गति आरंभ।' यहाँ 'नये जीवन' और 'गति आरंभ' दोनों बड़े अर्थगर्भित प्रयोग हैं। कवि प्रकृति की अंगड़ाई को, उसके परिवर्तन को, बरखा बहार आने को जीवन-प्रवाह का अनिवार्य तत्व बताते हुए धरती की तृप्ति में जीवन की नवता का स्वप्न देखता है। दरअसल इसी में जीवन-विकास की गति भी समाहित है। बरखा में ही वह शक्ति है जो नवांकुरण का कारक भी है और जीवन के उत्साह और उल्लास का जरिया भी। हम जानते हैं कि बिना बारिश के जीवन की क्या दशा होती है, जिंदगी रेत बन जाती है। मेघ हरियाली के वाहक होते हैं, उनके आने से जनजीवन ही नहीं, धरती भी प्रफुल्लित हो उठती है। किसान मेघ के इंतजार में टकटकी लगाए बैठे रहते हैं क्योंकि मेघ के बरसने पर ही जीवन-प्रवाह का आरंभ होता है।

श्रम-दर्शन ही जीवन का मूल दर्शन होता है। इसी में जीवन के उत्कर्ष-अपकर्ष की कथा दर्ज रहती है। 'पहाड़ी नदी/स्वयं मार्ग बनाती/बिना सहारे' हाइकु के माध्यम से कवि श्रम-दर्शन की महत्ता स्थापित करता है। जिस प्रकार पहाड़ी नदी कंकरीले-पथरीले मार्ग में बिना किसी सहारे के अपने श्रम से अपनी दिशा और अपना गंतव्य तय करती है, उसी प्रकार मनुष्य की जिजीविषा व उसका संघर्ष भी उसके मार्ग का निर्धारण करता है। इसी तरह बुझते चिराग का श्रम-सौंदर्य भी दृष्टव्य है-'सिखाते हमें/बुझते चिराग भी/श्रम संघर्ष।' कवि ने बुझते चिराग के संघर्ष का सुंदर प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। कहना न होगा, बुझते चिराग का श्रम-संघर्ष सिर्फ जिंदगी और मौत के संघर्ष का प्रतीक नहीं है बल्कि इसमें जीवन का वह फलसफा भी छिपा हुआ है जो जीवनेच्छा की कहानी कहता है। कवि के जीवन दर्शन का बोध कराता एक और हाइकु देखें-'भोगे सिवाय/समझा जाता नहीं/पराया दुख।' इसमें कविताई नहीं, जीवन का वह तत्वबोध छिपा हुआ है जिसके लिए कभी कबीर ने कहा था 'जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।' परदुखकातरता कवित्व ही नहीं, व्यक्तित्व की भी विशेषता मानी जाती है, इसके अभाव में मनुष्य 'साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः' ही होता है। इसी तरह 'जीतने के लिए/जरूरी है तैयारी/हार जाने की' में भी मनुष्य की जय-यात्रा का दर्शन छिपा हुआ है। किन्तु, मानव-सभ्यता का जैसे-जैसे विकास होता जा रहा है वैसे-वैसे वह प्रकृति-पर्यावरण पर कुठाराघात करता जा रहा है। विकास का सबसे बुरा प्रभाव पर्यावरण पर पड़ रहा है। दिनों-दिन पर्यावरण असंतुलन बढ़ता जा रहा है और मनुष्य बेख़ौफ गगनचुंबी विकास की दौड़ में सन्नद्ध है। पर्यावरणविद्, संवेदनशील रचनाकार सब पर्यावरण को लेकर अपनी चिंता जाहिर कर रहे हैं, लेकिन विकास की ऐसी घुड़दौड़ लगी हुई है, इंसान को पिछड़ जाने का भूत ऐसा सता रहा है कि इस चिंता से वाकिफ होने के बावजूद वह दिन-प्रतिदिन पर्यावरण को हानि पहुँचा रहा है। हवा, पानी, धरती, आकाश, खाद्यान्न सब कुछ प्रदूषण का शिकार है। और, विस्मय की बात यह है कि जो जितना प्रबुद्ध है, जितना विकसित है, वह उतना ही ज्यादा बेपरवाह है इस हालत से। मिथिलेश जी सही कहते हैं 'हवा औ' पानी/कर रहा अशुद्ध/युग प्रबुद्ध।' मनुष्य की इस करतूत के आगे पर्वतराज जिसे अपनी ऊँचाई का गर्व था, वह भी शर्मिंदा हैं-'पर्वत दुखी/गर्व हुआ खंडित/कैसी ऊँचाई।' आज जिस प्रकार कंक्रीट की गगनचुंबी इमारतें खड़ी हो रही हैं, उसे देखकर पर्वतराज भी भयभीत हैं। यह कंक्रीट के जंगल एक तरफ जहाँ विकास के पैमाने हैं वहीं दूसरी तरफ प्रकृति की व्यवस्था में अनधिकृत हस्तक्षेप भी। पर्यावरण के प्रति मनुष्य की लापरवाही को देखकर कवि का यह कहना सही ही लग रहा है कि एक दिन 'नदी व कूप/निर्मल मीठी धूप/किस्सों में होंगे।' जिस प्रकार जलाशय, पोखरे, झरने, बाग-बगीचे विकास की भेंट चढ़ रहे हैं, उसे देखकर यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं कि आने वाली पीढ़ियों के लिए इन्हें पहचानना-मानना आसान नहीं होगा। ये इतिहास की तरह बीते हुए कल के मानिंद केवल पन्नों में दर्ज होंगे।

डॉ. अवस्थी के हाइकु लोक जीवन से सम्बद्ध हैं। उनमें लोकमन की आस्था और विश्वास तो है ही, लोक जीवन की सीख भी है। उदाहरणार्थ 'रोग उधार/जितना भी पुराना/हानिकारक।' कहना न होगा यह लोक-संस्कृति की ऐसी सीख है जिसकी मनुष्य की निर्मिति में योगकारी भूमिका है। लोक मान्यता है, जो रोग और उधार से मुक्त रहता है, सच्चे अर्थों में वही सुखी होता है। ऐसे दौर में जहाँ ये दोनों मुफ्त में मिल रहे हैं, मनुष्य का इनसे बचना संभव नहीं रह गया है। किन्तु, इनके दुष्परिणाम को दृष्टिगत रखते हुए कवि की समझाइश पर गौर किया जाना चाहिए। इसी तरह 'सहृदय ही/समझ सकता है/गूँगे के भाव' हाइकु को भी देखा जा सकता है जहाँ भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन की झलक मिलती है। काव्यशास्त्री मानते

हैं कि सहृदयता ही रस की कसौटी है। जो सहृदय होता है, वही व्यक्त ही नहीं, अव्यक्त को भी समझ सकता है। ऐसे ही परोपकार की सीख देता यह हाइकु भी देखा जाना चाहिए-'फलों से लदा/पेड़ हमें सिखाता/परोपकार।' ऐसी अनेक लोक मान्यताओं को कवि ने बड़ी ही गहराई से अंकित किया है। बड़े कवि की विशेषता यही होती है कि वह लोक चेतना से गहरे सम्बद्ध होता है। जो कवि उपरले दर्जे की संवेदनाओं को बुनते रहते हैं, परम्परा और लोक-बोध जिनका गहरा नहीं होता, वे महज शब्द-संजाल बुनते हैं। डॉ. अवस्थी लोक में गहरी आस्था रखते हैं। नैतिक शुचिता को जीवन में सर्वोच्च मानते हैं। दो हाइकु देखें-'सीमा अपनी/तय कर रखना/विवाद खत्म।' तथा 'जीवन क्रम/बिना अनुशासन/सफल नहीं।' सचमुच इन सत्रह वर्णीय संरचनाओं में कितने गूढ़ भाव छिपे हुए हैं। इसी तरह यह हाइकु भी देखें 'कर्म-कवच/बनता है जिसका/मान उसी का।' कितना गूढार्थ समाहित है इसमें। जीवन का मूल रसायन ही कर्म है। कर्म-निष्ठा से बड़ा कवच दुनिया में भला और क्या हो सकता है?

आज के सभ्य और शिक्षित समाज की विडंबना को भी कवि सही रेखांकित करता है। शिक्षा का जिस तरह व्यापारीकरण हुआ है और जिस कदर हमारी शिक्षा व्यवस्था महज पाठ्यक्रमों तक सिमटती चली गई है, उसमें नैतिक बोध सिरे से गायब होता गया है। परिणामस्वरूप ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार हो रहा है जो ज्ञान-तत्व से बेखबर है, वह केवल मशीनी यंत्र-मात्र बन रहा है। 'पढ़ाई खत्म/सीखा कुछ भी नहीं/सभ्य समाज!' यहाँ समाज और शिक्षा दोनों पर करारा व्यंग्य किया गया है। आज जो शिक्षा दी जा रही है, उसका चरित्र ऐसा ही है 'ज्ञान विहीन/जानकारी विपुल/अद्‌भुत शिक्षा!' गौरतलब है कि इक्कीसवीं सदी ज्ञान के विस्फोट की सदी है, विकास की सदी है। इस सदी में शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, नैतिकता, मानवता अर्थात समस्त उदात्त मानवीय-मूल्य और गुण निरंतर तिरोहित होते जा रहे हैं। इसके बरक्स अमानवीयता, क्रूरता, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अपसंस्कृति बढ़ती जा रही है-'21 वीं सदी/खो रही पहचान/इंसानियत।' निश्चय ही इंसानियत के समक्ष यह बड़ा संकट है। मानव-मूल्य जिस प्रकार खंडित होते जा रहे हैं, आचार-विचार में परिष्कार की बजाय दोहरापन और कांइयापन बढ़ता जा रहा है, वह चिंत्य है। आपसदारी का अभाव, दिखावापन, संवेदना का सिकुड़ता दायरा किसी भी सभ्य समाज की निशानी नहीं माना जा सकता।

अवस्थी जी के हाइकु में भाव और शिल्प दोनों पक्षों का ध्यान रखा गया है और भावानुकूल सहज सम्प्रेषणीय शब्दों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने शिल्पगत अनुशासन को बनाए रखने का भरपूर यत्न किया है। भाव और शिल्प के वे पारखी हैं भी। पर, कहीं-कहीं संग्रह के कुछ हाइकु बड़े ही सपाट बन गए हैं। ऐसा लगता है कि वे एक वाक्य के खंड-विन्यास हैं। यथा 'किसी के नहीं/होते जल, पावक/और पवन।' यहाँ क्रियापद भी एक ही है और लगता है यह एक सामान्य गद्य कथन है, यहाँ काव्यगत व्यंजना की कमी झलकती है। ऐसे ही 'पतंग उड़े/कटने से पहले/चंग सरीखी' में काव्यार्थ बाधित लगता है। और कुछ हाइकु तो ऐसे हैं जो सरलीकरण के शिकार हो गए हैं। महज वाच्यार्थ तक सीमित शब्द-विन्यास काव्य-दोष ही कहा जाएगा। यथा-'करने वाला/जाति-धर्म में भेद/सच्चा पाखंडी।' इन पंक्तियों में ऐसी कोई व्यंजना नहीं छिपी है जो काव्यगत औदात्य का बोध कराती हो। इसी प्रकार 'बिना प्रक्रिया/परिणाम-प्रतिक्षा/व्यर्थ प्रयास' में भी अभिधार्थ हावी है, किसी भी प्रकार की जिज्ञासा अथवा चमत्कार का अभाव है।

डॉ. अवस्थी के हाइकु वहाँ कमजोर हो गए हैं जहाँ वे भावाभिव्यक्ति की बजाय शब्दाभिव्यक्ति पर ज्यादा बल देते हैं। कहना न होगा, कवि जब कथ्य से अधिक कथन को महत्व देने लगता है तो इस तरह के दोष स्वाभाविक हैं। मसलन, 'होता है तब/दिया तले अंधेरा/जलता जब।' यहाँ कवि लोक उक्ति 'दिया तले अंधेरा' के भाव को व्यंजनार्थ में परिवर्तित करना चाहता है किंतु अस्पष्टता का शिकार हो गया है। लोक में 'दिया तले अंधेरा' उक्ति जलते दीपक के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, इसलिए अंतिम पंक्ति, जो हाइकु का चरम बिंदु होता है, में 'जलता जब/का क्या औचित्य? इसी तरह 'जीवन धुरा/सत्यमेव जयते/कहाँ खो गई' में 'धुरा' शब्द अटपटा-सा लगता है। अलावा इसके, क्रियापद के प्रयोग में उन्होंने बड़ी मितव्ययिता बरती है, जो कहीं-कहीं खटकता है।

बावजूद इसके, कहना होगा कि मिथिलेश अवस्थी के हाइकु हिंदी में इस विधा की सम्पन्नता के परिचायक हैं। उन्होंने हाइकु के शिल्पानुशासन का भरसक अनुपालन करने का प्रयत्न किया है। उनके भाव और विचार समृद्ध हैं। इसलिए कहीं-कहीं किंचित शिथिलता के बावजूद यह कहना होगा कि डॉ. अवस्थी हिंदी के एक समर्थ हाइकुकार हैं और 'अवगुंजन' की अनुगूँज हिंदी हाइकु- लेखन की सामर्थ्य को उजागर कर रही है।

❖

हिंदी विभाग, रा.तु.म. नागपुर विश्वविद्यालय
अमरावती मार्ग, नागपुर-440033
मोबाइल : 9595239781

बौद्ध साहित्य में वर्णित अलौकिक प्रसंग व देवत्व की अवधारणा

— यशभान सिंह तोमर

सारे चमत्कारों को हटाने के बावजूद भी इस पुस्तक में सिद्धार्थ की माता महामाया द्वारा देखे गए स्वप्न का विवरण है, जिसमें वे छह दाँत वाले सूंड में गुलाबी कमल लिए सफेद हाथी को देखती हैं, जो उनके पास आकर उनके शरीर में उस गुलाबी फूल को स्थापित करता है। बुद्ध के जन्म के पश्चात एक संत पुरुष असित कालदेवल राजा शुद्धोधन के राजमहल पहुँचते हैं, और शिशु को देखकर रोने लगते हैं। वह बताते हैं कि इस बालक में सच्ची महानता के गुण हैं। बालक समस्त ब्रह्मांड के रहस्यों का भेदन करने में समर्थ होगा। महामहिम आपका पुत्र राजनीतिज्ञ नहीं होगा, वरन यह तो सद्धर्म का महान आचार्य होगा। भूलोक और स्वर्ग लोग इसके निवास होंगे। समस्त प्राणी उसके संबंधीजन होंगे।

आज सोशल मीडिया विचार व सूचना संप्रेषण का सशक्त माध्यम बन चुका है, किंतु यदि सोशल मीडिया को माध्यम बना चुनिंदा वर्ग की युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित किया जाए, यह चिंतनीय विषय है। एक उदाहरण हेतु विगत 21 सितंबर को रात्रि 2:29 बजे दिल्ली की एक लेखिका लिखती हैं- "मूलनिवासी संस्कृति सृजन, श्रम, मानव दुखनिवारण, ध्यान और त्याग पर आधारित है। जबकि मनुवादी संस्कृति लोक में भोग सुख, मरणोपरांत स्वर्ग सुख, अंधविश्वास, शोषण, हिंसा, मद्यपान, जुआखोरी, वर्ण व्यवस्था व साम-दाम-दंड भेद नीति पर आधारित है।"

यह पोस्ट एक संकेत मात्र है। दिलीप मंडल, वामन मेश्राम, विजय मानकर, शांति स्वरूप बौद्ध जैसे सैकड़ों नाम है जो फेसबुक आदि सोशल मीडिया पर भ्रम फैलाने में जुटे हैं कि सनातन संस्कृति अवैज्ञानिक है और इनके द्वारा अपनाया गया बौद्ध धर्म एक पूर्ण वैज्ञानिक धर्म है। आश्चर्य तब होता है जब यह ज्ञात होते हुए कि मूल बौद्ध पंथ, सनातन संस्कृति का एक अंग है, सनातन संस्कृति के मूल ज्ञान से वास्ता ही न रखने वाले इन नव बौद्धों को बौद्ध साहित्य की मूल अवधारणाओं के बारे में तो जरा भी यथार्थ ज्ञान नहीं है।

इस आलेख का उद्देश्य बौद्ध ग्रंथों में वर्णित वह प्रसंग है जो स्पष्ट रूप से परिलक्षित करते हैं कि बौद्ध मत की आधारभूमि का धरातल सनातन संस्कृति पर ही टिका है। सर्वप्रथम हम दो शब्दों पर विचार करते हैं, जो सनातन संस्कृति में सांख्य दर्शन व उसके प्रणेता कपिल मुनि से सम्बन्धित हैं। बौद्ध मत में जिन दो समानांतर शब्दों का उपयोग देखने को मिलता है, वे हैं शाक्यमुनि और कपिलवस्तु। ध्वन्यात्मक साम्य स्पष्ट रूप से शाक्यमुनि से सांख्य मुनि तथा कपिलवस्तु से कपिल मुनि की ओर संकेत करता है। अर्थात इतिहास जो भी हो बुद्ध के समय एक भरा पूरा सांख्य संप्रदाय अस्तित्व में होना प्रतीत होता है, जिसमें गौतम बुद्ध अर्थात सिद्धार्थ का जन्म हुआ। सांख्य सम्प्रदाय के प्रणेता के नाम पर ही शाक्य वंश की राजधानी संभवतया कपिलवस्तु कहलाई। इस दिशा में अभी पर्याप्त शोध की आवश्यकता है। यह इस आलेख की विषय वस्तु नहीं है।

इस लेख के माध्यम से हम केवल 'बौद्ध साहित्य में वर्णित अलौकिक प्रसंग व देवत्व की अवधारणा' पर केंद्रित होंगे। सबसे पहले बात करते हैं, जातक कथाओं की। कहा जाता है कि शाक्यवंश में जन्म लेने से पूर्व तथागत के विभिन्न स्थानों पर

विभिन्न कालखंड में अनेकों जन्म हुए। गौतम बुद्ध से पूर्व तथागत के कुल कितने जन्म हुए, इसकी कोई ठीक गिनती उपलब्ध नहीं है। आर्यशूर की संस्कृत भाषा की 'जातकमाला' में कुल 34 जातक कथाएँ हैं, जबकि महावस्तु नामक ग्रंथ में लगभग 80 कथाएँ हैं। थेरवादी सिद्धांत को मानने वाले श्रीलंका, बर्मा व थाईलैंड जैसे देशों में लगभग 550 जातक कथाएँ उपलब्ध हैं।

प्रसिद्ध बौद्ध विज्ञान 'भदंत आनंद कोसलायन' द्वारा संकलित 'जातक कथाएँ' नामक पुस्तक में पहली ही जातक कथा में भूत प्रेत तो हैं ही, जीवित मनुष्य को मार कर खाने वाले दैत्य भी हैं-'उस कांतर में रहने वाले दैत्यों ने सोचा यदि हम इसके पानी के मटके किसी तरह फेंकवा दें, तो यह लोग पानी के बिना कमजोर पड़ जाएंगे। न ही आगे जा सकेंगे, न पीछे लौट सकेंगे। तब हम इनको बड़ी आसानी से खा सकेंगे।' इन्हीं जातक कथाओं में मृतक शरीर खाने वाले यक्ष भी हैं। कोशल के राजा द्वारा काशी के बोधिसत्व राजा शीलव को पदच्युत कर शमशान में रेत में गाड़ देने पर यह 'यक्ष' द्वारपालों और पहरेदारों के रहते हुए भी अद्‌भुत शक्ति से सीधे शयन कक्ष में पहुँचा देते हैं। इन जातक कथाओं में ब्राह्मणों की एक उचित नक्षत्र में वैदर्भ मंत्र द्वारा रत्न वर्षा कराने की सक्षमता के भी उल्लेख हैं।

इन जातक कथाओं में बोधिसत्व ब्राह्मण व क्षत्रिय सहित सभी वर्णों के मनुष्य के साथ-साथ पशु, पक्षी व वृक्ष आदि रूपों में जन्म लेते रहे थे। आश्चर्य तब होता है जब यह सारे बोधिसत्व मुख्यत: काशी नरेश ब्रह्मदेव के शासनकाल में उन्हीं के राज्य में विभिन्न जातियों प्रजातियों में जन्मते रहते हैं। कई बार तो वह राजा ब्रह्मदेव की पटरानी की ही कोख से ही अलग-अलग नामों के अलग अलग राजकुमारों के रूप में जन्म लेते रहे, तो कई बार ब्राह्मण कुमार के रूप में भी जन्म लेने में उन्होंने कोई परहेज नहीं किया।

हीनयान अर्थात थेरवादी ग्रंथों पर आधारित वियतनामी बौद्ध भिक्षु तिक न्यात हन्ह द्वारा लिखित जीवनी, जो कि हिंदी में 'जहं जहं चरन परे गौतम के नाम से' उपलब्ध है, में महायान संप्रदाय द्वारा वर्णित बुद्ध के चमत्कारों को उपेक्षित करने के बावजूद अनेकों चमत्कारपूर्ण विवरण दिए गए हैं। उदाहरण के लिए नया नया भिक्षु बना अस्पृश्य चरवाहा स्वास्ति जो बुद्ध पुत्र श्रामणेर राहुल का मित्र बन चुका है, कहता है कि मुझे सवेरे की देशना में बुद्ध ने जिन ग्यारह बातों की चर्चा की, याद नहीं रहीं। राहुल बताते हैं कि वे भी इन ग्यारह बातों में केवल नौ बातों को याद रख पाए हैं। सारी की सारी ग्यारह बातें केवल मान्य आनंद को याद हैं, जो स्वयं बुद्ध के चचेरे भाई व शाक्य वंश के राजकुमार हैं। पीपल के पेड़ के नीचे जब स्वास्ति ने पहली बार बुद्ध को ध्यानमुद्रा में देखा था, उसे आश्चर्यजनक ताजगी महसूस हुई। उसका हृदय धड़कने लगा। वह समझ नहीं पा रहा था कि जिस व्यक्ति से वह मिला तक नहीं है, उसके लिए मन में यह विशिष्ट भाव क्यों जाग रहा है। इस पुस्तक का सबसे बड़ा चमत्कार यही है कि जिन गौतम बुद्ध की कोई प्रमाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं है, उनके जीवन के कुछ प्रसंग, जिसमें भारत में चौथे वर्ण से भी बाहर के अस्पृश्यों का दुखद जीवन देखा जा सके, किसी चलचित्र की पटकथा की भाँति लिखे गए हैं। जिस पीपल वृक्ष के नीचे तथागत बैठते हैं, से स्वास्ति व सुजाता के घर से दूर नहीं थे, फिर भी वह एक दूसरे से परिचित नहीं थे। यह बात अलग है कि सुजाता भी उस वन्य क्षेत्र में वनदेवता के पूजन हेतु आती-जाती रहती है, जहाँ स्वास्ति अपने भैंस चराता है।

सारे चमत्कारों को हटाने के बावजूद भी इस पुस्तक में सिद्धार्थ की माता महामाया द्वारा देखे गए स्वप्न का विवरण है, जिसमें वे छह दाँत वाले सूंड में गुलाबी कमल लिए सफेद हाथी को देखती हैं, जो उनके पास आकर उनके शरीर में उस गुलाबी फूल को स्थापित करता है। बुद्ध के जन्म के पश्चात एक संत पुरुष असित कालदेवल राजा शुद्धोधन के राजमहल पहुँचते हैं, और शिशु को देखकर रोने लगते हैं। वह बताते हैं कि इस बालक में सच्ची महानता के गुण हैं। बालक समस्त ब्रह्मांड के रहस्यों का भेदन करने में समर्थ होगा। महामहिम आपका पुत्र राजनीतिज्ञ नहीं होगा, वरन यह तो सद्धर्म का महान आचार्य होगा। भूलोक और स्वर्ग लोग इसके निवास होंगे। समस्त प्राणी उसके संबंधीजन होंगे। मैं इसलिए रोया कि शाश्वत सत्यों का साक्षात्कार करके जब यह उनकी उद्‌घोषणा करेगा, तो उस वाणी को सुन पाने से पहले मैं इस संसार से विदा हो चुका होऊँगा।

बुध की माता महामाया की भाँति उनकी पत्नी यशोधरा भी तीन स्वप्न देखती है। उसने पहले स्वप्न में देखा कि एक सफेद गाय है, जिसके माथे पर लगा हीरा ध्रुव तारे के समान चमचमा रहा है। गाय कपिलवस्तु के बाहर जाने का रास्ता खोजती घूम रही है। इंद्र के सिंहासन से गंभीर घोष हुआ कि यदि तुम इस गाय को रोक नहीं पाए, तो राजधानी में प्रकाश ही नहीं रह जाएगा। हर

कोई उस गाय के पीछे दौड़ रहा था, किंतु कोई भी उसे रोक नहीं पाया। गाय नगर के द्वार तक गई और अदृश्य हो गई। दूसरे सपने में उसने सुमेरु पर्वत पर स्वर्ग के चार देवताओं को देखा जो कपिलवस्तु पर प्रकाश फैला रहे थे। अकस्मात इंद्रासन का झंडा बड़ी जोर से फड़फड़ाता आया और जमीन पर गिर पड़ा। सभी रंगों के पुष्पों की आकाश से वर्षा होने लगी और लोकोत्तर संगीत की ध्वनि राजधानी में भर गई। तीसरे स्वप्न में तीव्र घोष करती हुई आकाशवाणी हुई–वह समय आ गया है, वह समय आ गया है। भयभीत यशोधरा सिद्धार्थ के आसन की ओर देखती है, तो पाती है, कि वह जा चुके हैं। उसके जूड़े में फंसा हुआ चमेली का फूल धरती पर गिर पड़ा है। आसंदी पर सिद्धार्थ जो वस्त्र व आभूषण छोड़ गए थे, वह एक सर्प में परिवर्तित हो गए हैं, और वह सर्प दरवाजे से बाहर रेंग गया।

तिपिटकाचार्य डॉक्टर भिच्छु धर्मरक्षित द्वारा विरचित 'कुशीनगर का इतिहास' के प्रथम प्रकरण में कुशीनगर के विषय में स्वयं बुद्ध इंगित करते हैं कि आनंद इसी स्थान पर मेरी छह बार मृत्यु हो चुकी है। मैं पहले छह बार चार दिशाओं को जीतने वाला शांत, धार्मिक, धर्मराज और स्थिरता को स्थापित करने वाला, सातों रत्नों से युक्त, चक्रवर्ती राजा होकर, यहाँ राज्य कर चुका हूँ। अब सातवीं बार यहाँ मेरा यह शरीरपात हो रहा है। दीर्घनिकाय में सुदस्सन सुत्त और महासुदस्सन जातक के अनुसार कुशीनगर अर्थात कुसिनारा या कुशावती के राजा महासुदर्शन ने चौरासी हजार वर्षों तक अच्छी गति को प्राप्त कर ब्रह्मलोक का राज्य किया। बुद्ध, आनंद को स्वयं बताते हैं कि वह राजा महासुदर्शन कोई और नहीं अपितु स्वयं तथागत थे।

इसी प्रकार 'अठ्ठकथा' के पपंचसूदनी में वर्णित है कि जब जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी के प्रिय शिष्य उपालि गृहपति ने बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और दस गाथाओं से बुद्ध के गुणों को सुनाया तब महावीर स्वामी को मार्मिक आघात पहुँचा। उनके मुँह से गर्म खून निकलना शुरू हो गया। उनके शिष्य अस्वस्थ रूप में उन्हें पावानगरी लेकर आए, जहाँ कुछ दिनों पश्चात उनकी मृत्यु हो गई। महावीर स्वामी के शिष्यों में मतभेद के कारण विवाद हो गया। भिच्छु चुन्द ने आयुष्मान् आनंद को बताया कि 'भन्ते! निगण्ठ नाथपुत्त अभी–अभी पावा में मरे हैं। उनके मरने पर उनके शिष्यों में मानो युद्ध ही हो रहा है। स्पष्ट है कि बौद्ध मत ही नहीं जैन मत भी सनातन संस्कृति के ही भाग रहे हैं, उससे पृथक नहीं।'

संघ के शयनासन का प्रबंध करने वाले स्थविर 'दब्ब' तो जन्म के समय अपनी मृत माता के, जलती चिता में पेट फटने पर, उछलकर घास फूस के ढेर पर गिरे थे। भिक्षुओं के शयन आदि की व्यवस्था करते समय वह ऋद्धिबल से अनेक शरीर हो जाते थे, और प्रत्येक भिक्षु के साथ जाकर अपनी उंगली के ऋद्धिमय प्रकाश से आसन ठीक करके, उन भिक्षुओं को सौंपकर पुनः वेणुवन चले जाते थे। डाह के चलते मेत्तिय और भुम्मजक भिक्षुओं ने उन पर विभिन्न प्रकार के भ्रष्ट आचरण के आरोप लगाए थे। अंततः वह एक दिन तथागत के पास जाकर बोले कि मेरे परिनिर्वाण का समय आ गया है। बुद्ध की आज्ञा से, उन्हें प्रणाम व प्रदक्षिणा कर वह आकाश में उठे, वहीं आसन लगा, बड़े तेज से जलते हुए परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए।

भोट अर्थात तिब्बती भाषा में 'योंङ्–जिन–ये–शेस–रग्यल–मछन' द्वारा अठारहवीं शताब्दी में रचित 'बुद्ध जीवनी' में बुद्ध को पूर्व काल में नरक में यमराज का रथ खींचने वाले के रूप में जन्मा बताया है। एकबार यमराज ने लोहे के त्रिशूल से उनके साथी की छाती पर वार किया तो रक्त की वर्षा हुई और वह दुख से पीड़ित होकर चिल्लाने लगा, तो शास्ता 'बुद्ध' ने यमराज से प्रार्थना की कि वे उनके साथी को मुक्त कर दे, वह रथ अकेले ही खींच लेंगे। तब यमराज ने क्रुद्ध होकर उन पर भी उस लोहे के त्रिशूल से वार किया। इस जीवनी के अनुसार बुद्ध उत्तम निर्माणकाय द्वारा प्राणियों का हित करने के लिए क्षत्रिय या ब्राह्मण, दोनों में से किसी भी जाति में जन्म लेकर कृत्य करते हैं। इन दोनों जातियों को छोड़कर अन्य किसी जाति में जन्म नहीं लेते हैं। कुल मिलाकर बौद्ध साहित्य में सनातन संस्कृति की देवत्व अवधारणा व अन्य अलौकिक प्रसंग विशाल मात्रा में उपलब्ध हैं, जो पर्याप्त शोध की बाट जोह रहे हैं, जिससे 'नव–बौद्धों द्वारा प्रसारित भ्रमों से उत्पन्न सामाजिक वैमनस्यता का समुचित निवारण हो सके।'

❖

एचआईजी–24, केडीए डबल स्टोरी, सीटीआई–शास्त्री चौक रोड,
बर्रा–2, कानपुर–208027, सचलभाष : 9336454204
ई–मेल : yashbhans@gmail.com

वायरस ही वायरस

— गिरीश पंकज

साहित्य में नौ रस होते हैं। मगर अब जीवन में एक नये रस की चर्चा खूब है। इसे वायरस कहते है। वही वायरस, जिससे आज पूरी दुनिया परेशान है; कोरोना वायरस। मैं भी चिंतित हूँ। इसके उपचार के लिए दुनिया खोज में लगी है। और हम होंगे कामयाब एक दिन, लेकिन दुनिया भर में जो किस्म-किस्म के वायरस वर्षों से फैले हुए हैं, पता नहीं उन का उपचार कब होगा? वैसे तो अनगिनत वायरस हैं, लेकिन कुछ के उल्लेख ही यहाँ कर रहा हूँ।

रंगभेद का वायरस : बड़ा खतरनाक वायरस है यह। इसकी चपेट में अनेक देश आते रहते हैं। गोरी चमड़ी वाले अपने रंग पर इतराते रहते हैं। जबकि हमारा गीतकार तो साफ-साफ कहता है, "गोरे रंग पे न इतना गुमान कर / गोरा रंग दो दिन में ढल जाएगा"। लेकिन कुछ कमअक्लों का दिल है कि मानता नहीं। किसी का काला रंग देखा, तो उनके भीतर का घृणा का वायरस सक्रिय हो जाता है और अंदर का दैत्य बाहर आ कर हिंसा का खेल खेलने लगता है। कोरोना वायरस कैसे खत्म हो, इसका प्रयास जारी है, मगर रंगभेद का वायरस कैसे खत्म हो, इसके लिए वर्षों से कोशिश हो रही है। यह वायरस बीच-बीच में प्रकट होते रहता है।

चुगली-वायरस : यह वायरस भीतर-ही-भीतर कुलबुलाते रहता है और मौका पाते ही सक्रिय हो जाता है। किसी को गिराने, खिसकाने के लिए इस वायरस का इस्तेमाल होता है। एक व्यक्ति की बात सुनी नहीं कि फौरन से पेश्तर दूसरे तक पहुँचा दी। बस, दो लोग आपस में भिड़ गए। तो यह वायरस नाक के लिए खतरा है यानी बड़ा ही खतरनाक है। हिंसक किस्म का भी है। लेकिन अनुभव यही बताता है कि यह वायरस बूढ़े, बच्चे और नौजवान, सब में पाया जाता है। और हाँ, कुछ महिलाओं में भी इस वायरस का असर देखने को मिलता है। इस वायरस की दवाई बनाने की कोशिश वर्षों से हो रही है लेकिन अब तक वैज्ञानिक सफल नहीं हो पाए हैं। वैसे पिछले दिनों कुछ वैज्ञानिक उसकी दवा बनाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन एक वैज्ञानिक ने दूसरे वैज्ञानिक के बारे में तीसरे वैज्ञानिक से कुछ चुगली कर दी तो वे सब आपस में ही भिड़ गए और वायरस की दवा बनते-बनते ही रह गई।

अफवाहों का वायरस : इस वायरस की भी कोई दवाई अब तक नहीं बन पाई है। दुनिया वर्षों से इससे पीड़ित है। यह वायरस इतना खतरनाक है कि एक शहर से चलता है और पलक झपकते ही पहुँच जाता है। कोरोना की तरह। और अब तो सोशल मीडिया के माध्यम से भी इस वायरस को फैलाया जाता है। क्योंकि इस वायरस में अद्‌भुत रस है। इस की विशेषता यह है कि यह सुनकर भी फैलता है और इसके बारे में कुछ पढ़ लो, तो भी फैलता है। यह वायरस भी चुगली-वायरस की तरह बड़ा ही विकराल है। कह सकते हैं कि चुगली का बड़ा भाई है। यह वायरस लोगों को भयग्रस्त करके उत्तेजित कर देता है। लोगों को दंगे करने पर भी मजबूर कर देता है। कुल मिलाकर यह वायरस भी अति हिंसक परिणति तक पहुँच सकता है। इसकी भी कोई दवा अब तक नहीं बनी। लेकिन ज्ञानी जन कहते हैं कि जो लोग विवेकचूर्ण का सेवन करते हैं उन पर इस वायरस का असर नहीं होता। हाँ, जो लोग बुद्धि से पैदल होते हैं, उन पर यह वायरस बहुत तेजी के साथ आक्रमण करता है। बिल्कुल पागल कूकुर की तरह। इस वायरस को फैलने से कोई रोक नहीं सकता। कब, कहाँ, कैसे फैल जाए, भगवान ही मालिक है। इसलिए सावधान रहना चाहिए।

लालच का वायरस : यह वायरस भी बगैर दवा के वर्षों से जीवित है। समाज के हर वर्ग को यह वायरस इफेक्ट करता है। लेकिन अनुभव बताता है कि इसका सबसे ज्यादा असर राजनीतिज्ञों पर होता है। उनको जहाँ करोड़ों रुपयों अथवा किसी खास पद का लालच मिला, वे फौरन पलटी मार कर दल बदल लेते हैं। सुबह इस दल में हैं, तो शाम को दूसरे दल में नजर आते हैं। क्योंकि दोपहर तक करोड़ों की डील हो जाती है। और सच कहें तो पैसा भला किसे काटता है? तो... लालच का वायरस भी कोरोना वायरस की तरह फैला नजर आता है।

अंधविश्वास का वायरस : यह भी जब फैलता है, तो बुरी तरह फैलता है। एक शहर में अगर किसी भगवान की मूर्ति दूध पी रही है, तो हर शहर में श्रद्धालु मूर्तियों को दूध पिलाने लगते हैं। फिर सारे तर्क फेल हो जाते हैं। आप लाख समझाइए कि 'सरफेस टेंशन' के कारण मूर्ति के भीतर दूध जा रहा है लेकिन लोगों का दिल है कि मानता नहीं। उनको लगता है कि ईश्वरजी मूर्ति में समाहित होकर उन्हें दर्शन देकर दुग्धपान कर रहे है। अंधविश्वास के इस वायरस के फैलने के कारण कुछ धंधेबाज बाबाओं की निकल पड़ती है। और वे नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे कमाई करते हुए अंततः मुक्ति को प्राप्त होते हैं। इस वायरस से भी मुक्ति का उपाय खोजा जा रहा है। लेकिन अब तक सफलता नहीं मिल पाई है। देखें, शायद नई शताब्दी तक खोज ली जाए।

भूख का वायरस : सुना है कि इस वायरस से दुनिया के नब्बे लाख लोग मरते हैं। और यह सिलसिला बरसों से जारी है। लेकिन इस का उपचार नहीं हो पा रहा है। हालांकि इसकी दवा मौजूद है। किंतु कोई भी इस दवा पर इन्वेस्ट ही नहीं करना चाहता। वैसे दवा बड़ी सस्ती है। इसे हम दान, करुणा और दया आदि नामों से भी जानते हैं। कुछ लोगों को छोड़ दें, तो बाकी लोग इस दवा का उपयोग करके भूख रूपी वायरस को मारना ही नहीं चाहते। इस वायरस से ग्रस्त लोग अपने आप मर जाते हैं। उन लोगों के मर जाने के बाद जब पोस्टमार्टम होता है, तब पता चलता है कि मौत भूख के वायरस से हुई थी। फिर हम उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने का पारंपरिक काम करके धन्य होते हैं। इस वायरस की विशेषता यह है कि इसका असर अमीरों पर बिल्कुल नहीं पड़ता। यह एक गरीब से दूसरे गरीब व्यक्ति तक सीधे पहुँचता है। इसलिए संपन्न व्यक्ति निश्चिंत होकर सड़कों पर टहल सकता है।

बलात्कारी-वायरस : यह वायरस भी बड़ा खतरनाक है। एक जगह कहीं बलात्कार हुआ और उसकी खबर मीडिया की कृपा से इधर-उधर दिन-रात वायरल हुई, तो तत्काल किसी दूसरे शहर में भी बलात्कार की घटना सुनने में आ जाती है। इस वायरस को नष्ट करने के लिए कानून तो बने हुए हैं लेकिन हमारे यहाँ कानून का पालन करना तो अपनी तौहीन समझी जाती है न। लिखा होता है, यहाँ लघुशंका न करें, तो कुछ लोग वहीं लघुशंका करते हैं। कुछ बंदे तो दीर्घशंका करके ही मानते हैं। बलात्कार रूपी वायरस कोरोना या दूसरे वायरसों की तरह ही काफी खतरनाक है। दूसरे वायरस तो व्यक्ति की जान लेते हैं, यह वायरस व्यक्ति की इज्जत भी ले लेता है। इस वायरस से निपटने के लिए महिलाओं को खुद रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने की जरूरत होती है। जैसे ही यह वायरस फैलाने वाले कीटाणु उनके पास आएँ, उनको फौरन वहीं सबक सिखाने की कोशिश की जाए। ऐसा करने से वायरस पास नहीं फटकेंगे। लेकिन कई बार बलात्कारी-वायरस इतने ताकतवर होते हैं कि महिलाएँ चाह कर भी बच नहीं पातीं। इस वायरस को नष्ट करने के लिए कोशिश यही होनी चाहिए कि बच्चों को बचपन से ही नैतिकता का इंजेक्शन लगा दिया जाए ताकि उनमें गलत किस्म वैचारिक-वायरस पनप ही ना सकें।

सुना है, कोरोना वायरस की दवा तो शायद खोज ली गयी है। या खोज ली जाएगी। बाकी वायरस भी शायद धीरे-धीरे नष्ट हो जाएँ।

❖

सेक्टर-3, एचआईजी-2, घर नंबर 2
दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर-492010
मोबाइल : 9425212720, 8770969574

करुणा के दयावान और हास्य वीर

— डॉ. प्रेम जनमेजय

व्यंग्य संप्रेषण के लिए विधा की आवश्यकता व्यंग्य के सभी पाश्चात्य आलोचकों ने स्वीकार की है क्योंकि उनका मानना है कि विधा के अभाव में वह गाली से अधिक कुछ नहीं रह जाता है। रचनात्मकता के अभाव में व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ व्यक्तिगत छींटाकशी के अतिरिक्त कुछ नहीं। उनमें किसी पर कीचड़ उछालने का तो साहस दिखाई देता है पर शोधक का कर्म नहीं। एक व्यंग्यकार के लिए आवश्यक है कि वह व्यक्ति के स्थान पर समूह की विसंगतियों को सामने लाए। हमारा अधिकांश समय मात्र कुछ व्यक्तियों के, लालू जैसों के कैरीकेचर खींचने, लोगों को हँसाने, में व्यतीत होता है। आजकल का अधिकांश व्यंग्य लेखन भांडनुमा व्यक्तित्वों पर अपनी भांडनुमा काव्यात्मक टिप्पणी करके ही व्यंग्य की इति समझ लेता है।

आलोचना व्यंग्य का महत्वपूर्ण तत्व है। इसके बिना व्यंग्य रचना ऐसी ही है जैसे कोई खाली म्यान। या फिर थोथा चना बाजे घना। आपके पास आलोचना की दृष्टि तभी आती है जब आपके पास तार्किक बुद्धि होती है। पर बेलगाम आलोचना दिशाहीन होती है। आलोचना के लिए बुद्धि के साथ साथ विवेक की भी आवश्यकता होती है। विवेकहीन आलोचना अमीर गरीब, सामर्थ्यवान, अभावग्रस्त सभी को एक ही लाठी से हाँकती है। जैसे बैल लाल कपड़े को देखकर बिना सोचे भड़क जाता है, वैसे ही दृष्टिहीन आलोचना चिंतनविहीन होने के कारण भड़कती है। यही कारण है कि वो व्यक्ति को देखती है, प्रवृत्ति को नहीं। ऐसी आलोचना अपशब्द भी होती है। उसका लक्ष्य मजाक होता है। वो अपना लक्ष्य भूल उसे रोचक बनाती है। जिस पर करुणा बरसानी हो उसका मजाक बनाती है।

डेविड वारसेस्टर की एक पुस्तक 'आर्ट ऑफ सटायर' में व्यंग्य के कलात्मक पहलुओं, रचनात्मकता, कहन, तथा उसकी बनावट और बंधान आदि की चर्चा की है। वारसेस्टर का मानना है कि व्यंग्य रचना के निर्माण के दो चरण होते हैं-"पहले लेखक समान्यत: मानवीय आचरण और कभी दैवीय आचरण की आलोचनात्मक प्रस्तुति तैयार करता है। फिर उन टूल का प्रयोग करता है जिनसे आलोचना केवल पाठक की स्मृति का हिस्सा बनती है। आलोचना को साहित्यिक रूप देने के लिए रचनाकार शैली अथवा विधा का माध्यम चुनता है। शैली या विधा के अभाव में रचना वह मात्र संदेश बनकर रह जाएगा और क्षणिक होगा।"

व्यंग्य रचना का लक्ष्य मात्र विसंगतियों का उद्घाटन कर आलोचना करना ही नहीं है, अपितु उस पर प्रहार करना है। यहाँ सवाल उठता है कि इस प्रहार की प्रकृति क्या हो। व्यंग्य अगर हथियार है तो इसके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता भी है। तलवार को लक्ष्यहीन हाथ में पकड़कर घुमाने से किसी भी गला काटकर अराजक स्थिति पैदा कर सकता है तथा स्वयं की हत्या का कारण भी बन सकता है। आज हिंदी व्यंग्य में इस तरह का अराजक माहौल पनप रहा है। इससे व्यंग्य अपने लक्ष्य से भटक रहा है। जिस व्यंग्य को नैतिक तथा सामाजिक यथार्थ की गहराई से जुड़कर, पाठक को सही सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करना चाहिए, वही सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में सतह पर ही घूम रहा है। किसी रचना के लिए जिस वैचारिक चिंतन की आवश्यकता होती है, वह उनकी रचनाओं में से सिरे से गायब है।

व्यंग्य संप्रेषण के लिए विधा की आवश्यकता व्यंग्य के सभी पाश्चात्य आलोचकों ने स्वीकार की है क्योंकि उनका

मानना है कि विधा के अभाव में वह गाली से अधिक कुछ नहीं रह जाता है। रचनात्मकता के अभाव में व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ व्यक्तिगत छींटाकशी के अतिरिक्त कुछ नहीं। उनमें किसी पर कीचड़ उछालने का तो साहस दिखाई देता है पर शोधक का कर्म नहीं। एक व्यंग्यकार के लिए आवश्यक है कि वह व्यक्ति के स्थान पर समूह की विसंगतियों को सामने लाए। हमारा अधिकांश समय मात्र कुछ व्यक्तियों के, लालू जैसों के कैरीकेचर खींचने, लोगों को हंसाने, में व्यतीत होता है। आजकल का अधिकांश व्यंग्य लेखन भांडनुमा व्यक्तित्वों पर अपनी भांडनुमा काव्यात्मक टिप्पणी करके ही व्यंग्य की इति समझ लेता है। मैंने कुछ तथाकथित व्यंग्यकारों को यह कहते हुए अत्यधिक प्रसन्नमुद्रा में पाया है कि जिस राजनेता पर उन्होंने व्यंग्य किया, उसने उन्हें बुलाया, उनकी पीठ थपथपाई और कहा कि लिखते रहिए। राजनीति की गोद में बैठने को उत्सुक व्यंग्यकार, व्यंग्य के प्रति कैसे न्याय कर सकता है, यह मेरी समझ से बाहर है। ऐसे रचनाकार उनकी मिमिकरी करते हैं और इस विश्वास को पाले रहते हैं कि उनके सुधरने से ही देश सुधर जाएगा। सोचा जाए कि क्या उनके सुधरने से देश सुधर सकता है, हमारी राजनीतिक विसंगतियाँ दूर हो सकती हैं। ऐसा व्यंग्य ही कारगर हो सकता है जो व्यक्ति के स्थान पर समूह को निशाना बनाए, क्योंकि उसका लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन है न कि व्यक्तित्व परिवर्तन। ऐसे कैरीकेचर पराश्रित 'व्यंग्यकारों' पर मुझे दया मात्रा आती है क्योंकि वे करुणा के योग्य नहीं हैं।

इसलिए ही संभवत: पैट्रिक मेयर स्पॉक्स ने लिखा– "Indeed the modern critical description of staire suggests the possibility that the staire is indeed not a genre but a literary procedure , not a kind of writing but a way of writing. As procedures it can, of course be used in combinations with other procedures." रोनाल्ड पाल्सन तो स्पष्टत: कहते हैं–" The new criticism also tended to judge poetry by the criticism of organic unity and so the writers on satire in the 1940's and 1950's attempted to distinguish 'staire' as a form from 'satiric' as a genral tone."

जब हम कहते हैं कि व्यंग्य करुणा उत्पन करता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वो करुण रस के द्वारा पाठक में केवल करुणा का संचार करता है। ऐसे में लगेगा कि जैसे वो व्यंग्य के प्रहार को कम कर रहा है। व्यंग्य वही सर्वोत्तम होता है जो जितना ही प्रखर प्रहार करता है तीखी आलोचना करता है। करुणा तो दया की सहोदरा है। और दया विनम्रता का पाठ पढ़ाती है। सत्य की स्थापना के लिए तो महाभारत लड़ना पड़ता है। भीष्म, द्रोणाचार्य आदि के प्रति करुण भाव सम्पन्न को सत्यार्थ करुणा त्याग गांडीव उठाना पड़ता है। व्यंग्य वंचितों के प्रति करुण भाव उत्पन्न इसलिए करता है कि उनकी रक्षार्थ शोषितों पर व्यंग्य बाण छोड़े जा सकें। व्यंग्य में वही करुणा सार्थक है जो विसंगतिपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध व्यंग्य बाण छोड़े।

व्यंग्य प्रघात चिकित्सा में विश्वास करता है न कि अपने ही समाज के एक अंग को विच्छिन्न कर देने में। व्यंग्यकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती यही है कि कैसे वह आलोचनात्मक तथा आक्रोशपूर्ण भाव को प्रघात चिकित्सा में परिणत करे। यहीं प्रश्न उठता है कि क्या उसके इस कर्म से समाज में हो रहा मूल्यों का सड़ाव रुक जाएगा, क्या 'अपराधी' अपने अपराध से बाज आ जाएगा? क्या वर्तमान परिथितियों में ऐसा हो रहा है? क्या राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य कर व्यंग्यकार ने सड़ाव को रोक दिया है? यह सवाल तो पूरे साहित्य से किया जा सकता है। साहित्यकार का काम तलवार पकड़ने का संस्कार देना है न कि तलवार देना।

अपने समय की राजनीतिक शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विसंगतियों पर परसाई नें जो व्यंग्य किए हैं उनमें एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा बिना किसी लाग लपेट के ऐसी विसंगतियों पर प्रहार है, जो मानव विरोधी हैं। एक झोंक में हर किसी पर आक्रमण करते चले जाना परसाई की प्रवृति नहीं है। उनके लेखन में एक गहरी करुणा छिपी है जो पाठक को एक सही चिंतन की ओर मोड़ती है। परसाई की एक रचना है 'अकाल-उत्सव', मैं जब भी इस रचना को पढता हूँ रौंगटे खड़े हो जाते हैं। रचना का शीर्षक ही व्यंग्य की सृष्टि करता है। प्रस्तुत व्यंग्य के द्वारा परसाई की रचनात्मक शक्ति तथा उनकी वैचारिक सोच की झलक मिल जाती है। इस रचना में स्पष्टत: परसाई दबे तथा साधनहीन तबके के साथ खड़े दिखाई देते हैं।

जब परसाई लिखते हैं—"हड्डी-ही-हड्डी। पता नहीं किस गोंद से इन हड्डियों को जोड़कर आदमी के पुतले बनाकर खड़े कर दिए गए हैं। यह जीवित रहने की इच्छा ही गोंद है। यह हड्डी जोड़ देती है। सिर मील भर दूर पड़ा हो तो जुड़ जाता है। जीने की इच्छा की गोंद बड़ी ताकतवर होती है। पर सोचता हूँ यह

जीवित क्यों हैं? ये मरने की इच्छा खाकर जीवित हैं। ये रोज कहते हैं—इससे तो मौत आ जाए अच्छा है।" इस पीड़ा को बिना अपने जीवन का हिस्सा बनाए अभिव्यक्त कर पाना कठिन है। व्यंग्य को हास्य से जोड़ने वाले आलोचक यदि इस रचना में हास्य ढूँढने का प्रयास करेंगे, तो उन्हें निराशा ही होगी। हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के लिए हास्य की बैसाखी को कभी स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि उनके साहित्य में फूहड़ हास्य का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने व्यंग्यकार के रूप में स्वयं को फनीथिंग मानने से भी इंकार किया। ऐसे समय में जब हास्य-व्यंग्य रचनाकार के नाम पर मंच के आकर्षण ये बँधे अनेक रचनाकार, जनता से सीधे जुडने का दंभ पाले व्यावसायिक हो रहे थे, परसाई ने इस मोह को पलने नहीं दिया। जब परसाई लिखते हैं, 'जीने की इच्छा की गोंद बड़ी ताकतवर होती है। ये मरने की इच्छा खाकर जीवित हैं।' तो परसाई करुणाजन्य होकर द्रवित मुद्रा में आँसूखोरों को सावधान करते हैं कि ये दयनीय नहीं हैं, इनमें अटूट साहस है, संघर्षशक्ति है और इसलिए ये मरने की इच्छा खाकर जीवित हैं।

हरिशंकर परसाई की यह व्यंग्य रचना ये भी आश्वस्त करती है कि बिना हास्य के प्रयोग के व्यंग्य रचना संप्रेषणीय एवं सशक्त हो सकती है। इधर व्यंग्य के चेहरे को लेकर अनेक सवाल उठाए जा रहे हैं। कोई इसके दर्पण को दोनों ओर से काला मान बैठा है तो कोई इसे जोकर की भूमिका देकर संतुष्ट है। कोई इसकी 'प्रतिदिन' अखबारों के पन्नों में उपस्थिति से गौरवान्वित है तो कोई इसे कुनैन के साथ खाया जाने वाला लड्डू मानकर प्रसन्न है। कुछ ऐसे भी हैं जो वात्सयायन की निकृष्टम भूमि पर खड़े वेश्यावृत्ति को उद्योग का नाम दे इसके माध्यम से हँसाने को लक्ष्य मान कैसे भी अंग-बेचन प्रक्रिया में सक्रिय हैं। व्यंग्य-जिसे व्यंग्यालोचन के अधिकांश आधुनिक व्याख्याता हास्य-व्यंग्य के रूप में ही देखने के पक्षधर हैं, इसके स्वरूप का निर्धारण करते समय अक्सर असमंजस की मुद्रा में दिखाई देते हैं। कुछ तो एक गणितज्ञ, या फिर कहें कि एक व्यवसायी की, तरह तराजू हाथ में पकड़, एक पलड़े में हास्य का कितना प्रतिशत हो और दूसरे पलड़े में व्यंग्य का कितना प्रतिशत हो, इसका हिसाब-किताब समझाने लगते हैं।

आज हिंदी व्यंग्य का चेहरा बहुत ही धुंधला-सा है। इस धुंधले चेहरे को साफ करना बहुत आवश्यक है क्योंकि हास्य-व्यंग्य के नाम पर रचनाओं का जो उत्पादन हो रहा है वह व्यंग्य के गंभीर और सार्थक रूप के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित कर रहा है। व्यंग्य को मैं सुशिक्षित मस्तिष्क की विधा मानता हूँ और मुझे देखकर कष्ट होता है कि हमारे युवा रचनाकारों की रचनाओं से व्यंग्य के लिए आवश्यक बौद्धिकता गायब होती जा रही है।आज हिंदी व्यंग्य में इस तरह का अराजक माहौल पनप रहा है। इससे व्यंग्य अपने लक्ष्य से भटक रहा है। जिस व्यंग्य को नैतिक तथा सामाजिक यथार्थ की गहराई से जुडकर, पाठक को सही सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करना चाहिए, वही सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में सतह पर ही घूम रहा है।

मेरी रचना मोची भया उदास या राजधानी में गँवार के इस व्यवस्था में जी रहे पीड़ित एवं विवश का चित्रण कर उनके साथ खड़ी है और जो इसके उत्तरदाई हैं उनके विरुद्ध खड़ा होने का आह्वान करती है। इसकी करुणा दया की नहीं मुठभेड़ की माँग करती है।

'मोची भया उदास' के मोची की स्थिति करुणाजनक है, उसकी रोजी रोटी पर प्रश्नचिह्न लग गया है पर वो दया नहीं चाहता है। वे चुनौतियों से निपटने को न केवल तैयार है अपितु उसपर दया कर उसे बेचारा मन दुखियाने वालों से ही मोची सवाल करता है। मोची की रोजी-रोटी पर लगा प्रश्नचिह्न करुणा के योग्य है पर वह दयावान से भिक्षा लेने को तैयार नहीं है। ये मोची असहाय नहीं है, वह हमें निरुत्तर करने की क्षमता रखता है।

व्यंग्य की आवश्यकता उसके प्रभाव, मारक शक्ति एवं भूमिका के साथ-साथ व्यंग्य में आई हँसी के स्वरूप को लेकर पाँच उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूँगा।

पहला उदाहरण

इंद्रप्रस्थ महल में धरातल के समान समतल दिखने वाले जलकुंड में जब दुर्योधन गिर गया तो द्रौपदी ने कहा-'धृतराष्ट्र पुत्र! अर्थात अंधे का पुत्र अंधा।' द्रौपदी ने न केवल व्यंग्यबाण छोड़ा अपितु व्यंग्यात्मक हँसी भी हँसी। यह दुर्योधन के हृदय में विषैले बाण-सी चुभी। एक व्यक्ति पर छोड़े गए इस व्यंग्य बाण के प्रभाव से महाभारत ने जन्म लिया, जिसने सामूहिक नाश किया। अनेक नैतिकताएँ होम हुईं। मानवीय मूल्य क्षरित हुए। धर्म और अधर्म पांडवों और कौरवों, दोनों ही ओर था—कहीं कम कहीं अधिक। यह व्यंग्य व्यक्ति पर था प्रवृति पर नहीं। इस

व्यंग्य में हास्य मिश्रित था पर वो निश्छल या निर्मल नहीं था। वो हँसी व्यंग्य की हँसी थी।

दूसरा प्रसंग रामचरित मानस से है

मैंने कहा कि व्यंग्य विवशताजन्य हथियार है। वन गमन के समय राम सीता को वन जाने से रोकने के लिए अनेक कष्टदायक परिस्थितियों का वर्णन करते हैं। सीता राजमहलों में पली हैं अत: राम यह भी कहते हैं-

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना। चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिध्र भारे।

इस पर सीता जैसा आदर्श पात्रा कहता है-मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।

यहाँ व्यंग्य उस प्रकार आहत नहीं कर रहा है जैसा द्रौपदी के व्यंग्य वाक्य ने किया। पर सीता वन गमन के लिए अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करती है। पर मेरे विचार से प्रभाव इस वाक्य का होता है और राम कहते हैं-'बेगि करहु बन गवन समाजू।' यहाँ भी लक्ष्य व्यक्ति है पर व्यंग्य महाभारत का कारण नहीं बन रहा है।

तीसरा प्रसंग भ्रमरगीत से है

सूरदास के भ्रमरगीत में गोपिकाएँ उद्धव से कहती हैं-यह मथुरा काजिर की कोठरी जेहिं आवत तेहिं कारे। आज भी काजर की कोठरी है पर वह मथुरा से दिल्ली आ गई है और उसका काम वही है जो निकल रहा है वह भ्रष्टाचार और घोटालों की कालिख से कारा है। उस समय का सत्य आज का भी सत्य है। जिस-जिस मथुरा में अनैतिक, मानवीय मूल्य विरोधी शासन और शासक होगा यह पंक्ति व्यंग्य करेगी।

चौथा प्रसंग बिहारी के दोहों से है।

रीतिकाल में बिहारी के सतसैया के दोहों की उपमा नावक के तीर से की गई, देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर। जयपुर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह नई रानी के मोह में मोहित हो राजकाज से विमुख हुए तो उन्हें 'टोकने' का साहस किसी मंत्री-संत्री में न था। बिहारी ने एक दोहा लिखा—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बिंध्यों, आगे कौन हवाल।।

इस दोहे ने सकारात्मक भूमिका निभाई और तत्कालीन राज्य को अव्यवस्था से बचाया। व्यक्ति पर व्यंग्य किया गया पर राजहित के लिए। प्रजा की बेहतरी के लिए व्यंग्य का सकारात्मक प्रयोग है।

पाँचवां प्रसंग कबीर की साखी से है

कबीर ने निर्भीक होकर कहा-पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार' और यह भी—'कांकर पाथर जोड़ी के मस्जिद लई बनाय।' कबीर निर्भीक व्यंग्यकार थे। वे सीधे निडर प्रहार करते थे। आजकल के व्यंग्यकार आधे कबीर हैं। वे बचकर प्रहार करते हैं। आज भी जातिवाद के विष में हम डूबे हुए हैं। कबीर का कहा आज भी प्रासंगिक है, यह दीगर बात है कि निर्भीकता डरी हुई है। आज भी विभिन्न कर्मकांडों में लिप्त अनेक संतों, बाबाओं, आश्रमों पर यह उक्ति प्रखर प्रहार करती है।

ऐसे व्यंग्य प्रसंगों से हिंदी साहित्य भरा हुआ है। पर मैंने व्यंग्य के हथियार के रूप में विभिन्न प्रयोग और उसके प्रभाव की दृष्टि से कुछ प्रसंग लिए हैं। इन उदाहरणों से हम हिंदी साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति को समझ सकते हैं। अब देखना हमें है कि हमने द्रौपदी के दृष्टिकोण से व्यंग्य का प्रयोग करना है, तुलसी-सूर की दृष्टि से करना है, बिहारी के दृष्टिकोण से अथवा कबीर के दृष्टिकोण से।

मुझे अक्सर हास्य द्रोही के रूप में चित्रित किया जाता है। मेरे ऊपर आरोप है कि मैं हास्य का अनावश्यक विरोध करता हूँ। और ऐसे में कुछ का मानना है कि बिना हास्य के 'बढ़िया' व्यंग्य की रचना हो ही नहीं सकती है। मेरा मानना है कि हास्य को व्यंग्य की बैसाखी के रूप में प्रयोग न किया जाए। हास्य और व्यंग्य का आधार विसंगति हो सकती है पर इसका उद्देश्य, बंधान, प्रभाव, कहन आदि भिन्न है। हिंदी साहित्य में अधिकांशत: व्यंग्य को हास्य के साथ जोड़कर देखने की प्रवृति है। हास्य और व्यंग्य को देखने का यह एक बहुत ही सरलीकृत रूप है। दोनों का आधार विसंगति है परंतु प्रभाव और प्रक्रिया भिन्न है। दोनो की विधागत आवश्यकताएँ एवं 'टूल' भिन्न हैं।

हास्य और व्यंग्य में मूलभूत अंतर है। मानव जीवन में पहले हास्य तथा तत्पश्चात व्यंग्य प्रविष्ट हुआ।

व्यंग्य-चेतना मनुष्य के पूर्ण बौद्धिक विकास का शंखनाद है। आदि मानवीय मस्तिष्क ने जब पशुत्व से सभ्य, सुसंस्कृत विवेकशील मस्तिष्क तक की यात्रा तय कर ली तो व्यंग्य की उपस्थिति दर्ज हुई। आदि मानव हँसना, रोना, क्रोध, प्रेम आदि जैसी अनेक मानवीय भावनाओं को धीरे-धीरे सहज स्वाभाविक

रूप से व्यक्त करने लगा, परंतु व्यंग्य उसके व्यवहार में तभी आया जब उसकी विवेकयुक्त बौद्धिक चेतना का विकास हुआ। व्यंग्य मूलत: सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा है। यह एक सायास अभिव्यक्ति है। अपने आदिकाल से मानव-मन को विसंगतियों पर हँसी आती थी पर धीरे-धीरे विसंगतियाँ उसे विद्वेलित करने लगी और उसके विवेकशील मस्तिष्क ने व्यंग्य का हथियार के रूप में प्रयोग किया। हास्य एक सहज स्वाभाविक मनोभावना है जबकि व्यंग्य बौद्धिक प्रक्रिया का सायास प्रयास। हास्य में निश्छलता, मृदुलता, सहजता आदि अपेक्षित है जबकि व्यंग्य अपने स्वभाव में आक्रामक, सायास एवं बौद्धिक आधर ग्रहण किए हुए होता है। व्यंग्य कृति की सबसे बड़ी विशिष्टता उसकी कथावस्तु है। इसका कथानक बिम्बात्मक हेाता है। बिम्ब-प्रधान श्रृंखलायुक्त क्षेपकों का प्रयोग व्यंग्य को उपन्यास, कहानी और निबंध आदि से भिन्न करता है। इन रचनाओं में कथासूत्र अथवा निबंध-तत्व के स्थान पर बिम्बों की संरचना विसंगति चित्रण को मुख्य मानकर व्यंग्य रचना का सृजन करती है। कथानक में क्षेपकों का यह प्रयोग एक नए आयाम को सामने लाता है।

मेरी एक व्यंग्य रचना है, 'हँसो हँसो, यार हँसो!' इस रचना में मैंने अपनी हास्य-द्रोह की 'विवशता' का स्पष्टीकरण-सा देने का प्रयत्न किया है।

"वे बोले-हँसो प्यारे हँसो। हँसना हर तरह के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। जो जितना हँसता है, उतना ही समृद्ध होता है। तुम तो हर समय गुस्साए रहते हो। कभी महँगाई, कभी किसी के बलात्कार, कभी किसान की आत्महत्या पर, गुस्साए ही रहते हो। तुमको मैंने कभी हँसते नहीं देखा। हँसो यार हँसो। बलात्कार हुआ है तो कानून देखेगा, पुलिस देखेगी। किसान ने आत्महत्या की तो सरकार की सरदर्दी। तुम क्यों भए उदास। .. हँसा करो यार...

मैंने कहा-हँसता तो हूँ...

-तुम हँसते हो? खाक हँसते हो। तुम्हारी हँसी तो सूई चुभोती है। तुम जैसे लोग तो हँसना ही भूल गए हैं। हर समय टेंसियाए रहते हैं।

मैंने कहा-'हाँ ठीक कहा, हम लोग हँसना भूल गए हैं, अपने पर हँसना भूल गए। कभी आप अपने पर हँसे हैं?'

-अपने पर! अपने पर हँसने का कभी टाईम नहीं मिला। वैसे, जब तुम्हारे जैसे लोग हों तो अपने पर हँसकर टाईम क्यों वेस्ट करें। प्यारे, हम सुबह पार्क में हँसते हैं, फिर अखबार में चुटकले पढ़ हँसते हैं। आजकल तो टी वी की न्यूज तक हँसाती है। इतने कमेडी चैनल हैं चौबीसों घंटे हँसाते रहते हैं। जब दूसरों पर हँसने का बाजार गर्म हो तो अपने पर हँसकर नुकसान क्यों उठाया जाए?'

"कमेडी चैनल में आपको हँसी आती है? औरत का सरे आम मजाक उड़ाया जाए, कोई पेंट के उपर लँगोट पहनकर आ जाए या किसी का कच्छा उतर जाए, आपको हँसी आती है!"

और हँस न पाने की अपनी कमजोरी को रेखांकित करते हुए कहता हूँ—डरा आदमी हँस भी कैसे सकता है?

इस सबके बावजूद वो मुझसे कहते हैं कि हँसो। मैं आत्महत्या करते किसानों का हाल पूछता हूँ तो वे देश के अमीरों के फोटो दिखाकर कहते हैं कि देश का विकास हो रहा है, हँसो। मैं लुटी-पिटी औरत की इज्जत ढँकता हूँ तो वे कहते हैं कि बार बालाओं संग नाचो और हँसो। मोटा आदमी हाँफ-हाँफ कर चलता है, मुझे दया आती है पर वे कहते हैं कि हँसो।

आजकल का समय मुझे हँसने नहीं देता है। हँसता हूँ तो लगता है जैसे कोई अपराध कर रहा हूँ।

पर मुझे हँसना पड़ेगा क्योंकि रघुवीर सहाय कह रहे हैं-"हँसो, हँसो जल्दी हँसो!"

व्यंग्य रचना करना सीधा साधा रास्ता नहीं है। ये वो प्रेम का मार्ग नहीं है जहाँ सूधो सनायप बाँक नहीं अपितु ये तो दोधारी तलवार या फिर आग का दरिया है। मेरा मानना है कि व्यंग्य लेखन अन्य विधाओं से भिन्न प्रक्रिया की माँग करता है। व्यंग्य आपको बेचैन अधिक करता है। अधिकांशत: सामयिक घटनाएँ प्रेरक बिंदु होने के कारण व्यंग्य रचना अन्य विधाओं की अपेक्षा अपने जन्म के लिए अधिक जल्दी में होती है। व्यंग्य हथियार है पर कैसा हथियार? यह एक ऐसा हथियार है जो मानवीय मूल्यों के सौंदर्य के लिए बना है। जो गाली नहीं है रचनात्मक विरोध है। जो व्यंग्य कथ्य के धरातल पर चिंतनप्रधान रचनात्मक विरोध नहीं करता वह गाली बनकर रह जाता है और किसी भी दृष्टि से सुंदर नहीं हो सकता। हथियार का प्रयोग कातिल करे और उसका प्रयोग सैनिक करे तो प्रयोग में भिन्नता होती ही है।

भ्रमवश यह माना जाता है कि 'तथाकथित हास्य व्यंग्यकारों का मानव मूल्यों से क्या लेना या देना? हिंदी साहित्य के भारी भरकम हितचिंतक व्यंग्य को अन्य विधाओं की पंगत में बैठाने

को पाप मानते हैं, ऐसा पाप जिसका प्रयाश्चित नहीं हो सकता। व्यंग्य को दिलबहलाव का हल्का साधन माना जाता है और इसे उच्च कोटि के गंभीर साहित्य की श्रेणी से बहिष्कृत किया जाता है। जबकि व्यंग्य लेखन एक गंभीर कर्म है। इसमें दोष तथाकथित उच्च आलोचकों का नहीं है हिंदी व्यंग्य के लेखकों का भी है। पाठकों से मिले अपार स्नेह के कारण वे स्वयं को अलग जीव मान बैठे हैं। अपने व्यंग्य के कुएँ में अपनी प्रतियोगिताएँ रचते हैं, उछलते-कूदते हैं। पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय पृष्ठ पर मिले 'सम्मानजनक स्थान' और संपादकों के निरंतर आग्रह के चलते अधिकांश अपनी मूँछों पर ताव देते हुए मिलेंगे। जिनकी मूँछें नहीं हैं वे अभासित ताव देते हुए मिलेंगे। आजकल का समय ही फेसबुक जैसी आभासित दुनिया, आभासित मित्रों आदि का है तो मूँछों ने क्या अपराध किया है कि वे आभासित नहीं हो सकतीं। इस 'सम्मान' ने जहाँ एक ओर व्यंग्यकार को अह्म से भर दिया वहीं उसे तत्कालीन विसंगतियों का टिप्पणीकार बना दिया। रचना के लिए आवश्यक चिंतन रचना में धूमिल होने लगा और फटाफट चार पाँच सौ शब्दीय टिप्पणियाँ प्रकाशवान होने लगीं। स्तंभ लेखन बुरा नहीं है। ये आमजन से जुड़ने का सशक्त माध्यम है। एक बहुत बड़ी ताकत है। पर इसके प्रयोग में उतनी ही बड़ी सावधनी की आवश्यकता है। दीपावली पर छोटे-मोटे फुस्सा बम चलाने में इतनी सावधनी की आवश्यकता नहीं पड़ती है जितनी एटम बम का प्रयोग करने में।

आज सबसे बड़ी सावधानी यह है कि व्यंग्यकार पहले स्वयं को 'केवल और केवल' व्यंग्यकार न समझकर साहित्यकार समझे और माने कि उसके भी वही समाजिक सरोकार हैं जो एक साहित्यकार के होते हैं। तभी वह 'मानव मूल्य और साहित्य' जैसे गंभीर विषय की गहराई समझ पाएगा और इस विमर्श में हिस्सेदारी निभा पाएगा। मेरे विचार से न तो कोई विधा महत्वपूर्ण होती है और न ही कोई माध्यम, महत्वपूर्ण होती है विषयवस्तु। पहले आता है कि आप कहना क्या चाहते हैं और बाद में आता है कि आप उसे कहते कैसे हैं। चाहे वो कवि हो, कहानीकार हो, नाटककार या व्यंग्यकार-सभी हैं तो मूलत: साहित्यकार। व्यंग्य-लेखन साहित्य लेखन से अलग की वस्तु नहीं है। क्या व्यंग्यकार के सामाजिक सरोकार वही नहीं हैं जो एक कथाकार, कवि या नाटककार के हैं? हाँ, व्यंग्य लेखन अन्य विधाओं से भिन्न प्रक्रिया की माँग करता है। व्यंग्य आपको बेचैन अधिक करता है। अधिकांशत: सामयिक घटनाएँ प्रेरक बिंदु होने के कारण व्यंग्य रचना अन्य विधाओं की अपेक्षा अपने जन्म के लिए अधिक जल्दी में होती है। व्यंग्य लेखन की धार उस भाषा में निहित है जो आपके ताकतवर कथ्य का भार वहन करने की क्षमता रखती हो। भाषा को आप ऐसी मिसाइल मान सकते हैं जो ताकतवर हथियारों को लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक होती है। व्यंग्य के इस हथियार को यदि भाषा वहन नहीं कर सकती और इसे लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकती तो महत्वहीन है। इसके विपरीत यदि आपकी मिसाइल लक्ष्यबेधी है पर उसके माध्यम से भेजा गया हथियार लक्ष्य पर लगकर फुस हो जाता है तो मिसाइल की ताकत का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

वर्तमान सदैव चुनौतीपूर्ण रहता है। अतीत के ट्रैप से बचना अतिरिक्त श्रम एवं खुले मस्तिष्क की मांग करता है। अतीत हमें 'सुविधा' देता है कि हम उसके स्वर्णिम चश्मे को पहन कोल्हू के बैल बने रहें और बनी बनाई लीक पर चलते हुए अपने आसपास घटित हो रहे वर्तमान के संघर्ष को नकारते रहें, दुतकारते रहें। सावधानी की आवश्यकता हर युग में होती है-चाहे वह सतयुग, द्वापर या त्रेता हो। आप घर को जितना भी बुहार लें कूड़ा पुन: अवतरित हो जाता है। उजाला प्रदान करता हुआ दीपक अपने नीचे अंधेरा पालने को अभिशप्त है। हर युग का कूड़ा छनता है। हिंदी व्यंग्य के वर्तमान को समझने के लिए हमें इसे पढ़ना होगा। अपनी अनपढ़ता छिपाने के लिए रीतिकालीन आलोचकों की तरह अतीतोन्मुखी होकर व्यंग्य के वर्तमान को नहीं समझा जा सकता है। यह व्यंग्य विमर्श का सशक्त दौर है। बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के कारण उपजी विसंगतियों को उद्घाटित करने वाली रचनाओं के माध्यम से अपने समय को पढ़ने का दौर है। यदि हम गांधारी की तरह, 'पतिव्रत धर्म' के पालन के लिए, जबरन पट्टी बाँध लेंगे, वर्तमान को अनदेखा करेंगे तो हमारी सीमित सोच ऋणात्मक प्रश्न पैदा करेगी ही। बदबू हमें अपने गिरेबां से आ रही होगी और घोषणा करेंगे कि दूसरे का गिरेबां बदबूदार है।

❖

73, साक्षरा अपार्टमेंट्स
ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
दूरभाष : 011-47023944, मोबाइल : 9811154440

संगीत की जननी-भारत भूमि

— डॉ. प्रकाश चंद्र गिरि

नाद के भी अनाहत और आहत, दो प्रकार हैं। अनाहत नाद सृष्टि में व्याप्त है जिसे योगी जन ही विशेष साधना के द्वारा सुन सकते हैं। समाधि की स्थिति में वही ओमकार या प्रणव नाद है। वही अनाहत नाद वैदिक चिंतन से गोरख और कबीर के यहाँ आते आते अनहद नाद हो जाता है। वैदिक साहित्य में नादबिंदु उपनिषद में इस पर विशद विचार हुआ है जहाँ बताया गया है कि अंतर्यात्रा के द्वारा जब बाहरी ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं तब भीतर नाद का श्रवण प्रारम्भ होता है। अभ्यास और साधना की तीव्रता के अनुसार बादलों की गड़गड़ाहट, समुद्र का गर्जन, मृदंग, घंटा, बाँसुरी, शंख, वीणा, भ्रमर गुंजार आदि अनेक रूपों में इस नाद का अनुभव होता है। इस आंतरिक अनुभव के फलस्वरूप ही भारत के मंदिरों में घंटा, शंख, वीणा और मृदंग आदि वाद्य यंत्रों का आविष्कार हुआ।

जिस प्रकार सच्चे अर्थों में उत्कृष्ट जीवन शैली और आदर्श मानव जीवन के ज्ञान का स्वर सर्वप्रथम भारतभूमि से ही फूटा और संसार में प्रसारित हुआ उसी प्रकार संगीत के ज्ञान के लिए भी संसार को भारत का ऋणी होना चाहिए। भारत के वैदिक साहित्य में संचित ज्ञानराशि, मानव जीवन को प्रकृति के साथ सहकार व सामंजस्यपूर्ण शैली और चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के द्वारा तार्किक व विवेकसम्पन्न मार्ग की ओर प्रेरित करती है। पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा वस्तुतः हर देश, काल व परिस्थिति में मानव के जीवन यापन का आदर्श चिंतन है। पाँच ज्ञानेंद्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ व त्वचा) और पाँच कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर, वाणी, गुदा व शिश्न) का नियंत्रक मन, प्राचीन भारतीय चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वैदिक ऋषियों के यहाँ जीवन को सुख-शांति पूर्ण ढंग से व्यतीत करते हुए अंततः मोक्षलाभ ही मूल उद्देश्य रहा है जिसके लिए मन पर नियंत्रण या मनोनिग्रह, परम आवश्यक बताया गया है। वैदिक चिंतन में मन को ही बंधन और मोक्ष दोनों का एकमात्र कारण सिद्ध किया गया है। मन की अवधारणा विशुद्ध भारतीय अवधारणा है। अंग्रेजी या विश्व की अन्य अनेक भाषाओं में मन के लिए उपयुक्त शब्दों का अभाव है। माइंड शब्द से प्रायः मस्तिष्क या बुद्धि का ही बोध होता है तथा मनोविज्ञान के अर्थ में सायकोलोजी भी बहुत बाद की बात है। यद्यपि आत्मा के लिए अंग्रेजी का सोल या अरबी-फारसी भाषा समूहों में रूह की विद्यमानता है किंतु मन न बुद्धि है न आत्मा। यह दसों इंद्रियों का स्वामी है और साधने पर बुद्धि और आत्मा दोनों से जोड़ने में सक्षम है। इसीलिए वैदिक चिंतन में अनेकशः मन को शिव संकल्प से युक्त करने की कामना और प्रार्थना है। बौद्ध दर्शन में भी मन की सत्ता को स्वीकारते हुए उसी के द्वारा धर्माचरण की संभाव्यता बताई गई है। यह विषय अपनी दार्शनिकता और गूढ़ता के नाते अलग से विशद विवेचन की अपेक्षा रखता है।

वैदिक चिंतन में मन को नियंत्रित करने के लिए योग, ध्यान, भक्ति आदि अनेक उपाय बताए गए हैं किन्तु इस क्रम में नाद का अनुसंधान विशिष्टतम है। भारत की सभी विद्याओं के आदि स्रोत भगवान शंकर ने मनोनिग्रह के सवा लाख साधनों में नाद साधना को बहुत महत्वपूर्ण बताया है—

'इंद्रियाणाम मनो नाथो, मनोनाथस्तु मारुत:

मारुतस्य लयो नाथ:, सलयो नाद माश्रित:'

अर्थात इंद्रियों का स्वामी मन है, मन का स्वामी वायु है, वायु का स्वामी लय है और लय, नाद के आश्रित है।

नाद के भी अनाहत और आहत, दो प्रकार हैं। अनाहत नाद सृष्टि में व्याप्त है जिसे योगी जन ही विशेष साधना के द्वारा सुन सकते हैं। समाधि की स्थिति में वही ओमकार या प्रणव नाद है। वही अनाहत नाद वैदिक चिंतन से गोरख और कबीर के यहाँ आते आते अनहद नाद हो जाता है। वैदिक साहित्य में नादबिंदु उपनिषद में इस पर विशद विचार हुआ है जहाँ बताया गया है कि अंतर्यात्रा के द्वारा जब बाहरी ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं तब भीतर नाद का श्रवण प्रारम्भ होता है। अभ्यास और साधना की तीव्रता के अनुसार बादलों की गड़गड़ाहट, समुद्र का गर्जन, मृदंग, घंटा, बाँसुरी, शंख, वीणा, भ्रमर गुंजार आदि अनेक रूपों में इस नाद का अनुभव होता है। इस आंतरिक अनुभव के फलस्वरूप ही भारत के मंदिरों में घंटा, शंख, वीणा और मृदंग आदि वाद्य यंत्रों का आविष्कार हुआ। संगीत के संदर्भ में श्रवणप्रिय ध्वनि को ही नाद की संज्ञा से विभूषित किया गया है। अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट और कृत्रिम नाद के ये पाँच प्रकार हैं। 'न' प्राणवायु वाचक तथा 'द' अग्निवाचक है। संगीत के लिए उपयोगी नाद बाइस श्रुतियों व पाँच विकृत स्वरों तथा सात शुद्ध स्वरों में विभाजित है। स्वर की गरिमा के बोध के लिए मनीषियों ने स्वरों के कुल, जाति तथा वर्ण आदि पर भी विचार किया है जो बहुत रोचक है।

सात स्वरों में षडज, गांधार और मध्यम देवकुल के हैं। पंचम, पितृ कुल से सम्बद्ध है। ऋषभ और धैवत की गणना मुनिकुल में है तथा निषाद को दैत्य कुल का माना गया है। जाति विचार के अनुसार शुद्ध स्वर षडज, मध्यम और पंचम-ब्राह्मण य ऋषभ और धैवत-क्षत्रिय या गांधार और निषाद-वैश्य जाति के तथा विकृत स्वर शूद्र जाति के हैं। यहाँ यह स्पष्ट होना आवश्यक है कि कुल और जाति के ये प्रसंग सामान्य जीवन में प्रचलित कुल और जाति के अर्थों से भिन्न हैं तथा स्वरों के सूक्ष्म अनुभवों पर आधारित हैं। वर्ण विवरण में षडज का वर्ण कमल जैसा लाल, ऋषभ सुनहरे रंग व लालिमायुक्त, गांधार सुवर्ण जैसा पीला, मध्यम सफेद, पंचम काला, धैवत सामान्य पीत तथा निषाद बहुरंगी वर्ण का होता है। 'संगीत पारिजात' के रचयिता पंडित अहोबल ने अपने समाधिस्थ अनुभव के आधार पर संगीत के सात सुरों में सात रंगों की बात कही थी। पाश्चात्य जगत में सैकड़ों वर्षों बाद अंग्रेज वैज्ञानिक सेडले टेलर ने अपने प्रयोगों द्वारा ध्वनि और आवाज के रंगों की बात को प्रमाणित किया। भारतीय चिंतन में सात की संख्या का बहुत महत्व है। भारतीय तांत्रिक वाङ्मय के अनुसार मनुष्य के सात शरीर होते हैं। स्थूल शरीर, आकाश शरीर, सूक्ष्म शरीर, मानस शरीर, आत्मिक शरीर, ब्रह्म शरीर तथा निर्वाण शरीर। इसी प्रकार महर्षि पतंजलि ने मानव शरीर में सूक्ष्म रूप से विद्यमान मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार आदि सात चक्रों की बात कही है। सम्पूर्ण भूमंडल को आच्छादित किए रहने की नाद-सामर्थ्य का ध्यान कर मनीषियों ने सात स्वरों की सात महाद्वीपों के रूप में भी कल्पना की है। षडज की जम्बू द्वीप, ऋषभ की शाकद्वीप, गांधार की कुशद्वीप, मध्यम की क्रौंचद्वीप, पंचम की शाल्मली द्वीप, धैवत की श्वेतद्वीप तथा निषाद की उत्पत्ति पुष्कर द्वीप में हुई है। वैदिक चिंतन में सातों स्वरों के ऋषि तथा छंद पर भी विचार हुआ है। स से नि तक सात स्वरों के द्रष्टा ऋषि क्रमश: अग्नि, ब्रह्मा, चंद्रमा, विष्णु, नारद, तुम्बुरु और कुबेर हैं। सात स्वरों के छंद क्रमश: अनुष्टुप, गायत्री, त्रिष्टुप, बृहती, पंक्ति, उष्णिक तथा जगती हैं। संगीत में प्रयुक्त इन सात स्वरों द्वारा सुधीजन नाद की उपासना करते हैं। इन सात स्वरों में हमें केवल एक स्वर अनाहत का आभास देता है जिसे विद्वान लोग स्वयंभू गांधार कहते हैं।

नाद और लय 'गिरा अर्थ जल वीचि सम' या शिव-शक्ति की भाँति अभिन्न हैं। ताल के लिए ग्रंथों में त को शंकर तथा ल को पार्वती कहा गया है। शिव के तांडव तथा पार्वती के लास्य के प्रथम अक्षरों को लेकर ताल शब्द बना है। आहत स्वरों से रचित गायन, वादन तथा नृत्य सभी ताल में प्रतिष्ठित होते हैं। तालों की संकल्पना और विस्तार का आधार भारतीय चिंतन में मान्य सभी विद्याओं और कलाओं के आदि स्रोत भगवान शंकर का डमरू माना गया है। डमरू को अवनद्ध वाद्यों में प्रथम माना गया है। भारतीय मिथकों में वर्णित प्रसंगों के अनुसार भगवान शंकर ने दुष्ट राक्षस गजासुर के वध के उपरांत उसी के चमड़े

से अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया था। समय के साथ अवनद्ध वाद्यों का परिवार भी विस्तृत होता गया। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित डमरू, ढक्का, पटह, प्रणव, भेरी, काहल, दुंदुभी, मर्दल, मुरज, मृदंग आदि संस्कृत नामों के साथ लोकभाषा के गुझु, हुलक, हुड़का, डफ, ढोल, नगाड़ा, खंजड़ी, डफली, ताशा और दमामा आदि अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मिलता है। भारतीय वैदिक चिंतन में संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है। संगीत लोकरंजक होने के साथ भवभंजक भी है। लोकरंजन के तत्वों के नाते इसकी गणना ललित कलाओं के अंतर्गत की गई। संगीत के गायन, वादन तथा नृत्य तीन अंग हैं किंतु इसमें गायन सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह प्रकृतिप्रदत्त है। मनोभावों का अभिव्यंजक संगीत, कंठ से बहिर्गत हुआ। भाषा के शब्दों ने भाव विकास की पुष्टि की। स्वर और शब्द के समागम से प्रवाहित संगीत सरिता की धारा विभिन्न वाद्यों के सहयोग से वेगवती हुई। मात्रा और ताल के नियामक अवनद्ध वाद्यों ने उक्त सरिता में सीढ़ी और घाट की सुविधा प्रदान की। आहत नाद के प्रवाह को संयमित करने के उद्देश्य से विविध वीणाओं का विकास हुआ। एक तंत्री, शत और सहस्र तंत्री वीणाओं के प्रयोग द्वारा श्रुति, स्वर, ग्राम और मूर्च्छना आदि का निर्भ्रान्त निर्धारण हुआ। गायन, स्वर के साथ शब्दाश्रयी भी है अत: गेय साहित्य का विकास हुआ। वेद की ऋचाएँ समाधिस्थ ऋषियों के द्वारा सुने जाने के कारण श्रुति कहलाईं। इस प्रकार प्रारंभिक गेय साहित्य श्रुतियों को ही कहा जाना चाहिए। शास्त्रों में संगीत की दो प्रमुख धाराएँ मानी गयी हैं। मार्गी तथा देशी। मार्गी अथवा वैदिक संगीत भवभंजक है। देशी संगीत का जन्मस्थान मनुष्य का मन है। स्थान भेद से मानव क्षेत्रीय प्रभाव से प्रभावित रहा है अत: देशी संगीत में लोकरंजन के तत्व विविधवर्णी हैं। देशी संगीत के उपासकों ने भाव अभिव्यक्ति में समर्थ विशिष्ट स्वर समूह को 'राग' की संज्ञा दी। 'राग' नाम से जाना जाने वाला रूप प्राचीन 'जाति' का ही नामान्तर है। कालांतर में विभिन्न शैलियों के विकास के नाते नामों का भी विकास हुआ। मानव स्वभाव के अनुसार राग के रूप पर विचार करते समय उसके पत्नी-पुत्र आदि की कल्पना की गई। भारत वर्ष में छ: ऋतुएँ होती हैं। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर। इसी प्रकार संगीत के प्राचीन शास्त्रों में मुख्य रूप से छ: राग माने गए और प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियाँ मानी गईं। भैरव राग तथा उसकी पाँच रागिनियाँ भैरवी, वैराटी, मधुमाधवी, सैन्धवी तथा बंगाली। मालकोश राग तथा उसकी पाँच रागिनियाँ तोड़ी, गौरी, गुणकलिका, खंभाती तथा ककुम्भिका। हिंडोल राग तथा उसकी पाँच रागिनियाँ रामकली, देशाखी, ललिता, बिलावली तथा पटमंजरी। राग दीपक तथा उसकी पाँच रागिनियाँ देशी, कुमोदिनी, नट, केदार और कान्हड़ा। राग श्री और उसकी पाँच रागिनियाँ मालश्री, मारू, धनाश्री, वसंत और आसावरी। राग मेघ तथा उसकी पाँच रागिनियाँ टक, मल्हार, गुर्जरी, भूपाली और विभास। इस प्रकार प्राचीन भारतीय संगीत शास्त्र में छ: राग और तीस रागिनियों के परिवार की कल्पना की गई। हालांकि राग-रागिनी पद्धति में मतांतर से कुछ और नाम भी मिलते हैं किंतु इतना निश्चित है कि प्राचीन समय में छ: राग और तीस रागिनियों की मान्यता विद्यमान थी। कालांतर में मानव मन के विस्तार के साथ ही इन राग रागिनियों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी और बीसवीं सदी में भातखंडे जी ने राग रागिनियों के पुराने स्वरूप की जगह दस थाट और उनसे उत्पन्न अनेक रागों का नवीन तार्किक विधान प्रस्तुत किया जो आज भारत के लगभग सभी संगीत विद्यालयों में मान्य हैं और संगीत के नए शिक्षार्थियों को उसी आधार पर शिक्षा दी जाती है।

संगीत की उत्पत्ति संबंधी उपर्युक्त वर्णन, वैदिक वाङ्मय के सिद्धांतों के अनुसार कालांतर में अनेक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में विशद रूप से विवेचित और वर्णित है। यह सहज ही समझा जा सकता है कि सम्पूर्ण संसार में सर्वप्रथम भारतीय वैदिक ऋषियों ने ही संगीत जैसे दिव्य तत्व की खोज की और उस पर चिंतन का इतना पुष्ट और विस्तृत आधार दिया। विश्व के अनेक देशों और सभ्यताओं-संस्कृतियों के अतीत में संगीत पर इतने विस्तृत चिंतन का अन्य कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।

❖

एसोसिएट प्रोफेसर-हिंदी विभाग
एम.एल.के.पी.जी. कॉलेज, बलरामपुर (उ.प्र.)-271201
मोबाइल : 9473593731
Email : drpcgiri@gmail.com

तनाव के लिए तनाव के साथ आदतें जिम्मेदार

— गोपाल कृष्ण

कल मेरे एक मित्र पार्क में मिल गए और साथ में टहलने लगे। थके तो मुँह से साँस लेना शुरू कर दिया। मेरे मित्र एक मित्र ही क्यों, तमाम मित्र ऐसा ही करते रहते हैं। शायद इसलिए कि हम श्वसन क्रिया की प्रासंगिकता नहीं समझते। प्राचीन काल की अपेक्षा उचित श्वसन क्रिया की प्रासंगिकता आज कहीं ज्यादा है। तेज रफ्तार से दौड़ता एवं तनावों से घिरा आज का महानगरीय जीवन जन-मानस को निरंतर रौंदने में लगा हुआ है। प्रौद्योगिकी ने विकास किया और रहन-सहन के भौतिक स्तर में वृद्धि हुई। परंतु समस्त साधनों के वावजूद इंसानी जिंदगी रोग तनाव अवसाद में मानो जकड़ सी गई हो क्योंकि भौतिक सुख में लिप्त मनुष्य स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होता चला गया।

उसका तर्क है कि अपने शरीर पर ध्यान देने का उसके पास समय ही नहीं है। परंतु श्वास तो एक निरंतर प्रक्रिया है। जो समय के साथ ही जीवन पर्यंत चलती है। आवश्यकता है तो केवल श्वसन क्रिया को उचित ढंग से अपनाने की।

अपने दैनिक जीवन में मनुष्य प्राय: उठने-बैठने बोलने और लेटने की विभिन्न गलत मुद्राओं का अनायास शिकार हो जाता है जिससे श्वास का असंतुलन पैदा है। लय नहीं रहती और सांस तेज, अनियमित तथा अव्यवस्थित हो जाती है। इस त्रुटिपूर्ण आदतों के कारण धीरे-धीरे साँस में अवरोध पैदा होता है।

कई लोगों को ऊँचा तकिया लेकर सोने की आदत होती है। इससे गर्दन पर दबाव पड़ता है, श्वास नाल सिकुड़ जाती है और पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन फेफड़ों को नहीं मिल पाती। कापी लोग मुँह से श्वास लेकर मुँह द्वारा ही बाहर निकाल देते हैं। इससे अशुद्ध वायु हमारे शरीर में चली जाती है। इससे शरीर में कई प्रकार की व्याधियाँ उत्पन होने लगती हैं। और नाड़ी तंत्र कमजोर पड़ जाता है। अक्सर देखने में आता है कि लोगों का शरीर बैठते समय झुक जाता है अथवा गर्दन नीचे की तरफ रहती है जो पूरी तरह गलत है। इस अवस्था में श्वास लेने पर श्वास आहार नालिका से पेट में चली जाती है। जिससे कई प्रकार के पेट संबंधी रोग हो जाते हैं। कई व्यक्ति नाक द्वारा जल्दी-जल्दी श्वास लेते और छोड़ते हैं जिससे श्वास गले तक सीमित रह जाती है और फेफड़ों को श्वास नहीं मिल पाती। इस श्वास क्रिया को त्याग कर धीरे-धीरे लंबी श्वास लेना आरभ करें जिससे फेफड़ों को पर्याप्त मात्रा में प्राण वायु मिल सके।

श्वास ही जीवन है। बिना श्वास के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उचित एवं लंबा श्वास मनुष्य को दीर्घायु बनाने के साथ जीवन को निरोग और आनंदित रखता है। योग के चौथे अंग प्राणायाम का उद्देश्य भी श्वसन प्रणाली को अति उत्तम बनाना है।

ईश्वर द्वारा रचित इस सृष्टि में प्रकृति भिन्न-भिन्न रूपों में अपनी मानमोहक छटा बिखेरते हुए मनुष्यों का पोषण करती है। मनुष्य को एक व्यापक दृष्टि एवं जीने की प्रेरणा देती है। सकारात्मक कार्य करने की शक्ति देती है। परन्तु यह तभी संभव है जब मनुष्य स्वस्थ रहेगा, निरोग होगा एवं दीर्घायु होगा और दीर्घ आयु का मूलमंत्र केवल दीर्घ श्वास ही है।

प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व हमारे लिए श्वास लेने की सही विधि को जानना बहुत ही जरूरी है। तो आइए, जानते हैं कि श्वास लेने या श्वसन की सही विधि क्या है?

श्वास लेने की सही विधि

शरीर की समस्त क्रियाओं में से श्वास क्रिया प्रधान है। प्राणायाम योग का चौथा अंग है। चूँकि प्राणायाम से शरीर के श्वसन तंत्र को भी बहुत लाभ होता है, इसलिए बहुत से लोग इसे शरीर को अतिरिक्त ऑक्सीजन प्रदान करने वाला फेफड़ों का व्यायाम मात्र ही समझते हैं। जबकि यह केवल श्वसन व्यायाम ही नहीं है बल्कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म श्वसन के माध्यम से प्राणमय कोष की नाड़ियों, नलिकाओं एवं प्राण के प्रवाह पर प्रभाव डालता है। फलस्वरूप प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक सुख के अलावा मानसिक स्थिरता तो बढ़ती ही है, साथ-ही-मन पर भी अधिकार हो जाता है।

तो आइए, पहले श्वास लेने की सही विधि सीखें।

अपूर्ण या अधूरा श्वास लेने से हमारे शरीर एवं मस्तिष्क में पोषण की कमी हो जाता है। फेफड़ों के निचले भाग में अधिक समय तक दूषित श्वास एकत्रित रह जाता है। वर्तमान में अनेक बीमारियों, जैसे क्षय रोग (टीबी) आदि का एक यह भी कारण है। चुस्त कपड़े आदि दीर्घ श्वास क्रिया में बाधक होती हैं। चूँकि पूर्ण श्वास लिए बिना दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन प्राप्त नहीं किया जा सकता।

श्वास-प्रश्वास : प्राणवायु का नाक के द्वारा भीतर प्रवेश कराना श्वास कहलाता है और कोष्ठ-स्थित वायु का नाक के छिद्रों द्वारा बाहर निकलना प्रश्वास कहलाता है। शरीर में वायु प्राण स्थित है। यह शरीर में चेतना का निर्माण करती है।

हम एक दिन भोजन नहीं करेंगे तो चलेगा। पानी नहीं पीएँगे तो चलेगा, लेकिन आप जरा सोचिए कि क्या आप एक दिन साँस लेना छोड़ सकते हैं...साँस की तो हमें हर पल जरूरत होती है। श्वसन क्रिया से शरीर शक्ति प्राप्त करता है। यदि आपकी श्वास में कोई बाधा है तो सभी अंगों पर इसका असर पड़ता है। श्वास के तेज या धीरे चलने से रक्त प्रवाह और अन्य अंगों की कार्यप्रणाली में दोष उत्पन्न होता है।

प्राणायाम की अनेक विधियों का वर्णन मिलता है जिससे श्वास पुष्ट व स्वस्थ हो और लगातार चले। शरीर की मुख्य नाड़ियों का संचालन श्वास-प्रश्वास से होता है। ये प्रमुख नाड़ियाँ तीन प्रकार की होती हैं। पहली इड़ा, दूसरी पिंगला और तीसरी सुषुम्ना।

पूरी तरह या पूर्ण श्वास लेने की विधि : जब हम साँस लेते हैं तो वायु प्रत्यक्ष रूप से हमें तीन-चार स्थानों पर महसूस होती है। कंठ, हृदय, फेफड़ा और पेट। मस्तिष्क में जाने वाली वायु का हमें पता नहीं चलता। ध्यान करने पर महसूस होता है। कान और आँख में गई वायु का भी कम ही पता चलता है।

श्वसन तंत्र से भीतर गई वायु अनेक प्रकार से विभाजित हो जाती है। यह अलग-अलग क्षेत्र में जाकर अपना-अपना कार्य करके पुनः भिन्न रूप में बाहर निकल आती है। यह सब इतनी जल्दी होता है कि हमें इसका पता ही नहीं चल पाता है। हम सिर्फ इनता ही जानते हैं कि ऑक्सीजन भीतर गई और कार्बन डाईऑक्साइड बाहर निकल आई, लेकिन भीतर वह क्या-क्या सही या गलत करके आ जाती है, इसका हमें कम ही ज्ञान हो पाता है।

जरा यह सोचें कि जो वायु (ऑक्सीजन) हमने भीतर ली, वह कितनी शुद्ध थी? शुद्ध थी तो अच्छी बात है, वह हमारे भीतरी अंगों को भी शुद्ध और पुष्ट करके सारे जहरीले पदार्थ को बाहर निकालने की प्रक्रिया को सही करके आ जाएगी और यदि नहीं तो इसका हमारे शरीर पर बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है।

एक बात और, यदि हम जोर से या बल लगा कर साँस लेते हैं तो तेज प्रवाह से बैक्टीरिया नष्ट होने लगते हैं। कोशिकाओं की रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है। बोन मेरो में नए रक्त का निर्माण होने लगता है। आँतों में जमा मल विसर्जित होने लगता है। मस्तिष्क में जागृति लौट आती है जिससे स्मरण शक्ति दुरुस्त हो जाती है।

न्यूरॉन की सक्रियता से सोचने समझने की क्षमता पुनः जिंदा हो जाती है। फेफड़ों में भरी-भरी हवा से आत्मविश्वास लौट आता है। सोचें जब जंगल में हवा का एक तेज झोंका आता है तो जंगल का रोम-रोम जागृत होकर सजग हो जाता है। ठीक वैसा ही कुछ हमारे शरीर के भीतर भी होता है।

छाती द्वारा श्वसन : इस विधि का अभ्यास बैठकर या चित लेटकर ही करते हैं। छाती और पसलियों का विस्तार करते हुए पूरक कीजिए। आप अनुभव करेंगे कि इस क्रिया से पसलियाँ ऊपर बाहर की ओर उठ जाती हैं। अब रेचक का अभ्यास कीजिए आप अनुभव करेंगे कि इस क्रिया से पसलियों में उतार आ जाता है।

सावधानी : छाती द्वारा श्वसन काल में पेट वाले हिस्से में हलचल न होने दीजिए।

यौगिक श्वसन : छाती द्वारा श्वसन से फेफड़ों में पूरक द्वारा अधिकतम मात्रा में वायु का प्रवेश कराना व रेचक द्वारा अधिकतम वायु का निष्कासन ही पूर्ण या यौगिक श्वसन कहलाता है। इस प्रकार की श्वसन क्रिया ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को इसी विधि से श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए।

पूरक-श्वास अन्दर जाना

रेचक-श्वास बाहर आना

छाती का धीरे-धीरे विस्तार करते हुए फेफड़ों में अधिक-से-अधिक वायु प्रवेश कराइए, यथा सम्भव। फिर क्रमशः पहले छाती और उसके बाद उदर यानी पेट को शिथिल करते हुए रेचक कीजिए। अन्त में उदर के स्नायुओं के संकुचन पर बल डालिए ताकि फेफड़ों से अधिक-से-अधिक वायु निकल सके।

❖

वरिष्ठ योग गुरु एवं प्राकृतिक चिकित्सक
पंजाबी बाग, दिल्ली
मोबाइल : 9899598323

उमेश महादोषी

दरवाजे के उस पार

नाश्ता करके अभी वह उठ भी न पाए कि घर के मुख्य दरवाजे पर खट-खट की आवाज के साथ बाहर से किसी अनजान व्यक्ति की आवाज भी सुनाई दी, ''दरवाजा खोलिए!''

उन्होंने दरवाजे के पाइपों के बीच की झिरी से झाँककर पूछा, ''क्यों, क्या काम है?''

''मुझे इस घर में रहना है।''

''...रहना है..? क्या मतलब तुम्हारा...?''

''इसमें मतलब की क्या बात है? मैंने तो बहुत सरल शब्दों में बताया है कि मुझे इस घर में रहना है। तुम इतनी-सी बात भी नहीं...''

''भई, यह घर मेरा है और इस घर में कोई हिस्सा खाली नहीं है। इसलिए तुम इस घर में नहीं रह सकते...। जाओ कहीं...''

''घर तुम्हारा है तो क्या हुआ! और खाली नहीं है तो खाली हो जाएगा..। तुम दरवाजा खोलो।''

''नहीं, यह दरवाजा नहीं खुलेगा!''

''देखो, अभी मैं तुमसे प्यार-मोहब्बत से बात कर रहा हूँ। मुझे और तरीके भी आते हैं..।''

''तो क्या जोर-जबरदस्ती करोगे? जब मैं तुम्हें अपने घर में नहीं रखना चाहता तो क्यों मेरे पीछे पड़े हो? कहीं और जाकर ढूँढ़ो अपना ठिकाना!''

''कहाँ ढूँढूँ...? तुम्हीं बाहर आकर बता दो।''

''मैं क्यों बताऊँ? इस शहर में, इस मोहल्ले में, इस गली में बहुत से घर...''

तब तक पड़ोस-अड़ोस के जो लोग इस विचित्र संवाद को सुनकर सड़क पर तमाशबीन बन चुके थे, एक साथ उत्तेजित स्वर में चीख पड़े, ''गुप्ता जी, यह गलत बात है। आप अपनी बला हमारे सिर क्यों डाल रहे हो? आप दोनों अपने बीच का मामला आपस में निपटाओ।''

''भाई, मैंने आप लोगों से कुछ नहीं कहा है। यह अजनबी जाने कहाँ से आकर टपक गया है और मेरे साथ जोर-जबरदस्ती कर रहा है। आप लोगों को पड़ोसी होने के नाते मेरी मदद करनी चाहिए।''

''देखा भाइयो! ये आपका गुप्ता कैसे आप लोगों का भी अपमान कर रहा है! मैं इतनी देर से इससे प्यार-मोहब्बत से बात कर रहा हूँ और ये नफरत का भाव प्रदर्शित कर रहा..''

''भाईसाहब, आप ठीक कह रहे हैं। लेकिन यह मसला आपके और गुप्ताजी के बीच का है, आप लोग खुद ही निपटाइये। हमें बीच में मत डालिए।'' बड़े सरल तरीके से लोग अपने-आपको पूरे मामले से अलग रखने की घोषणा करते और 'यह गुप्ता भी अजीब आदमी...' की बड़बड़ाहट हवा में उछालते हुए अपने-अपने बिलों में घुस गये।

गुप्ताजी अवाक् थे!

उधर, बाहर खड़ा वह अजनबी अब पुलिस को बुलाने की धमकी दे रहा है।

❖

जैसी गाथा वैसी कथा

उन तीनों मुस्टंडों की बदतमीजी का अन्दाजा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि उनमें से एक बोला- ''तू माँ है तो माँ की तरह रहा कर!''

दूसरा बोला, ''भैया, यह माँ हो तब न! पता नहीं, इसे तो क्या-क्या...''

तीसरा कैसे पीछे रहता! बोला, ''सब पता है... इन्हें तो जवानी वाली चमक चाहिए! देखते नहीं क्या... कैसी-कैसी चमकीली और भड़कीली साड़ियाँ पहनती हैं आजकल!''

अब बेटे ऐसी मीठी-मीठी बातें करें तो पड़ोसी कहीं क्यों जाए! उनकी बातें सुनकर एक ठिठक गया। बोला, ''ये किसी की माँ हो सकती हैं, मैं तो ऐसा मानता ही नहीं! ये तो...!''

वो बेचारी सुबकने लगी। सुबकती रही... सुबकती रही... रातभर सुबकती रही!

ईश्वर का दिल तक खौल उठा। इतना खौला... इतना खौला... कि सुबह होने से पहले ही चीख पड़ा- ''इतनी बड़ी दुनिया मैंने बनाई, क्या एक भी मर्द बेटा बनकर पैदा नहीं हुआ..!''

❖

121, इन्द्रापुरम, निकट बी.डी.ए. कॉलोनी,
बदायूँ रोड, बरेली-243001, उ.प्र.
मो. 09458929004

मधुदीप

पुत्रमोह

आज दस साल बाद मुझे मेरे लँगोटिया दोस्त का खत मिला है। चौंकिये मत! समय कभी-कभी बेरहम होकर लँगोटियों के बीच भी दीवार बन जाता है। खैर, इस किस्से को यहीं छोड़कर मैं इस खत को ही आपके सामने रख देता हूँ।

प्रिय भाई राघव!

दस साल के लम्बे अरसे के बाद आपको खत लिख रहा हूँ। समय बहुत बलवान होता है, नहीं तो साठ साल की दोस्ती क्या एक झटके में टूट सकती थी! आप तो बिलकुल सही थे दोस्त लेकिन मैं ही उस समय पुत्रमोह में अंधा हो गया था। आपने तो मेरा ही भला चाहा था मगर मैं न जाने कैसे कह गया था कि यदि आपकी भी कोई संतान होती तो आप भी वही करते जो मैं कर रहा हूँ। सुनकर आप चुपचाप वहाँ से चले गए थे। उस समय शायद मैं आपकी पीड़ा नहीं समझ सका था लेकिन आज महसूस कर सकता हूँ कि मैंने आपको कितना बड़ा आघात पहुँचाया था। आप चुपचाप उस पीड़ा को सहते रहे लेकिन एक शहर में रहते हुए भी आपने कभी लौटकर मुझे इसका उत्तर नहीं दिया। काश! आप लौट आते या उसी समय मुझे भला-बुरा कह लेते तो आज मुझे स्वयं पर इतनी ग्लानि न होती।

आपने उस समय सही कहा था मेरे दोस्त! हमारा भविष्य हमारे अपने हाथ में होता है। काश! उस समय मैंने आपका कहा मानकर अपना सब-कुछ अपने इकलौते पुत्र के नाम न किया होता तो मैं इस समय आपको यह पत्र शहर के वृद्धाश्रम से न लिख रहा होता। दोस्त! मैं चाहता हूँ कि आज आप मुझे माफ कर दो और एक बार यहाँ आकर मेरे गले से लग जाओ। आपको हमारी लँगोटिया दोस्ती का वास्ता है मेरे दोस्त!

आपका पुराना अपना, चेतन।

नीचे वृद्धाश्रम का पता लिखा है। पाठको! मैं पत्थर दिल नहीं हूँ। मेरी आँखों से अविरल आँसू बह रहे हैं और मेरी कार उस वृद्धाश्रम की ओर जा रही है।

❖

टीस

पूर्व दिशा में धीरे-धीरे दिन उग रहा था। अलसाई-सी सुबह पार्क की ओर जा रही थी। दीनदयाल नंगे पाँव घास पर टहल रहे थे। जयप्रकाश प्राणायाम के बाद सूर्य-नमस्कार कर रहे थे। कुछ लोग असली-नकली ठहाके लगा रहे थे।

थोड़ी देर में दीनदयाल और जयप्रकाश दोनों बेंच पर आ बैठे। दोनों खामोश थे।

''लोग इतना हँस कैसे लेते हैं जयप्रकाश भाई?''

दीनदयाल ने कहा तो जयप्रकाश उनकी उदासी को पढ़ने की कोशिश करने लगे। तभी एक गेंद उनके पाँवों के पास आकर ठहर गई। दो सुन्दर फूल उनके पास आकर ठिठक गए थे।

''मुझे अपने साथ खिलाओगे?'' दीनदयाल गेंद को उठाकर एक हाथ से दूसरे हाथ में उछालने लगे तो दोनों फूल एक-दूसरे की ओर देखकर खिल उठे।

''यस अंकल!'' दीनदयाल ने गेंद उछाली और फूलों के साथ उछलने-दौड़ने लगे।

जयप्रकाश वहीं बेंच पर बैठे मुस्कराते रहे। कुछ देर में ही हाँफते हुए वे फिर बेंच पर जयप्रकाश के पास आ बैठे।

''असली जिंदगी तो इन बच्चों के साथ ही है भाई!'' दीनदयाल के गहरे नि:श्वास ने जयप्रकाश को चौंका दिया।

''अवनीश आज विदेश जा रहा है ना!'' एक की दृष्टि दूसरे के चेहरे पर टिक गई।

''हाँ भाई! अवनीश और बहू के साथ पिंकू भी चला जाएगा।''

इस बार गेंद उछलकर विपरीत दिशा में गई थी और अब दो फूल उसी दिशा में जा रहे थे।

पार्क के सामने की ऊँची बिल्डिंग उदास हो गई थी।''

❖

138/16 ओंकारनगर-बी, त्रिनगर, दिल्ली-110035
मो. 09312400709
ईमेल : madhudeep01@gmail.com

कमलेश भारतीय

खंडित मूर्ति

मैं पत्रकार था। और वे एक बड़े कार्यालय में उच्चाधिकारी। उन्होंने मुझे अपने जीवन की उपलब्धियों को बयान करने वाली बी चौथी फेहरिस्त थमाई। अनेक पुरस्कार। इस सबमें सबसे ज्यादा मुझे उनका जीवन संघर्ष प्रभावित कर रहा था। जब देश विभाजन के बाद वे रिक्शा चलाकर और सड़क किनारे लगे लैंपपोस्ट के नीचे बैठ कर पढ़ाई पूरी करते थे। ऐसे व्यक्तित्व पर पूरी भावना में बहकर मैंने लिखने का मन बनाया।

उनके साथ ज्यादा समय बिता सकूँ, इसलिए उन्होंने मुझे अपने कार्यालय से फारिग होते ही बुला लिया। उनके साथ झंडी वाली गाड़ी में बैठकर मैं उनके भव्य राजकीय आवास पहुँचा। वे अपने ड्राइंगरूम में सोफे पर बैठ गए। आराम की मुद्रा में। मैंने सोचा कि वे दफ्तर की फाइलों को भुलाने की कोशिश करते रहे हैं।

मैं क्या देखता हूँ कि उनके आवास पर तैनात छोटा कर्मचारी आया और उन्होंने सोफे पर बैठे बैठे पाँव पसार दिए। और वह कर्मचारी उकडूँ होकर उनके जूतों के फीते खोलने लगा। जैसे कोई गुलाम सेवा में जुटा हो ।

अरे, यह क्या ? मेरे मन में उनकी मूर्ति टूटते देर नहीं लगी। और उन्हें इसकी आवाज तक सुनाई नहीं दी।

❖

माफी

हम रोज चिड़ियों के लिए घर की बाहरी दीवार पर दाना डालते। चिड़ियाँ भी सुबह सवेरे चहचहाना शुरू कर देतीं। मानो अपना दाना मांग रही हों। हम सबसे पहले उन्हें दाना बिखेरते। फिर दिनचर्या शुरू करते।

एक दिन दोपहर को देखा कि दीवार के नीचे किसी चिड़िया का पंख पड़ा है। यह समझते देर न लगी कि किसी बिल्ली ने उसे अपना शिकार बना डाला है। चिड़ियाँ भी चहचहाने की बजाय चीख रही थीं। फिर कई दिन नहीं आई। उन्हें लगा कि हमने ही यह धोखा किया है।

हम फिर भी दाना बिखेरते रहे। एक आस में।

आखिर एक सुबह चिड़ियाँ घर की चारदीवारी पर चहचहाने लगीं।

हमें लगा कि चिड़ियों ने हमें माफ कर दिया।

❖

डर

वह एक आम दिनों जैसा दिन शुरू हुआ था। वह नहाया धोया और दफ्तर के लिए तैयार होने लगा। अचानक एक बूट का तस्मा टूट गया। इतना समय नहीं था कि वह नये तस्मे खरीद पाता। जैसे तैसे तस्मे बाँधे और दफ्तर पहुँच गया। सारा दिन उसका ध्यान टूटे हुए तस्मे की ओर ही लगा रहा कि कोई देख न ले। साहब जो ठहरा। लोग मजाक उड़ाएँगे।

शाम को छुट्टी हुई। वह मार्केट पहुँचा। बड़े बड़े शोरूम्स में वह पता करने गया। वहाँ तस्मे नहीं थे। बल्कि यह हिदायत सेल्समैन ने जरूर दी कि यहाँ नए जोड़ी बूट मिल सकते हैं, तस्मे नहीं। एक शोरूम वाले सेल्समैन ने तो बड़ी मुश्किल से नम्र होने का ढोंग रचते कहा कि अगले शोरूम में देखिए। इस तरह वह बड़ी सी मार्केट में खाली हाथ रहा।

अचानक उसकी नजर बाहर एक चाय की रेहड़ी पर गयी। लोग चाय पीकर डिस्पोजल गिलास डस्टबिन में डाल रहे थे। उसने भी पटरी पर बैठे मोची को ढूँढा और नये तस्मे लेकर ठीक से बाँधे और अपने चारों ओर खुशी से देखा। अब उसके अंदर से डर काफूर हो चुका था। वह टूटे तस्मे डस्टबिन में फेंकने चल दिया।

❖

1034 बी, अर्बन एस्टेट 2, हिसार 125005 (हरियाणा)
मोबाइल : 9416047075

चन्द्रेश कुमार छतलानी

अन्नदाता

फसल कटाई के बाद उसके चेहरे और खेत की ज़मीन में कोई खास फर्क नहीं दिखाई दे रहा था। दोनों पर गड्ढे और रेशे। घर की चौखट पर बैठा धँसी हुई आँखों से वह कटी हुई फसल और काटने वाली ज़िंदगी के अनुपात को मापने का प्रयास कर रहा था कि एक चमचमाती कार उसके घर के सामने आ खड़ी हुई। उसमें से एक सफेद कुर्ता-पजामाधारी हाथ जोड़ता हुआ बाहर निकला और उसके पास आकर बोला, ''राम-राम काका।'' और अपने कुर्ते की जेब से केसरिया सरीखा रंग निकालकर उसके ललाट पर लगा दिया। उसने अचंभित होकर पूछा, ''आज होली...''

उस व्यक्ति ने हँसते हुए उत्तर दिया, ''नहीं काका। यह रंग हमारे धर्म का है, इसे सिर पर लगाए रखिए। दूसरे लोग हमारे धर्म को बेचना चाहते हैं, इसलिए आप वोट हमें देना ताकि हमारा धर्म सुरक्षित रहे और हाँ! हम और सिर्फ हम ही आपके साथ हैं और कोई नहीं।''

सुनकर उसने हाँ की मुद्रा में गर्दन हिलाकर कहा, ''जी अन्नदाता।'' उस चमचमाती कार के जाते ही एक दूसरी चमचमाती कार उसके घर के सामने आई। उसमें से भी पहले व्यक्ति जैसे कपड़े पहने एक आदमी निकला। हाथ दिखाते हुए उस आदमी ने उसके पास आकर उसकी आँखों और नाक पर सफेद रंग लगाया और बोला, ''देश को धर्म के आधार पर तोड़ने की साजिश की जा रही है। आप अपनी आँखें खुली रखें और देश की इज्जत बचाए रखने के लिए हमें वोट दें और हाँ! हम और सिर्फ हम ही आपके साथ हैं और कोई नहीं।''

उसे भी अपने साथ पा वह मुस्कुराकर बोला, ''जी अन्नदाता।'' उस व्यक्ति के जाते ही एक तीसरा आदमी अंदर आ गया। उसके चेहरे के रंगों को देखकर वह आदमी घृणायुक्त स्वर में बोला, ''तुम खुद अन्नदाता होकर गलत रंगों में रंगे हो! अपने लिए खुद आवाज़ उठाओ, और हाँ! सिर्फ हम ही हैं जो तुम्हारे साथ हैं।'' कहकर उस आदमी ने उसके मुँह पर लाल रंग मल दिया।

वह प्रफुल्लित हो उठा। सभी तो उसके साथ थे।

उसने अपने बायीं तरफ देखा, वहाँ वह खुद ही खड़ा था और दाईं तरफ भी वही। अपने सभी ओर उसने खुद को ही खड़ा पाया। अलग-अलग रंगों से पुता हुआ उसका हर रूप अलग-अलग कुर्ता-पजामाधारियों के नाम के ढोल बजाता हुआ चल दिया, इस बात से अनभिज्ञ कि घर की चौखट पर एक रंगीन फंदे में लुढ़की हुई गर्दन लिए उसका जिस्म सड़ने लगा है।

❖

मृत्यु दंड

हज़ारों वर्षों की नारकीय यातनाएँ भोगने के बाद भीष्म और द्रोणाचार्य को मुक्ति मिली। दोनों कराहते हुए नर्क के दरवाज़े से बाहर आए ही थे कि सामने कृष्ण को खड़ा देख चौंक उठे। भीष्म ने पूछा, ''कन्हैया! पुत्र, तुम यहाँ?''

कृष्ण ने मुस्कुराकर दोनों के पैर छुए और कहा, ''पितामह-गुरुवर आप दोनों को लेने आया हूँ, आप दोनों के पाप का दंड पूर्ण हुआ।''

यह सुनकर द्रोणाचार्य ने विचलित स्वर में कहा, ''इतने वर्षों से सुनते आ रहे हैं कि पाप किया, लेकिन ऐसा क्या पाप किया कन्हैया, जो इतनी यातनाओं को सहना पड़ा? क्या अपने राजा की रक्षा करना भी...''

''नहीं गुरुवर!'' कृष्ण ने बात काटते हुए कहा, ''कुछ अन्य पापों के अतिरिक्त आप दोनों ने एक महापाप किया था। जब भरी सभा में द्रोपदी का वस्त्रहरण हो रहा था, तब आप दोनों अग्रज चुप रहे। स्त्री के शील की रक्षा करने के बजाय चुप रहकर इस कृत्य को स्वीकारना ही महापाप हुआ।''

भीष्म ने सहमति में सिर हिला दिया, लेकिन द्रोणाचार्य ने एक प्रश्न और किया, ''हमें तो हमारे पाप का दंड मिल गया, लेकिन हम दोनों की हत्या तुमने छल से करवाई और ईश्वर ने तुम्हें कोई दंड नहीं दिया, ऐसा क्यों?''

सुनते ही कृष्ण के चेहरे पर दर्द आ गया और उन्होंने गहरी साँस भरते हुए अपनी आँखें बंद कर उन दोनों की तरफ अपनी पीठ कर ली, फिर भर्राए स्वर में कहा, ''जो धर्म की हानि आपने की थी, अब वह धरती पर बहुत व्यक्ति कर रहे हैं, लेकिन किसी वस्त्रहीन द्रोपदी को... वस्त्र देने मैं नहीं जा सकता।''

कृष्ण फिर मुड़े और कहा, ''गुरुवर-पितामह, क्या यह दंड पर्याप्त नहीं है कि आप दोनों आज भी बहुत सारे व्यक्तियों में जीवित हैं, लेकिन उनमें कृष्ण मर गया...''

❖

3 प 46, प्रभात नगर, सेक्टर-5, हिरण मगरी,
उदयपुर (राजस्थान)-313002 मो. 09928544749
ईमेल : chandresh.chhatlani@gmail.com

बुज़दिल

ज्योत्स्ना 'कपिल'

"क्या बात है श्रवण, बहुत परेशान दिख रहे हो? सब ठीक तो है न?" उसे भोजन को बस अनिच्छा से कुतरता देखकर अनु ने प्रश्न किया।

"हाँ अनु, सब ठीक है।"

"मुझे लगा था कि बेशक हम जीवनसाथी न बन पाए पर अच्छे मित्र तो हमेशा रहेंगे।" उसने शिकायत की।

"इसमें कोई शक ही नहीं अनु, हम अब भी अच्छे मित्र हैं।" श्रवण ने उनका मनुहार किया।

"तो फिर बताओ न कि इतने उखड़े हुए क्यों नज़र आ रहे हो?"

"तुम ये तो जानती ही हो कि मेरे विवाह को कई वर्ष बीत गए।"

"हाँ तो?"

"पर अब भी हम निसन्तान हैं। इस बात को लेकर माँ और दादी जब देखो तब मानसी को ताने देती रहती हैं।"

"किसी डॉक्टर से मिले तुम?"

"सारे चेकअप करवा लिए, कुछ भी समस्या नहीं निकली। घर का माहौल बहुत खराब हो गया है। हर वक़्त के ताने, मानसी का रोना... मन बहुत खराब हो जाता है मेरा।"

"क्या तुम यह सोचते हो कि इसमें मानसी की कोई गलती है?"

"नहीं, ऐसा तो नहीं।"

"तो माँ और दादी से कहते क्यों नहीं कि औरत भी एक इंसान है, कोई बच्चा पैदा करने की मशीन नहीं।"

"अब तो दादी मेरी दूसरी शादी की बात भी करने लगी हैं। जी चाहता है घर छोड़कर कहीं चला जाऊँ।" उसकी बात का जवाब न देकर श्रवण ने आगे कहा।

"तो बच्चा गोद ले लो।"

"पर वह अपना खून तो नहीं होगा।"

"क्यों, तुम्हारे खून में ऐसी कौन-सी बात है, जिसका चलना इतना ज़रूरी है?"

"अरे! क्या बात कर रही हो?"

"नहीं बताओ न, तुम्हारे खून में स्पेशल क्या है? कौन से महाराणा प्रताप या शिवाजी तुम्हारे यहाँ पैदा हुए हैं?"

"बेकार की बात मत करो।" अब वह झुँझला गया था।

"तुम्हारे वंश का चलना इतना ज़रूरी क्यों है? एक ऐसा बुज़दिल, जो बेहिसाब मोहब्बत के बावजूद भी घरवालों की मर्जी के खिलाफ अपनी पसंद की लड़की से शादी की हिम्मत नहीं जुटा पाया, जो अपनी बेगुनाह बीवी के साथ नहीं खड़ा हो पा रहा।"

वह खामोश रह गया।

"अरे आईवीएफ तकनीक है, और भी कई रास्ते हैं। अगर इस बार तुमने अपनी पत्नी का साथ नहीं दिया तो ईश्वर भी तुम्हें माफ़ नहीं करेगा।"

कुछ देर वह सर झुकाए सोचता रहा। अनु भी खामोश रही। फिर वह उठ खड़ा हुआ, "चलता हूँ, कोशिश करूँगा कि गलत हालात को सही कर सकूँ।"

"ऑल द बेस्ट!" अनु संतोष के साथ मुस्कुरा दी।

18- ए, विक्रमादित्य पुरी, स्टेट बैंक कॉलोनी,
बरेली-243005, उ.प्र. मो. 09412291372
ईमेल : jyotysingh.js@gmail.com

रवि प्रभाकर

रियरव्यू

"आप फ्रेश हो लें, तब तक मैं आपके लिए चाय लेकर आता हूँ।'' नौकर ने गेस्टरूम का दरवाज़ा खोलते हुए कहा, ''साहब! अगर नहाना है तो गीज़र ऑन कर दूँ?''

सोफ़े पर बैठते हुए 'न' में सिर हिलाकर प्रकाश जी ने उसे जाने का संकेत किया। नौकर दरवाज़ा बंद करके कमरे से बाहर निकल गया। कुछ क्षण बैठे रहने के बाद प्रकाश जी अचानक उठे और गैराज़ से गाड़ी निकालकर गेट से बाहर निकल गए। गाड़ी की पिछली सीट पर पोते-पोती और बेटे-बहू के लिए कपड़ों, खिलौनों व मिठाइयों के ढेरों पैकेट पड़े थे।

''ये भला कोई बात हुई! वैसे तो साल भर से जब भी फोन आता तो कहते थे कि पापा आ जाइए... बंटी और चिंकी आपसे मिलने को बहुत उत्सुक हैं। मैंने कहा भी था कि किसी संडे वाले दिन आऊँगा। पर लाटसाहब को तो कोई परवाह नहीं... बीवी-बच्चों के संग घूमने निकल गए। अब इतना बड़ा बिजनेस भला किसके सहारे छोड़कर आऊँ। रोहित से कितनी बार कहा कि कॉलेज की दो टके वाली नौकरी छोड़कर बिजनेस सँभालो। पर नहीं... और ऊपर से बहू... वो तो कहती है कि उसे रोहित पर गर्व है। वो भी तो स्कूल में नौकरी करती है, किसी चीज की कोई कमी नहीं है।...इन्हें तो अपनी आइडेंटिटी बनानी है। आइडेंटिटी... मॉय फुट।'' प्रकाश जी मन-ही-मन बड़बड़ा रहे थे कि अचानक एक साइकिल सवार उनकी गाड़ी के सामने आ गया। साइकिल के कैरियर पर सात-आठ साल का एक बच्चा बैठा था। प्रकाश जी ने तेज़ी से ब्रेक लगाई।

''बाबा...।'' बच्चे ने घबराकर अपने दोनों बाजू साइकिल सवार की कमर पर कस दिये। इतने में सारा बाज़ार इकट्ठा हो गया। ''गाड़ी में बैठे यह लोग सड़क पर चलने वालों को तो कीड़े-मकोड़े ही समझते हैं।''

''साइकिल वाले की गलती है, गली से निकलते वक़्त इसे आजू-बाजू देखना चाहिए था।''

''चलो कोई बात नहीं, शुक्र है बचाव हो गया।''

भीड़भाड़ भरे उस बाजार में कई स्वर प्रकाश जी के कानों से टकराए। गाड़ी से निकलकर देखा तो साइकिल सवार और बच्चा सुरक्षित थे। प्रकाश जी पुनः गाड़ी में बैठ गये और धीमी गति से गाड़ी चलाने लगे। रियरव्यू मिरर में देखा कि साइकिल सवार भी चल पड़ा था और कैरियर पर बैठा बच्चा उसे गाड़ी से आगे निकलने को प्रोत्साहित कर रहा है। साइकिल सवार भी तेज़ी से पैडल मार रहा था। प्रकाश जी के होंठो पर हलकी-सी मुस्कान उभर आई। उन्हें पंद्रह-सोलह साल पहले का वह दिन याद आ गया जब वह दोनों बच्चों के रिजल्टस वाले दिन स्कूल गए थे। वापिसी में दोनों बच्चों और पत्नी सहित वापिस आ रहे थे कि तेज़ बारिश शुरू हो गई। सभी बुरी तरह भीग गए थे। हालाँकि बच्चे भीगकर बहुत खुश थे। पर अगले ही हफ्ते प्रकाश जी ने लोन पर कार खरीद ली थी। उसके बाद पूरे दो साल ओवरटाइम करना पड़ा और बच्चों के सोने के बाद ही घर पहुँचते थे।

''बाबा...और तेज़।'' की आवाज़ों से उनकी तंद्रा टूटी। साइकिल सवार उनकी गाड़ी के काफी नज़दीक आ गया था। बच्चा पूरे उत्साह में था। वे शहर की भीड़भाड़ से निकलकर मेन रोड पर आ चुके थे। आगे कुछ मीटर की चढ़ाई थी। प्रकाश जी ने धीरे-से गाड़ी आगे बढ़ा ली। साइकिल सवार चढ़ाई चढ़ते हुए तेज़ी से पैडल मार रहा था। प्रकाश जी ने रियरव्यू मिरर में पसीने से तरबतर साइकिल सवार का असहाय चेहरा देखा। उसका बेटा कैरियर पर खड़ा होकर उसको और तेज़ चलाने को कह रहा था। साइकिल सवार की साँस फूलने लगी थी और पैडल मारने की रफ्तार भी कम होने लगी थी। ''बाबा... और तेज़।'' की आवाज़ प्रकाश जी के कानों से दूर होने लगी थी। प्रकाश जी के चेहरे पर दृढ़ता के भाव उभरे और उन्होंने गाड़ी की गति बहुत कम कर दी। गति कम देखकर साइकिल सवार के पैरों में तेज़ी आ गई और वह पूरी कोशिश से पैडल मारने लगा और कुछ ही क्षणों में ड्राइविंग विंडो के पास आ गया। एक क्षण के लिए उसकी नज़रें प्रकाश जी की नज़रों से टकराईं। उसकी आँखों में कृतज्ञता के भाव थे। उसने गाड़ी को ओवरटेक करते हुए अपना दायाँ हाथ ऊपर उठाकर प्रकाश जी का धन्यवाद किया। कैरियर पर खड़े बेटे ने मुट्ठी का पंच बनाकर हवा में लहराते हुए 'योऽऽऽ... जीत गए' कहकर विजयनाद किया और दोनों बाहें साइकिल सवार के गले में लपेट दीं।

❖

बी-29/23, एस.डी.एस.ई. स्कूल के सामने, आर्य समाज
पटियाला-147001 (पंजाब) मोबाइल 9876930229
ईमेल : corellover@gmail.com

सूर्य कुमार पांडेय के बालगीत

रात

पापा जी की दाढ़ी रात
माँ की काली साड़ी रात।
सूरज जिसमें छिपा दुबककर
कांटो वाली झाड़ी रात।
चंदा इंजन, तारे डिब्बे
छुक-छुक करती गाड़ी रात।
दिन जिसके पीछे जा बैठा
ऊँची एक पहाड़ी रात।
आँखमिचौली खेला करती
सचमुच बड़ी खिलाड़ी रात।

V

चाँद

करता नभ में ड्रामा चाँद
हम बच्चों का मामा चाँद।
कभी दीखता दुबला-पतला
फिर हो जाता गामा चाँद।
किरणों वाली शर्ट पहनता
बादल का पाजामा, चाँद।
चुपके-से मुस्काता, करता
नहीं कभी हंगामा चाँद।

V

बादल

उजले, भूरे, काले बादल
ढेरों नीर संभाले बादल।
शोर मचाते तड़तड़-गड़गड़
हाथी-से मतवाले बादल।
भरते झीलें, ताल तलैया
पोखर, नदियाँ, नाले बादल।
धूपनगर में लटका जाते
भारी भरकम ताले बादल।
हैं धरती की प्यास बुझाते
फसलों के रखवाले बादल।
भेदभाव की बात न जानें
प्यारे और निराले बादल।

V

धूप

सूरज की दीवानी धूप
घूम रही सैलानी धूप।
आते ही गरमी के दिन
फिर हो गई सयानी धूप।
झरनों, झीलों, नदियों का
पी जाती है पानी धूप।
फूलों, पत्तों, पेड़ों से
करती है शैतानी धूप।
सारी धरती दही हुई
लगती एक मथानी धूप।
लू को संग लिए रहती
करती है मनमानी धूप।

V

कोहरा

सुबह-सुबह आया कोहरा
सभी ओर छाया कोहरा।
आसमान ने धरती पर
परदा लटकाया कोहरा।
गरमी से डर कर भागा
सरदी संग लाया कोहरा।
सूरज की आंखें देखीं
इतना घबराया कोहरा।
जान बचाकर भाग गया
लौट नहीं पाया कोहरा।

V

538 क/514, त्रिवेणी नगर द्वितीय, लखनऊ-226 020.
मोबाइल : 9452756000.
ई-मेल : pandeysuryakumar@gmail.com

निर्देश निधि की कविताएँ

भीड़

अक्सर भीड़ के,
अपने दु:ख दर्द नहीं होते
वो किसी और के आँसू रोती है
यह भीड़ रूदाली होती है।

बेमाने क्रोध के उबालों पर,
अस्थाई झाग सी
निश्चेष्ट पड़ी सड़कों पर सरकती,
इस शांत-मंथर देवदासी की सोच अक्सर
किसी और की दत्तक होती है।

कई बार यह भीड़
सुहृद, धर्म सहिष्णु बन,
इठलाती फिरती सहधर्मिणी सड़कों पर,
इसकी स्मृति की आयु,
जमीन पर गिरे ओले के जितनी होती है।

उनींदी सी पड़ी रहती है तितर-बितर,
सड़क पर छितरे कूड़े सी
किसी के स्वार्थों की आँधी
सकेर कर साथ उसे
नींद भर सोने नहीं देती।

भीड़ों की उन्मादित नदियाँ अक्सर
राजनीति के समन्दरों की
आज्ञाकारिणी नगरवधुएँ होती हैं।

जिन्हें ये आँखों वाली
अंधी गान्धारी (राजनीति) ही जन्म देती है
अक्सर भीड़ के अपने दु:ख-दर्द नहीं होते
वो तो किसी और के आँसू रोती है
यह भीड़ रुदाली होती है ।

V

जिसे वह घर कहता था

वह मकान जिसे वह घर कहता था
बनाया था उस पूँजी से
जिस पूँजी से नहीं खरीदा था उसने
भतीजे के ब्याह में एक जोड़ी जूता अपने लिए
नहीं दिलाया था पत्नी को
सोने का हल्का सा ही गुलूबंद
जिस पूँजी को उसने
भूल से भी खर्चा नहीं था तन पिघलाती गर्मियों में
दोस्तों की तरह
पहाड़ी स्थलों पर विचरने में
लगी थी उसमें वह पूँजी भी
जब नहीं गया था वह
दूर की बहन के मझोले बेटे के ब्याह में
उसके तमाम आग्रहों पर भी
थोड़ी ही सही पर कुछ पूँजी तो शामिल थी उसमें
बच्चों के लिए न खरीदे जाने वाले गुब्बारों की
और शामिल थी कुछ पूंजी
माँ की स्थगित चार धाम यात्रा की भी
शामिल थी उस मकान की नीव में कुछ पूँजी
गया जी जाकर पुरखों का पिंडदान न कर पाने की
कामाख्या देवी के चरणों में पुष्प न चढ़ा पाने का बोझ
लदा था उस मकान की पीठ पर
मसलन उस मकान की नीव, पीठ, सीमेंट और रंग-रोगन में
घुली थी तमाम इच्छाओं की मज्जा
और पुती थी खिड़की दरवाजों पर
दफना दिए गए कई सपनों की चमचमाती पॉलिश
सुरक्षित होने के सपने की पूर्णता का सलेटी पत्थर बिछा था
उस मकान के एक छोर से दूसरे छोर तक
उसके थके हुए पावों को जरूरत थी आराम की और
खाली जेब को दरकार थी कुछ पूँजी की
आज उसने वही घर बेच दिया
अब वह कमाता नहीं।

V

कहाँ गईं वे लड़कियाँ

उन थकान भरी औरतों के
बुझे बेजार चेहरों के पीछे
तलाशीं बहुत मैंने बरसों पुरानी
अतीत हुई,
बेफिक्र, अल्हड़ लड़कियाँ
मोटी ऐनकों के पार जाकर
बुझी, बेरंग आँखों के भीतर
तलाशे बहुत, बरसों पुराने
चलचित्र से सपने सुनहरे
घिसे घुसे, आधे-अधूरे दाँतों में
सीपियों में सँवरे हुए तलाशे वे पुराने मोती
ढूँढी बहुत मुस्कानें वे लास्य भरी
जो चली आती थी बेखटके बिन बुलाई
पल पल थिरकने अधरों पर
मिले नहीं पंखुड़ी पंखुड़ी खिले अधर
उनकी फटी बिबाइयों की कसक में
क्यों ढूँढी भला
चटक गुलाबी एड़ियों की वो दमक मैंने
नहीं मिलीं वे पायलें भी जो छनक उठती थीं पल पल
सपनों के नरम कालीन पर
वह दिल भी कहाँ मिला जो धड़क उट्ठा था
सोलहवें बसंत में
पड़ोसी किशोर के माथे पर,
बेधड़क झूलती लट देख कर
मोतियाबिन्द भरी आँखों में
तलाशा बहुत वह चाँद भी
जिसे प्रेम के अतिरेक में मदहोश
पुकारती थीं वे साजन साजन
सजा लेती थीं पलकों पर चकोर बन
खिजाबी बालों के छितरेपन में
मिली नहीं महकते गेसुओं की वह सघन छाँव भी
जो रह रह पसर जाती थी प्रिय के काँधे पर
बहुत तलाशी मैंने उन औरतों में खो गई
वे ऊर्जा भरी पुरानी अल्हड़ लड़कियां
नहीं मिला किसी एक में भी
किसी एक का भी, कोई एक सुराग
कहाँ खो गई ना जाने समय के पानियों में
चहकती महकती वे अल्हड़
चंचल तीस्ता सी लड़कियाँ

निराकार मैं

अब तुम मुझे आकार में मत खोजना
क्योंकि अब मैं,
हूँ ही नहीं किसी आकार में
तुम्हारा वह गंद घुला प्रेम रहित स्पर्श लेकर
मेरी सकल काया झर गई थी
थार के बनते-बिगड़ते ढूहों से मन भावों पर
कण कण सूखी रेत सी
मेरी वह कण-कण झरी काया
भटक रही है आज भी
चातक सी प्यास लिए
अपनी ही रूह का
संधान करती प्रेत सी
रेत के इन विदग्ध कणों पर
एक गीली बूंद रख दो प्रेम की
शायद मैं ढल ही जाऊँ
फिर नए किसी आकार में

विद्या भवन, कचहरी रोड, बुलन्दशहर-203001 (उ.प्र.)
मोबाइल : 9358488084
ई-मेल : nirdesh.nidhi@gmail.com

डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति की ग़ज़लें

(1)

ज़ुल्मत में रोशनी का, तलबगार मैं भी हूँ
क्या करना होगा, करने को तैयार मैं भी हूँ

सहरा की ख़ाक छानना, पड़ सकता है मुझे
ऐ हुस्न, तेरे इश्क़ का बीमार मैं भी हूँ

ये देखें कौन होता है, मक़सद में कामयाब
तू घात में अगर है, तो हुशियार मैं भी हूँ

कल ही की तरह आज भी है, ख़ून-ख़राबा
अख़बार की ख़बर से ख़बरदार मैं भी हूँ

मेरा ही तो ग़ुज़ारा नहीं, साग-दाल पर
मंहगाई की ज़ुल्फ़ों का, गिरफ़्तार मैं भी हूँ

जीने न देंगे चैन से मुझको अमीर लोग
बस्ती में मुफ़लिसी का, गुनहगार मैं भी हूँ

मुझको भी 'कुमार' अहले वतन जान रहे हैं
शहरे ग़ज़ल का अदना सा फ़नकार मैं भी हूँ

V

(2)

फिरा मारा मारा
जो उल्फत में हारा

यही फ़िक्र सबको
हो कैसे गुजारा

ज़माने में ज़िन्दा
न रुस्तम, न दारा

कभी काश चमके
मेरा भी सितारा

अज़ब है ये दुनिया
ग़ज़ब है नज़ारा

जुआ दोस्ती का
वो जीता जो हारा

'कुमार' उसके आगे
चलेगा न चारा

V

(3)

किसी शख़्स में हौसला ही नहीं
यहाँ सच कोई बोलता ही नहीं

मुहब्बत करो तो बहुत कुछ मिले
अदावत से कुछ फ़ायदा ही नहीं

वो सारी कहानी उठा ले गया
सुनाने को कुछ वाक़या ही नहीं

ये अंधी गली है चलो लौट जायें
अब आगे कोई रासता ही नहीं

मैं बीमार अपनी हिमाक़त से हूँ
मेरे दोस्त शक़ की दवा ही नहीं

मुझे लड़ते रहना है ताज़िन्दगी
मेरे जंग की इन्तहा ही नहीं

'कुमार' उनसे क्या क्या न बातें हुईं
जो कहना था, मैं कहा ही नहीं

V

प्रजापति भवन, मेन रोड, राउरकेला-769001 (ओड़िशा)
मोबाइल : 9437044680
ई-मेल : krishnaprajapati2007@gmail.com

ईश्वर से उम्मीद नहीं

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
कर सके खत्म जातिवाद
निरन्तर चलता रहा है जो और आगे भी चलेगा बदस्तूर।

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
बदल दे किस्मत बंधुआ मजदूरों की
पीढ़ी-दर-पीढ़ी बंधुआ रहे हैं वे
और आगे भी रहेंगे।

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
बदल दे किस्मत गरीब महिलाओं की
पूर्व की भांति सदैव जिन्दगी का उच्छिष्ट
जीने को अभिशप्त बनी रहेंगी वे

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
कर दे स्वस्थ विकलांगों को
यूं ही घिसटते रहेंगे वे धरती पर
निरीह बनकर

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
मौद्रिक वर्चस्व के दौर में
बचा सके ईमान को हारने से।

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
बख़्श दे निर्बाध सुख और सुकून ज़िन्दगी में
दु:ख हाबी रहेगा हमेशा यहाँ

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
बचा सके निरपराध को मरने से
साम्प्रदायिक हिंसा में

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
बचा सके मरने से बच्चों को
डायरिया से

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
कर सके निष्प्रभ बेईमान-भ्रष्ट लोगों को
ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
चढ़ा सके परवान प्रेमियों का प्रेम
और कर सके उनकी प्राण-रक्षा
ऑनर-किलिंग से!

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
आकर बचा ले आग से झुलसती बेवश बहू का

ईश्वर से उम्मीद नहीं कि वह
मिटा सके भ्रम
खुद के होने या न होने का

लेकिन इंसान से पूरी उम्मीद है कि वह
रखेगा जीवित सदैव ईश्वर को
अपने जेहन में
और लड़-मरेगा वह अपने ईश्वर की खातिर,
बेवजह!

V

कवियों ने कविता लिखी

कवियों ने कविता लिखी
फूलों पर
लेकिन फूल मुरझा गए, सूख गए, मिट गए
जड़ें सलामत नहीं धरती में
कविताओं में जिक्र के बिना भी

कवियों ने कविता लिखी
झूलों पर
लेकिन झूले गायब हो गए
शाखें सलामत रहीं
कविताओं में जिक्र के बिना भी

कवियों ने कविता लिखी
प्रेमिकाओं पर
लेकिन प्रेमिकाएँ धोखा दे गयीं, साथ छोड़ गयीं
पत्नियों ने निभाया जीवन-साहचर्य उम्रभर
कविताओं में जिक्र के बिना भी

कवियों ने कविता लिखी
गरीबों पर
लेकिन गरीब और अधिक गरीब हुए, मिटते गए
अमीर बढ़ते रहे, चढ़ते रहे उन्नति के सोपान निरन्तर
कवियों के विरोध के बावजूद भी

कवि फिर भी
कविता से
दुनिया बदल देने का दंभ भरते रहे
कविताएँ लिखते रहे...
निरन्तर...

V

देह की सराय में

बाजार बनती साँसें
विज्ञापन बनती देह
फिल्मी बनती चेतना
मुद्रा बनती धड़कन

मुफ्त की सराय नहीं रही अब
सरे बाजार
मेरी देह
कि बने रहूँ इसमें मैं
सेंत-मेंत

कुछ लोग अपनी देह में
ऐसे रहते हैं
जैसे कि शरणार्थी कैंम्पों में
या धर्मार्थी धर्मशालाओं में
कुछ इसमें फुटपाथ के भिखारियों की तरह भी रहते हैं—
अनचाहे, उपेक्षित, दुत्कार सहते
कुछ सस्ते होटलों की तरह
किराये की चिन्ता से व्याकुल
मुँह लटकाए हुए रहते हैं!

निःसंदेह, बहुत थोड़े लोगों के लिए
अय्याशी का अड्डा भी है देह
पंचसितारा होटल जैसी
चमाचम....

कौन आराम से रह रहा है इसमें
कहना मुश्किल है

कोई अपना-सा घर नहीं बन सकी कभी
अपनी यह देह
बेगानी!

V

गाँठ और फेरे

वहाँ गड़ा है तम्बू झूठ और फरेब का
लोगों ने बाँध लिए हैं छल-छद्म
अपने गले की टाईयों में सलीके से
तमाम गरीबी (तन और मन की)
छुप गई हैं कोट की चमक-दमक में
पैन्ट की क्रीज़ में एकदम सतर है
शिष्टता।

वैसे तो पंडितजी ने नवयुगल से
लगवा लिए हैं सात फेरे
गाँठ भी बँध चुकी है दाम्पत्य की
लेकिन मन की गाँठ भी टाइट हुई है कहीं
पहले प्रेमियों की यादें अपने अंतस् में धारे
दोनों ही बस आग के चारों ओर घूमते रहे
लेकिन जला नहीं सके पहले प्यार की स्मृतियाँ
पकती रहीं आग में दोनों की प्रेम कहानियाँ
कब हो पाता है परिणयोत्सव की अग्नि में स्वाहा
पहला प्रेम!

V

2/29, डी.एम. कॉलोनी, बुलन्दशहर 203001 (उ.प्र.)
मोबाइल : 09411806433, 07409622722
ई-मेल : mukeshbul80@gmail.com

सीमा अग्रवाल की कविताएँ

प्रेम उवाच

मैं अदेह हूँ,
नित्य अतुल हूँ

चमकीली पन्नी में लिपटा
महँगा सा उपहार नहीं हूँ
एक दिवस जो आए-जाए
मैं ऐसा त्यौहार नहीं हूँ

स्वामी को जो दास बना दे
बँधा हुआ मैले गमछे में
मुट्ठी भर मैं वो तंडुल हूँ

मैं अदेह हूँ नित्य अतुल हूँ

कस्तूरी हूँ, तुममें ही हूँ
कहाँ कहाँ पर खोज रहे हो
जंगल-जंगल बस्ती-बस्ती
नदियों सा हर रोज बहे हो

अंतर की वीथियाँ खँगालो
मुझ तक आओ, मिलन हेतु प्रिय!
तुम जैसा मैं भी व्याकुल हूँ

मैं अदेह हूँ, नित्य, अतुल हूँ

सत्यम शिवम् सुंदरम का मैं
प्राण तत्व हूँ,
धड़कन धड़कन में स्पंदित
निष्काम स्वत्व हूँ

बूंद मात्र में सिंधु समाए
जितना सूक्ष्म रहूँगा,समझो
उतना ही मैं अधिक पृथुल हूँ

V

काम अभी तो बहुत पड़े हैं

चल हट रे! चंचल वसंत
क्यों करे ठिठोली
घर है राह जोहता

झाड़-बुहारी कर शुभ को न्यौतूँ
अगरू महकाऊँ
चलूँ सूर्य की अगवानी को
वंदनवार सजाऊँ
चुप चुप सी है खड़ी रसोई
जरा इसे सहला दूँ
तनिक नेह की आँच अगोरूँ
चूल्हे को सुलगा दूँ

खड़ा हुआ रस्ता छेके
जाने दे, हमको
यह सब नहीं सोहता

अभी अलगनी ने लहरा कर
कहा 'इधर तो आओ'
आँगन में चिड़िया गुहारती
'दाना तो दे जाओ'
चार-दिवारी की आँखों में
कई कई बातें हैं
अभी हमारी मौन तपस्या की
अनगिन रातें हैं

अभी नहीं फुर्सत, सचमुच
रह रह कर क्यों तू
मन की थाह टोहता

अभी खोटनी है प्रश्नों की
कितनी खरपतवारें

कर्तव्यों की फुलवारी कह,
तुझ पर कैसे वारें
दिया कभी जो समय, समय ने
स्वयं पुकारेंगे हम
आना उस दम मीत दौड़ कर
हो उजास या हो तम

कह देंगे उस दिन हम
भर आलिंगन,
'हमको तेरा रंग मोहता'

V

कुछ गा.....

मन रे! कुछ गा,
तू आज नया कुछ गा

कुछ ऐसा जो साँसों की गति को
सम कर दे
कुछ ऐसा जो पाँवों में
चाल नई भर दे
कुछ ऐसा जो पहले न कभी भी
गूँजा हो
कुछ ऐसा जो जीवन को
जीवन का स्वर दे

ऊँघे दीवट में
दीप जगे सुलगा
तू आज नया कुछ गा

कुछ ऐसा जो कण कण में
रम जाए, गाए
कुछ ऐसा जो मरुथल में
बादल सा छाए
कुछ ऐसा जो फूलों सा कोमल
सुंदर हो
कुछ ऐसा जो अगरू सा सुलगे
महकाए

कुछ सत्य स्वप्न
नयनों में आज जगा
तू आज नया कुछ गा

कुछ ऐसा जो माटी में
फसलों सा लहरे
कुछ ऐसा जो क्षण क्षण में
ख़ुशियाँ बन ठहरे
कुछ ऐसा जो अनुवाद बने
अंतर्मन का
कुछ ऐसा जो उतरे गहरे,
गहरे, गहरे

शब्दों के माथे
चंदन तिलक लगा
तू आज नया कुछ गा

V

खो गयी

खो गयी
आडम्बरी चिल्लाहटों में
वास्तविकता

हो रहा जो
चुप लगा कर
देखते रहना
विवशता है
पर निरंतर
क्षुब्ध अंतर

कसी मुट्ठी
और भिंचते
हुए जबड़ों
में तड़पता है

कुतर्कों के बहुमतों से
है पराजित
तार्किकता

मन्त्र सारे
व्यर्थ हैं यदि
सिर्फ ध्वनियाँ
बन सुनाई दें

है निरर्थक
अर्चना तक

दृष्टियों को
अगर ईश्वर
सिर्फ मंदिर में
दिखाई दें

महज अभिनय हो गयी है
मौसमी सी
धार्मिकता

V

प्लाट नं. बी 9/3, फ्लैट नं. 6/702, शक्तिकुंज अपार्टमेंट,
(बी ब्लाक मार्केट के सामने) सेक्टर-62,
नोएडा-201301, गौतम बुद्ध नगर (उ.प्र.)
मो. : 98102 90 517 E-mail : thinkpositive811@gmail.com

मालिनी गौतम की कविताएँ

कहा-अनकहा

कुछ आँसू
अपने सर्वाधिक प्रिय
व्यक्ति से भी छुपा लिए गए,
निविड़ अंधकार के
प्रगाढ़ क्षणों में
अधरों पर फैली
हल्की स्मित रेख के पीछे
वे कसमसाते रहे...छटपटाते रहे।

दु:ख जितने थे
कभी कहे नहीं गए
वे खाते रहे हिचकोले
उन्हें समझे जाने
और न समझे जाने की
कवायदों के बीच।

ढेरों शिकायती पत्र
तुड़े-मुड़े
फड़फड़ाते रहे
अधखुले होठों पर
चुम्बनों ने दबा दी
उनकी सरसराहट ।
सिर्फ एक हँसी ही थी
जो झर गई हरसिंगार की तरह
अंधकार को भेदते हुए।

इस हँसी को ही तुमने मान लिया
उन मुलाकातों का
कुल जमा-हासिल
आँसुओं, शिकायतों और दु:खों को
अनावृत्त होने से बचाकर
औरत अक्सर बचा लेती है
अपने होने को
अनावृत्त होने से।

ठंडे और गर्म के बीच

कामवाली के हाथों
धुला हुआ आखिरी बर्तन
अनायास ही जरा जोर से पटका गया।

पटकने से हुई
इस तेज आवाज में निहित था
शायद बीती रात बेवजह ही
अपने शराबी पति से खाई हुई मार का दर्द,
एक घर का काम निपटाकर
जल्दी-जल्दी दूसरे घर का
काम निपटाने की हड़बड़ी,
छाती पर पहाड़ हुई जाती
लड़कियों के शादी-ब्याह की चिंता, बाप के नक्शे-कदम पर
आवारा हुए जाते लड़के के प्रति रोष
या और भी बहुत-बहुत कुछ .....

गृहिणी अब अक्सर ऐसी आवाजों पर
नाराज नहीं होती
बल्कि मुस्कराते हुए
कामवाली के सिर या कंधे पर
अपने हाथ का स्नेहिल दबाव बनाते हुए
उसके हाथ में थमाती है
गर्म चाय का प्याला ।

गर्म चाय और ठंडी जीभ के बीच
संतुलन साधने के समयांतराल में ही
आँख, मुहँ और मन को भी
मिल जाता है वक्त
खुद को साधने का ।

जीवन ऐसे ही सधता है
ठंडे और गर्म के बीच।

चाकू-छुरी तेज करा लो

गली-मोहल्लों में
जब-तब गूँजती
'चाकू-छुरी तेज करा लो' की आवाज
लोगों के मन में
बनाए रखती थी खयाल 'धार' का।

तेज धार लोहे की छुरियों से
मैथी-बथुआ, पालक-सुआ के साथ
कभी-कभी अनायास ही कट जाती
उँगली की पीड़ा
निरन्तर बनाये रखती थी चिंता
कि जिंदगी में
ठीक-ठीक धार का होना जरूरी है।

नए जमाने की
स्टील की छुरियों को
बार-बार धार की दरकार नहीं होती
तभी तो भूल जाती हैं औरतें
धार का खयाल
और हो जाती हैं कुंद।

किसान-मजदूर
अब भी बचाए हुए हैं अपनी धार
क्योंकि स्टील की छुरियों से
नहीं कटती घास
और खेत में खड़ी फसलें,
वहाँ तो तेज धार हँसियो की ही दरकार है।

किसान मेहनत के पत्थर पर
घिस-घिस कर
तेज करते हैं हँसिये की धार ,
और जरूरत पड़ने पर
दिखाते रहते हैं उसकी चमक
कुंद और भोथरे हो चुके लोगों को।

वे जानते हैं कि धार तेज करने के लिए
हमारा, लोहा होना जरूरी है
कि लगती रहे हमें जंग,
बदलता रहे हमारा रंग,
भीगते रहें हम संवेदनाओं के पानी में
और वक्त की पीठ पर
खुद को घिस-घिसकर
बनाए रखें अपनी धार।

बरसों बाद आज अचानक ही
दिखाई दिया गली में
'चाकू-छुरी तेज करा लो' वाला
मेरे यह कहने पर कि-
अब कहाँ कोई करवाता है
छुरियों की धार तेज,
क्या हो जाता है गुजारा
इतने भर से ?
वह बोला-
गुजारा चलाने के विकल्प ढूँढे जा सकते हैं,
यह तो खुद की धार
बचाए रखने की कवायद है
कर दूँ आपकी भी धार तेज ?
सिर्फ पाँच रुपये लगेंगे ...

V

एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी), कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
संतरामपुर-389260, जिला-महीसागर (गुजरात)
मोबाइल : 9427078711, ई-मेल : malini.gautam@yahoo.in

अनु चक्रवर्ती की कविताएँ

कितनी फुरसत में है ये दुनिया!

कितनी फुरसत में है ये दुनिया !
जिसने आज फैज की नज्म को नजरबन्द कर लिया ....

क्या मालूम कल को ये वहशी दुनिया तुलसी, कबीर, नानक,
गांधी, सुभाष, अंबेडकर, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, पंत,
महादेवी, गालिब, मीर, जिगर और मोमिन को भी न कटघरे में
खड़ा कर दे ....

और सीना तानकर कहे कि -
हम हैं सेक्यूलर!

दुनिया! घिन आने लगी है अब
मजहब के नाम पर हर दूसरे या तीसरे दिन
उभरती तुम्हारी गंदी सोच पर ....

बुतपरस्ती के सिवाए तुमने
सीखा ही नहीं शायद!
अब तक कहीं रंच मात्र भी
मानव बनना ..

तुमने जाना ही नहीं
किसी सम्प्रदाय से निश्छल प्रेम करना
झुंड में रहना, साथ निभाना
परस्पर सम्मान देना।

दुनिया!
तुमने हमेशा धर्म और जाति के
नाम पर गलत समय पर,
गलत तरीके से चीजों को परोसा है।

तुमने भाईचारे और अमनपरस्ती के
रहस्य को कभी गहराई से समझा ही नहीं ...
तुम लगे रहे बुझती चिंगारियों को
सदैव हवा देने में ...

विभाजन के दंश को अपने सीने में,
झेल कर भी नहीं सीखा अब तक तुमने
जुड़े रहकर दूर तक साथ चलना ....

किसानों की दुर्दशा से कभी नहीं पिघलता
तुम्हारा हृदय!
अबोध बालिकाओं पर हुए घिनौने
अत्याचारों से भी व्यथित नहीं हुए हो तुम!
तुमने शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, बिजली, सड़क और
महिलाओं की सुरक्षा पर नहीं उठाए कभी सवाल!
तुमने -75 डिग्री पारा पर तैनात सिपाहियों के
हालात पर विचार नहीं किया कभी ....

अलबत्ता तुमने,
देश को दो खंडों में विभाजित करने के सारे उपाय अपना रखे
हैं ....

बताओ, और कब तक
राम और रहीम के नाम पर सेंकते रहोगे
तुम अपनी गंदी राजनीति की रोटियाँ ....

आखिर और कितने रोज
नारंगी और हरे के कानों में
उड़ेलते रहोगे तुम
अराजकता के गरम शीशे .....

न मालूम तुम किसी जाति, किस धर्म
किस वर्ग, किस ईश्वर और अल्लाह की
बात करते हो ....!

दुनिया! मुझे ये भी नहीं मालूम कि -
आखिरकार तुम किसे बचाना चाहते हो!

इंसान को, इंसानियत को
या के
केवल मजहब को
या फिर
किसी मान्यता को .....

लेकिन हाँ !
मुझे इस बात पर सघन विश्वास है कि
अगर बचा सके हम
इस धरा पर अपने ही समान
मनुष्य की प्रजातियों को
तो वह केवल और केवल
सर्वधर्म के प्रति प्रेम से ही सम्भव है ।

आओ आज
पहले बचा लें हम ये सुंदर धरती!
समेट लें हम अन्तस् में
एक दूजे के प्रति श्रद्धा!
मान दें, सम्मान दें-
पूर्वजों के बलिदानों को ...
अखिल व्योम में लहराएँ
समरसता का विजय ध्वज!
और फिर गाएँ मिलकर
विश्वबंधुत्व के गीत!

आदिवासियों का प्रेम!

जल,
जंगल और
जमीन की ही तरह
आदिवासी
अपने वाद्य यंत्रों से भी करते हैं
निश्छल प्रेम!

तीज त्यौहार,
उत्सव और अपने
पारिवारिक एवं सामाजिक
मांगलिक कार्यों में
इनकी लोक धुनों को
कर लेते हैं अनवरत ही शामिल!

सांस्कृतिक परंपराओं के संवाहक
के रूप में वनवासियों ने
अब तक दर्ज करवाया है
इतिहास के पन्नों पर
अपना अतुलनीय योगदान!

आमोद-प्रमोद की सामूहिक सहभागिता में
नाद और गूँज के महत्व को
सही तरीके से किया है सत्यापित ...
सुदूर वनांचल की अनगढ़ छाँव में
रगों की टूटन को सुस्ताने का
दिया है बार-बार नेह निमंत्रण!

झुंड में रहकर जीविकोपार्जन
करने का सामर्थ्य
और मिल-बाँटकर
आहार करने के सुख से भी
आदिवासियों ने
सभ्य समाज को किया है
सदैव समृद्ध!

शुक्र है -
आधुनिकीकरण की होड़ से
अब भी बचा हुआ है
जनजातीय समुदाय ....
और इन्हीं से बची हुई हैं
हमारी समस्त लोककलाएँ!

वॉइस आर्टिस्ट, स्क्रिप्ट राइटर, रंगकर्मी, कवयित्री, समाज सेविका, प्रकृतिप्रेमी
C/o एम.के. चक्रवर्ती
सी-39, इंदिरा विहार सरकंडा, बिलासपुर-495006 (छ.ग.)
मोबाइल-7898765826 ई-मेल : antarac76@gmail.com

हेमा जोशी की कविताएँ

तीलू रौतेली

मेरे पहाड़ की
हर स्त्री अपने में
तीलू रौतेली सा
अदम्य साहस लेकर
जीती है

जीती है पहाड़ का
मान बन कर
जीती है पहाड़ का
सम्मान बनकर

झेलती है
पहाड़ के पहाड़ जैसे
जीवन की
अनेक कठिनाइयाँ

दबा देती हैं
उन्हें अक्सर
अपनी दंतुरित
मुस्कान के पीछे

उनकी गोरी मुखड़ी
ऐसे ही चमकती है
घाम में
जैसे प्रातः काल में

हिमालय की
श्वेताभ चोटियाँ
स्वर्णिम आभा से

उनके नौले से लेकर
ग्वाले जाने में
बसी है उनकी
एक अलग ही दुनिया

जहाँ वे अपना दुख सुख
अपनी सखियों से
साझा करती हैं

पुरुष नहीं होते हैं कभी
उनके सुख-दुख के
सहभागी

वे अपना दुःख सुख
या तो पहाड़ से
कहती हैं

या उन पहाड़ों में
रहने वाली
ऐसी ही दूसरी
तीलू रौतेली से।

धुंध मेरे पहाड़ों की

मेरे पहाड़ में
बरसातों में अक्सर

छाई रहती है
एक सफेद
धुंध की चादर

यह धुंध ढक देती है
सुदूर चमकती
हिमालय की चोटियों को

रास्ता दिखाते
ऊँचे-नीचे पहाड़ी दर्रों को

बहती-उफनती
लहराती-घहराती नदियों को

जमते पिघलते
ग्लेशियर की झीलों को

घने चीड़ के
बाज-बुरांश के जंगलों को

हरी-भरी घास वाले
विस्तृत फैले बुग्यालों को

मधुर संगीत सुनाते
पहाड़ी से गिरते झरनों को

पत्थरों की छत वाले घरों को
गोबर से लीपे
खलिहानों को

हाँ, ये सफेद धुंध
ढक देती है सब

सीलन से पहाड़
अनबनी जाता है

हरदा और हरुली
तब भी ढूँढते हैं
उस धुंध में

उस सीलन में
अषौज का घाम।

❖

वचनों के बाण

हिम की कठोर ठंड से जैसे
शरीर सुप्त हो जाता है
कटु वचन बाणों से वैसे
मन आहत सा हो जाता है

आह्लाद करता है निरंतर
सोचता रहता तदन्तर
फिर भी हल बहुत कठिन है
बीतते रहते हैं मन्वंतर

सारी आशाएँ सारे सपने
लगता है मानो कुछ छूट गया
जैसे किसी डाली से
कोई पुष्प टूट गया

डाली में पत्तियाँ तो हैं
पर अब फूल का अस्तित्व नहीं
ऐसे ही जीवन तो है
पर सपनों का औचित्य नहीं

फिर भी विश्वास है शायद
कुछ ऐसा हो जाए
टूटे हुए सपने खोई हुई आशाएँ
जल्द ही वापस लौट आएँ।

❖

अध्यापिका
सुयश सदन, नैनवाल निवास, कहलक्वीरा, पो.ऑ.-भवाली
नैनीताल-263132 मोबाइल : 8810503857

श्वेता चुघ की कविताएँ

जिंदगी बहने दीजिए

जिंदगी को सादगी से जीने दीजिए,
हर प्रश्न का जवाब पाना जरूरी नहीं,
इसलिए कुछ प्रश्नों को अनसुलझा ही रहने दीजिए,
बातों में रस लीजिए, तोल-मोल न कीजिए,
बस, हर छोटी बात का जिक्र होने दीजिए,
जिंदगी को सरलता से दीप्त होने दीजिए,
इक दूजे की खुशियों में, खुशी ढूँढ़ा कीजिए,
फेसबुक व्हट्सएप छोड़, डिजिटल उपवास कीजिए,
दर्प छोड़ दीजिए, भावुक मन कीजिए,
दिल से दिल की बातें हों, मौन पढ़ा कीजिए,
अपनों के संग समय बिताकर, जुड़ाव महसूस कीजिए,
मित्रों के संग भोजन करके, चर्चाएँ आम कीजिए,
स्वप्न देखा कीजिए, प्रयास होने दीजिए,
बस....उन्हें पूरा करने की शर्त मत कीजिए,
स्नेह छलकने दीजिए, भाव बहने दीजिए,
उस 'स्नेही' के भावों को अवरुद्ध मत कीजिए,
जिंदगी के हर पन्ने को सुर्ख होने दीजिए,
दूसरों की मदद कीजिए, मदद मिलने दीजिए,
हर दिल में अपने अहसास को दर्ज होने दीजिए,
जिंदगी के जज्बात को, जज्बात-सा बहने दीजिए,
फिक्र मत कीजिए, प्रफुल्लित मन कीजिए,
खुश रहने के दूसरों को, अवसर दिया कीजिए,
अजनबी की ओर देख, तनिक मुस्कुरा दीजिए,
'उस' अल्हड़ बचपन को जीवित रहने दीजिए,
कुदरत को महसूस कीजिए, मकरंद रिसने दीजिए,
'उस' विराट-तत्त्व को मन के छंद छूने दीजिए,
'उसके' उस 'नूर' से ओस बनने दीजिए,
और, उसकी याद में,
स्नेहवश ...
आँखों से, आँसू छलकने दीजिए,
आँखों से, आँसू छलकने दीजिए।

प्रकृति की रास लीला

हवा और पानी
सृष्टि के प्रथम संगीतकार हैं,
आह्लाद हो या विषाद,
बह ही जाते हैं,
कहीं तो इनकी
कल-कल मधुर ध्वनि,
और क्रमबद्ध सुरलहरी
पूरे वातावरण को सुरम्य बना देती है,
और, कहीं इनका
भीषण निनाद,
तांडव और बवंडर
के बिंब चित्रित कर देते हैं,
हवा का स्पर्श पाकर
प्रकृति का अंग-अंग
थिरक-थिरक उठता है,
पत्ते-पत्ते में सिहरन दौड़ जाती है,
जैसे हर पात के साथ
हवा, रास लीला रच रही हो
गोपियों की तरह
सुध-बुध खोकर,
कहीं पत्ते
तो कहीं फूल,
भाव-विह्वल होकर

झरने लगते हैं
और बिछ जाते हैं
धरती पर,
मानो धरती के पवित्र अंगराग हों,
और इन पेड़ों की तो
शान ही निराली है,
ये सृष्टि के प्रथम नर्तक हैं,
वर्षा के आने पर गुदगुदी-सी
होने लगती है इनमें,
कहीं नीम, कहीं चीड़, कहीं कचनार
तो कहीं मनोहर गुलमोहर
नृत्य नाटिका प्रस्तुत करते हैं,
इन्हें उन्माद में देखकर
अन्य अनगिनत नर्तकों में,
कहीं तो भरतमुनि का 'नाट्य शास्त्र'
परिभाषित होता दिखाई पड़ता है,
तो कहीं अप्पयदीक्षित का 'कुवलयानंद'
सभी की विचित्र शैली,
विचित्र मुद्रा,
अलग भाव, अलग भंगिमा,
सर्र-सर्र हवा और वर्षा
के तीव्र बहाव में इनका
बेसुध होकर
उखड़ जाना तो,
मानो इन रागिनियों के
अतिशय प्रेम में
प्राणों का परित्याग करने जैसा है
और फूलों की तो पूछो ही मत,
अल्हड़ता में सभी ने
चंदन संग ब्याह रचाया है,
तभी रात की रानी में भी
सौरभ इत्र समाया है,
हवा संग, वर्षा में
सब कुछ सराबोर है,
पोर-पोर,
आत्मविभोर हैं,
सुरों के इसी आरोहावरोह में
मदहोश होकर वल्लरियाँ भी
प्रकंपित होकर, पेड़ों से,
लिपट-लिपट जाती हैं
प्रतीत होता है, कि,
प्रकृति की इसी जुगल बंदी ने
मानव सभ्यता को अपने
हृदय का शाश्वत वसंत
विरासत के तौर पर
सौंपा है,
ये चेता देने के लिए कि,
हवा और पानी कृष्ण के समान हैं,
जीवन के आधार तत्व हैं,
शेष समस्त उपकरण गोपियाँ हैं,
वास्तविक रास लीला
कहीं और नहीं,
यहीं हमारे सम्मुख रची जाती है,
हर रोज, प्रतिपल!!

V

ब्लॉक ए-4, 263, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063
मोबाइल : 9811535962

डॉ. हेमराज सुन्दर की कविताएँ

कहाँ गए इस शहर के आदमी?

तन्हा इस शहर में
ढूँढ़ने निकला था
कोई आदमी,
हैरान लौट रहा हूँ
आदमी के शहर में
न मिला कोई आदमी!
हैरान हूँ!
कहाँ गए
इस शहर के आदमी?
कहकहों ने तब कहा हमसे-
पोस्टरों में पढ़ लो
गली-गली छप गया है आदमी!
अब कौन सँवारेगा इस शहर को?
नज़र नहीं आ रहा है आदमी
समय के दौड़ते पगों ने
तब कहा हमसे-
पढ़कर देख लो
घायल ग्रंथों पर
प्रश्न-चिह्न बन गया है आदमी!

क्या इसे प्रलय समझूँ
जो अदृश्य हो गया है आदमी?
मौजों ने तब करवट बदलकर
कहा हमसे-
चलकर देख लो
रेत पर नाव बन गया है आदमी!

दर्पण से पूछा-
बताओ
शृंगार करने तो आता होगा आदमी?
दर्पण ने तब
मुस्कुरा कर कहा हमसे-
मेरा खण्ड-खण्ड कर दो
हर खण्ड में तुम्हें नज़र आएगा
आदमी?

❖

अपराजित

कितना अंतर है : हम दोनों के बीच के सत्य में!
तुमने बहुत चाहा कि मैं
तुम्हारे काले इतिहास को
अपनी लेखनी की सफेदी दूँ!
परन्तु, मैंने कभी नहीं चाहा
कि कोई मेरे शब्दों को ओढ़े
और दर्शन की किताब बन जाए!

इसलिए तुमने मुझे कुचला
मेरी भावनाओं को रौंदा
प्रतिभाओं को छुरे-चाकू, बन्दूक,
अणुओं-परमाणुओं के बीच किया;
मुझे सताया और मेरा हक छीना!!

फिर भी मैं टूटा नहीं
मैं कभी झुका नहीं,
मेरे कथ्य कभी सोए नहीं!
और अब जब भी
तुम मंच से नई सभ्यता की बात करते हो
मुझे तुम्हारी कोई नई चाल लगती है।
वह हर प्राणी आहत होगा
जो तुम्हारी जुबान रोकेगा!!
इसी डर से-

तुम्हारे इर्द-गिर्द के कुत्ते
अपनी दुम हिलाते रहते हैं
तुम्हें मालिक जानकर
तुम्हारे तलवे चाटते फिरते हैं!
और बेहया नटों की तरह
यहाँ-वहाँ तमाशा दिखाते रहते हैं!

अब मैं भी तुम्हें पहचान गया हूँ
और यह जान गया हूँ
कि तुम कितने पानी में हो!
मैं यह भी जान गया हूँ
कि यहाँ माँगने से कुछ भी
प्राप्त नहीं होता है!
इसलिए मैं गढ़ रहा हूँ
अपने हाथों को मजबूत
ताकि सुलगती मशाल लेकर
तुम्हें नंगा कर सकूँ
बीच सड़क पर!
और इन दिनों
अर्धविराम पूर्ण विराम से हटकर
गढ़ रहा हूँ कोई प्रश्नवाचक चिह्न (?)

मैं जानता हूँ-आग मेरे घर लगी है
फिर भी, मैं तुम्हें आवाज़ नहीं दूँगा!
मैं नहीं चाहता कि तुम
मेरे नंगे-झुलसे शरीर को देखो
और मेरे दु:ख पर आँसू बहाओ!
मेरी भूख का अर्थ भी
इतना सस्ता नहीं है
जो पड़ोसी के घर से
टुकड़ों का मोहताज बने!

मेरे शरीर की नदी में
अभी बाढ़ की सम्भावना है!!
बदलेगी हवा-सच कहता हूँ।
मैं वह पाण्डवी अभिमन्यु नहीं हूँ
जो चक्रव्यूह में फँसकर मर गया
मैं बुना गया हूँ मजबूत
प्रवेश से
चक्रव्यूह तोड़कर निकलने तक के
इन्द्रधनुषी रंगों में!
उतारा गया हूँ परीक्षणार्थ
न जाने कितने ही रणों में!
मैं जीतता ही गया हूँ
परत-दर-परत हर चक्रव्यूह को
आज भी मैं सोया नहीं हूँ
कथानक के ऐतिहासिक प्रसंगों में!
मैं आज भी संकल्पित हूँ
युगों-युगों के चक्रव्यूहों को
तोड़ने को....!!

❖

क्या अर्थ इस अनुराग का!

क्या अर्थ इस अनुराग का
जो न समझे अर्थ प्यार का
अवकाश नहीं जिसको-
कि पोंछ सके आँसू यार का
क्या अर्थ इस अनुराग का!
जो तृप्ति न दे सके वह अमृत क्या
जो फैलाए न सौरभ वह कुसुम क्या
जो परहित न जिये उसका जीवन क्या
क्या अर्थ फिर जीने का?
क्या अर्थ इस अनुराग का!

जहाँ न सनेह-प्रतिदिन वह मिलाप क्या
जहाँ न दान-दक्षिणा वह समर्पण क्या
जहाँ न भक्ति-ज्ञान वह अर्चन क्या?
क्या अर्थ फिर पूजन का?
क्या अर्थ इस अनुराग का!
उसका क्या जीवन जिसने केवल आँसू ही देखे
उसका क्या जीवन जिसने केवल मुस्कान ही देखी
जिसने दिया केवल हलाहल, पाला कण्ठ-द्वेष
फिर क्या रहा जीवन स-विशेष
क्या अर्थ इस राग-विराग का?
क्या अर्थ इस अनुराग का!

❖

अध्यक्ष, हिंदी साहित्य अकादमी,
मॉरीशस

देवेश पथ सारिया की चार कविताएँ

सपने में वॉल्डेमॉर्ट

आप जानते हैं
रॉल्फ फिएन्नेस को?

'तुम जानते हो कौन
वो, जिसका नाम नहीं लिया जाना चाहिए'

हाँ वही,
जो वॉल्डेमॉर्ट बने थे हैरी पॉटर में
जिसे देख कांपती थी
अस्सी और नब्बे के दशक के बच्चों की रूह

रॉल्फ मुझे दिखे
वॉल्डेमॉर्ट के गेटअप में
पर अभी प्रविष्ट नहीं हुए थे वे
किरदार की रूह में
उस समय, मेरे सपने में
वे रॉल्फ फिएन्नेस ही थे

वे कुर्सी पर बैठे हुए थे
मैं मंडराता रहा उनके पास
जितनी बार रॉल्फ दिखे, सहज दिखे
अभिवादन का विनम्रता से जवाब दिया

रात के सपने में जब
शूटिंग खत्म हुई उस दिन की
वे घर जाने के लिए तैयार हो रहे थे
अभी मेकअप चेहरे से हटाना था शेष
उन्होंने मुझे देखा
और
पहचानकर अलविदा कहा

मैंने उनसे कहा
आप इतने अच्छे हैं रॉल्फ
अगर कभी चुनने को कहा गया
हैरी पॉटर और वॉल्डेमॉर्ट के बीच
तो मैं वॉल्डेमॉर्ट को वोट दूँगा

यह सुनकर रॉल्फ
एकदम से बेचैन हुए
बोले-
'नहीं, नहीं ..
वोट हैरी को ही देना,
हमेशा, हैरी ही को जीतना चाहिए'

❖

अपना घर

खिड़की-दरवाजे
परिभाषा के तौर पर वही रहते हैं
अपना घर, पर अपना ही होता है
अपनी खिड़की, अपना फर्श
खिड़की से बाहर दीखता अपना दृश्य
जो उसी कोण से वैसा का वैसा
नहीं दीखता किसी और को

बचपन से अब तक
कई बार गिनी हैं
कमरों की छत पर पट्टियाँ
फर्श पर सीवनें

दीवार की दरारों को
सहलाया है प्यार से
और नयी आती दरारों को
आँखें तरेर डराया है

आँगन को कच्चे से
सीमेंट लगते देखा है
क्यारियों को फिर भी
किसी तरह बचाए रखा है

खुले मेनगेट के इस घर में
निवाड़ का पलंग सटाकर लगाते हैं रोक
आँगन में कुत्तों के घुस आने पर

इस आँगन में मेरा बचपन
दफ्न या शायद जिंदा है
भाई-बहन उस बचपन में
अब भी उतने ही करीब हैं

घर मुझसे बहुत बड़ा है
फिर भी बिछड़ते हुए मैंने उसे
अपने अंक में समाया है
और रोया हूँ एक बच्चे की तरह

❖

रेगिस्तान से नखलिस्तान

रेगिस्तान की तपिश में
ढूँढने एक नखलिस्तान
लिखता गर्म धूल पर
अपने चलते जाने की दास्तान -
हाँ! मैं भी था यहाँ
नथुने थे जल रहे
ले रहा था गरम साँस
खून भी था खौल रहा
ईंधन बन, मेरी यात्रा का

कालांतर में,
मेरे काटे रास्तों पर
घटित होगा अवश्यंभावी मरु में
उड़ता हुआ आएगा फिर तूफान
मिटाने मेरे पाँव के निशान
यूँ ही मिटाता रहा है वह
आदि से आदिम के निशान

हश्र से नहीं सफर से है होता
यहाँ लेखजोख में नखलिस्तान

रेगिस्तान में अमिट, अशेष
बस किरकिरी रेत है
रहगुजर को संभालते, गाते
उड़ते टीलों के प्रेत हैं

❖

छोटा पीला फूल

जिन छोटे-छोटे फूलों का
हम नाम नहीं जानते
अवसाद के क्षणों में
घास, झाड़ी या पत्तियों में से
उंगली बढ़ा
वही हमें थाम लेते हैं

घास में उगे
उस पीले फूल को देखकर
तेज गति से चलता हुआ
मैं अचानक रुका
किसी पावर ब्रेक वाली गाड़ी की तरह

एक और छोटा सा पीला फूल
मैंने देखा था
अपने घर की क्यारी में

अब दोनों फूल मुझसे मुखातिब थे

तस्वीर लेने के स्वार्थ में
हाथ से पकड़कर
मैंने नियंत्रित नहीं किया
फूल का हवा को सूंघना
अलमस्त झूमना

करीब से उसे बिना देखे,
स्मृति में सहेजे बिना उसे
अपनी राह चलते जाना
व्यर्थ हो जाना था
छोटे से जीवन का
फूल के नहीं
मेरे

❖

पोस्ट डाक्टरल फेलो
रूम नं 522, जनरल बिल्डिंग-2, नेशनल चिंग हुआ यूनिवर्सिटी
नं 101, सेक्शन 2, ग्वांग-फु रोड, शिन्चू, ताइवान, 30013
फोन : +886978064930 ईमेल: deveshpath@gmail.com

सुभाष प्रसाद गुप्ता की कविताएँ

ठहराव

शहर से देहात-ए-तलक
ये जीवन थम सा गया है
आशियाँ में हयात बर्फ की तरह
जम सा गया है

बस्ती में इंसानों को
मयसर नहीं आब-ओ-दाना
मासूमों की बेबसी देखकर आँखें
नम सा गया है

टूट गयी सब हसरतें
छीन गयी हाथों से निवाले
कोरोना के इस दौड़ में पमालों का
दम सा गया है

वीरां हुए सब रास्ते और
मंजिलें हुईं अब ओझल
जुदा ऐसे हुए सब लगता है कोई
हम सा गया है

शिफा की उम्मीद में अहाते में
कैद व सहमे हम
गुजर रही है ये पल जैसे महीनों में
रम सा गया है

बसंत बहार

वो दिन थे कैसे जब पीली धूप का
रहता था इंतजार
एक सिहरन सी होती थी तन में
जब बहता था बयार

कहीं सरसों के पीले फूल
कहीं मटर के बैंगनी फूल से
अलसी के नीली फूलों से
बसंत का सजता था सिंगार

कहीं बेल की खूशबू
और कहीं मिश्रीकंद के स्वाद से
भांग की हरियाली व महुआ से
शोभित होता था बहार

कहीं सेमल के लाल फूल
और कहीं खट्टे बेर के फल
बागमती के किनारे किलकारी
करता था किलकार

कहीं पूजा की तैयारियाँ
कहीं अल्हड़ कोयल की तान
बसंत पंचमी में हर दिशा
व मन में बजता था सितार

कारथेनेर रिंग 2, वियना, ऑस्ट्रिया
दूरभाष : +43-1-5058666, +43-6769006375
फैक्स : +43-1-5059219

संगीत जैसा आनंद कहीं नहीं है-अनूप जलोटा

प्रख्यात गायक अनूप जलोटा से दिनेश पाठक की विशेष अंतरंग बातचीत

कहा जाता है कुदरत अपने कामों के लिए खुद इंसान को चुन लेती है, लगभग 66 वर्ष पूर्व एक सुरम्य प्राकृतिक स्थल पर एक सुरीले भजन गायक अपनी गर्भवती पत्नी के साथ अवकाश के कुछ दिन बिताने के लिए आए थे, उसी स्थल पर प्रकृति की गोद में, कल-कल करते झरनों और पक्षियों के कलरव संगीत के बीच एक बालक का जन्म हुआ...और जन्म भी ऐसे परिवार में जहाँ संगीत सांस लेने जितना ही आवश्यक था, यानी ख्यात भजन गायक पुरुषोत्तम दास जलोटा का परिवार। बस वहीं पर भक्ति भाव के रस परिपोष से युक्त भजनों को विश्व के कोने कोने तक पहुँचाने का भाग्य प्रकृति ने बालक के माथे पर लिख दिया, बरसों बाद वही बालक भजन सम्राट अनूप जलोटा के रूप में जाना गया। स्मृति पुष्पों की बिखरी हुई पंखुड़ियों को समेटते हुए अनूप जलोटा कहीं खो से गए...हमारे माता पिता सन 1953 की गर्मियों में नैनीताल घूमने गए थे और वहीं पर जुलाई 1953 में मेरा जन्म हुआ। वो जब गए थे तो दो थे, और जब वापस लौट कर आए तो मुझे गोदी में लेकर यानी तीन हो गए। उन दिनों हम लोग लखनऊ में रहते थे। सात साल की उम्र से मैंने गाना शुरू कर दिया था यानी लगभग छह दशक हो गए मुझे गाना गाते-गाते। हमारा घराना पंजाब का शाम चौरासी घराना है, इस घराने में सलामत अली, नजाकत अली जैसे गायक कलाकार हुए हैं जो बाद में पाकिस्तान चले गए। घराने की खासियत है छोटी-छोटी मुर्कीयाँ, छोटी छोटी तानें, छोटी-छोटी सरगम, जैसे हम अपने गाने में अक्सर किया करते हैं और जो हमारे सुनने वालों को भी बहुत अच्छी लगती हैं।

एक घरानेदार गायक होने के साथ ही आपने भातखँडे विश्वविद्यालय से शास्त्रीय संगीत का विधिवत प्रशिक्षण भी लिया, इसके बावजूद आपने सुगम संगीत की ओर रुख क्यों किया?

हाँ, यह सही है कि मैंने शास्त्रीय संगीत की विधिवत शिक्षा ली है और मैं पंजाब के शाम चौरासी घराने से ताल्लुक रखता हूँ लेकिन मुझे यह लगा कि मैं भजन गा के जितने लोगों तक पहुँच सकता हूँ इतने लोगों तक शायद शास्त्रीय गायन के जरिए नहीं पहुँच सकूंगा। मैंने यह जरूर किया कि अपने भजनों और गजलों में शास्त्रीय रागों की शुद्धता कायम रखी। भजन और गजल के माध्यम से मैं गाँव गाँव पहुँचा, आज जिन लोगों को शास्त्रीय संगीत का ज्ञान नहीं है वह भी अपने खेतों में इकट्ठे होकर मेरे भजनों को सुनते हैं और आनंदित होते हैं, बस यही मेरे विचार की सफलता है।

आपके पिता आपके गुरु भी थे, इस नाते संभवत: आपको संगीत की बारीकियाँ सीखने में सहजता महसूस हुई होगी। क्या अनुभव रहा आपका?

देखिए मेरे पिताजी, पिता के रूप में जितना प्यार हमारे ऊपर लुटाते थे, गुरु के रुप में उतने ही ज्यादा सख्त थे। वैसे भी जब

पिता और गुरु एक ही हो तो उसकी 'एडवांटेज' के साथ ही यह डर भी रहता है कि वह किसी भी समय कहेंगे कि चलो बैठो रियाज करो। गुरु तो जब मिलेंगे तब उनके सामने जाएँगे। कमरे में बंद कर देते थे दो घँटे के लिए और कहते थे सिर्फ 'सा' लगाना, अगले दिन 'रे' लगाते थे। वह जो मेहनत की थी, उसी का फल है कि आज गाने में मजा आता है।

अनूप जी फिर लखनऊ से मुंबई का सफर कैसे तय हुआ?

बी.ए. करने के बाद भातखँडे म्यूजिक कॉलेज से संगीत सीखा और बस मन किसी और चीज में नहीं लगता था इसलिए वहाँ से मुंबई आ गया और संघर्ष शुरू हो गया। मुंबई आकर पहले आकाशवाणी में कोरस समूह में 30 लोगों के साथ कई दिनों तक गाता रहा। दरअसल यह हमारा स्ट्रगल नहीं ट्रेनिंग पीरियड कहिए। हमें 320 रुपए कोरल ग्रुप में जाने के लिए मिलते थे और यह जो मैं हारमोनियम बजाता हूँ ना, यह बजाना हमने उन दिनों वहीं पर सीखा था। पहली बार हमने एक ई.पी. रिकॉर्ड में ब्रह्मानंद का भजन गाया था। बमुश्किल 16 साल की उम्र रही होगी उन दिनों। बहुत दिनों बाद अभिनेता, निर्माता निर्देशक मनोज कुमार जी ने मुझे 'शिर्डी के साईं बाबा' फिल्म में एक भजन गाने का मौका दिया, यह बात 1974 की है। इसके बाद सिलसिला चल निकला और लगभग सभी संगीतकारों के साथ काम किया इनमें मदन मोहन जी, एस.डी. बर्मन, खय्याम साहब, आर डी बर्मन साहब, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल सभी शामिल थे। लोगों को ऐसा लगने लगा कि फिल्मों में एक नया गायक कलाकार आ गया। लेकिन मैं हमेशा यही कहता था उनसे कि मुझे रिकॉर्डिंग करने में वह मजा नहीं आता, जो दर्शकों के सामने बैठकर लाइव प्रोग्राम देने में आता है, जहाँ श्रोता वाह-वाह कर रहे हों तालियाँ बज रही हो।

सुना है आपने पिछले दिनों पाकिस्तान में कोई कार्यक्रम नहीं करने की अपनी कसम तोड़ दी...क्या कारण रहा?

हाँ, यह सही है कि मैंने पाकिस्तान में कार्यक्रम नहीं करने की कसम खाई थी। वहाँ के तमाम लोगों ने कई बार मुझे गजलों का कार्यक्रम करने के ऑफर भेजें लेकिन मैं कभी वहाँ नहीं गया। एक बार तो वीजा भी बन गया था लेकिन मैं नहीं गया। बरसों पुरानी कसम तोड़ने के पीछे एक खास कारण यह रहा कि मुझे इस बार पाकिस्तान में रहने वाले हिंदुओं ने बुलाया था और उन्होंने मुझे बताया था की आप हमारे यहाँ आइए। हम आप का कार्यक्रम एक मंदिर में करेंगे जहाँ आप भजन सुनाएँगे। काफी सोच विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा की अगर पाकिस्तान में रहने वाले हिंदू अपने धर्म और संस्कृति के संबंध में कोई कार्यक्रम करते हैं और वहाँ मैं भारतीय अध्यात्म से जुड़े हुए भजन प्रस्तुत करता हूँ तो एक प्रकार से यह वहाँ रहने वाले हिंदुओं को वैचारिक स्वतंत्रता भी प्रदान करेगा और उन्हें उनका वाजिब हक मिलेगा। तो इस प्रकार मैं पाकिस्तान के सिंध प्रांत में सक्खर नामक शहर में गया और मुझे वहाँ पहुँच कर यह आश्चर्य हुआ कि मेरे कार्यक्रम में 50,000 से ज्यादा लोग मुझे सुनने के लिए उपस्थित थे, जिसमें हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमान भी थे। मैंने वहाँ पर कई भजन गाए जो श्रोताओं ने खूब पसंद किए लेकिन उससे भी बढ़कर मैंने वहाँ पर वह भगवदगीता गाई, जिसे मैं उर्दू में रिकॉर्ड कर रहा हूँ। मूल भगवदगीता में संस्कृत के 700 श्लोक हैं। इन्हें 1750 शेरों में अनवर जलालपुरी ने अनुवाद किया है और विवेक श्रीवास्तव ने उसका संगीत तैयार किया है।

क्या लोकप्रियता के लिए भजन गायन अपनाना अधिक सुगम रास्ता है?

देखिए, भजन शास्त्रीय संगीत का ही एक अंग है। आप देखेंगे कि जितने भी बड़े क्लासिकल सिंगर हैं, वह शास्त्रीय बंदिश गाने के बाद अंत में एक भजन अवश्य गाते हैं, चाहे वह पंडित भीमसेन जोशी, पंडित जसराज हो या फिर किशोरी अमोनकर हो। भजन हमेशा से लोकप्रिय रहा है और आगे भी रहेगा क्योंकि भजन हमारे संस्कार से जुड़ा है। आज भजन और भक्ति अपनी लोकप्रियता के चरम पर है, आप देखें कि टेलीविजन पर 15 धार्मिक चैनल हैं जिन पर 24 घंटे भजन होते हैं, जबकि शास्त्रीय संगीत का या फिर गजल का अलग से कोई चैनल नहीं है दरअसल भजन ईश्वर प्राप्ति का सर्व सुलभ साधन है और इसीलिए लोकप्रिय है। 'ऐसी लागी लगन मीरा हो गई मगन...' यह भजन हमने लगभग 40 साल पहले रिकॉर्ड किया था पिछले 40 साल में तीन चार पीढ़ियों ने उसे सुना दादा ने पिता ने और फिर बेटे ने इसका अर्थ है कि उसमें जरूर कोई ऐसी बात रही होगी कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसकी लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई उस संगीत को पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्वीकार किया गया इसीलिए मेरा संगीत प्रेमियों से यही कहना है कि ऐसे संगीत को अपनाइए जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी साथ दे।

अनूप जी आप लगातार 53 वर्षों से गा रहे हैं। निसंदेह शुरुआती दौर में रियाज बहुत अधिक रहा होगा। क्या समय के साथ जब गायक की गायकी में परिपक्वता आ जाती है, तो उसका रियाज का समय घटने लगता है या यूं कहें कि उसे उतने रियाज की जरूरत नहीं होती है?

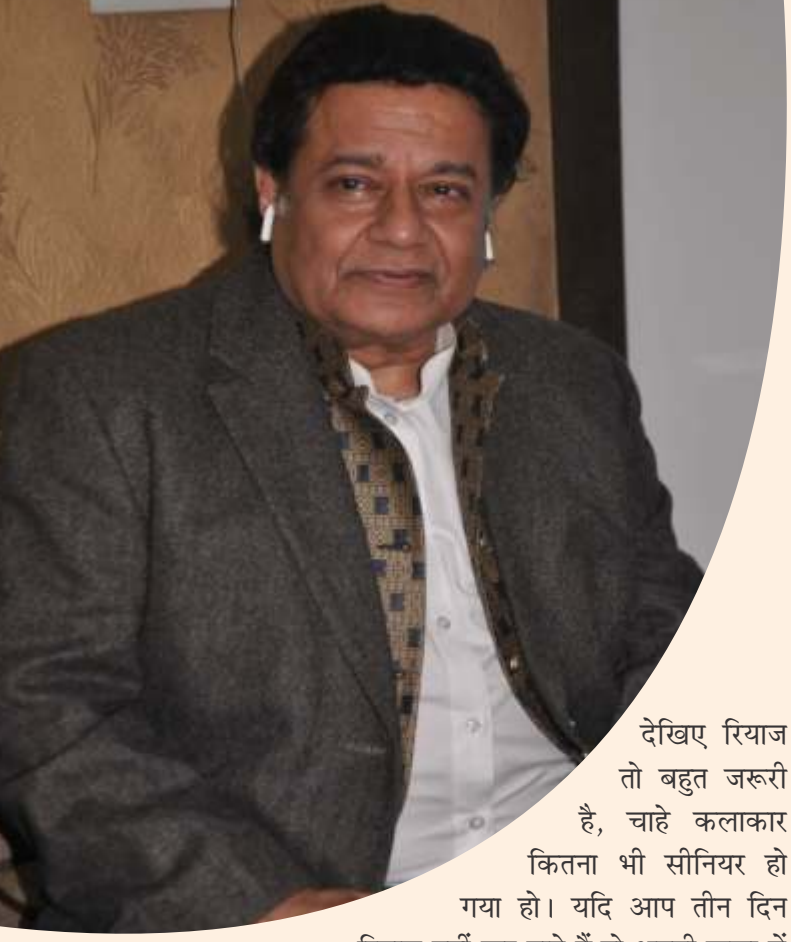

देखिए रियाज तो बहुत जरूरी है, चाहे कलाकार कितना भी सीनियर हो गया हो। यदि आप तीन दिन रियाज नहीं कर पाते हैं तो अपनी कला में तीस दिन पीछे हो जाते हैं, यानि संगीत हमसे दूर हो जाता है। मैं रोजाना छः-सात घंटे रियाज करता हूँ। कभी कभी दस-दस घंटे भी रियाज चलता है और मेरा मानना है कि हल्की आवाज में रियाज करना चाहिए इससे गला थकता नहीं है और आपकी आवाज पॉलिश होती रहती है। शूटिंग के दौरान भी मेरा हारमोनियम और तानपुरा मेरे साथ रहता है बीच बीच में रियाज चलता रहता है सुबह उठे और लग गए रियाज में। हमें तो यह लगता है कि जिस दिन हम रियाज बंद कर देंगे उस दिन आनंद विहीन हो जाएँगे, वैसे भी हम तो यही मानते हैं कि संगीत वही है जो आपके हृदय को आनंदित कर दे प्रसन्न कर दे, वही आपका जीवन भर साथ देगा। मेरा यह भी मानना है कि कठिन समय में संगीत ही सबसे बड़ा सहारा होता है और फिर इसके बाद अध्यात्म। मनुष्य को स्वयं को इसमें इतना प्रबल बना लेना चाहिए कि निजी जीवन में आने वाली कठिनाइयाँ उसे विचलित नहीं कर सके। संगीत एक ऐसी शक्ति है जो हमें ईश्वर के नजदीक ले जाती है संगीत केवल मनोरंजन के लिए नहीं है उसके तो और भी कई साधन है। संगीत को संतों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए अपनाया तो यह रोटी कपड़ा मकान जैसी जरूरत नहीं है बल्कि उससे कहीं आगे बढ़कर जीवन के सच्चे आनंद के लिए परम आवश्यक है। यह सच है कि जब हम किसी भी चीज की गहराई में जाएँ तब हमें उसके मायने मालूम पड़ते हैं। मेरा क्षेत्र संगीत है यह कहता है कि आत्मा में उतरिए, गहराई में जाइए और ईश्वर प्राप्ति के इस सहज सरल साधन को अपनाइए।

अध्यात्म और ईश्वर की बात पर ध्यान आता है कि जब आपने भजन गाना शुरू किया तब यह मंदिर या फिर धार्मिक कार्यक्रमों तक ही सीमित था लेकिन आप भजन को मंच तक ले कर आए और असीम लोकप्रियता दिलाई आपने यह प्रयोग क्या सोचकर किया?

मैंने तो 16 साल की उम्र से ही भजन गाना शुरू कर दिया था और तब लोग मुझसे बोलते थे कि भाई, भजन तो बुढ़ापे में सुनेंगे तो मैंने उन्हें बताया कि आप बुढ़ापे से पहले भी भजन का आनंद ले सकते हैं और यही हुआ भी कि मेरे भजनों के प्रोग्राम तमाम स्कूल-कॉलेज और यूनिवर्सिटी में आयोजित किए गए और युवाओं ने भी उसे बहुत पसंद किया बाद में मैंने गजलें भी गाई लेकिन मेरा हमेशा से यही कहना रहा कि भजन और गजल में मेरे नजरिए से कोई फर्क नहीं है, एक में खुदा के लिए मोहब्बत है और दूसरे में उसके लिए जिसे आपने खुदा बना रखा है, लेकिन सोचिए जिसने आपको इस दुनिया में भेजा है वह आपसे कितनी मोहब्बत करता होगा?

अनूप जी आपने भजन और गजल दोनों ही गाए और दोनों ही विधाओं में आपको खूब लोकप्रियता मिली लेकिन पिछले दिनों आपने यह भी कहा था कि गजलें सांसारिक हैं और भजन आध्यात्मिक है, तो क्या आप का गायन अब आध्यात्मिकता की ओर बढ़ चला है?

हाँ, एक हद तक यह कहा जा सकता है और यह सही भी है, क्योंकि आजकल मैं भजन ज्यादा गा रहा हूँ। मैंने भगवदगीता गाई रामचरितमानस गाई वेदों की ऋचाओं को गा रहा हूँ, यानी मेरा उद्देश्य अब यही है कि मैं ऐसा कुछ काम करूँ जो लोगों के घरों में पीढ़ी दर पीढ़ी संजो कर रखा जाए। हमारा यही कहना है कि ऐसे संगीत को अपनाइए जो शाश्वत हो, जैसे रामचरितमानस को पढ़ने के बाद हम उसे ससम्मान कपड़े में लपेटकर सेल्फ पर रख देते हैं जबकि किसी आम किताब को यूँ ही कहीं भी रख देते हैं।

दरअसल इस उम्र में आकर मुझे सही मायनों में संगीत का आनंद आने लगा है पहले तो मैं सिर्फ गाता था 55-56 वर्ष की उम्र के बाद अब इसमें समझ आई है। मैंने यह बात एक बार पंडित जसराज जी से कही तो वह कहने लगे, "अनूप यह बिल्कुल सही है, इस उम्र के बाद ही गायन में आनंद आना शुरू होता है, हम

उससे पहले लोगों को आनंद देते रहते हैं और अब स्वयं को गायन में आनंद आने लगता है।"

अनूप जी आप एक भरे-पूरे परिवार से आते हैं, जीवन में आपने बनते-बिगड़ते रिश्तों के विभिन्न आयामों को नजदीक से देखा है, जिंदगी में रिश्तों के महत्त्व का आकलन आप किस प्रकार करते हैं?

देखिए जीवन में रिश्ते मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं, एक सांसारिक रिश्ते जिन्हें आप स्वयं बनाते हैं। दूसरे होते हैं पारिवारिक रिश्ते जिन्हें आप नहीं चुनते उन्हें ईश्वर आपके लिए बना कर देता है। उदाहरण के लिए आप अपना पिता नहीं चुन सकते, माँ नहीं चुन सकते, भाई नहीं चुन सकते बहन नहीं चुन सकते बेटा बेटी नहीं चुन सकते लेकिन अपना लाइफपार्टनर चुन सकते हैं, मित्र चुन सकते हैं। ईश्वर जो रिश्ते बना कर देते हैं या यूँ कहिए कि चुन कर देते हैं वह बड़े प्रबल होते हैं लेकिन जो रिश्ते आप बनाते हैं वह सांसारिक रिश्ते होते हैं उन्हें आप प्रोफेशनल रिश्ते भी कह सकते हैं यह रिश्ते कई बार समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलते भी रहते हैं और इनके बनने बिगड़ने पर आपका कोई वश नहीं होता है।

अनूप जी रिश्तों की बात चली है तो क्षमा चाहते हुए यह उल्लेख करना चाहूँगा कि लाइफपार्टनर के मामले में जहाँ एक और आपने एक जीवनसाथी से संबंध विच्छेद कर लिया वहीं दूसरे जीवनसाथी की बीमारी के दौरान आपने बहुत ही मनोयोग से सेवा की, आप को करीब से जानने वालों का यह कहना है कि आप उस दौरान एक 'रोलमॉडल' हसबैंड थे?

मुझे ऐसा नहीं लगता क्योंकि यदि मैंने इतने ही मनोयोग से सेवा की होती तो वह आज भी मेरे साथ होती। मुझे रह रह कर मेघा का पसंदीदा भजन, 'कभी कभी भगवान को भी भक्तों से काम पड़े, जाना था गंगा पार प्रभु केवट की नाव चढ़े...' याद आता है, इसे सुनते सुनते वह रो देती थी । मैं तो अपने मन को यही सोचकर तसल्ली दे लेता हूँ कि शायद भगवान को भी उससे कोई काम आन पड़ा होगा इसलिए उसे अपने पास इतनी जल्दी बुला लिया। पंडित जसराज जी जब भी मेरे प्रोग्राम में होते थे तो वह भी इसी भजन की फरमाइश करते थे और इसे सुनते सुनते उनकी आँखों से आँसू बहने लगते थे।

कुछ समय पूर्व 'बिगबॉस' टीवी कार्यक्रम में आप को लेकर रिश्तों की एक नई इबारत लिखी गई, जिसने आपके चाहने

वालों के मन को बड़ी ठेस पहुँचाई आप इस बारे में क्या कहेंगे?

मेरे चाहने वालों ने जो कुछ भी बिग बॉस में देखा उसमें रत्ती भर भी सच्चाई नहीं थी। सारा कुछ शो की टीआरपी बढ़ाने के लिए किया गया था और पूरी तरह स्क्रिप्टेड था यानी पटकथा के अनुसार दिखाया जा रहा था। जसलीन पिछले तीन चार साल से मुझसे संगीत सीख रही है और उसके परिवार से मेरी पुरानी जान-पहचान है। जब उसे 'बिगबॉस' शो में पार्टिसिपेशन का ऑफर मिला तो उसने मुझे भी साथ चलने के लिए कहा क्योंकि इस शो की थीम थी 'विचित्र जोड़ी'। उसके पिता ने भी इसके लिए मुझसे अनुरोध किया और हम गुरु शिष्य जोड़ी के तौर पर बिग बॉस में शामिल हुए। उसके बाद जो कुछ भी आप सब लोगों ने टेलीविजन के पर्दे पर देखा वह सब एक ड्रामा था, मुझे इस बात का खेद है कि मेरे चाहने वालों को इससे दुख पहुँचा।

अनूप जी आपने फिल्म और टेलीविजन के लिए भी काफी कुछ काम किया है कुछ उसके बारे में बताइए?

मैंने फिल्मों में कुछ रोल पहले भी निभाए हैं और आगे भी निभाऊँगा यदि वे रोल मेरे हिसाब के हो। मैं कहानी सुन कर देख लेता हूँ कि वह मुझे सूट कर रही है या नहीं और उसमें कोई घटियापन तो नहीं है। जल्दी ही जैकी श्रॉफ के मुख्य रोल वाली फिल्म 'मालिक एक' जो शिरडी वाले साईं बाबा के जीवन चरित्र पर आधारित है, रिलीज होगी उसमें मैंने दासगणूका का किरदार निभाया है। मैं जब अभिनय करता हूँ तो उसमें भी डूब

जाता हूँ। एक फिल्म में मैंने सत्य साईं बाबा का रोल किया था तो लोग शूटिंग के दौरान ही मेरे पैर छूने लगते थे। अपने प्रोडक्शन हाउस अनूप जलोटा प्रोडक्शन के अंतर्गत मैं अब तक आठ-दस भोजपुरी और इतनी ही हिंदी फिल्में बना चुका हूँ। मेरे पार्टनर बनी चौधरी के साथ मैं फिल्में बनाता हूँ और इसके लिए मैंने एक अलग टीम बना दी है जो पूरी तरह प्रोफेशनल है और मुझे रिपोर्ट करते हैं। हाल ही में मेरे प्रोडक्शन हाउस की एक फिल्म 'मिस्टर कबाड़ी' रिलीज हुई थी जिसमें ओमपुरी, सारिका, अनु कपूर और हैप्पी सिंह ने काम किया था 'ब्लैकबर्थडे' और 'करतूत' नाम की फिल्में हाल फिलहाल मेरे प्रोडक्शन हाउस से बन रही है।

अनूप जी आप पिछले 55 वर्षों से भी अधिक समय से लगातार गा रहे हैं और माशाअल्ला आज भी आपकी आवाज की बुलंदी अच्छे-अच्छों को मात करती है, क्या राज है आवाज की इस बुलंदी के पीछे?

देखिए गले का या यूँ कहिए कि उसे सही बुलंद रखने का एक ही इलाज है और वह है नींद, कम से कम 7-8 घंटे सोना जरूरी है। नियमित रूप से प्राणायाम भी करता हूँ और विटामिन 'सी' का भरपूर सेवन करिए यानी कम से कम 500 मिलीग्राम सुबह और 500 मिलीग्राम शाम को कभी खाँसी जुकाम खरास नहीं होगी और आपकी आवाज बुलंद रहेगी। बाकी आपके रियाज पर बहुत कुछ निर्भर करता है जिसके बारे में मैंने आपको पहले ही बताया।

आपने हजारों की संख्या में गीत गजल और भजन गाए हैं लेकिन कुछ ऐसे भी गीत होंगे जो आपने खुद तो नहीं गाए लेकिन जिन्हें गुनगुनाने का मन आपका जरूर करता होगा?

जी हाँ बिल्कुल फिल्म 'चौदहवी का चाँद' का टाइटल सॉन्ग रफी साहब ने गाया है,...चौदहवीं का चाँद हो या आफताब हो जो भी हो तुम खुदा की कसम लाजवाब हो...मैं अक्सर गुनगुनाता हूँ, इसे गाने का मेरा बहुत मन करता है और अक्सर मौका मिलते ही मैं अपने स्टेज प्रोग्राम में इसे गाता रहा हूँ। इसके अलावा मन्ना डे का गाया हुआ गीत, कसमे वादे प्यार वफा सब बातें हैं बातों का क्या...भी मैं जरूर गाना चाहूँगा।

वैसे मुझे फिल्मी गीतों में लता जी, आशा जी, किशोर दा, रफी साहब और मन्ना डे के गाए हुए गीत खूब पसंद आते हैं। शास्त्रीय गायकों में मेरे पसंदीदा गायक हैं, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, पंडित जसराज, पंडित भीमसेन जोशी और राशिद खान को भी खूब सुनता हूँ।

जो लोग संगीत के क्षेत्र में आना चाहते हैं उन से यही कहना चाहूँगा कि संगीत बहुत ही प्यारा और सुंदर क्षेत्र है, इसमें जो आनंद है वह और कहीं नहीं है आप इसमें सुरों से, शब्दों से प्रेम करना सीखें आपके चेहरे पर जो मुस्कुराहट आएगी वही आप दूसरों को बाँट सकेंगे।

❖

2000 से भी ज्यादा भजन, गजल और गीत गाने वाले अनूप जलोटा 8 भाषाओं में गाते हैं और दुनिया भर के 300 से भी अधिक शहरों में अब तक 5000 से भी ज्यादा लाइव कंसर्ट दे चुके हैं। ढाई सौ से भी ज्यादा एल्बम गीत, गजल और भजन के जारी कर चुके हैं। लोकप्रियता का यह आलम है कि एक सैकड़ा से भी अधिक गोल्ड, प्लैटिनम और मल्टी प्लैटिनम डिस्क, रिकॉर्ड कंपनी उन्हें प्रदान कर चुकी है। जनवरी 2012 में भारत सरकार ने अनूप जलोटा को पद्मश्री से सम्मानित किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भी उन्हें 'हाउस ऑफ कॉमंस' में सम्मानित किया। 2010 में उन्हें 'एनुअल ग्लोब अवार्ड' से भी सम्मानित किया गया। संगीत नाटक अकादमी सहित देशविदेश के अनेकानेक प्रतिष्ठित पुरस्कार अनूप जलोटा जी को मिल चुके हैं। अनूप जलोटा ने लंदन के रॉयल अल्बर्ट हॉल, वेंबले लिंकन सेंटर, मेडिसन स्क्वायर, सिडनी ओपेरा हाउस जैसे दुनिया के जाने माने प्रतिष्ठित मंचों पर 'लाइव परफॉर्मेंस' दी है। उन्होंने फिल्मों के लिए गीत गाने के साथ ही कई हिंदी, गुजराती और बंगाली फिल्मों में संगीत भी दिया, अपनी कला की विविधता के लिए जाने जाने वाले अनूप जलोटा को उनके चाहने वालों ने भजन सम्राट की उपाधि से विभूषित किया है।

ई-16, कुशल नगर, गांधीनगर, ग्वालियर-474002
मोबाइल : 9425775260

चिरकुमारी नर्मदा का उद्गम : अमरकंटक

— प्रताप सहगल

अमरकंटक एक सामासिक शब्द है। मेरी समस्या यह थी कि अमर शब्द के साथ कंटक क्यों जुड़ा हुआ है? इस प्रश्न के उत्तर की खोज में मैंने अमरकंटक जाना ही बेहतर समझा। अमरकंटक जाने के लिए हमने थोड़ा लंबा रास्ता अख्तियार किया। पहले हम लोग बाँधवगढ़ अभयारण्य में गए। दूसरी बार। बाँधवगढ़ बाघों के लिए विशेष रूप से ख्यात है। पिछली यात्रा में हमें बाघों के दर्शन मुक्त प्रांगण में हो भी गए थे, लेकिन इस बार नहीं।

हमारा लक्ष्य तो अमरकंटक था। यह शब्द एक कंटक की तरह से कोमलता लिए हुए मन में गड़ा हुआ था। कभी हिन्दी के एक बड़े कवि अज्ञेय का भी यह एक प्रिय स्थल रहा है। हम लोगों ने बाँधवगढ़ से अमरकंटक की यात्रा शुरू की। लगभग सवा दो सौ किलोमीटर की यात्रा का आनंद राष्ट्रीय मार्ग के दोनों ओर की हरियाली देखने में है। लंबी सड़क के दोनों ओर कुछ झुके और कुछ तने हुए पेड़ स्वागत के लिए हर समय तैयार हैं। रास्ते में कुछ स्कूल और उनसे निकलते हुए बच्चे आँखों और मन को सुकून देते हैं कि दूर-दराज इलाकों में भी शिक्षा का महत्त्व समझा जाने लगा है।

रास्ते में एक नामालूम गाँव। गाँव का एक छोटा सा बाजार। चंद दुकानें और उनके आसपास बैठे गपियाते कुछ लोग। वहीं हमें मूली दिखी। झक्क सफेद, कद छोटा। भाव पूछा तो दुकानदार ने पाँच रूपए में मूलियों का एक गट्ठर हाथ में थमा दिया। मन प्रसन्न। शहर से आया हूँ। दिल्ली में तो एक मूली ही पाँच या दस रूपए में मिलती है। खाना हमने बाँधवगढ़ से चलते हुए बँधवा लिया था। गाड़ी को सड़क के किनारे लगाया। भोजन का बड़ा भाग हमने ड्राइवर को दिया और शेष हम दोनों के काम आया। एकदम ताजा मूलियों ने भोजन का आनंद चौगुना कर दिया था। जो बचीं वे आसपास घूमती गऊओं के काम आईं। सामने लंबी खाली सड़क, पीछे भी लंबी खाली सड़क। ऐसा लग रहा था जैसे पूरी सड़क पर हमारा ही साम्राज्य हो।

लगभग सवा दो सौ किलोमीटर की यात्रा को हमने छह घंटों में तय किया। सीधे मध्यप्रदेश पर्यटन के हॉलीडे होम में चेक-इन। अमरकंटक एक छोटा सा शहर है। शहर नहीं, एक छोटी सी नगरी या एक बड़ा सा कस्बा। हॉलीडे होम में हमें एक फ्लैट दे दिया गया। शाम ढलने लगी थी। सितंबर का महीना था। मौसम में खुशबुओं से भरी ठंडक तैरने लगी थी। गरम कपड़ों की जरूरत अभी महसूस नहीं हो रही थी। मन में था कि जल्दी से एक चक्कर नर्मदा मंदिर का लगा लिया जाए। बताया न कि अमरकंटक एक छोटा सा शहर है। वाहन से यहाँ कहीं भी पंद्रह-बीस मिनिटों में पहुँचा जा सकता है। नर्मदा माता का मंदिर थोड़ी ही दूरी पर था। गए। परिसर खुला था लेकिन मंदिर के कपाट बंद हो चुके थे, सो इधर-उधर घूमते हुए बाहर निकले तो एक व्यक्ति हमें एक टांग पर खड़ा दिखाई दिया। तन पर केवल एक लंगोट। बाल गुँथे हुए। शरीर पर भस्म रमाई हुई। आसपास कुछ जन थे। हमें भी जिज्ञासा हुई और हम वहाँ खड़े होगए। आपस में बात करते लोग। एक कह रहा था कि पिछले छह महीने से ऐसे ही खड़े हैं। दूसरा बता रहा था कि इन्होंने तीन साल ऐसे ही तप करके सिद्धि प्राप्त करने का संकल्प लिया है। मेरे मन में विवेकानंद और गुरू नानक कौंधते हैं। विवेकानंद एक बार घूमते-घामते हरिद्वार पहुँचे और वहाँ के साधुओं, सन्यासियों

से मिले। उनकी यह यात्रा थी सत्य जानने की। स्वामी दयानंद हों या कोई और सत्यान्वेषी, सभी के लिए हरिद्वार और काशी की यात्रा अनिवार्य कि सत्य जान सकें। स्वामी विवेकानंद ने एक संन्यासी से पूछ लिया कि आपने इतना तप करके क्या प्राप्त किया है तो उसने जवाब दिया-'मैं पानी पर चलकर नदी पार कर सकता हूँ'। स्वामी विवेकानंद व्यावहारिक स्वामी थे। बहस नहीं की। केवल कहा-'जो काम मैं नाव वाले को एक आना देकर कर सकता हूँ, उसके लिए पूरे जीवन को दाँव पर क्यों लगाऊँ।' दूसरा दिलचस्प प्रसंग गुरु नानक का है। वे हरिद्वार जाकर गंगा का पानी अपने हाथों से ऊलीच कर अपने पीछे फैंकने लगे। एक संन्यासी ने टोका-'महाराज सूर्य तो इधर है

और आप विपरीत दिशा में अर्घ्य चढ़ा रहे हैं'। गुरू नानक मुस्काराए और कहा-'इधर मेरे खेत हैं।'

संन्यासी ने फिर पूछा-'आपका इस तरह फैंका हुआ जल आपके खेतों तक कैसे पहुँच सकता है?' गुरु नानक थोड़ा और मुस्कराए और कहा-'सूर्य की दिशा में यहाँ चढ़ाया गया आपका जल अगर सूर्य तक पहुँच सकता है तो मेरा जल इस तरह से मेरे खेतों तक क्यों नहीं पहुँच सकता।' तात्पर्य केवल इतना कि जीवन में अपनाई गई व्यावहारिक और रैशनल दृष्टि ही आपको कुछ उपलब्धियों तक ले जा सकती है। हमने वहाँ से हटना बेहतर समझा। जीवन उसका, जो खड़ा है। उसी का अधिकार है उस पर कि उसे इस जीवन का क्या करना है। खड़ा ही तो है। अँधेरे में घिरा हुआ। ज्ञान का आलोक उसे दिखाई देगा तो देगा, नहीं देगा तो नहीं देगा।

शहर में सन्नाटा है। शाम को सन्नाटा और भी गहरा हो जाता है। झुग्गियों से धुआँ उठने लगा है। रास्ते में बसी झुग्गियों से कहीं गाने तो कहीं झगड़े की आवाजें सुनाई देने लगती हैं। हम एक गाइड साथ लेकर अगले दिन से विधिवत यात्रा करने का संकल्प लेकर अपनी दुनिया में लौट आते हैं।

अगली सुबह नौ बजे हम अपनी अमरकंटक-दर्शन की यात्रा शुरू करते हैं। हमारे साथ एक गाइड है मनोज। मनोज हमें सबसे पहले नर्मदा माँ के मंदिर ही ले जाता है। द्वार खुले हैं। प्रवेश करके देखते हैं कि यह एक मंदिर नहीं, कई मंदिरों का परिसर है। नर्मदा माँ के प्राचीन मंदिर में नर्मदा एक देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। भारत में नदियों को माँ, माता, मैया आदि नाम से ही याद किया जाता है। केवल याद ही नहीं, नदियों की पूजा-अर्चना की जाती है। गंगा-आरती, यमुना आरती, नर्मदा आरती आदि प्रसिद्ध हैं। हम नर्मदा मंदिर के परिसर में घूम रहे हैं। नर्मदामाई के मंदिर के ठीक सामने सती का मंदिर है। यहीं नर्मदा कुण्ड है। यह कुण्ड और इसके आसपास के मंदिर श्रद्धालुओं के लिए पवित्र स्थल हैं। यहीं शिवजी का त्रिमुखी मंदिर है। इसे देखकर मुझे खजुराहो में देखे शिव-मंदिर की याद आ गई। इसका निर्माण ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में राजा कर्णचेदि ने करवाया था। यह अमरकंटक का सबसे पुराना मंदिर है। इनमें खुले पत्तों के आकार के गर्भ-गृह हैं। नर्मदा मंदिर के इस परिसर को बसाने में होल्कर राजघराने की अहिल्याबाई, रीवा के महाराज रघुराज जूदेव और गुलाबसिंह जूदेव की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इस परिसर में शिव मंदिर, कार्तिकेय मंदिर, रामजानकी मंदिर, माँ अन्नपूर्णा मंदिर, गुरु गोरखनाथ मंदिर, श्री सूर्यनारायण मंदिर, श्री दुर्गा मंदिर, ग्यारह रुद्र मंदिर आदि-आदि देखने के बाद हम कल्चुरिकालीन कर्ण

मंदिर समूह की ओर बढ़ते हैं। धूप कुछ तीखी होने लगी है। यह मंदिर पुरातात्त्विक महत्त्व के मंदिर हैं। इनका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में कल्चुरि महाराज कर्ण के प्रयासों से हुआ। आज भारत का पुरातात्त्विक विभाग इनकी देखरेख करता है। हरी-हरी घास का साम्राज्य है। इसे सुरुचिपूर्ण तरीके से काटकर सजा-सँवार दिया गया है। परिसर एकदम साफ है। यहीं पर पंचरथ शैली में निर्मित सोलह स्तंभों के आधार वाले मंडप सहित मंदिर एवं भूमिज शैली में निर्मित गर्भगृह दर्शनीय हैं। हालाँकि गर्भगृह के प्रवेश-द्वार पर ताला जड़ा है। हम उसे केवल बाहर से ही देख पाते हैं। मच्छेन्द्रनाथ और पातालेश्वर मंदिर कल्चुरिकालीन कला के उत्तम नमूने हैं।

हम लौटकर एक बार फिर नर्मदा-कुण्ड के पास जाते हैं। नर्मदा-कुण्ड के सामने खड़े होकर विस्मित हैं कि कैसे धरती के अंदर ही अंदर यात्रा तय करके कई सरणियों का पानी इस कुंड में आ गिरता है। कुण्ड में पानी एक गोमुख से निकलकर गिर रहा है और यही कुण्ड विशाल, लंबी और चिर-कुमारी नर्मदा को अस्तित्त्व में लाता है। नर्मदा-कुण्ड देखते हुए हमें एक किनारे पर दो दोमुँहे सर्प दिखाई देते हैं। शायद हल्की चमकदार धूप का आनंद ले रहे हैं। मनोज बताता है कि यहाँ सर्प दिखाई देना सौभाग्य का प्रतीक है। मैं इन बातों को मानता तो नहीं लेकिन मनोज की बात का प्रतिकार भी नहीं करता। लोग नर्मदा-कुण्ड से जल लेकर अपने और अपने परिजनों पर छिड़क रहे है। कुछ जन आचमन भी कर रहे हैं और जल को अपने साथ लाई बोतल में भर रहे हैं। यह नदियाँ भारत के लोगों की आस्था का बयान हैं लेकिन हैरानी तब होती है जब यही लोग मैदानी इलाकों में नदियों को दूषित करते हैं। नदियों में हो रहा प्रदूषण आधुनिक सभ्यता के विकास का सबसे बड़ा अभिशाप है। यह पावन नदियाँ शहरों में आकर जीवन-दायिनी हैं। इन्हीं नदियों के आसपास ही सभ्यताओं और संस्कृतियों का निर्माण और विकास हुआ है और इन्हें आज हम नष्ट करने पर तुले हुए हैं। समय रहते कोई उपचार नहीं हुआ तो परिणाम भयंकर होने वाले हैं।

अमरकंटक शब्द मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा। मंदिर देखते हुए जहाँ भी अवसर मिलता है अपनी जिज्ञासा का कोई तर्क-संगत उत्तर खोजने की कोशिश करता हूँ। किसी ने बताया कि कालिदास ने इस स्थान के लिए आम्र-कूट शब्द का प्रयोग किया है और यही शब्द अमरकूट और फिर अमरकंटक हो गया। अमरकूट से अमरकंटक। बात गले नहीं उतरती। एक उत्तर जो मुझे कुछ तर्क-संगत लगा उसे ही यहाँ साझा करता हूँ।

यह तो सर्वविदित है कि अमरकंटक मैकल पर्वत-शृंखला पर स्थित है। समुद्र-तल से लगभग 3500 फुट की ऊँचाई। यह ऊँचाई कोई ऐसी ऊँचाई भी नहीं की किसी नदी का

उद्गम-स्थल बने, लेकिन यह नर्मदा और सोन नदी का उदगम-स्थल है। पुराणों में भी नर्मदा के उद्गम को लेकर अनेक कथाएँ हैं। एक कथा के अनुसार अनादि काल में भगवान शिव ऋक्ष पर्वत पर ध्यानमग्न थे तभी उनके नीलकण्ठ से नर्मदा निसृत हुई। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि अमरकंटक का प्राचीन नाम अमरकण्ठ था। शिव को नीलकण्ठ और अमरकण्ठ भी कहा जाता है। संभवत: अमरकण्ठ ही कालांतर में अमरकंटक हो गया। यह बात अधिक तर्क-संगत लगती है। शिव के नीलकण्ठ से निसृत होने के कारण नर्मदा को शांकरी भी कहा जाता है। मैकल पर्वत-शृंखला से निकलने के कारण इसे मैकलसुता भी

कहते हैं। पर्वतों और पहाड़ियों में अपनी चंचल गति के कारण इसे एक नाम रेवा भी दिया गया है। एक अन्य कथा के अनुसार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की आँखों से दो आँसू अमरकंटक पर गिरे। इन्हीं दो आँसुओं से दो नदियाँ प्रवाहित हुईं। पहली नर्मदा और दूसरी है सोन। दिलचस्प बात है यह है कि एक ही स्थान से निसृत होने के बावजूद दोनों अलग-अलग दिशाओं में बहती हुई जैसे अपने अलग-अलग व्यक्तित्त्व की घोषणा कर रही हों। नर्मदा पश्चिम की ओर बहती हुई भड़ौच के पास अरब सागर में मिलती है जबकि सोन बिहार की ओर प्रवाहित होती हुई गंगा में अपना अस्तित्त्व लीन कर देती है। यानी नर्मदा मध्य-प्रदेश और गुजरात के करोड़ों लोगों की जीवन-रेखा बनकर अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व बनाए रखती है।

हमारे पाँव और दिमाग एक साथ चल रहे हैं। पाँव केवल दूरियाँ नापते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं लेकिन दिमाग कई तरह की छलांगे लगाकर अतीत की यात्रा करते हुए कभी वर्तमान तो कभी भविष्य के द्वार पर दस्तक देता रहता है। कर्ण मंदिर के पीछे ही एक परिसर और दिखाई देता है। मनोज बताता है कि यह रंगमहल है। रंगमहल? मेरा प्रश्न था। हाँ, यहीं नर्मदा माता का बचपन गुजरा है। यहीं वह खेलकर बड़ी हुई है। आस्थाओं पर लगे प्रश्नों का कोई उत्तर होता है क्या?

माई की बगिया: नर्मदा मंदिर से हम लोग पूर्व की ओर आगे बढ़ते हैं। लगभग एक किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद हमें माई की बगिया दिखाई देती है। इसे चरणोदक कुण्ड के नाम से भी जाना जाता है। यही वह स्थान है, जहाँ से नर्मदा की परिक्रमा शुरू होती है और यहीं लौटकर परिक्रमा संपन्न होती है। यहाँ का वन सघन है। बगिया में फूलों और फलों के पेड़ पौधे जैसे हमें आमंत्रित कर रहे हैं। यहीं पर गुलबकावली का प्रसिद्ध पुष्प मिलता है। यह एक ऐसा सुंदर और सुगंधित पुष्प है, जो आँखों के रोगों के लिए औषधि के रूप में भी काम आता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार माँ नर्मदा अपनी सखी गुल बकावली के साथ इसी स्थान पर खेला करती थी। हम देखते हैं कि यहाँ भोजन पक रहा है। परिक्रमा करने वाले श्रद्धालुजन यहीं से अपना भोजन प्रसाद स्वरूप ग्रहण करते हैं।

वहाँ से हम आगे बढ़ते हैं। एक लंबी यात्रा के बाद हम पहुँचते हैं माई का मण्डप। एक जनश्रुति के अनुसार इसी स्थान पर माँ नर्मदा का विवाह ब्रह्मपुत्र सोण के साथ होने वाला था जो विघ्न पड़ने के कारण संभव न हो सका। इन जन-श्रुतियों के चाहे कोई वैज्ञानिक आधार हमारे पास न हों लेकिन एक बात तो उभर कर सामने आती है कि हमारे देश के लोग नदियों को केवल जल का आगार नहीं, बल्कि उसे एक ऐसा व्यक्तित्त्व देते हैं, जिनसे श्रद्धा के साथ जुड़ सकें। यह श्रद्धा और आस्था ही उन्हें नदियों को बचाए रखने के लिए प्रेरित कर सकती है।

माई की बगिया से दक्षिण दिशा की ओर अब हम सोनमुड़ा की ओर प्रस्थान करते हैं। सोनमुड़ा यानी सोन नदी का उद्गम-स्थल। गाड़ी बाहर ही छोड़कर पैदल जाना पड़ता है सोन नदी के उद्गम-स्थल तक। यहाँ या तो हरियाली या फिर बंदरों का साम्राज्य है। यह स्थल इतना मनोरम है कि इसे अमरकंटक का स्वर्ग कहा जा सकता है। सोन नदी के उद्गम के पास ही है

भद्र नदी का उद्गम स्थल। थोड़ी ही दूर है संगम कुंड। यहाँ इन दोनों नदियों का संगम हो जाता है और सोन नदी बन जाती है सोनभद्र। ऐसा भी कहा जाता है कि सोन नदी के जल में सोने के कण पाए जाने के कारण इसका नाम सोन पड़ा। उद्गम स्थल पर ही सोन का जल पीने का आनंद अपनी तरह का अनुभव है। शीतल, स्वच्छ और प्रेरक। यहाँ से सूर्योदय का दृश्य सुंदर दिखता है। लेकिन उसके लिए तो हमें सुबह आना पड़ेगा और हम सुबह आने का संकल्प लेकर वहाँ से लौटते हैं। बंदरों से बचते हुए।

अब हम थक चुके थे। हमने लौटने का निर्णय लिया। अपने पर्यटन निवास में लौटे। गरमागरम भोजन जैसे हमारी प्रतीक्षा में था। खाना ऐसा जैसा कि घर में ही बना हो। खिलाते भी बड़े प्यार से हैं। थका शरीर। तृप्त मन। उसके बाद नींद तो अच्छी आनी ही थी।

शाम को हम फिर निकल पड़ते हैं कि अमरकंटक का बाजार देखा जाए। अमरकंटक का बाजार। बाजार के नाम पर बीस-तीस छोटी-मोटी दुकानें। वहीं हमें अचानक एक गुरुद्वारा दिखाई दे जाता है। यहाँ सिखों की आबादी तो है ही नहीं, फिर यह गुरुद्वारा कैसे? उसी ओर चल पड़ते हैं। गुरुद्वारे के बाहर बैठे एक वृद्ध सिख हमारी अगवानी करते हैं। गुरुद्वारे से बाणी की आवाज आ रही है। संगीत के साथ। हम गुरुद्वारे में प्रवेश करते हैं। वहाँ बीड़ प्रतिष्ठित है। पास ही बैठे तीन किशोर संगीत के साथ ही बाणी गा रहे हैं। इनमें से कोई भी सिख नहीं है। हम वृद्ध सिख से बाहर आकर पूछते हैं कि क्या यहाँ कोई भी सिख नहीं रहता। 'हैं दो-तीन परिवार। यह लड़के यहीं के हैं। इन्हें ही कुछ सिखाया है और यह रोज यहाँ सुबह शाम आकर कीर्तन करते हैं' वह बताता है। हमारी जिज्ञासा है कि इतना बड़ा गुरुद्वारा यहाँ कैसे बन गया। वह बताता है कि बैसाखी पर यहाँ मेला लगता है। दूर-दूर से संगत आती है। गुरुपर्व पर भी श्रद्धालुजन आ जाते हैं। आगे-पीछे बस मैं ही मैं हूँ या दो-तीन सेवादार और। वह हमें वहीं ठहरने की दावत देता है। हर शाम वहाँ लंगर भी उपलब्ध है। मेरे पूछने पर कि इस गुरुद्वारे के निर्माण, रख-रखाव और लंगर आदि के लिए पैसा कहाँ से आता है। वह आसमान की ओर हाथ उठा देता है-'वाहे गुरु दी मेहर है'। अमरकंटक में एक ही गुरुद्वारा है। यह भव्य है। हम उसे यह कहकर कि अगली बार आए तो यहीं ठहरेंगे, रुख्सत लेते हैं। अंधेरा घिर चुका था। झोपड़ियों से धुआँ उठने लगा था। हम अपने अस्थाई आशियाने की ओर रुख करते हैं।

अगले दिन की यात्रा कपिलधारा की ओर प्रस्थान से शुरु होती है। हमारे ठिकाने से कोई छह-सात किलोमीटर की दूरी पर ही स्थित है कपिलधारा। कहते हैं कि कभी अमरकण्टक नगरी यहीं थी। पूरी राह में सड़क के दोनों ओर खड़े खड़े ऊँचे-ऊँचे पेड़ अपनी शाखाएँ हिला-हिलाकर हमारा स्वागत कर रहे हैं। कहते हैं कि यहाँ कपिल मुनि ने घोर तपस्या की थी और यहीं उन्होंने नर्मदा को बाँधने की कोशिश की।

संभव है कि यह अपने समय का कोई बाँध बनाने की कोशिश कर रहे हों कि लोगों को पर्याप्त जल मिल सके। आज यह एक जल-प्रपात है। नर्मदा को भला कोई बाँध पाया है। यहाँ नर्मदा सौ फुट गहरे खड्ड में गिरती है। इसी से थोड़ी ही दूर दुर्गाधारा या दुग्धधारा या दूधधारा है। आप इसे जो चाहे नाम दें लेकिन यह जल-प्रपात थोड़ा संकरा होने के कारण दूधिया दिखाई देता है। नयनाभिराम जल-प्रपातों का निर्माण करने वाली नर्मदा का सबसे पहला जल-प्रपात कपिलधारा है। चारों ओर हरियाली। हरियाली की गंध और जल-प्रपात की तेज ध्वनि मन और आँख दोनों को तृप्त करती है। दुग्धधारा में बदलने के बाद नर्मदा की जलधारा दुर्गम पहाड़ियों में खो सी जाती है और हम नैसर्गिक सौंदर्य में डूबे रहते हैं। मंत्र-मुग्ध होकर। लौटते हुए

देखते हैं कि दो-तीन युवतियाँ अपनी-अपनी चारपाई पर कुछ वनौषधियाँ फैला कर बेच रही हैं। उनसे कई जड़ी बूटियों और उनसे बनी औषधियों की जानकारी लेते-लेते कुछ खरीद भी लेता हूँ। वनवासियों के लिए यही औषधियाँ समय पर काम आती हैं।

वहाँ से लौटकर हम निर्माणाधीन जैन मंदिर देखते हैं। यह एक भव्य जैन मंदिर पिछले कई सालों से बन रहा है और अभी कई साल और लगेंगे लेकिन श्रद्धालुजन यहाँ आने लगे हैं। अमरकंटक आकर समय हो तो ज्वालेश्वर मंदिर भी देखा जा सकता है। एक दिलचस्प बात यह लगी कि हर शिव-मंदिर का पुजारी वहाँ स्थापित शिव-लिंग को स्वयंभू मानकर बैठा हुआ है और ऐसा ही वह प्रचार करता है, जबकि हम जानते हैं कि भारत में केवल 12 शिवलिंग ही स्वयंभू माने जाते हैं।

नर्मदा मंदिर से पश्चिम-दक्षिण की ओर लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है कबीर चौरा। इसे कुछ लोग कबीर चबूतरा भी कहते हैं। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की निर्गुण शाखा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं कबीर। ऐसी मान्यता है कि कभी कबीर ने यहीं अपना डेरा डाला और कुछ समय रहे। कबीर-पंथियों के लिए यह एक पवित्र स्थान है। वहाँ पहुँचकर देखता हूँ कि कबीर चबूतरा लगभग क्षत-विक्षत अवस्था में है। उसी के पास एक छोटी सी कुटिया है, जहाँ कबीर रहे होंगे। यहाँ अपेक्षाकृत कम लोग ही आते हैं। कबीर की कुछ वाणियाँ वहाँ गलत रूप में अंकित हैं। बताऊँ तो किसे बताऊँ। इस जगह की देख-रेख करने वाला तो कोई कहीं दिखाई नहीं दे रहा।

भृगु कमंडल, चक्रतीर्थ, श्री यंत्र महामेरू मंदिर, सिद्धि विनायक आदि-आदि देखने के बाद आप अनुमान लगा सकते हैं कि अमरकंटक मंदिरों, नदियों और हरियाली का प्रदेश है। दस हजार से भी कम आबादी वाली इस नगरी की आय का प्रमुख स्रोत पर्यटक हैं। अनेकानेक पर्यटक यहाँ प्रतिदिन आते हैं और अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण होने की आशा लेकर लौटते हैं।

अब तक हम अमरकंटक लगभग पूरा देख चुके हैं। अभी हमारे पास दो दिन और हैं। हम कुछ जगहों पर पुनः जाने का संकल्प लेकर अपने गाइड मनोज को रुख्सत करना चाहते हैं कि उसके और मेरे बीच एक दिलचस्प संवाद शुरु होता है, जिसे मैं यहाँ दर्ज करना चाहता हूँ। इस संवाद से धर्म और धर्म के बाहरी रूप के प्रति लोगों के नजरिये को समझा जा सकता है। मनोज ही शुरू करता है।

मनोज- सर जी, मैंने तीन दिन आपके साथ गुजारे हैं, आप तो ज्ञानी हो। मेरी बात मानो तो यहीं रह जाओ।

मैं- हाँ चाहता तो मैं भी हूँ कि यहाँ कोई जगह खरीदकर एक छोटा सा मकान बना लूँ। मुझे अमरकंटक बहुत अच्छा लगा है।

मनोज- जमीन खरीदने की क्या जरूरत है यहाँ आपको।

मैं- मतलब ?

मनोज- सर जी, इतना ज्ञान मेरे पास होता न तो आज मेरा यहाँ मठ होता।

मैं उसकी ओर जिज्ञासा भरी निगाहों से देखता हूँ कि यह कहना क्या चाहता है।

मनोज- सरजी, जमीन तो यहाँ बहुत है। यहाँ सबने घेर रखी है। आप भी घेर लो।

मेरी दिलचस्पी बढ़ जाती है।

मैं- अच्छा, उसके लिए मुझे क्या करना होगा ?

मनोज- आपको संस्कृत के मंत्र तो सब आते ही हैं। जगह मैं बताता हूँ, वहाँ रोज यज्ञ करना शुरू कर दो। थोड़ा बहुत प्रवचन। चार-छह महीने। सबसे पहले मैं आपका चेला और मेरे साथ दस-बीस लोग और भी हैं। कुछ दिनों में आप मशहूर हो जाओगे और लोग दूर-दूर से आना शुरू हो जाएँगे। बस फिर जितनी जगह चाहे घेर लो, सब खाली पड़ी है।

मैं- कोई पूछता नहीं यहाँ...कोई सरकार, कोई प्रशासन।

मनोज- वो सब तो आपके चेले ही होंगे, पूछेगा कौन...यहाँ सब ऐसे ही चल रहा है, खरीदने की जरूरत क्या है?

मैं- (मुस्कराते हुए) मैं सोचता था तुम मेरे साथ रहकर कुछ सीखे होगे। अगर यह सब करूँगा तो मेरा लिखना-पढ़ना सब व्यर्थ, यह फ्राड है मनोज, मुझसे नहीं होगा।

मनोज- सरजी, सुनहरा मौका है बाबा बनने का...यहाँ हैं कुछ लोग, दबंग, सब आपके ही चेले होंगे जी...आप शुरू कर दो।

मैं- तीन दिन के तुम्हारे कितने पैसे हुए?

वह मेरी ओर विस्मित निगाहों से देखने लगता है और फिर अपने पैसे लेकर लौट जाता है। इस वार्तालाप से एक बात समझ आ जाती है कि धर्म के नाम पर किस तरह से बाबाओं का निर्माण किया जाता है और फिर आमजन की धार्मिक भावनाओं से खेलते हुए कैसे लाभ कमाया जाता है। धर्म, धर्म न रहकर एक धंधा बन जाता है। इससे ने केवल धन और यश मिलता है बल्कि कई बार राजनीति और सत्ता का प्रवेश-द्वार भी खुल जाता है।

हमने अगले दो दिन बार-बार उन्हीं जगहों को देखा और कुदरत की गोद में खेलते हुए एक ऐसा सुकून महसूस किया, जिसका बयान संभव नहीं। यह गूंगे का गुड़ है, जिसका आनंद उसके अनुभव में ही समाहित है। लौटते हुए भी हम अपने से यह वायदा करके लौट रहे थे कि कम से कम एक बार फिर हम अमरकंटक जरूर आएँगे।

❖

कवि, नाटककार, कथाकार, बाल साहित्यकार तथा रंगकर्मी
एफ-101, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
मोबाइल : 9810638563 ई-मेल : partapsehgal@gmail.com

दिनांक 01 अगस्त 2020 माननीय गृहमंत्री श्री अमित शाह लोकमान्य तिलक की 100वीं पुण्य तिथि के अवसर पर आयोजित वेबीनार स्वराज से आत्मनिर्भर भारत के उद्घाटन सत्र में संबोधित करते हुए

दिनांक 01 अगस्त 2020 प्रेसिडेंट, आईसीसीआर लोकमान्य तिलक की 100वीं पुण्य तिथि के अवसर पर आयोजित वेबीनार स्वराज से आत्मनिर्भर भारत के उदघाटन सत्र में संबोधिन करते हुए

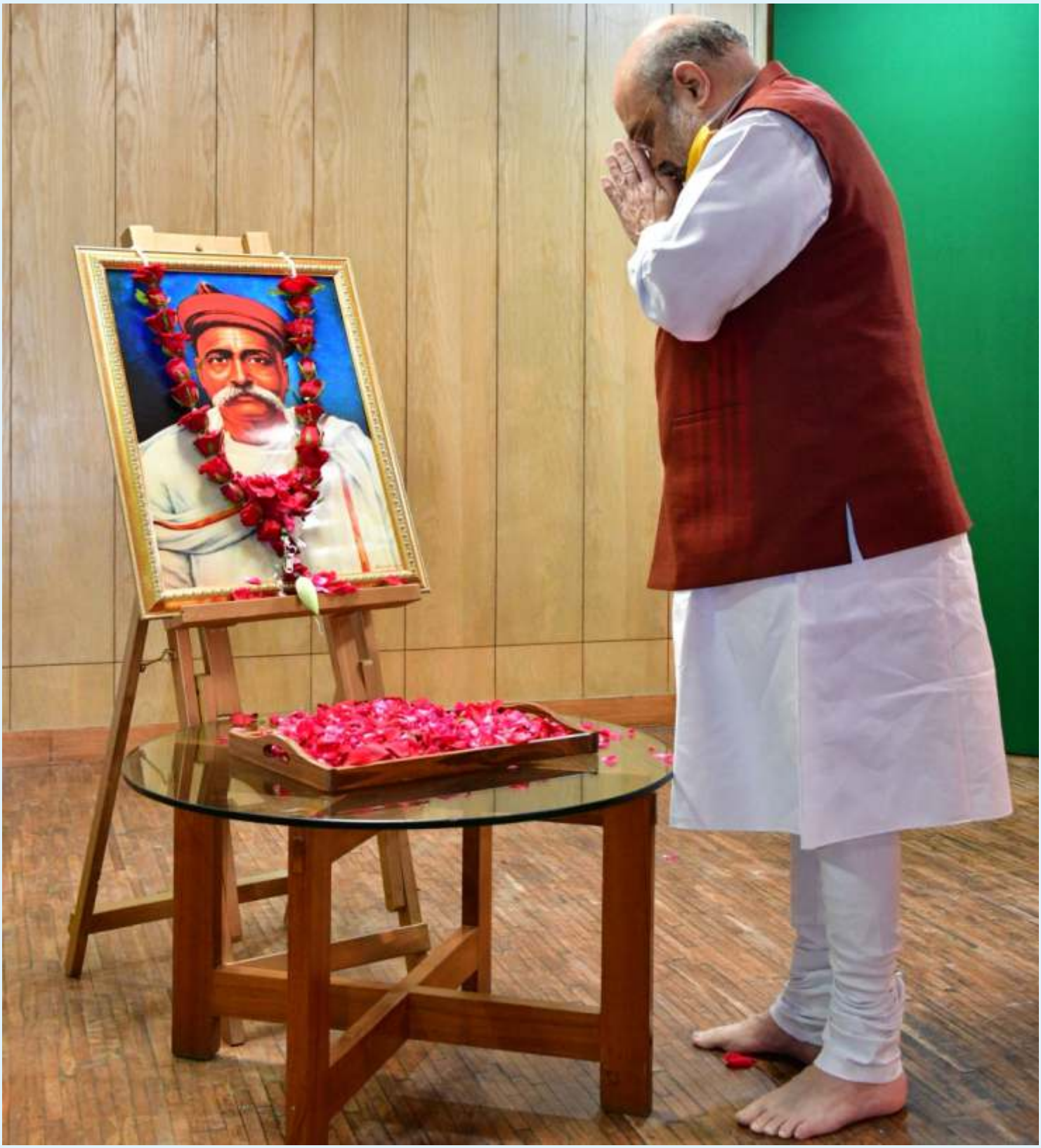

दिनांक 01 अगस्त 2020 माननीय गृहमंत्री श्री अमित शाह, लोकमान्य तिलक की 100वीं पुण्य तिथि के अवसर पर आयोजित वेबीनार स्वराज से आत्मनिर्भर भारत के उदघाटन सत्र में तिलक जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए

दिनांक 01 अगस्त 2020 महानिदेशक, आईसीसीआर लोकमान्य तिलक की 100वीं पुण्य तिथि के अवसर पर आयोजित वेबीनार स्वराज से आत्मनिर्भर भारत के उदघाटन सत्र में संबोधन करते हुए

दिनांक 01 अगस्त 2020 माननीय गृहमंत्री श्री अमित शाह लोकमान्य तिलक की 100वीं पुण्य तिथि के अवसर पर आयोजित वेबीनार स्वराज से आत्मनिर्भर भारत के उदघाटन सत्र में संबोधित करते हुए

डॉ. विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा दिनांक 19 अगस्त 2020 को जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय राजदूतावास, मास्को में आयोजित कार्यक्रम के दौरान दिया गया संदेश

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क		प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	` 500 (भारत) US$ 100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	` 1200 (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय पुस्तक विक्रेता	10% 25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 42 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेख अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

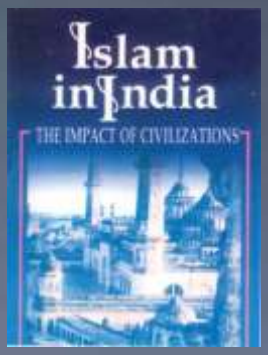

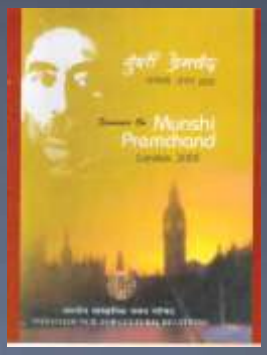

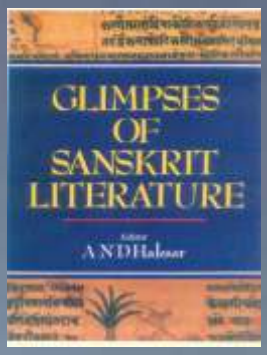

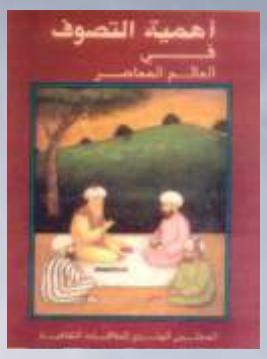

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका

गगनांचल